ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अमृत प्रवचन

(भाग-6)

परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
'बहिनश्री के वचनामृत' पर प्रवचन
(प्रवचन क्रमांक 151 से 181, वचनामृत 380 से 432)

: हिन्दी अनुवाद व सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

न्यौछावर राशि : 20.00 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

भारत की भव्य वसुन्धरा अनादि से सन्तरत्नों की पवित्र भूमि रही है। यहाँ तीर्थंकर परमात्मा, वीतरागी सन्त एवं ज्ञानी-धर्मात्मा होते रहे हैं। इस देश का सौराष्ट्र प्रान्त भी अध्यात्मप्रधान जैन धर्म के गगन मण्डल में चमकीले नक्षत्र श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्मयुगस्रष्टा आत्मज्ञसन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी और प्रशममूर्ति स्वानुभवविभूषित पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन जैसे असाधारण स्वानुभूतिप्रकाशक साधक धर्मात्माओं की भेंट प्रदान कर पुण्य भूमि बना है।

परम देवादिदेव चरम तीर्थंकर पूज्य श्री महावीरस्वामी की दिव्यध्वनि द्वारा प्रवाहित और गुरु-परम्परा से प्राप्त परम पावन अध्यात्मप्रवाह को भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने परमागम श्रीसमयसार आदि प्राभृत भाजनों में सूत्रबद्ध करके चिरंजीवी किया है। भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने महाविदेहक्षेत्र में विराजमान शाश्वत् भगवन्त श्री सीमन्धरस्वामी के दर्शन एवं दिव्यध्वनि श्रवण का महान सौभाग्य भी प्राप्त किया था, जो इस पंचम काल की एक अविस्मरणीय घटना है। आचार्यश्री द्वारा प्रवाहित वीतरागी तत्त्वज्ञान के पुनीत अमृत का पान करके अन्तर के पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूति समृद्ध आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करके, जिन्होंने सौराष्ट्र, गुजरातसहित सम्पूर्ण देश तथा विदेशों में भी शुद्धात्मतत्त्व प्रमुख अध्यात्मविद्या का पवित्र आन्दोलन प्रसारित करके वर्तमान शताब्दी के भौतिक युग में दुःखी जीवों का उद्धार किया है – शाश्वत् शान्ति का मार्ग उपलब्ध कराया है – ऐसे जिनशासन प्रभावक, करुणामूर्ति, परमोपकारी, परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की शुद्धात्म-सुधारसमय मंगल पवित्रता, पुरुषार्थ से चमत्कृत ध्येयनिष्ट सहज वैराग्य, उत्तम बाल ब्रह्मचर्यसहित पवित्र जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्ग-दर्शक सदुपदेश तथा अन्य अनेकानेक उपकारों का वर्णन कितना भी संक्षिप्तरूप से किया जाये तो भी अशक्य है।

आपश्री के विविध उपकारों में से एक महान उपकार यह है कि आपने पूज्य बहिनश्री की पहिचान जगत् को प्रदान की है। पूज्य बहिनश्री के परिणमन में से निकले हुए शब्द अर्थात् 'बहिनश्री के वचनामृत'; इन वचनामृतों में अनुभव का सार, समयसार का सार, समस्त शास्त्रों का सार आ गया है। सादी भाषा में परम सत्य प्रकाशित हुआ है। जैन-जैनेतर सबको समझ में आ सकने योग्य अध्यात्ममार्ग का खजाना वचनामृत में है। जगत् का भाग्य है कि यह अलौकिक पुस्तक प्रसिद्ध हुई।

विशिष्ट ज्ञानविभूषित स्वानुभूतिपरिणत बहिनश्री चम्पाबेन की पवित्र मुद्रा ही मानो साधकदशा का मूर्तरूप हो तथा सम्यक् मोक्षमार्ग का मूक उपदेश प्रदान कर रही हो! शास्त्रोपम गम्भीर, तथापि सादी सरल भाषा में उनके वचनामृत विविध कोटि के सर्व जीवों को अति उपकारक होते हैं। वे शुद्धात्मरूप द्रव्यसामान्य की मुख्यतापूर्वक, अनेकान्त सुसंगत द्रव्य-पर्यायस्वरूप निज आत्मतत्त्व को हस्तकमलवत् दर्शाते हैं और साधक जीवों की अटपटी अन्तर परिणति की अविरुद्धरूप से स्पष्ट समझ प्रदान करते हैं।

कृपासागर पूज्य गुरुदेवश्री भी सभा में पूज्य बहिनश्री की स्वानुभवविभूषित अन्तर परिणति; अनेक भवसम्बन्धी धर्म विषयक असाधारण जातिस्मरणज्ञान और वचनामृत की विशिष्टता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। पूज्य गुरुदेवश्री की वह प्रसन्न मुद्रा हजारों श्रोताओं के स्मृति-पटल में स्पष्टरूप से आज भी तैरती है।

पूज्य बहिनश्री गुणगम्भीर, देव-गुरु के परम भक्त, अन्तरंग में अत्यन्त महान और पवित्र तथा बाह्य में अत्यन्त निर्लेप थीं। उनकी निर्विकल्प आनन्दमय अद्‌भुतदशा परखकर पूज्य गुरुदेवश्री ने उन्हें 'भगवती', 'जगदम्बा' जैसे असाधारण विशेषण प्रदान किये थे।

जैनधर्म की गीता अर्थात् 'बहिनश्री के वचनामृत' और मुमुक्षु जगत के लिये अमृत की बेल! पूज्य बहिनश्री लघुवय से ही उग्र पुरुषार्थी थी। इस भव में ही आत्मप्राप्ति कर लेने योग्य है – ऐसी तीव्र धगश, खटक बचपन से ही थी। सतत् पुरुषार्थ, गुरु की महिमा, मुमुक्षु की भूमिका, भेदज्ञान, ज्ञानी पुरुष की अन्तर्बाह्यदशा, आत्मा प्राप्त करने की विधि, मुनिदशा का वर्णन, आदि वचनामृत के बोल में दिखता है।

इस वचनामृत में 432 बोल हैं। उन पर पूज्य गुरुदेवश्री के 181 प्रवचन हुए हैं। उन प्रवचनों को अक्षरशः छह भाग में प्रकाशित किये जायेंगे। उनमें से यह अन्तिम छठवाँ भाग है। पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. टेप प्रवचन सुनते समय शब्दशः वाचन पद्धति मुमुक्षुओं को अत्यधिक अनुकूल और सुगम हुई है; इस कारण यह शब्दशः प्रवचन-ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए, हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

बहिनश्री के वचनामृत में समाविष्ट अनेक आध्यात्मिक विषयों पर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अद्‌भुत छनावट की है-तलस्पर्शी स्पष्टीकरण किया है, उसे पढ़कर आश्चर्य होता है कि आहा...हा...! ऐसे गम्भीर भाव भरे हैं! यह वचनामृत अमृत है और पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन भी अमृत हैं; इसलिए इस प्रवचन ग्रन्थ का नाम 'अमृत प्रवचन' रखा गया है। एक ओर दिव्य-देशना का प्रपात बहानेवाला तीर्थंकर का द्रव्य और दूसरी ओर दिव्य-देशना को ग्रहण करनेवाला गणधर का द्रव्य! कैसा भव्य सुयोग! इस दिव्य-देशना का मूल्यांकन किस प्रकार हो सकता है!! परम पूज्य गुरुदेवश्री ने यह अमृतसागर प्रवचनों की भेंट प्रदान करके समस्त मुमुक्षुओं को निहाल कर दिया है।

'बहिनश्री के वचनामृत' ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का बारम्बार अमृतपान कर लेने योग्य है। एक-एक बोल में अर्थ गम्भीरता, तत्त्वविषय की गहरायी, तलस्पर्शी अनुभव-पूर्ण मार्गदर्शन, जगत के जीवों के प्रति करुणापूर्ण पवित्रता की भावना-इत्यादि अनेकानेक गुणों का दर्शन कराते हुए ये प्रवचन, मुमुक्षु जीव को आत्महित में निश्चित ही निमित्तभूत होंगे।

इन प्रवचनों को शब्दश: लिखकर गुजराती भाषा में तैयार करने हेतु श्री निलेशभाई जैन, भावनगर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद, साथ ही सी.डी. प्रवचन से मिलान पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) द्वारा किया गया है। इस हिन्दी प्रकाशन में व्यक्तिगत नाम एवं सम्बोधन आदि भी यथावत् रखे गये हैं। जहाँ आवाज की अस्पष्टता से वाक्य समझ में नहीं आया, वहाँ .... करके स्थान छोड़ दिया गया है। ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए श्री दिनेश जैन, देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। इसके अलावा सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में 'बहिनश्री के वचनामृत' के अमृत प्रवचनों का स्वाध्याय करके सभी आत्मार्थी परम शान्ति को प्राप्त हों, ऐसी भावना है। इस छठवें भाग के प्रकाशन के साथ ही बहिनश्री के वचनामृत ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्री के मंगल प्रवचनों का शब्दश: प्रकाशन पूर्णता को प्राप्त होता है। जिसका हमें अत्यन्त हर्ष है। सभी साधर्मीजन भी इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करते हुए भरपूर लाभ लेंगे, यह अपेक्षा है।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
१५१	१५-११-१९७८	३८०-३८१	१
१५२	१६-११-१९७८	३८२-३८३	१४
१५३	१७-११-१९७८	३८४-३८५	२८
१५४	१८-११-१९७८	३८५-३८६	४३
१५५	१९-११-१९७८	३८७-३८८	५६
१५६	२०-११-१९७८	३८८-३८९	७३
१५७	२१-११-१९७८	३९०	८७
१५८	२२-११-१९७८	३९१-३९३	१०२
१५९	२३-११-१९७८	३९३-३९४	११५
१६०	२४-११-१९७८	३९५-३९६	१२८
१६१	२५-११-१९७८	३९७-३९९	१४१
१६२	२६-११-१९७८	३९९-४०१	१५३
१६३	२७-११-१९७८	४००-४०३	१६७
१६४	२८-११-१९७८	४०४-४०६	१६७
१६५	२९-११-१९७८	४०६-४०७	१९५
१६६	३१-११-१९७८	४०८-४०९	२०९
१६७	०१-१२-१९७८	४०९	२२४

१६८	०२-१२-१९७८	४१०	२३८
१६९	०३-१२-१९७८	४१०-४११	२५२
१७०	२६-१२-१९७८	४११	२६६
१७१	२७-१२-१९७८	४१२-४१३	२८०
१७२	२८-१२-१९७८	४१४-४१५	२९४
१७३	२९-१२-१९७८	४१३-४१७	३०९
१७४	३०-१२-१९७८	४१७-४१८	३२३
१७५	३१-१२-१९७८	४१९-४२१	३३७
१७६	०१-०१-१९७९	४२२-४२३	३५१
१७७	०२-०१-१९७९	४२३-४२४	३६६
१७८	०३-०१-१९७९	४२५-४२७	३८०
१७९	०४-०१-१९७९	४२७-४२९	३९६
१८०	०५-०१-१९७९	४२९-४३१	४१४
१८१	०६-०१-१९७९	४३२	४२९

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का अपार उपकार

(पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के भक्तिभीने उद्गार)

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी तो तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि जैसी महामंगलकारी, आनंद उपजानेवाली थी। ऐसी वाणी का श्रवण जिनको हुआ वे सब भाग्यशाली हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी और पूज्य गुरुदेवश्री तो इस काल के एक अचम्भा थे। बाहरी अभ्यास तो जीव को अनादि से है परन्तु चैतन्य का अभ्यास तो इस काल में पूज्य गुरुदेवश्री ने बहुत सालों तक करवाया है। उनकी वाणी रसात्मक–कसदार थी। उनके अन्तर में श्रुत की धारा और उनकी वाणी में भी श्रुत की गंगा बहती थी। उनकी महा आश्चर्यकारी मुखमुद्रा–शान्तरस बरसाती, उनके नयन उपशमरस भरपूर। अहो! गुरुदेवश्री तो भरत (क्षेत्र) के सौभाग्य थे, भरतक्षेत्र भाग्यशाली कि पूज्य गुरुदेव विदेह से सीधे यहाँ पधारे। सौराष्ट्र भाग्यशाली, जैनसमाज महाभाग्यशाली। पूज्य गुरुदेवश्री ने सच्चा जिनशासन स्वयं ने प्रगट किया। प्रसिद्धरूप से समझाया। और ऐसा काल तो कभी ही आता है। अहो! इस सोनगढ़ में तो 45–45 साल तक मूसलधार बारिश की माफ़िक मिथ्यात्व के जमे हुए चिकने सेवार जैसे पापभाव को उखेड़ने के लिये तेज हवा की माफ़िक पूज्य गुरुदेवश्री ने सम्यक्श्रुत की प्रभावना की थी। उनकी कृपा हमलोगों पर सदैव रहती थी। हम तो उनके दास हैं, अरे! दास तो क्या? दासानुदास ही हैं। 3.

★ ★ ★

अहो! पूज्य गुरुदेवश्री ने तो समग्र भरत(क्षेत्र) को जागृत कर दिया है। उनका तो इस क्षेत्र के सर्व जीवों पर अमाप उपकार है। अनन्त–अनन्त उपकार है, पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अनादि मंगलरूप तीर्थंकर का द्रव्य था। इतना ही नहीं उन्हें वाणी का अद्भुत–अनुपम और अपूर्व योग था। पूज्य गुरुदेवश्री अनुपम द्रव्य थे। अपूर्वता के दातार–उनकी वाणी सुननेवाले पात्र जीवों को अन्तर से अपूर्वता भासित हुए बिना नहीं रहती। उपादान सबका अपना–अपना लेकिन उनका निमित्तत्त्व प्रबल से प्रबल था। उन्हें सुननेवाले को अपूर्वता भासित हुए बिना रहे ही नहीं। उनकी वाणी में ऐसा अतिशय था कि उन्हें सुननेवाला कोई भी जीव कभी भी नीरस होकर उनका वक्तव्य सुनते हुए छोड़ दे ऐसा नहीं बनता। ऐसा परम कल्याणकारी मूसलधार उपदेश था। 4.

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अमृत प्रवचन

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर धारावाहिक प्रवचन)

भाग-६

कार्तिक कृष्ण -१, बुधवार, दिनाङ्क १५-११-१९७८
वचनामृत-३८० से ३८१ प्रवचन-१५१

जिस प्रकार सुवर्ण को जंग नहीं लगती, अग्नि को दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभाव में आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती। तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नों की चमक प्रगट होगी ॥३८०॥

बोल, ३८० है। बहुत सादे दृष्टान्त से वस्तु सिद्ध की है। अपने गुजराती में तो कहते हैं (कि) कंचन को काट (जंग) नहीं लगती। **जिस प्रकार सुवर्ण को जंग नहीं लगती, अग्नि को दीमक नहीं लगती,...** दीमक-दीमक। यहाँ ऐसा कहते हैं। **जिस प्रकार सुवर्ण को जंग नहीं लगती,...** सुवर्ण को काट / जंग नहीं लगती। आहाहा! **अग्नि को दीमक नहीं लगती,...** दीमक-दीमक होती है न? **अग्नि को दीमक नहीं लगती; उसी प्रकार...** आहाहा! **ज्ञायकस्वभाव में...** भगवान ज्ञायकस्वरूप वस्तु, जो द्रव्यस्वभाव है, उसे आवरण नहीं। द्रव्य को आवरण नहीं। आहाहा! वस्तु को आवरण होवे तो वस्तु, अवस्तु हो जाए।

बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा! आवरण का निमित्त और राग का निमित्त तो एक समय की पर्याय के साथ में है। वस्तु में आवरण नहीं है। आहाहा! चैतन्यद्रव्य जो वस्तु है, उसमें आवरण नहीं है। अग्नि में दीमक नहीं, सुवर्ण को जंग नहीं लगती; उसी प्रकार भगवान आत्मा में आवरण नहीं। द्रव्य में आवरण है ही नहीं। आहाहा! यह तो मूल चीज़ है।

न्यूनता... नहीं, कमी नहीं। वस्तु स्वभाव है, उसमें कमी नहीं। वह तो पूर्ण.. पूर्ण वस्तु है। आहाहा! **न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती।** वस्तु में अशुद्धि कैसी? एक समय की पर्याय में अशुद्धता है एक समय। वस्तु है, वह तो त्रिकाली शुद्ध ही है। आहाहा! **अशुद्धि नहीं आती। तू उसे पहिचानकर...** आहाहा! अकेला माल है। तेरी दृष्टि द्रव्य पर लगाकर... आहाहा! क्योंकि द्रव्य है, वह अनावरण है, अशुद्धि नहीं, कमी नहीं। पूर्ण है, ऐसे वस्तुस्वभाव पर दृष्टि लगा दे, तुझे सम्यग्दर्शन—आत्मा का अवलोकन होगा। आहाहा! आत्म-अवलोकन। आत्मा निरावरण, कमी नहीं, अशुद्धता नहीं, ऐसी पूर्ण, निरावरण शुद्ध - ऐसी चीज़ जो आत्मतत्त्व, ज्ञायकतत्त्व है, उसे पहिचानकर। आहाहा! ऐसे द्रव्य को, आत्मतत्त्व को पहिचानकर। आहाहा! यह जानना है। बाकी दूसरी बातें चाहे जो जानी हो, (सब व्यर्थ है)। आहाहा!

तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो... उसका ज्ञान करके उसमें लीन हो। दर्शन; चारित्र आगे आयेगा। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, परन्तु मूल (तो) लोगों को अभी ऐसा लगता है कि व्यवहार से होता है... व्यवहार से होता है... व्यवहार से... परन्तु व्यवहार से लाभ होने के लिए कहा है; यह तो सब खबर नहीं? पढ़ा नहीं? यह तो उसमें व्यवहार भेद किये बिना समझे नहीं; इसलिए व्यवहार से समझाते हैं। यह तो (समयसार) ८-९ गाथा में आया न? आहाहा! व्यवहार से समझाते हैं, इसलिए व्यवहार कहनेवाले को अनुसरण करनेयोग्य है और सुननेवाले को अनुसरण करनेयोग्य है - ऐसा नहीं है। अभी यह बड़ा अन्तर है। आहाहा!

एक समय की पर्याय है, परन्तु वह पर्याय अनुसरण करनेयोग्य नहीं, आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! राग है, तो वह भी अनुसरण या आश्रय करनेयोग्य नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का राग हो, परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! आश्रय-अवलम्बन करनेयोग्य तो एक प्रभु, नित्य धातु, ध्रुव... आहाहा! उसका अवलम्बन ले। उसे पहिचान।

पर्याय को पहिचान या राग को पहिचान – ऐसा यहाँ नहीं कहा। आहाहा! **उसे पहिचानकर...** तो जो ज्ञान होगा, वह सब भेद को, राग को, निमित्त को जान लेगा। आहाहा! ऐसी बात है।

तू उसे पहिचानकर... आहाहा! अर्थात् कोई पहिचान करानेवाला है तो पहिचानता है – ऐसा नहीं है। तू उसकी पहिचानकर। आहाहा! अकेला ज्ञायकभाव स्वरस, चिद्घन ध्रुव, निरावरण, कमी नहीं, अशुद्धता नहीं – ऐसी चीज़ को पहिचानकर... आहाहा! **उसमें लीन हो...** आहाहा! **तो तेरे सर्व गुणरत्नों की चमक प्रगट होगी।** आहाहा! **तो तेरे सर्व गुण...** जितने गुण हैं... आहाहा! उनकी चमक। पर्याय में उनकी चमक... आहाहा!

द्रव्य लिया। ज्ञायकस्वभाव द्रव्य लिया। उसमें आवरण नहीं, न्यूनता नहीं, अशुद्धता नहीं। उसे पहिचानकर पर्याय से लीन हो, पर्याय अन्दर द्रव्य में लीन हो तो सर्व गुण; गुण आये, तो जितने परिपूर्ण गुण हैं, उन सब गुणों की चमक पर्याय में आएगी। आहाहा! ऐसी सादी भाषा और....

ज्ञायकभाव ध्रुव चैतन्य त्रिकाल निरावरण... आहाहा! त्रिकाल पूर्ण, त्रिकाल शुद्ध। त्रिकाल का अर्थ वर्तमान पूर्ण शुद्ध, ऐसा। ऐसी चीज़ की पर्यायदृष्टि छोड़कर, अन्तर्दृष्टि लगाकर, पहिचानकर उसमें लीन हो। आहाहा! **तो तेरे सर्व...** जितने गुण हैं, उन सर्व गुणों की पर्याय में व्यक्त पर्याय / चमक प्रगट होगी। आहाहा! वे गुप्तरूप हैं, अनन्त गुण जो गुप्तरूप हैं; वे द्रव्य को पहिचानकर, उसमें लीन होने से, उस गुप्त शक्ति की व्यक्तता होगी। ऐसी बात है। आहाहा! कहो, देवीलालजी! ऐसी बात है। धर्म कहाँ प्रगटे? किसके अवलम्बन से प्रगटे? और कितने गुण अन्दर हैं? उस द्रव्य का अवलम्बन लेने से जितने गुण हैं, उतनी पर्याय में, शक्ति में से व्यक्तता होगी। आहाहा! ऐसी सादी भाषा। आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वगुणांश, वह सम्यक्त्व।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सम्यक्। यह तो द्रव्य-गुण। त्रिकाल ज्ञायकभाव, अनावरण। पूर्ण और शुद्ध; अपूर्ण नहीं, अशुद्ध नहीं, इसका अर्थ पूर्ण शुद्ध। ऐसी मौजूदगी धारक चीज़ है। सत् ऐसी अस्ति चीज़ है। वह ध्रुव, उसे पर्याय में पहिचानकर, पर्याय से उसे पहिचानकर... आहाहा! द्रव्य को द्रव्य से नहीं पहिचाना जाता। आहाहा! ऐसी बात है। यह तो मन्त्र है, भाई! अरे! यह कब? एकान्त.. एकान्त.. लोग खींचकर पड़े हैं न। इसे एकान्त

कहते हैं। अरे! तुम्हें खबर नहीं है। भाई! यह दुनिया मानेगी। दुनिया बेचारी पागल है। खबर नहीं होती। आहाहा! इससे वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं हो जाता। आहाहा! पर्याय में व्यवहार करो... व्यवहार करो... व्यवहार करो... करते-करते निश्चय होगा। आहाहा! दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, अपवास, संयम ले लो, चारित्र ग्रहण करो। यह सम्यग्दर्शन बिना... आहाहा! ऐसा है।

शास्त्र में ऐसा आता है कि समकिती ज्ञानी इतनी छोटी प्रतिमा भी स्थापित करे तो उसका पुण्य सरस्वती नहीं कह सकती। आता है या नहीं? पद्मनन्दिपंचविंशति (में आता है)। आहाहा! परन्तु उसका अर्थ क्या? जिसे आत्मज्ञान हुआ है, मैं पूर्णानन्द प्रभु हूँ - ऐसा वेदन हुआ है, उसे ऐसा भाव आता है तो उस भाव से पुण्य-बन्ध होता है। पुण्य कितना? कि वह तो पुण्यानुबन्धी पुण्य है। इतना कहना है। आहाहा! उससे कोई आत्मा को लाभ है, (ऐसा नहीं है)। ऐसी बातें लोगों को कठोर लगती है। प्रतिमा स्थापित करे, डाले जरा ऐसा कि... आहाहा! आज क्या काम किया! वह तो शुभभाव है। वह शुभभाव बन्ध का कारण है। आहाहा! जहाँ दृष्टि शुद्ध चैतन्य पर पड़ी, उसके अवलम्बन से जो निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, वह तो शुभभाव को जानती है। मेरी है और मैंने की, ऐसी बात नहीं है। आहाहा! अरे! ऐसा! आहाहा!

भाई! चौरासी लाख के अवतार... आहाहा! २५-५०-१०० मनुष्य कुटुम्बी हों, पैसेवाले करोड़पति हों, अकेला व्यक्ति वेदन करके... आहाहा! डबल निमोनिया (हुआ हो)। पीड़ा का पार नहीं होता। आँख में आँसू बहते जाते हों। यह देह छोड़कर, प्रभु! अज्ञानरूप से आत्मा का भान नहीं... आहाहा! वह कहाँ जाकर चौरासी के अवतार में अवतरित होगा। भाई! उस अवतरित होने का कारण मिथ्यात्वभाव है, पर्यायबुद्धि है, रागबुद्धि है। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य निरावरण वस्तु को पहिचान। ज्ञान में उसे ज्ञेय बना ले। आहाहा! ज्ञान की वर्तमान पर्याय में उसे ज्ञेय बना दे और उसमें लीन हो। आहाहा! ऐसी सादी भाषा। ऐसी बात लोगों को ऐसा लगता है। इसमें कुछ समझ में नहीं आता एकदम (कि) यह क्या करना। इसलिए उन्हें लगता कि यह तो... बापू! मार्ग ही यह है। चाहे जितना विकृत हुआ, परन्तु स्वभाव जो पूर्ण है, उसमें अपूर्णता आयी नहीं। आहाहा!

वह विकृत अवस्था ऊपर.. ऊपर.. ऊपर.. ऊपर हुई है। स्वभाव में बिल्कुल कमी नहीं आयी है। आहाहा! और जैसा स्वभाव था, वैसी दृष्टि जहाँ हुई, (वहाँ) विकृत अवस्था ऊपर थी, वह निकल जाती है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इसमें दस-दस हजार, बीस-बीस हजार की सभा भरे, प्रसन्न हो। इस बात में कुछ पकड़ में आये नहीं, तो प्रसन्न किस प्रकार हो? वे तो कहें देश सेवा करो, दया पालो, व्रत पालो, उपवास करो, तुम्हारा कल्याण होगा। ऐसा सुनकर लोग प्रसन्न होते हैं। यह तो मिथ्यात्व का पोषक है। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा के देश की सेवा...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा की पुष्टि नहीं, प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा! यह आनन्द का पर्वत, सागर प्रभु निरावरण अन्दर पड़ा है। वह चैतन्य रत्नाकर, यह स्वयंभू समुद्र जैसा स्वयंभू आत्मा... आहाहा! अपनी भूमिका में जो असंख्य प्रदेश में स्वयं अनन्त गुण से भरपूर है, प्रभु! आहाहा! उसे तू पर्यायदृष्टि, रागदृष्टि, व्यवहारदृष्टि को छोड़कर (वहाँ दृष्टि लगा)। आहाहा! यहाँ तो निश्चय तब होता है। वे कहते हैं निश्चय सिद्ध में होता है। अरे! प्रभु! तूने क्या किया? अरे! भाई! आहाहा!

वस्तु अन्दर निर्मलानन्द प्रभु पूर्ण शुद्ध है, उसका अवलम्बन लेते ही धर्म होता है; बाकी व्यवहार से और निमित्त से, देव-गुरु-शास्त्र से, देव-गुरु की वाणी से भी नहीं होता। आहाहा! ऐसा है। शान्ति का काम, शान्ति से काम चले ऐसा है। आहाहा! भाषा तो देखो! यह वस्तु जो निरावरण, पूर्ण शुद्ध है, उस चीज़ को पहिचानकर लीन होना। आहाहा! एकदम सादी भाषा। अकेला बारह अंग का तात्पर्य है। आहाहा!

तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो... आहाहा! **तो तेरे सर्व गुणरत्नों की...** जो शक्तिरूप गुप्त गुण हैं, उन्हें पहिचानकर, लीन होने पर **सर्व गुणरत्नों की चमक प्रगट होगी।** पर्याय में (प्रगट होगी)। आहाहा! अन्दर चमक प्रगट होगी। शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी सर्व शक्तियाँ चमक उठेंगी। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! क्या हो? ऐसी बात सुननेवाले भी थोड़े होते हैं। वह कहा न? 'विरला जाने तत्त्व को विरला सुने कोई। विरला माने...' आहाहा! आहाहा! साढ़े चार लाईनें हैं। साढ़े चार भी पूरी नहीं, उसमें इतना भरा है।

द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों की बात (आ गयी)। आहाहा! द्रव्य कैसा? कि

अनन्त गुण पूर्ण भरे हैं ऐसा। और उसे पहिचानकर लीन होने पर क्या होता है ? कि जितने अनन्त गुण हैं, उतनी पर्याय में चमक प्रगट होगी, अंश व्यक्त होगा। आहाहा! कहो, शान्तिभाई ! यह तुम्हारे जवाहरात की मजदूरी में कुछ नहीं है। यह सब कोयला है। लाख कमायी करे, दो लाख आमदनी करे तो... आहाहा! और वह फिर वहाँ बड़ी आमदनी करे, हांगकांग में। आहाहा! लाख रुपये यहाँ दिये, अमुक को दिये, परन्तु वह क्या है ? वह तो एक शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा! मधुभाई इनके छोटे भाई हैं। वहाँ लाख रुपये दिये हैं। भावनगर, साहित्य सस्ता करने के लिये (दिये हैं) । वह तो होता है। करोड़ों का बड़ा मेरुपर्वत बनावे, लो ! वह क्रिया तो जड़ की उसके कारण से होती है। वह कहीं आत्मा नहीं कर सकता। उसे करने का भाव होता है। करोड़ों रुपये, अरबों रुपये खर्च करे, वह तो शुभभाव है। मान के लिये, मेरी प्रसिद्धि होगी (ऐसा भाव होवे) तब तो पाप है। आहाहा! ऐसी बहुत कठोर बातें हैं। बापू! आहाहा! बहुत सरस पैराग्राफ है। पैराग्राफ कहलाता है न।

मुमुक्षु : संक्षिप्त में।

पूज्य गुरुदेवश्री : संक्षिप्त में तो अकेला माल। शुरुआत से पूर्ण कैसे हो ? आहाहा! बाकी तेरी पण्डिताई.. पण्डिताई एक ओर पड़ी रही। आहाहा! यह पैराग्राफ पूरा हुआ।

जीव भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ़ ले, वादविवाद करना जाने, प्रमाण-नय-निक्षेपादि से वस्तु की तर्कणा करे, धारणारूप ज्ञान को विचारों में विशेष-विशेष फेरे, किन्तु यदि ज्ञानस्वरूप आत्मा के अस्तित्व को न पकड़े और तद्रूप परिणमित न हो, तो वह ज्ञेय निमग्न रहता है, जो-जो बाहर का जाने उसमें तल्लीन हो जाता है, मानों ज्ञान बाहर से आता हो ऐसा भाव वेदता रहता है। सब पढ़ गया, अनेक युक्ति-न्याय जाने, अनेक विचार किये, परन्तु जाननेवाले को नहीं जाना, ज्ञान की असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई, तो वह सब जानने का फल क्या ? शास्त्राभ्यासादि का प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानना है।।३८१।।

३८१, **जीव भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ़ ले,...** देखो तो सही! आहाहा! बहुत ही संक्षिप्त में संग्रहात्मक संग्रह हो गया। **जीव भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ़ ले, वादविवाद करना जाने,...** जाने, हों! वाद-विवाद करना जाने। तो उससे क्या हुआ? आहाहा! **प्रमाण-नय-निक्षेपादि से वस्तु की तर्कणा करे,...** प्रमाण, द्रव्य और पर्याय का विषय ऐसा है.. ऐसा है। नय एक अंश को ध्रुव को या पर्याय को विषय करता है। निक्षेप को ज्ञेय के भेद के तर्क से **वस्तु की तर्कणा करे, धारणारूप ज्ञान को विचारों में विशेष-विशेष फेरे,...** आहाहा! शास्त्र की धारणा जो की है... आहाहा! उस **ज्ञान को विचारों में विशेष-विशेष फेरे, किन्तु यदि ज्ञानस्वरूप आत्मा के अस्तित्व को न पकड़े...** आहाहा!

ज्ञानस्वरूप अस्तित्व / मौजूदगी चीज़ जो है... आहाहा! उसे पर्याय में वहाँ आगे ले जाकर न स्थापित करे। आहाहा! **अस्तित्व को न पकड़े...** पकड़े का अर्थ यह है कि पर्याय में उसका अहंपना आ जाना। पूर्णानन्द का अहंपना आ जाना। समझ में आया? आहाहा! जो शास्त्र के ज्ञान आदि में अहंपना है, वह मिथ्याभाव है। तर्कणा करना आवे, बड़ा वाद-विवाद करे, इससे क्या हुआ? बापू! आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, प्रभु! उसके अस्तित्व को न पकड़े। उसका सत्-सत्स्वरूप प्रभु। आहाहा! उसकी पूर्णता के अस्तित्व को न पकड़े, आहाहा! **और तद्रूप परिणमित न हो,...** आहाहा! तद्रूप—जैसा आनन्दकन्द प्रभु है, ऐसा परिणमन न हो, तब तक उसने कुछ नहीं किया। आहाहा! कहो, पण्डितजी! ऐसी बात है। आहाहा!

चाहे जितने वाद-विवाद (करे) धारणा फेरे, लाखों श्लोक कण्ठस्थ करे और फेरे ऐसे से ऐसे, ऐसे से ऐसे। उसमें क्या है? आहाहा! अपनी चीज़ भगवान पूर्णानन्द प्रभु को पकड़े नहीं, ग्रहण करे नहीं, उसमें दृष्टि का आश्रय दे नहीं, दृष्टि का आश्रय द्रव्य है। आहाहा! और तद्रूप परिणमे नहीं। आहाहा! भाई! जीवादि... व्याख्या हुई थी न दिल्ली (में)। वहाँ विद्यानन्दजी ने पूछा कि यह क्या? उन्हें ऐसा कि यह जीवादि श्रद्धा, वह श्रद्धा, बापू! यह श्रद्धा अर्थात् क्या? भगवान अनन्त गुण का पिण्डरूप प्रभु, वह आनन्द और ज्ञान और अनन्त गुणरूप परिणमन करे, उसका नाम श्रद्धा है। आहाहा! यह बात सुनी, परन्तु बोले नहीं। बोले नहीं, सब बैठे थे। अरे रे!

यदि ज्ञानस्वरूप... ज्ञान की प्रधानता ली है। **आत्मा के अस्तित्व को...** आत्मा की

मौजूदगी, अस्ति, त्रिकाल अस्ति को **न पकड़े...** दृष्टि में न ले, पर्याय में उसे ज्ञेय न बनावे। **और तद्रूप परिणमित न हो,..** आहाहा! आनन्द की धारारूप नहीं परिणमे, शान्ति की धारारूप नहीं परिणमे **तो वह ज्ञेय निमग्न रहता है,...** आहाहा! ज्ञेय निमग्न। यह शास्त्र का ज्ञान तो परज्ञेय है। आहाहा! बात तो गजब है। शास्त्र की धारणा हुई, लाखों-करोड़ों श्लोकों की, वह तो ज्ञेय निमग्न—परज्ञेय निमग्न है। वहाँ स्वज्ञेय निमग्न नहीं आया। आहाहा! ऐसी बात है। स्वज्ञेय में निमग्न हो, तब तो यथार्थ हुआ, परन्तु यह सब वाँचन-वाँचन करके वहाँ रुक गया और स्वरूप का ज्ञान अन्तर में अन्तर्मुख नहीं हुआ... आहाहा! **तो वह ज्ञेय निमग्न रहता है,...** आहाहा! भाषा तो देखो!

स्वज्ञेय को जानकर अन्दर लीन न हो, तद्रूप परिणमन न करे, तब तक वह शास्त्रज्ञान-परज्ञेय में निमग्न है। आहाहा! राग में निमग्न हो, वह तो मिथ्यादृष्टि है परन्तु शास्त्र का ज्ञान, वह परज्ञेय है। उसमें निमग्न हो (तो वह परज्ञेय निमग्न है)। आहाहा! ऐसी बातें हैं, प्रभु! स्वज्ञेय परमात्मस्वरूप भगवान को पहिचानकर अन्तर में लीन न हो, तो वह ज्ञेय-परज्ञेय निमग्न है। ऐसा तो कभी सुना भी नहीं। अरे रे! बेचारे कितने चले गये। अरे! ऐसे तत्त्व को छोड़कर, मनुष्यपना मिला और चला गया।

यहाँ तो कहते हैं कि शास्त्र पढ़े, पढ़ा और इतनी परिपाटी करे। आहाहा! सम्प्रदाय में रात्रि में तीन-तीन घण्टे सज्झाय, दो-दो घण्टे सज्झाय (करते थे)। १५००-१५००-२००० श्लोक। दो घण्टे में। चर्चा-वर्चा का वहाँ था नहीं। हमारे हीराजी... सज्झाय करे। १५००-१५००, २००० श्लोक दो घण्टे में, ढाई घण्टे में। पहर बड़ा हो, सवा तीन घण्टे का परन्तु वह तो पहाड़े हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तो भी वह आवे या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, वह वस्तु नहीं है। आहाहा! आवे तो परवस्तु अनादि से राग और निमित्त आयी है। आहाहा! राग और निमित्त तो अनादि से आये हैं। उसमें शास्त्रज्ञान अनादि से अनन्त बार आया है। ग्यारह अंग का ज्ञान भी हुआ है। आहाहा! शास्त्र पढ़ा हो, बहुत बातें करना आवे, इसलिए वह स्वज्ञेय में निमग्न है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। राग में निमग्न हो, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! परन्तु परलक्ष्यी शास्त्रज्ञान जो ज्ञान हुआ... आहाहा! उसमें निमग्न रहे, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! गजब बात की

है। सार-सार किया है अकेला। आहाहा! दो बातें की हैं। शास्त्र पढ़े, वाद-विवाद करे, प्रमाण-नय-निक्षेप से वस्तु की तर्कणा करे। तर्कणा उठावे। निश्चय ऐसा है, व्यवहार ऐसा है, अमुक ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : लोग तो ज्ञानी मानें।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से मानते हैं न। आहाहा! यही कहते हैं, भाई! वह धारणावाला ज्ञान तो पर है। वह परज्ञेय में निमग्न है। आहाहा! वहाँ स्वज्ञेय नहीं आया। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप, प्रभु! वह ज्ञानस्वरूपी प्रभु है, वह तो ज्ञान में आया नहीं। आहाहा! बात बहुत अच्छी आ गयी। थोड़ी भाषा, संक्षिप्त भाषा। रामबाण है। दृष्टि पलटी नहीं और उसमें रुक गया है तो वह तो परज्ञेय में निमग्न है, पर में निमग्न है।

तो वह ज्ञेय निमग्न रहता है,... आहाहा! यह ज्ञेय अर्थात् परज्ञेय। स्वज्ञेय जो ज्ञानस्वरूप भगवान है, उसमें तो ये दृष्टि आयी नहीं। आहाहा! वह तो पर्याय में परज्ञेय सम्बन्धी ज्ञान, वह परज्ञेय है। ओहोहो! स्वज्ञेय भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, शुद्धस्वरूप, पवित्र पूर्ण है, ऐसा उसे पहिचानकर, उसमें निमग्न-तद्रूप परिणमन न हो, आहाहा! तो वह तो शास्त्र के ज्ञान में निमग्न, परज्ञेय में निमग्न है। ऐसी बात है। आहाहा! इस ओर के ज्ञान में निमग्न है, वह परज्ञेय में निमग्न है। इस ओर जो ज्ञायकस्वभाव भगवान पूर्णानन्द, उसमें निमग्न है, वह स्वज्ञेय निमग्न है। आहाहा! ऐसी बात है। राग में निमग्न हो, निमित्त में निमग्न है, वह तो परज्ञेय में निमग्न है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति का राग, उसमें यदि निमग्न है, वह तो अशुद्ध विकार परज्ञेय में निमग्न है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु, पूर्ण आनन्द और पूर्ण ध्रुव ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव को यदि न पहिचाने, उस ओर की दृष्टि का झुकाव जहाँ नहीं है... आहाहा! वह शास्त्र के ज्ञान में निमग्न, परज्ञेय में निमग्न है। यदि वह परज्ञेय में न हो तो अनन्त बार ऐसा हुआ है, तो स्वज्ञेय में आ जाता। परज्ञेय में निमग्न होने से स्वज्ञेय को यदि लाभ हो, तो ऐसा तो अनन्त बार हुआ, परन्तु लाभ तो हुआ नहीं। यह क्या कहा? कि जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उस ओर की दृष्टि होकर लीन होना चाहिए, वह नहीं हुआ, तो वह तो परज्ञेय में निमग्न है, क्योंकि परज्ञेय निमग्न है, वह तो अनन्त बार ऐसा हुआ है। परज्ञेय-शास्त्रज्ञान में निमग्न है, तो आत्मा को लाभ होता हो, तब तो भवभ्रमण मिट जाये।

आहाहा! समझ में आया? वह तो परज्ञेय है। शास्त्र का ज्ञान तो परज्ञेय है। आहाहा! गजब बात की है न?

मुमुक्षु : एक बार शास्त्र को शब्दज्ञान कहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शब्दज्ञान है, यह बन्ध अधिकार में शब्दज्ञान कहा है। आत्मा का (ज्ञान) नहीं है। आहाहा! करोड़ों श्लोक, अरबों श्लोक कण्ठस्थ (हो)। पानी के पूर की भाँति धारणा चलती हो, ऐसे एकदम.. एकदम.. एकदम.. क्या है यह? उसमें दृष्टि में निमग्न है। यह भगवान त्रिकाल-तीन लोक का नाथ प्रभु अकेला ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण प्रभु, उसे पहिचाना नहीं, उस ओर दृष्टि की नहीं और तद्रूप परिणमन हुआ नहीं। **तो वह पर में-ज्ञेय निमग्न रहता है,...** आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

यहाँ तो अभी दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करते-करते कल्याण होगा... (ऐसा लोग मानते हैं)। आहाहा! भाई! क्या हो? बापू! तू मान और मनवा, बापू! यह जगत तत्त्व सहन नहीं करेगा। तत्त्व सहन नहीं करेगा। तत्त्व में ऐसी चीज़ नहीं है। बहुत कठिन काम है। है तो वह है, उसकी प्राप्ति करनी है और नहीं है, उसे छोड़ देना है। शास्त्र का ज्ञान, वह स्वरूप में नहीं है। आहाहा! यहाँ तो जरा शास्त्र ज्ञान कुछ हुआ, वहाँ तो उसे अन्दर (ऐसा) हो जाता है। आहाहा! हम कहीं बढ़ गये हैं और आगे बढ़ गये हैं। आहाहा! वह इस मिथ्या अभिप्राय में मग्न है। आहाहा! ऐसी बातें! चार अनुयोग का वाँचन हो, लो न! करोड़ों श्लोकों का (वाँचन हो), उसमें क्या हुआ?

भगवान आनन्द प्रभु पूरा ज्ञानस्वरूपी तत्त्व, बड़ा पर्वत, ज्ञान का पर्वत, पहाड़, प्रभु। उस पर चढ़े नहीं, वहाँ आरूढ़ न हो और इस शास्त्रज्ञान में निमग्न रहे, आरूढ़ रहे, वह कोई चीज़ नहीं है। आत्मा को नुकसान करनेवाली चीज़ है। समझ में आया?

जो-जो बाहर का जाने उसमें तल्लीन हो जाता है,... देखो! स्व का ज्ञान नहीं और बाहर का जाने, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूपी, ज्ञानमूर्ति प्रभु, उस अन्तर का तो ज्ञान है नहीं और बाहर का (जाने)। देखो! यह सब बाहर का ज्ञान। आहाहा! यह शास्त्रज्ञान बाहर का ज्ञान! चार अनुयोग का ज्ञान, बाहर का ज्ञान। आहाहा!

जो-जो बाहर का जाने उसमें तल्लीन हो जाता है,... आहाहा! न्याय क्या कहा

वापस ? आहाहा ! कि **मानों ज्ञान बाहर से आता हो..** यह जानने का हुआ न ? तो मानो बाहर से आया हो। **बाहर से आता हो, ऐसा भाव वेदता रहता है।** आहाहा ! **ज्ञान बाहर से आता हो, ऐसा भाव वेदता रहता है।** आहाहा ! गजब श्लोक / पैराग्राफ गजब है ! भगवान ज्ञानस्वरूपी त्रिकाल है, उसका ज्ञान नहीं करता और जो बाहर का ज्ञान है, उसे मानता है कि मुझे ज्ञान हुआ। आहाहा ! और वेदन में उसे ऐसा कि मुझे ज्ञान हुआ... मुझे ज्ञान हुआ। आहाहा ! ऐसा बाहर के ज्ञान का वेदन है। आहाहा ! **सब पढ़ गया,...** चारों अनुयोग पढ़ गया। लिखा है 'स्याद्वाद क्रिया अलौकिक' स्याद्वाद के सुविदित होने के पश्चात् चार अनुयोग कहलाते हैं, ऐसा कहे। अरे ! भगवान ! बापू ! क्या हो ? भाई !

मुमुक्षु : स्याद्वाद वारिधि....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्याद्वाद वारिधि। यह तो नाम देते हैं। परन्तु यह तो स्याद्वाद... स्याद्वाद... देखकर यह सब कहने में आता है। ऐसा। अरे रे.. ! प्रभु ! आहाहा !

बाहर से आता हो ऐसा भाव वेदता रहता है। पहले ज्ञान थोड़ा था और विशेष ज्ञान हुआ, विशेष हुआ तो बाहर से आया या नहीं ? वास्तव में तो ज्ञान का विकास अन्दर से हुआ है। अन्दर से अर्थात् स्व का नहीं परन्तु विकास राग की मन्दता से वहाँ हुआ है। परन्तु वह स्व का नहीं है। आहाहा ! एकदम ज्ञान का ख्याल आ जाये, परन्तु वह तो बाहर का है। आहाहा ! और यह ज्ञान पहले थोड़ा था, इसलिए आया।....

सब पढ़ गया,... बहुत सरस पैराग्राफ है। आहाहा ! **अनेक युक्ति-न्याय जाने,..** आहाह ! **अनेक विचार किये,...** आहाहा ! बहुत विचार किये, पर के, हों ! **अनेक युक्ति-न्याय जाने,..** आहाहा ! **परन्तु जाननेवाले को नहीं जाना,...** आहाहा ! जाननेवाले को नहीं जाना। चार अनुयोग का ज्ञान हुआ। मैं ऐसा, वैसा, तर्क और न्याय। आहाहा ! **परन्तु जाननेवाले को नहीं जाना,...** जाननेवाले भगवान आत्मा को तो जाना नहीं। समवसरण में दिव्यध्वनि सुनी और अन्दर ज्ञान हुआ। वह तो पर्याय में स्वयं से (हुआ है), परन्तु वह स्वयं से हुआ, ऐसा जाने। ज्ञान की पर्याय स्वयं से विकास को प्राप्त होती है परन्तु वह मानों बाहर से आती हो, ऐसा मानकर वेदता है। आहाहा ! अरे रे ! आहाहा ! जितनी राग की क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति... आहाहा ! उसमें जो निमग्न है। वह वीतरागस्वरूप भगवान में निमग्न नहीं है। क्या कहते हैं ? जो कुछ राग की क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा, पूजा

में निमग्न है, वह वीतरागस्वरूप में निमग्न नहीं है। वैसे (ही) शास्त्रज्ञान में निमग्न है, वह ज्ञानस्वरूप भगवान में निमग्न नहीं है। आहाहा! ज्ञानस्वरूप स्वभाव त्रिकाल मौजूद है, उसमें निमग्न नहीं है, वह पर शास्त्र के ज्ञान में निमग्न है, तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! इसी प्रकार दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का शुभराग, उसमें बहुत राग हुआ, बहुत शुभराग हुआ... ओहोहो! परन्तु उससे रहित वीतरागस्वरूप भगवान में निमग्न नहीं, तो वह राग में निमग्न है, तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? यह तो तत्त्व का निचोड़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान को.... एक में लगाना....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस स्व में लगाना, वह ज्ञान है। जहाँ ज्ञानस्वरूप है, जहाँ ज्ञानस्वरूप है, वहाँ लगाना, वह ज्ञान है। यह ज्ञानस्वरूप बाहर में कहाँ है? आहाहा! यह बन्ध अधिकार में कहा न? व्यवहार ज्ञान अर्थात् शास्त्र का ज्ञान अर्थात् शब्दज्ञान। ग्यारह अंग का ज्ञान किया, वह शब्दज्ञान है – शब्द का ज्ञान है। ज्ञान का ज्ञान नहीं। आहाहा! ज्ञान का ज्ञान नहीं अर्थात्? ज्ञानस्वरूप भगवान अन्दर भण्डार भरा है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त ज्ञान। उस अनन्त ज्ञानस्वरूप को ज्ञान नहीं और शास्त्र का-बाहर से ज्ञान हुआ, उसमें अहंपना माना कि हमें ज्ञान हुआ है। आहाहा! सिद्धान्त उसे कहते हैं। आहाहा! बातें करे, ऐसा और वैसा है। आहाहा!

परन्तु जाननेवाले को नहीं जाना,... अर्थात्? जिसमें-प्रभु में ज्ञान ही भरा है, उस ज्ञान को जाना नहीं। आहाहा! **ज्ञान की असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई,...** भाषा तो देखो! आहाहा! यह तो बोला गया है और लड़कियों ने लिख लिया है। उन्हें कहाँ खबर थी कि यह बाहर प्रकाशित होगा।

मुमुक्षु : लोगों का पुण्य होता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : जगत का भाग्य! ऐसी बात बाहर आयी। आहाहा!

ज्ञान की असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई,... आहाहा! क्या कहते हैं? धारणा में शास्त्रज्ञान बहुत किया। मूल ज्ञान की भूमि हाथ नहीं आयी। यह तो नकली भूमि है। आहाहा! इन लोगों ने पुस्तक ली है। भाई ने। कितनी ली? कितनी पुस्तकें लीं? १५०-२००? कितनी ली? १५०, ये कहते थे। वहाँ भेंट देना है... यह तो अलौकिक चीज़ है।

आहाहा यह तो सगे-सम्बन्धियों को भी देने की चीज़ है, भाई! यह तो अलौकिक है। बहुत संक्षिप्त में, बहुत सादी एकदम गुजराती भाषा। आहाहा!

ज्ञान की असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई,... आहाहा! जो सम्यग्ज्ञानस्वरूप प्रभु आत्मा, उस ज्ञान की असली भूमि तो आत्मास्वभाव ज्ञान है। आहाहा! वह तो दृष्टि में आया नहीं। समझ में आया? पहले क्या कहा? **युक्ति-न्याय जाने, अनेक विचार किये, परन्तु जाननेवाले को नहीं जाना,...** एक बात। अब कहते हैं कि जाननेवाले को नहीं जाना अर्थात् क्या? **ज्ञान की असली भूमि...** ज्ञान की मूल भूमि तो यह वस्तु है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, वह तो मूल भूमि है। आहाहा! मानी का तो मान गल जाये, ऐसा है इसमें। आहाहा! **ज्ञान की असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई, तो वह सब जानने का फल क्या?** आहाहा! तो ये सब शास्त्र को जानने का क्या फल है? आहाहा!

शास्त्राभ्यासादि का प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानना है। आहाहा! यह बन्ध अधिकार में आया न? बन्ध अधिकार में ज्ञान। शास्त्राभ्यास का प्रयोजन तो यह है कि अन्तर ज्ञानस्वरूप भगवान को जानना। आहाहा! यह प्रयोजन तो आया नहीं। आहाहा! वहाँ रुककर सन्तुष्ट हो गया। आहाहा! कठिन काम है, बापू! आहाहा! बहुत स्पष्ट, बहुत सत्य। आहाहा! राग में रुका, वह तो मिथ्यादृष्टि है। निमित्त में रुका, वह तो मिथ्यादृष्टि है... आहाहा! परन्तु शास्त्रज्ञान में रुक जाये, वह (परज्ञेय) निमग्न मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

ओहोहो! **शास्त्राभ्यासादि का प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानना है।** भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु है। आहाहा! उसे जानना, यह तो शास्त्राभ्यास का प्रयोजन है। वह तो आया नहीं। आहाहा! यह ३८१ (बोल पूरा) हुआ। ३८१ हुए न! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण -२, गुरुवार, दिनाङ्क १६-११-१९७८
वचनामृत-३८२ से ३८३ प्रवचन-१५२

आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है; वह नित्य रहकर पलटता है। उसका नित्यस्थायी स्वरूपी रीता नहीं, पूर्ण भरा हुआ है। उसमें अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं। उस अद्‌भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे तो तुझे सन्तोष होगा कि 'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'। उसमें स्थिर होने से तू पर्याय में कृतकृत्य हो जायेगा॥३८२॥

(वचनामृत बोल) ३८२ है न? ३८२ बोल। पैराग्राफ, ३८२ **आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है;...** आत्मा; उत्पाद-व्यय पर्याय में है और ध्रुव स्वरूप है। **वह नित्य रहकर पलटता है।** कायम रहकर पलटता है। **उसका नित्यस्थायी स्वरूपी...** उसका जो नित्य स्वरूप है, स्थायी है, वह **रीता नहीं,...** वह वस्तु नित्य है, वह खाली नहीं है। **पूर्ण भरा हुआ है।** आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वरूप है। उसमें नित्य वस्तु जो है, (वह खाली नहीं है)। वह **नित्य रहकर पलटता है।** ध्रुव रहकर उत्पाद-व्यय पर्याय में पलटती है, तथापि वह नित्य वस्तु जो है, वह खाली नहीं है; भरपूर है। नित्य वस्तु अनन्त गुण से भरपूर है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! और इतना कहा, इसलिए इसे ज्ञान हो गया (-ऐसा नहीं है।) यह तो बतलाते हैं। समझ में आया?

जो तेरी चीज़ है, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्; और वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम का एक गुण भी आत्मा में है। आहाहा! जिससे उत्पाद-व्यय और ध्रुव होता है, परन्तु जो ध्रुव चीज़-जो नित्य / स्थायी है, जो स्थायी-स्थिर, ध्रुवबिम्ब, कायम टिकती चीज़... आहाहा! वह चीज़ कोई खाली नहीं है। उसमें तो अनन्त-अनन्त गुण भरे हैं। आहाहा!

समझ में आया? आहाहा! समझ में आया? कितनी सादी भाषा है! ऐसा बतलाया और जाननेवाले ने लक्ष्य में लिया। जाननेवाले ने लक्ष्य में लिया। उससे ज्ञान हो गया, ऐसा नहीं। क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रुव के-तीन के विचार में रहेगा तो वह तो विकल्प है। आहाहा! आत्मा है तो उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त, परन्तु यदि इन तीन के विचार में रुकेगा तो... आता है न आवश्यक (अधिकार नियमसार में) आवश्यक में नहीं? उत्पाद-व्यय-ध्रुव, द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार करना, वह परवश है। वह पराधीन राग आता है, वह तो परवश है। आवश्यक नहीं। वह अवश्य कर्तव्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह तो चीज़ यह है और यह नित्य है, यह खाली नहीं। अनन्त गुण का भण्डार भगवान आत्मा ध्रुव है। ऐसा बताया है और उसके ख्याल में भी आया, परन्तु ख्याल आया, इससे उसे सम्यग्दर्शन हो गया, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! व्यवहार से उसे बतलाया, तीन बतलाये, इससे उसे सम्यग्दर्शन हुआ- व्यवहार से सम्यग्दर्शन है—ऐसा नहीं है, भाई!

गुरु ने अनुग्रह करके... कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, हमारे गुरु जो विज्ञानघन में निमग्न (थे), उन्होंने हमें बतलाया। वह तो विकल्प और व्यवहार आया। हम पर अनुग्रह करके शुद्धात्मा का उपदेश दिया, वह तो व्यवहार आया। लक्ष्य में आया कि यह ऐसा कहते हैं परन्तु इससे शुद्धात्मा प्रगट हुआ, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसी गजब बात है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अभी लक्ष्य में आया कि यह तो ऐसा कहते हैं, इतना। परन्तु इससे ज्ञान हुआ और सम्यग्दर्शनद हुआ, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! सम्यग्ज्ञान भी नहीं। लक्ष्य किया, इसलिए सम्यग्ज्ञान हुआ, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! सम्यग्ज्ञान तो त्रिकाली उत्पाद-व्यय की परिणति को ध्रुव सन्मुख करने से जो ज्ञान... मूल भूमि तो ज्ञान है। यह आया था न? शास्त्र का ज्ञान वह कहीं मूल असली भूमि नहीं है। आहाहा! सुना और ख्याल में आया, वह कहीं असली भूमि नहीं है। आहाहा! मूल ज्ञान की उत्पत्ति, भूमि अर्थात् उत्पत्ति का स्थान तो भगवान त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? यह तो मात्र उन गौतम ने कहा व्यवहार से, तो व्यवहार से लाभ होगा, शिष्य को लाभ होगा, गौतम ने व्यवहार बताया, इसलिए लाभ होगा, (ऐसा वे कहते हैं)। अरे रे! प्रभु! तू क्या करता है? आहाहा! और वह भी दिगम्बर में आकर। श्वेताम्बर में तो यह सब व्यवहार की

बात कहते हैं, इसलिए वे लोग तो माने और कहे परन्तु ऐसा-ऐसा सनातन जैनदर्शन, वस्तुस्वभाव दर्शन, विश्व-दर्शन... आहाहा! ऐसा जो भगवान विश्व अर्थात् समस्त को देखनेवाला। आहाहा! उसका यह दर्शन, उसका नाम यह जैनधर्म है।

यह तो त्रिकाली ज्ञायकभाव और उत्पाद-व्यय की परिणति है और ध्रुव है, वह वस्तु गुण से खाली नहीं है। वह ध्रुव अनन्त गुण का पिण्ड है, ऐसा ख्याल कराया। समझ में आया? उसका ख्याल होने से इसे सम्यग्दर्शन हो गया।... अरे! ख्याल करे तो सम्यग्ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। यह तो कल नहीं आया था? शास्त्रज्ञान है, वह तो परज्ञेय है। आहाहा! शास्त्र ने कहा, दिव्यध्वनि द्वारा कहा, स्वयं से ख्याल में आया, वाणी से नहीं, तथापि वह ख्याल है, वह तो परलक्ष्यी ज्ञान है। आहाहा! वह तो अभी परज्ञेय में निमग्न है। आहाहा! मार्ग अलौकिक है, भाई! आहाहा!

यह ध्रुव शाश्वत् अनन्त गुणों का भरपूर भण्डार प्रभु है, उस पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है। तीनों का ज्ञान हुआ और आत्मा में अनन्त गुण हैं, पर्याय पलटती है, ऐसा ज्ञान किया, इसलिए सम्यग्दर्शन हुआ, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! अरे रे! किसे पड़ी है यह? मेरा क्या होगा? भाई! यहाँ से कहाँ जाऊँगा? भगवान तो कायम रहनेवाला है। कायम रहनेवाला है (तो) रहेगा कहाँ? भाई! आहाहा! जिसने ऐसे भेद पर दृष्टि रखी है... आहाहा! यह तो सवेरे नहीं आया? भेद, वे पुद्‌गल के परिणाम हैं। आहाहा! गजब बात है। अभेद पर दृष्टि करने से, उसमें भेद नहीं आता। इस अपेक्षा से भेद—राग, रंग और भेद से भिन्न भगवान आत्मा है। आहाहा! वास्तव में तो उत्पाद-व्यय की पर्याय के भेद से भी भिन्न है। आहाहा! ऐसा ख्याल करे, परन्तु इसे ज्ञान कब हो? समझ में आया?

यह ध्रुव अनन्त-अनन्त गुण का समुद्र भरा है, भगवान! आहाहा! उस पर पर्याय की दृष्टि लगा दे। पर्याय में जो द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार आवे, वह भी राग में रुकना है। मैं ध्रुव हूँ, यह पर्याय है—ऐसा विचार भी राग में रुकने का स्थान है। आहाहा! नियमसार में है कि बहिर्तत्त्व और अन्तरतत्त्व की श्रद्धा, वह व्यवहार सम्यक्त्व है अर्थात् राग, विकल्प... आहाहा! गजब बात करते हैं न! नियमसार की ५वीं गाथा (में है)। बहिर्तत्त्व अर्थात् संवर, निर्जरा, आस्रव आदि; जीव की एक समय की पर्याय आदि, वह

बहिर्तत्त्व है और अन्तरतत्त्व परमात्मस्वरूप ध्रुव है, इन दो की श्रद्धा वह व्यवहार सम्यक्त्व, वह राग है। आहाहा! दो आये न? नियमसार में है।

यह भी नियमसार में कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये बनाया है। आहाहा! जो तीसरे नम्बर में आये। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि यह नियमसार मेरी भावना के लिये बनाया है। आहाहा! उसमें ऐसा कहते हैं और टीकाकार ने टीका भी ऐसी ली है। व्यवहार के परिहार के लिये सार शब्द जोड़ा है। आया न? आहाहा! मैंने मेरी भावना के लिये बनाया था। वह भावना यह। आहाहा! कि उत्पाद-व्यय और पर्याय का जो व्यवहार है... आहाहा! उसके परिहार के लिये त्रिकाली ज्ञायकभाव के अवलम्बन से यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और अनुभव होता है। इसलिए मैंने यह बनाया है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य अर्थात्... आहाहा! पहले नम्बर में तीर्थंकर, दूसरे नम्बर में गणधर, और तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! और वे भी दूसरे आचार्य बीच में छोड़कर, गौतम के बाद तो बहुत आचार्य थे। नहीं थे? या गौतम के बाद उनके शिष्य ये कुन्दकुन्दाचार्य थे? आहाहा!

ये कुन्दकुन्दाचार्य जहाँ गणधर के बाद तीसरे नम्बर में आये, वे ऐसा कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन... आहाहा! कि तेरी चीज़ जो ध्रुव है, उसमें अनन्त-अनन्त गुण भरे हुए हैं। आहाहा! उस ध्रुव के ऊपर जा, ध्रुव को पकड़। आहाहा! ध्रुव को ध्यान का विषय बना दे। आहाहा! तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा, ऐसा बतलाया, परन्तु लक्ष्य में आया, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन हो गया? आहाहा! यह तो शास्त्र द्वारा बतलाया। आहा!

कहते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रुव जो है, इन तीन का विचार छोड़कर, एक ध्रुव की ओर जा। जहाँ शाश्वत् बिम्ब पड़ा है। जिनबिम्ब.. भगवान आत्मा ध्रुव तो जिनबिम्ब है, वीतरागबिम्ब है। आहाहा! साक्षात् भगवान शक्ति का समूह / पिण्ड है। वह भगवान -स्वरूपी प्रभु आत्मा है। आहाहा! अरे! इसका विश्वास कब आवे? आहाहा! इस वस्तु ध्रुव पर दृष्टि लगाने से उस ध्रुव का भरोसा, विश्वास, सम्यग्दर्शन होता है। इसके बिना सब व्यर्थ है। आहाहा! यह शास्त्र में आया कि उत्पाद-व्यय-ध्रुव, वह आत्मा है, वह सत् है। आहाहा! और ध्रुव में अनन्त गुण भरे हुए हैं। परन्तु भरे हुए हैं, यह प्रतीति में आये बिना भरे हुए कहाँ से आये? यह तो धारणा में-ज्ञान में लिया इतना। समझ में आया? आहाहा!

यह त्रिकाल ध्रुवस्वरूप जो अनन्त गुणों से भरपूर है, उसे ध्येय बनाकर वहाँ रुक जा। आहाहा! दृष्टि को वहाँ स्थापित कर। क्योंकि स्थिर है तो दृष्टि वहाँ टिकती है। पर्याय अस्थिर है तो दृष्टि वहाँ नहीं टिकती। इसलिए पर्याय की दृष्टि छुड़ाकर.. आहाहा! उसमें पर्याय है परन्तु वह तो अस्थिर और पलटती दशा है। ऐसा कहा न? पलटती पर्याय पर दृष्टि लगाने से दृष्टि वहाँ कहाँ जमती है? आहाहा! जो ध्रुव है... आहाहा! ये आठ वर्ष की उम्र के राजकुमार, चक्रवर्ती के पुत्र, तीर्थंकर के पुत्र जो सम्यक्त्व पाते हैं, बापू! आहाहा! ध्रुव पर अन्दर से थाप मारी (नजर की)। आहाहा! और जहाँ आनन्द आया... आहाहा! बाकी रूखा (लगता है), राजपाट सब रूखा (लगता है)। आहाहा!

अनन्त-अनन्त गुणों से भरपूर ध्रुव प्रभु, उस ध्रुव में दृष्टि लगाने से, उस शक्ति में से अनन्त गुणों की व्यक्तता प्रगट हुई, आनन्द का स्वाद आया। आहाहा! जो सुनने से नहीं आया। आहाहा! आठवीं गाथा में तो ऐसा कहा न? मैं निश्चय और व्यवहार को जाननेवाले दो रथ... वे आचार्य कहते हैं। जिन्होंने आत्मा कहा, वे कहते हैं अथवा दूसरा वह भी कहता है। निश्चय आत्मा का आश्रय है और विकल्प में व्यवहार आया है। वह कहते हैं कि भाई! दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। वह आत्मा जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हुआ, वह आत्मा, ऐसा भेद बताया और शिष्य ने सुना भी सही। समझ में आया? परन्तु कहा कि मैंने भेद से कहा, वह मुझे भी अनुसरण करनेयोग्य नहीं और तुझे भी मैं भेद से सुनाता हूँ, तो तुझे भी भेद अनुसरण करनेयोग्य नहीं। आहाहा! मैं भेद से सुनाता हूँ, तो मुझे भी अनुसरण करने योग्य नहीं, जाननेयोग्य है। अनुसरण तो द्रव्य का करनेयोग्य है। आहाहा! और तुझे भी तेरे अनुग्रह के कारण भेद से कहा, उससे तेरा कल्याण होगा... आहाहा! ऐसा नहीं है।

जहाँ भगवान ध्रुवरूप से अन्दर विराजता है... यह कहते हैं न? देखो? **अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं।** आहाहा! अन्दर कमरे भरे हैं। ओरडा-ओरडा (गुजराती भाषा में) यह तुम्हारी हिन्दी भाषा में कमरा कहा है। अपनी गुजराती भाषा ओरडा कहते हैं। आहाहा! एक-एक कमरे में अनन्त शक्ति, अनन्त पर्याय की ताकत एक-एक गुण में (भरी है)। अनन्त शक्ति और अनन्त पर्याय, दो बातें ली हैं। देखो, भाई! नियमसार में दो-तीन जगह एक-एक गुण में अनन्त शक्ति और अनन्त पर्यायें हैं, ऐसी दो बातें ली हैं।

अनन्त शक्ति वर्तमान। आहाहा! चिद्विलास में लिया है। खबर है ? नहीं। चिद्विलास में दो-तीन जगह है।

भगवान आत्मा, जिसमें अनन्त गुण के ओरडा-कमरे। अर्थात् ? एक-एक गुण में अनन्त ताकत है। अनन्त गुण का रूप, वह अनन्त ताकत है। अपने में रहना और पर से न होना, दूसरे गुण से न होना, अनन्त गुण से न होना, अपने में रहना—ऐसी अनन्त ताकत एक-एक में है तथा पररूप न होने पर भी पर के रूपपने होना... आहाहा! भगवान ज्ञान का कमरा। यह तो ओरडा कहा न ? एक गुण और अनन्त कमरे। ऐसे एक-एक गुण में अनन्त गुण का उसमें अभाव, ऐसा नास्तित्वधर्म एक में तथा एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप-अस्तित्व। आहाहा! क्या कहा ? आहाहा!

उसमें अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं। एक-एक गुण के कमरे। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण के कमरे। आहाहा! एक-एक आत्मा में अनन्त गुण और एक-एक गुण में अनन्त रूप और एक-एक गुण में अनन्त गुण का नास्तिभाव है। आहाहा! अनन्त हुआ न ? भाई! एक गुण में अनन्त। एक गुण अनन्त गुणरूप नहीं, ऐसा नास्तित्व अनन्त और एक गुण में अनन्त गुण का रूप। ज्ञान है तो स्वयं से है, ऐसा अस्तित्वरूप। अस्तित्वगुणरूप नहीं। अस्तित्व गुण का तो उसमें अभाव है। आहाहा! परन्तु ऐसा ज्ञान 'है', ऐसा अस्तित्वरूप स्वयं से है। ऐसी बातें बहुत कठिन, बापू! आहाहा! अभी द्रव्य-गुण-पर्याय की खबर नहीं होती। आहाहा!

उसका नित्यस्थायी स्वरूपी रीता नहीं,... खाली नहीं **पूर्ण भरा हुआ है।** क्यों ? **उसमें अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं।** आहाहा! अनन्त गुणरूपी कमरे, उसमें एक-एक गुण अनन्त शक्तिरूप कमरा है। चेतनजी! है या नहीं ? आहाहा! और यह चिद्विलास में लिया है, भाई! पहले एक बार बात हो गयी है। एक-एक गुण में अनन्त शक्ति और एक-एक गुण में अनन्त पर्यायें। ये दो बोल भिन्न लिये हैं। समझ में आया ? यहाँ चिद्विलास नहीं ? आहाहा! एक-एक गुण, ऐसे अनन्त गुण। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण और एक-एक गुण में अनन्त शक्ति। परगुणरूप से न होना। परगुण के अभावरूप रहना और परगुण का जो स्वरूप है, ऐसे रूपपने रहना... आहाहा! परगुणपने न रहना। परन्तु अस्तित्व गुण आदि पररूप अपने में रहना। ऐसे अस्तित्व अनन्त गुणा।

आहाहा! एक-एक गुण में उसका रूप और एक-एक गुण में अनन्त गुण की नास्ति। आहाहा! ऐसा एक-एक गुण में अनन्त-अनन्त शक्ति और सामर्थ्य है। आहाहा! यह चैतन्यचमत्कार है। आहाहा! परन्तु पर्याय पर दृष्टि होने से, वस्तु अन्दर समीप पड़ी है, उसकी खबर नहीं है। आहाहा! उत्पाद-व्यय की दृष्टि से... आहाहा!

समयसार की दूसरी गाथा में आया न? **केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान ज्योति का उदय होने से...** आहाहा! दूसरी गाथा में आया है। केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण राग से भिन्न, पर्याय से भिन्न... आहाहा! ऐसा जो भेदज्ञान, वह केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण है। शास्त्रज्ञान, सुना वह ज्ञान हुआ, इसलिए केवलज्ञान का कारण है-ऐसा नहीं है। आहाहा! गुरु ने कहा हमारे ऊपर अनुग्रह करके, मेहरबानी करके हमें शुद्धात्मा का उपदेश दिया। वह लक्ष्य में आया, परन्तु उससे आत्मा का ज्ञान हो गया, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! अरे रे! ऐसा कठिन। चलनेवाले को चलना है, देखनेवाले को अन्दर देखना। यह... यह... यह... यह (वस्तु है)। आहाहा! समझ में आया? तेरा ध्रुव भगवान अन्दर है न, भाई! अनन्त-अनन्त गुण का रूप तेरा है न! अरे रे! इसे सुनने को मिलता नहीं। इसकी महिमा की खबर नहीं होती। आहाहा!

उसमें अनन्त गुणरत्नों.. गुणरत्नों **के कमरे भरे हैं।** आहाहा! अपनी गुजराती भाषा में ओरडा है। गुजराती है, भाई! चेतनजी! कमरा अर्थात् ओरडा। आहाहा! **उस अद्भुत ऋद्धियुक्त...** आहाहा! **उस अद्भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे...** आहाहा! देखो! सार आया। पहले ऐसा कहा कि वस्तु है, वह उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है। अब जो ध्रुव है, वह स्थायी है। पर्याय पलटती है। पर्याय पलटती है और यह (वस्तु) स्थायी है। स्थायी है, स्थिर है तो उसमें वह खाली नहीं है। वह तो भरपूर है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण की ऋद्धि से भरपूर है। आहाहा! उस **अद्भुत ऋद्धियुक्त...** नित्यस्वरूप पर दृष्टि दे। आहाहा! ऐसा इसे पहले ज्ञान कराया परन्तु दृष्टि देना है तो इसे न? आहाहा! दृष्टि दे, ऐसा बतलाया; इसलिए इसकी दृष्टि हो गयी उसकी? आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, नहीं। फिर उस पर लक्ष्य ही नहीं है। यह ख्याल में आया इतना, बस!

इस भगवान आत्मा ध्रुव पर दृष्टि दे, प्रभु! आहाहा! तेरे कल्याण का, सुख का पन्थ प्रगट होगा। सुख का भण्डार भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार है। एक गुण नहीं, ऐसे अनन्त गुण का भण्डार है। आहाहा! पर्याय को, दृष्टि को वहाँ स्थापित कर, ऐसा। पश्चात् उत्पाद-व्यय पर्याय ली है। द्रव्य में अनन्त गुण का भण्डार भरा हुआ है, वहाँ पर्याय अर्थात् दृष्टि स्थापित कर। वह दृष्टि उत्पाद-व्ययवाली है। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! जैनदर्शन समझना वह कोई अलौकिक बातें, बापू! जैनदर्शन कोई पक्ष नहीं, वाड़ा नहीं; वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! वह वस्तु जिनस्वरूप... आहाहा! उसमें दृष्टि दे तो जैन हो। आहाहा! जिन के ऊपर दृष्टि दे तो जैन हो। आहाहा! बाकी हम जैन हैं... जैन हैं... चाहे जो नाम दे। आहाहा!

यह कहा न 'घट घट अन्तर जिन बसै, घट-घट अन्तर जैन किन्तु मत-मदिरा के पान सौं...' पर्यायबुद्धि, व्यवहारबुद्धि, निमित्तबुद्धि, यह मतवाला अभिप्रायवाला। आहाहा! 'मत मदिरा के पान सौं मतवाला समझे न।' आहाहा! ऐसा मार्ग है, इसलिए लोग एकान्त है, ऐसा करके निकाल डालते हैं, भाई! यह दृष्टि आयी, पर्याय आयी न, इकट्ठी? पलटती पर्याय को, जिसमें भण्डार भरे हैं, उसमें स्थापित कर। आहाहा!

यह पर्याय आ गयी। आहाहा! पर्याय पर दृष्टि है, उस पर्याय को द्रव्य पर स्थापित कर। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! परन्तु वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, प्रभु! क्या करना? आहाहा! उसमें और मजाक करे, वह तो कि सूक्ष्म.. सूक्ष्म.. कहकर तुम्हें नहीं समझ में आयेगा। सूक्ष्म-सूक्ष्म कहकर वे ऐसा कहते हैं-यह आया था। सरल है, उसे सूक्ष्म-सूक्ष्म कहते हैं। बापू! यह स्वयं सूक्ष्म, भगवान स्वयं सूक्ष्म है न! आहाहा! अरूपी प्रभु! आहाहा! शुभभाव को तो स्थूल परिणाम कहा है। कहो, स्थूल उपयोग जो दया, दान, व्रत, भक्ति, उसे तो स्थूल परिणाम कहा है। है तो अपनी पर्याय विकारी, परन्तु परलक्ष्य वाली है, इसलिए स्थूल परिणाम हैं। भगवान इससे सूक्ष्म है। इसमें नहीं ज्ञात होगा। आहाहा! इन स्थूल परिणामों से नहीं ज्ञात होगा। जो परिणाम शुभ है, उसकी दशा की दिशा पर है। उसे स्वभाव की दशा की दिशा स्व है। वहाँ दृष्टि को स्थापित कर। आहाहा! ऐसा है।

उस अद्भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे तो तुझे सन्तोष होगा... सन्तोष अर्थात् आनन्द होगा। आहाहा! **तो तुझे सन्तोष होगा...** आनन्द होगा। आहाहा! जहाँ

भण्डार भरा हुआ है, वहाँ दृष्टि स्थापित कर, तुझे आनन्द होगा। पर्याय पर दृष्टि स्थापित करने से तुझे दु:ख होगा। आहाहा! बाद के पैराग्राफ सब बहुत अच्छे हैं। ३७६, ३७७, ३७८... आहाहा!

तो तुझे सन्तोष होगा कि... क्या सन्तोष होगा? **'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'**। वस्तु से तो कृतकृत्य ही है। उसे कार्य करना पड़ता है या (ऐसा नहीं है) वह तो वस्तु कृतकृत्य त्रिकाल ज्ञायक है। आहाहा! कृतकृत्य है। आहाहा! **'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'**। कौन? द्रव्य, हों! मैं यह। पर्याय ऐसा कहती है कि मैं यह द्रव्य जो हूँ, वह तो कृतकृत्य हूँ। आहाहा! ऐसा, सुजानमलजी! ऐसी बातें, बापू! आहाहा! अरे! भगवान चले गये, यह भगवान रह गया। कहते हैं... एक पैराग्राफ में कितना (भरा है)! सहज आया है। यह कुछ लिखा नहीं है, लिखाया नहीं है। आहाहा! अरे! लड़कियों ने, बहिनों ने लिख लिया। आहाहा! और यह बाहर आया, और हिम्मतभाई ने सब व्यवस्थित किया। आहाहा!

'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'। कौन? द्रव्य, हों! सन्तोषवाली पर्याय ऐसा कहती है... आहाहा! पर्याय में जो आनन्द हुआ, श्रद्धा हुई, ज्ञान हुआ, आंशिक स्थिरता हुई, वह ऐसा कहती है कि यह वस्तु तो कृतकृत्य है। आहाहा! द्रव्य में कुछ नया करना है या कोई कार्य बाकी है, ऐसा नहीं है। मैं तो कृतकृत्य ही हूँ। आहाहा! अब **'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'**। आहाहा! **उसमें स्थिर होने से...** जो द्रव्य वस्तु है, उसकी दृष्टि होने पर जो आनन्द हुआ, वह आनन्द की पर्याय वह ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, वह पर्याय ऐसा मानती है, जानती है कि यह मैं द्रव्य सदा कृतकृत्य हूँ। आहाहा! द्रव्य को कुछ करना है तो द्रव्य है? आहाहा! मैं तो कृतकृत्य हूँ, ऐसा कौन जानता है? पर्याय। आहाहा! यह मैं कृतकृत्य हूँ। आहाहा! **उसमें स्थिर होने से तू पर्याय में कृतकृत्य हो जायेगा**। आहाहा! देखो! कितना न्याय! समझ में आया? उन भाई का पत्र आया है। अपना भाई आया था न, वह भावनगर का, नहीं?

मुमुक्षु : असणभाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भाई ने कहा, फिर अपने दिया।

मुमुक्षु : खाली पुस्तक दे दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अर्धमागधी का भाई प्रोफेसर। उसका पत्र आया। अपने

बहिन की पुस्तक दी है न? पत्र आया है। इतनी प्रसन्नता बतलायी है। आहाहा! अरे रे! वहाँ से निकलना मुझे रुचता नहीं। मुझे यह पढ़कर मेरी बात क्या करूँ? मैं प्रसन्न-प्रसन्न। बड़ा अर्धमागधी का प्रोफेसर है। आहाहा! कल पत्र आया है, हों! यहाँ पड़ा होगा। आहाहा! अरे! इसमें तो पढ़ाई का अभिमान हो, उसका पानी उतर जाये, ऐसा है। आहाहा!

क्या कहते हैं? जो नित्य प्रभु ध्रुव है, उस पर दृष्टि लगाने से तुझे पर्याय में सम्यक् आनन्द और ज्ञान होगा। और वह पर्याय ऐसा जानती है कि मैं तो कृतकृत्य हूँ। उस कृतकृत्य पर लक्ष्य जाने से आश्रय करने से पर्याय में कृतकृत्य हो जायेगा। कुछ करने का रहे नहीं, ऐसा कृतकृत्य हो जायेगा। आहाहा! ऐसी बात है। यह दिगम्बर धर्म! आहाहा! यह कोई पक्ष नहीं। आहाहा! यह दिगम्बर धर्म, यह जैनधर्म, यह वस्तुधर्म है। आहाहा! भाग्यवान के तो कान में पढ़े, ऐसी बात है। आहाहा!

कहलवाया था मैंने। उसके पिता को। कहा? भाई! (राजू को) कहा था कि तेरे पिता को कहना कि यह पाँच लाख है, वह भाग्यवान नहीं। यह कहा? तुम्हें कहा था न, राजू! तुम्हारे पिताजी को कहना कि पाँच लाख मिले, इसलिए भाग्यवान नहीं है, परन्तु यह सुनने को मिले, इसलिए भाग्यवान है, ऐसा कहलवाया था। आहाहा! ऐसा कि वे पाँच लाख मिले, इसलिए हम भाग्यवान। यह सब बहुत करोड़पति थे, ६०-७० लाख वाले, करोड़पति बहुत हैं, वे भाग्यवान नहीं हैं, बापू! आहाहा! वीतराग की ऐसी वाणी। परमध्वनि में—दिव्यध्वनि में आयी, वह वाणी यह है। आहाहा! वह वाणी उसके न्यायसहित कान में पड़ना... आहाहा! दुनिया मानो, न मानो; दुनिया एकान्त कहो और चाहे जो कहो। आहाहा!

कृतकृत्य है, वस्तु कृतकृत्य है। **उसमें स्थिर होने से तू पर्याय में कृतकृत्य हो जायेगा।** आहाहा! द्रव्य में पूर्ण आनन्द है। उसमें स्थिर होने से पर्याय में पूर्ण आनन्द प्रगट होगा। करना पड़े नहीं, वह कृतकृत्य होगा। भगवान में अनन्त ज्ञान है, उसमें स्थिर होने से वह पूर्ण ज्ञान है, वह तो कृतकृत्य है। उसमें स्थिर होने से पर्याय में कृतकृत्य अर्थात् केवलज्ञान होगा। फिर कुछ करना नहीं रहेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान ऋषभदेव ने छह महीने उपवास किये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो उस समय आनन्द में रहे, आहार का विकल्प आया नहीं, इस अपेक्षा से उपवास कहने में आया। यह लिखा है। महान भगवान जैसों ने बारह वर्ष

के उपवास किये, तपस्या की। अरे! भाई! तू मानता है, वह तप भगवान ने नहीं किया है। भगवान तो... आहाहा! भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त रहे। छह महीने तक आहार लेने का विकल्प नहीं आया तथा आहार नहीं आने का योग भी ऐसा था। वे आनन्द में रहते हैं। उस आनन्द में जो ऊफान। प्रतपयन्ते इति तप:। भगवान अनन्त गुण का पिण्ड स्वयं पर्याय में अनन्त-अनन्त शान्ति, आनन्द के कारण जो दशा अन्दर में तपती है। चारित्र से भी उग्र पुरुषार्थ है, उसका नाम तप है। आहाहा! यह तो सम्यग्दर्शन बिना यह सब लंघन है। अपवास-वपवास, वह लंघन है। उपवास नहीं, वह तो अपवास है। आहा!

उप अर्थात् अन्दर भगवान के समीप वास। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ अनन्त आनन्द और अनन्त गुण की ऋद्धि से सम्पन्न प्रभु! आहाहा! उसके समीप में जाकर बसना, उसका नाम उपवास है। बाकी उसके भान बिना रागादि, वह तो अपवास-माठावास है। राग में जिसका वास है। आहाहा! लोगों को कठिन पड़ता है। यह प्रत्येक सम्प्रदाय को कठिन पड़ता है। स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी को तो पड़ता ही है, क्योंकि उसमें व्यवहार प्रधान उनके शास्त्र हैं परन्तु इन दिगम्बर के शास्त्रों में ऐसा भरा है, उसकी इन्हें खबर नहीं होती। लोग पहाड़े बोलते रहते हैं। आहाहा! चरणानुयोग में ऐसा कहा है, और करणानुयोग में ऐसा कहा है। सबने कहा। आहाहा!

चारों अनुयोगों का सार तो वीतरागता है। यह पंचास्तिकाय की १७२ (गाथा में कहा है)। वीतरागता कब होती है? कि वीतराग जिनबिम्ब प्रभु है, उसकी दृष्टि करने से, स्थिरता करने से वीतरागता होगी। आहाहा! जिसमें वीतरागता भरी है,.. आहाहा! (उसकी दृष्टि करने से) तेरी पर्याय में वीतरागता होगी और वीतरागी पर्याय जानती है कि मैं तो पूर्ण कृतकृत्य हुआ। आहाहा! सम्यग्दर्शन की पर्याय और सम्यग्ज्ञान की पर्याय हुई, वह तो जानती है कि मैं तो कृतकृत्य पूर्ण वस्तु यह तो, ओहोहो! यह तो परमात्मा है, पूर्ण है। इसे कुछ करना-धरना है नहीं परन्तु उसमें स्थिर होने से पर्याय में कृतकृत्य हो जायेगा। कुछ करने का रहेगा नहीं, ऐसा केवलज्ञान तुझे होगा। आहाहा! परन्तु उसमें स्थिर होने से कहा है। कोई उपवास करने से या भक्ति करने से नहीं। आहाहा! छह लाईन है परन्तु अन्त में हो जाये। आहाहा! कितना भरा है! आहाहा! और सहज वाणी निकली है। ३८२ (बोल पूरा) हुआ।

ज्ञायकस्वभाव आत्मा का निर्णय करके, मति-श्रुतज्ञान का उपयोग जो बाह्य में जाता है, उसे अन्तर में समेट लेना, बाहर जाते हुए उपयोग को ज्ञायक के अवलम्बन द्वारा बारम्बार अन्तर में स्थिर करते रहना, वही शिवपुरी पहुँचने का राजमार्ग है। ज्ञायक आत्मा की अनुभूति, वही शिवपुरी की सड़क है, वही मोक्ष का मार्ग है। दूसरे सब उस मार्ग का वर्णन करने के भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। जितने वर्णन के प्रकार हैं, उतने मार्ग नहीं हैं; मार्ग तो एक ही है ॥३८३ ॥

ज्ञायकस्वभाव आत्मा का निर्णय करके,... (समयसार) गाथा १४४ में आता है न? आगम से आत्मा ज्ञायक है, ऐसा जानकर। पश्चात् विकल्परहित होकर, मति-श्रुत को आत्मा में ला। वह बात यहाँ है। नहीं तो कहे आत्मा का निर्णय करके। निर्णय करना, यह तो सम्यग्दर्शन हो गया। परन्तु उसका अर्थ यह है। आहाहा! **ज्ञायकस्वभाव...** चैतन्यचन्द्र शीतलता के स्वभाव से जिनबिम्ब (आत्मा) विद्यमान है। उसका ज्ञान करके **मति-श्रुतज्ञान का उपयोग जो बाह्य में जाता है, उसे अन्तर में समेट लेना,...** यह शैली है। १४४ (गाथा) की। आहाहा! कर्ता-कर्म अधिकार है न? अरे! समयसार तो रत्नों से भरा हुआ है। आहाहा! केवलज्ञान के पिटारे में से निकली हुई बात है। आहाहा!

ज्ञायकस्वभाव आत्मा का निर्णय करके, मति-श्रुतज्ञान का उपयोग जो बाह्य में जाता है,... मति-श्रुत का उपयोग ऐसे बाहर में, राग में, पर में लक्ष्य जाता है। आहाहा! **उपयोग को ज्ञायक के अवलम्बन द्वारा...** यह जानन-जानन-देखन मति-श्रुत का जो उपयोग है... जानन, यहाँ तो ज्ञान लेना है न? उसे **ज्ञायक के अवलम्बन द्वारा...** त्रिकाली भगवान अनन्त गुणरत्न भरे हैं ऐसा, प्रभु! उस सन्मुख के अवलम्बन द्वारा... आहाहा! **बारम्बार अन्तर में स्थिर करते रहना,...** आहाहा! **अवलम्बन द्वारा बारम्बार अन्तर में स्थिर करते रहना,...** आहाहा!

वही शिवपुरी पहुँचने का राजमार्ग है। वही। क्या? कि आत्मा ज्ञायक है, ऐसा जानकर, पश्चात् मति-श्रुतज्ञान को अन्तर में झुकाकर... आहाहा! उसके **अवलम्बन द्वारा**

बारम्बार अन्तर में स्थिर करते रहना,... आहाहा! **वही शिवपुरी पहुँचने का राजमार्ग है।** शिवपुरी-मोक्ष। निरुपद्रव कल्याणमूर्ति पूर्ण, वह शिवपुरी। शिव अर्थात् पूर्ण कल्याण की प्राप्ति, वह शिवपुरी। आहाहा! श्वेताम्बर में णमोत्थुणम् में यह आता है। यह शिवमय... णमोत्थुणम्। उसमें आता है न? उसके अर्थ की खबर नहीं होती। ऐई! शान्तिभाई! रट रखा होगा... णमो... आहाहा! शिवपुरी का पंथ। हे शिवपुरी के पथिक! यह आता है न कहीं? एक पत्र में लिखा है। नियमसार में एक श्लोक है। आहाहा!

भगवान आत्मा अनन्त गुण का धाम ध्रुव स्थिर है, उसमें दृष्टि दे, दृष्टि लगा दे और उसमें स्थिर हो जा। और **स्थिर करते रहना,...** राग करना, व्यवहार करना, यह बात तो कहीं रह गयी। आहाहा! राग के काल में भी अन्दर में स्थिर रहने का प्रयत्न करना। यहाँ ज्ञानधारा की बात है न? **स्थिर करते रहना, वही शिवपुरी पहुँचने का राजमार्ग है।** पूर्ण कल्याणस्वरूप भगवान पर्याय में, यह शिवपुरी पहुँचने का यह मार्ग है। आहाहा! है? अन्दर है। अभी तो आगे बढ़ेगा। लोग पढ़ेंगे, तब अभी इसकी... आहाहा! उसमें ये व्याख्यान होंगे, वे बाहर प्रकाशित होंगे, तब उन्हें ख्याल आयेगा कि... आहाहा!

मुमुक्षु : हजार बार पढ़े तो भी तृप्ति नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि इसमें ऐसी बात है। बात सत्य है। पोपटभाई जैसे ने चार बार पढ़ा। ये करोड़पति, बहुत करोड़पति। यह मरने के अन्तिम समय भी यह विचार करते थे। उसमें एकदम हार्टअटैक आया। यह पुस्तक चार बार पढ़ी है। कितने करोड़पति लड़के हैं। स्वयं मर गये, उसके पास पैसा निकले। उसमें सरकार को उसमें से बाईस लाख देना पड़ा। छह लड़कों के पैसे अलग। छह लड़के और पैसे अलग। सब इकट्ठे ही थे, परन्तु उनके अलग। इस पिता के अलग। मर गया (पश्चात्) पिता का उत्तराधिकार आया न? तो उसमें उत्तराधिकार में बाईस लाख तो सरकार को (टैक्स में) भरना पड़ा तो इतने पैसे तो उसके पास कितने? और यहाँ लड़के के पास कितने? उसने यह पुस्तक चार बार पढ़ी है। अन्त में फिर कहे, मैं जाता हूँ। लड़के को बुलाया था। बड़े पाँच-पाँच लाख के कमरे हैं। छह लड़के अलग-अलग रहते हैं। स्वयं का पाँच लाख का कमरा अलग। सातों के पैंतीस लाख के सात कमरे। तो बड़े लड़के को बुलाया। कैसे हैं बापूजी? जाता हूँ। आहाहा! बस, देह छूट गयी। यह हार्टफेल कहते हैं न? मूल तो खून जम जाता है।

खून बर्फ की तरह जम जाता है। श्वास नहीं लिया जाता। आहाहा! अपने पहले इसे क्या कहा जाता है? हड्डियाँ दबती है। छाती के पाटिया भिंसाय छे – ऐसा कहते थे। है न! हमने देखा था। (संवत्) १९८२ के वर्ष में। ये लोग हैं न?... उनके एक कुटुम्बी भाई थे। उन्हें यह हुआ था। मुझे बुलाया। बहुत लोग बैठे थे। आहाहा! 'चलो सखी वहाँ जायेंगे, जहाँ न अपना कोई'। आहाहा!

वही शिवपुरी पहुँचने का राजमार्ग है। राजमार्ग तो यह है। **ज्ञायक आत्मा की अनुभूति, वही शिवपुरी की सड़क है,...** आहाहा! ज्ञायक स्वरूप आत्मा भगवान की अनुभूति अर्थात् आनन्द की पर्याय का वेदन... आहाहा! **वही शिवपुरी की सड़क है,...** शिवपुरी की सड़क वह है। आहाहा! परन्तु उसका कोई साधन? ऐसा लोग कहते हैं। यह साधन है। आहाहा! पहले उसकी पक्की श्रद्धा तो कर कि यह मार्ग है। वीर्य को (पुरुषार्थ को) वहाँ रोक दे, बस! आहाहा!

वही मोक्ष का मार्ग है। है? वह शिवपुरी का राजमार्ग, शिवपुरी की सड़क, मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! **दूसरे सब उस मार्ग का वर्णन करने के भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। जितने वर्णन के प्रकार हैं, उतने मार्ग नहीं हैं; मार्ग तो एक ही है**। आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु में दृष्टि करके स्थिर होना, वह एक ही मार्ग है। 'एक होय तीन काल में, मोक्षमार्ग का पन्थ।' विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण -३, शुक्रवार, दिनाङ्क १७-११-१९७८
वचनामृत-३८४ से ३८५ प्रवचन-१५३

तेरे आत्मा में निधान ठसाठस भरे हैं। अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है, असंख्यात प्रदेशों के क्षेत्र में ही अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं, तुझमें ऐसे निधान हैं, तो फिर तू बाहर क्यों जाता है ? तुझमें है, उसे देख न! तुझमें क्या कमी है ? तुझमें पूर्ण सुख है, पूर्ण ज्ञान है, सब कुछ है। सुख और ज्ञान तो क्या परन्तु कोई भी वस्तु बाहर लेने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर, सब अन्तर में है। अन्तर में गहरे उतरने पर, सम्यग्दर्शन होने पर, तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे और उन सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर तू तृप्त हो जायेगा। पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना, जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर तू सदाकाल परम तृप्त-तृप्त रहेगा॥३८४॥

(वचनामृत) ३८४, गुजराती है। **तेरे आत्मा में निधान ठसाठस भरे हैं।** गुण है गुण, उसे यहाँ निधान (कहते हैं)। आत्मा में अनन्त गुण पूर्ण ठसाठस अर्थात् पूर्ण है। आहाहा! **अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये...** ऐसे अनन्त गुणों को, निधान को अनन्त-अनन्त के लिये, रहने के लिये **अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है,...** आहाहा! क्षेत्र तो एक परमाणु का है, तो भी उसमें अनन्त गुण रहते हैं। आहाहा! जितने चैतन्य गुण आत्मा में हैं, उतनी संख्या (में) एक परमाणु में गुण है। इसलिए कहीं उन्हें (अनन्त) क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है, आकाश का क्षेत्र इतना, तो भी अनन्त गुण और एक परमाणु का क्षेत्र एक प्रदेश जितना, तो भी अनन्त गुण। आहाहा!

उन्हें **रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है, असंख्यात प्रदेशों के**

क्षेत्र में ही... असंख्यात प्रदेश का क्षेत्र-स्वदेश, उसमें **अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं,...** आहाहा! **तुझमें ऐसे निधान हैं,...** आहाहा! **तो फिर तू बाहर क्यों जाता है?** बाहर से कुछ मिलेगा, कोई देव-शास्त्र-गुरु दे देंगे या अन्दर राग की मन्दता के परिणाम में से मिलेगा, ऐसे बाहर में किसलिए लेने जाता है? **तुझमें है, उसे देख न!** तुझमें अनन्त-अनन्त गुणनिधान भरे हैं, उन्हें देख न! आहाहा!

सवेरे एक आया था न? चैतन्यस्वभाव आत्मा, चैतन्यस्वभाव से आत्मा व्याप्त है। अर्थात् चैतन्यस्वभाव, वह व्यापक है; आत्मा व्याप्य है। सवेरे आया था। आहाहा! पीछे भी आता है, चेतना। ऐसा कि चेतना व्यापक है; आत्मा व्याप्य है। (समयसार) सर्वविशुद्ध (अधिकार में) पीछे (आता है)। आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण, ऐसा चैतन्यस्वभाव, वह आत्मा उसमें व्याप्य है। स्वभाव व्यापक है; आत्मा व्याप्य है। आहाहा! पुद्गल व्यापक है और रागादि भेद उसका व्याप्य है। आहाहा! जहाँ चेतना स्वभाव जो निधान-गुण हैं, वह चेतना व्यापक है; व्याप्य आत्मा है। आहाहा! ऐसा जो भगवान अनन्त-अनन्त गुण का निधान। शब्द में क्या हो? आहाहा!

तुझमें क्या कमी है? आहाहा! वह बाहर में लेना चाहता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **तुझमें पूर्ण सुख है,...** आत्मा में पूर्ण सुख, सुख, आनन्द। आत्मा में पूर्ण आनन्द भरा हुआ है। आहाहा! विश्वास-दृष्टि पड़ना कठिन है। आहाहा! दृष्टि के विषय में अनन्त आनन्द और अनन्त सुख-शान्ति पड़ी है। आहाहा! तुझमें (पड़ी है)। आहाहा! **पूर्ण ज्ञान है,...** पूर्ण सुख है और वस्तु के स्वभाव में पूर्ण ज्ञान है। आहाहा! **सब कुछ है।** दो (को) मुख्य करके कहा—ज्ञान और सुख। बहुत आचार्य ज्ञान और सुख ही सब जगह (कहते हैं)। उसमें और कहा तो अहं कहा है तरंगिणी। वह भी, बाकी तो बहुत जगह कलश टीका में आता है, वहाँ ज्ञान और आनन्द, ज्ञान और आनन्द दो मुख्य वस्तु है। आहाहा!

भगवान आत्मा में पूर्ण आनन्द है, पूर्ण ज्ञान है, पूर्ण शान्ति है, पूर्ण ईश-प्रभुता है, पूर्ण स्वच्छता है। आहाहा! वह पूर्ण स्वस्थ है। पूर्ण वह स्व में रहा है। आहाहा! ऐसे पूर्ण जीवत्वशक्ति जो गुण है, वह भी पूर्ण है, चितिशक्ति पूर्ण है, दृशिशक्ति पूर्ण है, ज्ञानशक्ति पूर्ण, सुखशक्ति पूर्ण है, वीर्य-पुरुषार्थशक्ति पूर्ण है। आहाहा! विभुत्व, प्रभुत्व, सर्वदशी(त्व),

सर्वज्ञ(त्व), स्वच्छत्व, स्वसंवेदन प्रत्यक्षशक्ति से भी अन्दर पूर्ण है। दो तो मुख्यरूप से वर्णन करके, उसके साथ अविनाभाव ऐसे अनन्त गुण रहे हुए हैं। आहाहा!

सुख और ज्ञान तो क्या परन्तु कोई भी वस्तु बाहर लेने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। अर्थात् क्या कहा? कि आनन्द बाहर से लेने जाना पड़े और ज्ञान बाहर से लेना पड़े – (ऐसा नहीं है)। ज्ञान और सुख से भरपूर ही है। आहाहा! कोई भी चीज़ बाहर लेने जाना पड़े; स्वच्छता, शान्ति, प्रभुता, कर्ता–कर्म–कार्य, ऐसी जो शक्तियाँ हैं, वे पूर्ण हैं। कोई चीज़ बाहर लेने जाना पड़े, कर्ता का कार्य या कार्य का कार्यकर्ता, ऐसा है नहीं। आहाहा! **कोई भी वस्तु बाहर लेने जाना पड़े, ऐसा नहीं है।** साधन भी बाहर लेने जाना पड़े – ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। तुझमें साधन नाम का गुण भी पूर्ण है। करण, करण। आहाहा! तुझमें कर्ता नाम का गुण भी पूर्ण है। बाहर का कोई कर्तापना ले जाना, वह है नहीं। आहाहा! तुझमें कार्यशक्ति भी पूर्ण है कि पर के कारण से कार्य हो, ऐसा तुझमें है नहीं। आहाहा! दान, अपने अनन्त गुण का दान पर्याय में देना, वैसा सम्प्रदान–दान गुण तो तुझमें पूर्ण है। आहाहा! आहाहा! सम्प्रदान नाम का गुण पूर्ण है, कि कहीं से लेने जाना पड़े और किसी को देना पड़े, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसा कि आहार लेना पड़े और आहार किसी को देना, वह तेरे स्वरूप में है नहीं। पैसा लेना पड़े और पैसा देना पड़े (–ऐसा है नहीं)। आहाहा! तेरे स्वरूप में तो अनन्त–अनन्त शान्ति पड़ी है; वह सम्प्रदान स्वयं निकालकर स्वयं अपने को दे। आहाहा! स्वयं निकाले (प्रगट करे), स्वयं दे। स्वयं पात्र और स्वयं देनेवाला – दातार भी स्वयं और दे भी अपनी चीज़। आहाहा! ऐसा इसमें गुण है, हों! पर्याय का दातार नहीं, यह और दूसरा प्रश्न। यह तो अन्दर दाता नाम का–सम्प्रदान नाम का गुण है। क्या कहा? समझ में आया?

एक बार ऐसा कहना कि आत्मा की निर्मल पर्याय का भी आत्मा दाता नहीं है। वह तो पर्याय की अपेक्षा से बात है, परन्तु वस्तु में तो दाता–सम्प्रदान गुण पूर्ण भरा है। आहाहा! समझ में आया? मात्र उस गुण के और द्रव्य के लक्ष्य से होता है, इसलिए उसके आश्रय से होता है; इसलिए उसने दिया – ऐसा कहा जाता है। यह व्यवहार (है)। आहाहा! बाहर के पैसे हों, अनाज हो, कपड़े हों तो दूसरे को दे (–ऐसा नहीं)। यहाँ तो दातार का गुण भी सम्प्रदान तुझमें है पूर्ण न, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें दाना है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दाना, आनन्द का दाना है वहाँ। वहाँ शान्ति के भण्डार-निधान हैं। आहाहा! वह जीव का खुराक है। आहाहा! पर की खुराक तो जड़ की क्रिया; राग का अनुभव, वह तो विकार का अनुभव खुराक, वह कोई चीज़ इसकी नहीं है। आहाहा! यह पूर्ण अकर्ता-अभोक्ता गुण से भी पूर्ण भरा है न। आहाहा! इसलिए देने की चीज़ के लिये बाहर में लेना पड़े और बाहर को देना पड़े, ऐसा तुझमें नहीं है। आहाहा!

एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर,... आहाहा! जहाँ भगवान आत्मा वीतरागी गुणों से भरपूर प्रभु। आहाहा! अकषायस्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा, वहाँ तू एक बार देख कि मुझमें क्या है ? आहाहा! उसमें राग, दया, दान के विकल्प तो उसमें नहीं। आहाहा! इसी तरह शरीर, वाणी, मन की क्रिया भी उसमें नहीं। आहाहा! यद्यपि उसमें एक समय की पर्याय भी नहीं। आहाहा! परन्तु वह पर्याय जिसके लक्ष्य से होती है, वह वहाँ पूर्ण है। आहाहा! जो केवलज्ञान होता है, वहाँ ज्ञान पूर्ण है, उसके लक्ष्य से होता है। उससे होता है - ऐसा भले न कहो। आहाहा!

जहाँ पूर्ण भरा है, आहाहा! उसके ध्येय से पूर्णता होती है। यह आ गया ३७६ में। पूर्ण गुण से अभेद ऐसा पूर्ण आत्मद्रव्य, पहला शब्द था। उसकी दृष्टि करने से तुझे आनन्द आदि दशा होगी अथवा उसका आश्रय करने से पूर्ण गुण का अभेद पूर्ण आत्मद्रव्य का आश्रय करने से पूर्ण पर्याय प्रगट होगी। आहाहा! वहाँ तो केवलज्ञान प्रगट होगा, मोक्षमार्ग से होगा, ऐसा नहीं कहा। भगवान आत्मा पूर्ण गुणों से भरपूर प्रभु अभेद चीज़ एक, आहाहा! उसमें क्या कमी है कि तुझे बाहर लेने जाना पड़े ? आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें पैसा कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा धूल, परन्तु पैसा था ही कहाँ आत्मा में ? आत्मा पैसा कहाँ रख सकता है, आत्मा ले कहाँ सकता है, आत्मा दे कहाँ सकता है ? ऐ.. शान्तिभाई! यह पैसा ले सकता है या दे सकता है या रख सकता है - यह आत्मा में कहाँ है ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये सब बातें। बैंक में इतने पड़े हैं, धूल में इतने हैं और ....

आहाहा! वह तो जड़-मिट्टी, मिट्टी के कारण उसमें कर्ता अथवा कर्मपना, करणपना छह शक्तियाँ परमाणु में भी पड़ी हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : बैंक में पुराना खाना (लॉकर्स) हो, उसमें गहने हों...

पूज्य गुरुदेवश्री : खाना-फाना धूल में भी नहीं। आहाहा! आत्मा में खाना पड़े हैं- असंख्य प्रदेश के अनन्त गुण। आहाहा! उस खाना में सौ रुपये के नोट हजार हैं और इस खाना में हजार रुपये के नोट हजार हैं। वह यहाँ है कहाँ? वह खाना ही जड़ का है। जड़ को कोई छोड़े नहीं और जड़ को कोई ले नहीं और जड़ को कोई रखे नहीं। ऐसी बात है। वीतराग... वीतरागमार्ग। आहाहा! उन परमाणुओं में कहाँ परिणमन स्वभाव नहीं है कि दूसरा उन्हें परिणमावे-रखे। आहाहा! यह टिककर बदलना, वह तो उसका स्वरूप है। उसके बदले दूसरा उसे बदलावे अर्थात् दे और ले, उस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : लोकोत्तर ज्ञान है परन्तु लौकिक में?

पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक चिल्लाहट मचाते हैं, लोक शोर मचाता है। अज्ञानी चिल्लाहट मचाते हैं। हम रखते हैं और पैसा कमाया और यह पैसा इतना प्रयोग किया। कौन प्रयोग करे और कौन रखे, बापू! तुझे खबर नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्याख्यान पूरा हो जायेगा, पश्चात् धनजीभाई बोलेंगे कि इतने रुपये इनके हैं और इतने रुपये इनके हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये सब बातें हैं। आहाहा! वे रजकण जहाँ जाने हैं, वे अपनी क्रिया शक्ति द्वारा जाते हैं। दूसरा दे, इसलिए जाते हैं, (ऐसा नहीं है)। कठिन काम, भाई!

मुमुक्षु : अपने घोषणा करने में अभी ऐसा कहा जाता है न कि रुपये आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले कहा जाये। दूसरा क्या हो? भाषा क्या कही जाये? वह कल का प्रसिद्ध हुआ? नहीं हुआ न?

मुमुक्षु : नहीं हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आज करेंगे। कल एक व्यक्ति आया। कितने काजू रखे और कितने दाख और कितने यह नोट रखकर बोला कुछ नहीं। तीन दो सौ रुपये थे। पचास-पचास के छह नोट। होगा कहा, दस, बीस। छह नोट तो पचास-पचास के।

मुमुक्षु : आये हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उन्हें यहाँ आना था, वह आये हैं और उन्हें जहाँ रहना है, वहाँ रहेंगे। आहाहा! यह तो पचास हजार के नोट। एक बार नहीं कहा था ? मैं तो ऐसे बैठा था, वहाँ एक सेठ आया, दो भाई बैठे थे ऐसे रखा और यहाँ रखा पैरों में नीचे। मैंने कहा होंगे दो-पाँच हजार परन्तु देखा तो दस-दस हजार के पाँच नोट। देनेवाला बोले नहीं कि कितने रखता हूँ। वह मानो कि यहाँ महाराज के पास कुछ बोला जाये ऐसा नहीं कि इसमें इतने। ऐसे जहाँ गिने, वहाँ दस हजार के पाँच नोट। वे बैठे थे। रामजीभाई को दे दिये। पचास हजार के नोट एक रकम। परन्तु वह तो क्या ? वह चीज़ तो वे आनेवाले रजकण आते.. आते.. और आते हैं। ऐई! किसका ?

मुमुक्षु : यह तो धर्म में भी ऐसा है। आवे.. आवे.. और आवे ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म आवे और आवे, परन्तु वह कब ? इसका-आत्मा का निर्णय करे तब। क्रमबद्ध में आवे। वह आवे, तब उसके काल में आवे। परन्तु किसे ? उसका जिसने अकर्तापने का निर्णय किया कि राग का और पर्याय का कर्ता मैं नहीं हूँ; मैं तो पर्याय का परिणमनेवाला हूँ। द्रव्य भी परिणमानेवाला नहीं। पर्याय, पर्याय से परिणमती है। आहाहा! ऐसी बातें बहुत (कठिन)। पर्याय, पर्याय से परिणमती है, मेरा द्रव्य (परिणमता नहीं)। आहाहा!

सोगानी में एक आया था। द्रव्यदृष्टिप्रकाश में (आया था)। पर्याय परिणम गयी, मैं तो ऐसा का ऐसा रह गया – आता है न ? यह द्रव्य का जोर है। पर्याय परिणम गया, मैं ऐसा का ऐसा रहा। – परन्तु जाना किसने ? आहाहा! ऐसी अटपटी बातें हैं। आहाहा! पर्याय परिणम गयी, में तो ऐसा का ऐसा रहा। मैं तो ध्रुव हूँ, ऐसा का ऐसा हूँ – ऐसा पर्याय ने जाना। आहाहा! ऐसी बातें! वीतराग... वीतराग... वीतराग। आहाहा!

एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर,... जहाँ पूर्ण आनन्द, ज्ञान आदि अनेक-अनेक गुण अनन्त पूर्ण पड़े हैं, वहाँ एक बार अन्दर देख। देखनेवाले को देख। आहाहा! **एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर, सब अन्तर में है।** भाई! जो शान्ति चाहिए, स्वच्छता चाहिए, महिमा चाहिए, ईश्वरता चाहिए, वह सब तुझमें भरी है, प्रभु! तुझे बाहर की महिमा चाहिए है ? आहाहा! बाहर में महिमा कहाँ है ? आहाहा!

मुमुक्षु : प्रमुख को महिमा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमुख की महिमा बातें सब है। प्रमुख भी अन्दर उलझता है। कितनी बार तो अटपटा आ पड़े, क्या करे ? आहाहा! संसार कोई ऐसा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं। **सब अन्तर में है।** सुख चाहिए हो तो अन्दर, सन्तोष चाहिए हो तो अन्दर है, शान्ति चाहिए हो तो अन्दर है। निरोगता चाहिए हो तो आत्मा सब निरोगता के गुण से भरपूर प्रभु है। आहाहा! उसको यह रोग, यह निरोगता जड़ की उसमें क्या है ? आहाहा! क्षण में मरकर देह छूट जायेगी, देखो न यह। आहाहा!

बीछिंया की बात नहीं की ? हिम्मतभाई ने। हरिभाई के छोटे भाई। मोटे भाई आते हैं, उनका छोटा भाई! बीछिंया ३४ वर्ष की उम्र। चार दिन में कुछ रोग नहीं, चार दिन में पीलिया। पीलिया, पीलिया में से पीलिया तेज हो गया। देह छूट गयी। आहाहा! अपने यहाँ नहीं जसुभाई बेचारे। आहाहा! चार-पाँच दिन में वह कफ में बढ़ गया, वह देह छूटने का जो समय है, बापू! उसे एक समय आगे-पीछे नहीं किया जा सकता। भाई! वहाँ सम्हाल की नजर न रख। सम्हले हुए गुण पड़े हैं, वहाँ नजर रख न! सम्हले हुए गुण पड़े हैं। आहाहा! ऐसा काम है।

अन्तर में गहरे उतरने पर,... इस गहरे का विचार नहीं किया था एक बार ? भाई! ... गहरा आया नहीं ? और गहरे-गहरे इस स्तुति में तुम्हारे आता है रात और दिन... आहाहा! इसी प्रकार यहाँ गहरे-गहरे। बहिन के (वचनों में) गहरे-गहरे (यह शब्द) बहुत आता है। गहरे अर्थात् वह पर्याय है, उसमें यह गहरा अर्थात् अन्दर द्रव्य। पर्याय ऊपर है। गहरे अर्थात् पर्याय के समीप में अन्तर में गहरे। आहाहा!

अन्तर में गहरे उतरने पर,... आहाहा! **सम्यग्दर्शन होने पर, तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे...** तुझमें ईश्वरता की महत्ता का पार नहीं, प्रभु! वह महिमा वहाँ से तुझे मिलेगी। आहाहा! राज की पदवी के लिये बड़े बेचारे एक-दूसरे... आहाहा! क्या कहलाता है वह ? मत... मत... (वोट) ले उसे ? वोट ले। अधिक वोट पड़े, उसे बड़ा गिने। बाहर के भिखारी महत्ता माँगा करते हैं। प्रभु! तुझमें महिमा का पार नहीं न! और तेरा एक-एक गुण ईश्वरता से भरपूर है। आहाहा! एक-एक गुण प्रभुता के रूप से भरपूर है, प्रभु!

ज्ञानगुण ईश्वरता से भरपूर, दर्शनगुण ईश्वरता से भरपूर, चारित्रगुण ईश्वरता से भरपूर, आहाहा! स्वच्छता गुण ईश्वरता से भरपूर, जीवत्वशक्ति ईश्वरता के स्वभाव से भरपूर गुण है। आहाहा! ज्ञान—दर्शन, चाहे वीर्य। वह वीर्य / पुरुषार्थ नाम का गुण, उसमें भी ईश्वरता पूर्ण भरी है। आहाहा! वहाँ देख न! वहाँ नजर कर न! आहाहा!

सम्यग्दर्शन होने पर, तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे... आहाहा! अभी यह व्यवहार का बड़ा विवाद, व्यवहार का। उसमें लेख आया। उसमें एक वह नहीं? सन्मतिसन्देश। उसमें जगन्नमोहनलालजी का आया है। ऐसा कि व्यवहार से भी कथंचित् होता है, शुभभाव से भी। द्रव्यानुयोग समयसार नाम नहीं परन्तु दूसरे शास्त्र... आहाहा! अरे रे! क्या हो?

मुमुक्षु : बात जँची नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई ने लिखा है परन्तु वह मानता है कि मैं बहुत (जानकार हूँ)। वैसे दूसरों की अपेक्षा व्यक्ति नरम है परन्तु ऐसे जरा वह प्रतिमा लेकर बैठे हैं न, तो उसमें से कुछ उससे शुद्धता होगी। क्या हो? प्रभु! यहाँ तो राग को परिणाम पुद्गल कहा है न, प्रभु! उस प्रतिमा के राग को तो पुद्गल कहा है। उस पुद्गल से जीव दे? वह तो चैतन्यस्वभाव से व्याप्त प्रभु है न! आहाहा! आत्मा व्यापक और पर्याय व्याप्य, ऐसा यहाँ नहीं लेना है। आहाहा! अनन्त गुणरूप चेतनास्वभाव,वह व्यापक, उसमें व्याप्य आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा व्यापक और अनन्त गुण व्याप्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरे प्रकार से। अभी यहाँ तो पुद्गल व्यापक है और भेद व्याप्य है, इसलिए पुद्गल है। यहाँ चेतनास्वभाव व्यापक है, इसलिए आत्मा व्याप्य है, वह चेतन है। आहाहा! अरे! समयसार तो समयसार है। आहाहा! ऐसा नहीं कहा संवर में? भाई! कि आत्मा आधार और गुण आधेय, यह बात तो एक ओर रह गयी परन्तु वहाँ तो कहा कि पर्याय आधार और आत्मा आधेय। संवर अधिकार। क्यों? कि वह परिणति वीतराग परिणति हुई, उससे आत्मा ज्ञात हुआ। वीतरागभाव से वीतरागभाव नहीं ज्ञात हुआ, वीतरागभाव अर्थात् त्रिकाल। आहाहा! जो सम्यक्परिणति निर्मल हुई, वह आधार है और वस्तु, वह आधेय, उसमें रही है अर्थात् उससे ज्ञात होती है। आहाहा! बाकी तो

प्रवचनसार में आता है न ? द्रव्य-गुण है, वे आधार हैं और पर्याय आधेय, आधेय है और पर्याय आधार। ऐसे तो द्रव्य-गुण पहले आधार कहा, पर्याय आधेय-ऐसा भी है, परन्तु फिर कहा कि पर्याय आधार है और द्रव्य-गुण आधेय है, पहले प्रवचनसार में। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहना है कि राग आधार है और निर्मल पर्याय आधेय है, ऐसा नहीं है। तथा राग कारण है और निर्मल पर्याय कार्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह भारी काम, बापू! कठिन है। यह कारणपरमात्मा, कारणस्वभाव त्रिकाली व्यापक है, आत्मा व्याप्य है। आहाहा! अर्थात् पूर्ण कारण गुण की प्रतीति करने पर, अनुभव करने पर पर्याय में अनन्त गुण उसे ज्ञात होते हैं। है भले, है भले परन्तु है—ऐसा ज्ञात किसे होता है ? आहाहा! यह वर्तमान सम्यग्दर्शन-ज्ञान की परिणति में वह यह है, ऐसा ज्ञात होता है। है तो है, परन्तु किसके लिये है ? जिसे ज्ञात हुआ, उसके लिये है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...मूल साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल साधन है। आहाहा! ऐसे साधन नाम का उसका गुण अन्दर है, परन्तु वह साधन गुण स्वयं जब ऐसे परिणमित हुआ, तब साधन गुण है, ऐसा उसका ख्याल आया। क्या कहा ? साधन गुण है, करण गुण है निधान का सब, परन्तु वह जब परिणमन हुआ, निर्मल परिणति (हुई), अन्दर देखने पर, नजर डालने पर जो परिणति हुई, उसमें वह ज्ञात हुए कि इसमें साधन, कर्ता, ज्ञान और आनन्द पूर्ण हैं। अरे! ऐसा वीतराग का मार्ग! अरे! कहाँ है ? भाई! दूसरों के साथ समन्वय करना चाहते हैं। जैनधर्म को अन्य धर्म के साथ। आहाहा! बापू! है, इतना दो का समन्वय अवश्य, वह भी है और यह भी है, परन्तु दोनों सच्चे हैं, (ऐसा नहीं) है। आहाहा! परन्तु यह सच्चा है तो एक दूसरा मिथ्या भी है।

वीतराग सर्वज्ञपरमेश्वर ने जो निधान भगवान को देखा, वह जानकर कहा कि देख! तेरी परिणति वहाँ झुके तो यह है, ऐसा ज्ञात होगा। तू राग में रहकर खड़ा रहेगा, वहाँ तुझे ज्ञात नहीं होगा। आहाहा! भगवन्त! तेरी महिमा का पार नहीं, प्रभु! वह राग से ज्ञात हो, ऐसा वह आत्मा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह उसकी महिमा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी महिमा यह है, महिमा यह है। निमित्त से ज्ञात हो, ऐसा वह आत्मा नहीं। वह तो उसकी शुद्धपरिणति से ज्ञात हो, ऐसा वह आत्मा है। शुद्धपरिणति करे, शुद्ध उपयोग... आहाहा! उसमें ज्ञात हो, ऐसा आत्मा है। इसलिए शुद्ध परिणति को आधार कहा, और उसके आधार से यह (आत्मा) ज्ञात हुआ; इसलिए उसमें यह है, ऐसा आधेय बतलाया। आहाहा! अरे! वीतराग मार्ग! लोग नये बेचारे पुरानी रूढ़ि के हों, उन्हें भी यह सुनना कठिन पड़ता है। परन्तु यह क्या कहते है? आहाहा!

तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे... क्या कहा यह? **अन्तर में गहरे उतरने पर, सम्यग्दर्शन होने पर,...** ऐसा। गहरे दृष्टि होने से, परिणमन होने से, ऐसा। आहाहा! **तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे...** आहाहा! ऐसा समय मिलना... आहाहा! अरे! अनन्त-अनन्त काल से बाहर में भटककर मर गया है यह। मर गया अर्थात् चैतन्य को मरणतुल्य कर डाला है। आहाहा! आया है न? आया न कलश में? २८ पृष्ठ पर कलश आता है। इसने जीव को मरणतुल्य कर डाला। ऐसा अनन्त गुण का निधान भगवान, उसकी अस्ति है— ऐसा न मानकर, यह राग और दया, दान, व्रत विकल्प की अस्ति मानी। उसकी अस्ति से त्रिकाल की अस्ति को मरणतुल्य कर डाला। आहाहा!

कलश-टीका में है, इसमें नहीं। कलश-टीका है न? यह कलश-टीका, २८वाँ कलश है न? यह २८वाँ, पृष्ठ ३० है। **कर्म संयोग से ढँका हुआ होने से...** रागादि के विकल्प को अपना माना, वहाँ अन्दर भगवान चिदानन्द वीतरास्वरूप को मरणतुल्य कर डाला कि तू नहीं, मैं हूँ। आहाहा! शुभराग से आत्मा को लाभ होता है, ऐसा माननेवाले, शुभराग को स्वयं ने महिमा दी है और भगवान का त्रिकाली टिकता जीवन है, उसका निषेध कर डाला है। आहाहा! कठिन काम! अभी चलते प्रवाह में... है?

मरण को प्राप्त हो रहा था, वह भ्रान्ति परमगुरु श्री तीर्थंकर भगवान का उपदेश सुनने से मिटती है। उपदेश सुनने से मिटती है, इसका अर्थ? इसके ख्याल में आता है (कि) भगवान ऐसा कहते हैं कि तेरी परिणति से तुझे, तुझे समझ में आये ऐसा है; राग से वह समझ में आये, ऐसा नहीं है। ऐसा इसके ख्याल में आता है और फिर स्वयं परिणति प्रगट करता है। इससे भगवान के वचन से भ्रान्ति मिटी, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! वह भ्रान्ति परम अर्थात् यहाँ बतलाना है, तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव जिनेश्वर परमेश्वर

अरिहन्त। आहाहा! परमगुरु श्री तीर्थंकर का उपदेश सुनने से, इन तीर्थंकर का यह उपदेश है कि तू जीव त्रिकाल है, उसका आदर कर, उसे उपादेय मान। ऐसा ऐसा भगवान का आदेश है, वैसा इसके लक्ष्य में आया, पश्चात् उस लक्ष्य को छोड़कर स्वभाव का आश्रय किया, तब भ्रान्ति टली, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! शब्द की शैली से बात करना... आहाहा!

और उन सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर... यह क्या कहा? अन्दर गहरे प्रवेश करने पर, ध्रुव में जाने पर, सम्यग्दर्शन होने से, शुद्धपरिणति होने से तुझे तेरे निधान शुद्धपरिणति से दिखायी देंगे। आहाहा! वे व्यवहार / शुभराग से दिखायी नहीं देंगे, प्रभु! आहाहा! उसकी शुद्धता है, वह शुद्धपरिणति से शुद्धता दिखेगी। वह अशुद्ध नहीं, उस अशुद्ध परिणति से वह दिखायी दे। आहाहा! थोड़े अन्तर में बहुत अन्तर।

तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे और उन सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर... निर्मल आनन्द और शान्ति का वेदन करेगा, आहाहा! **तू तृप्त हो जायेगा।** तुझे तृप्ति होगी। आहाहा! वह दूसरों से पूछना नहीं पड़ेगा। आता है न? निर्जरा अधिकार में। आहाहा! तेरे अनन्त निधान गुण को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सत्यक् अंश स्थिरता के द्वारा देखने से, तुझे अंश जो प्रगट हुआ है, उसका तुझे वेदन होगा। आहाहा! उस वेदन में राग का वेदन तुझे दुःखरूप लगेगा। आहाहा!

पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना... अर्थात् स्वभावसन्मुख का जो झुकाव हो गया है, ऐसा का ऐसा झुकाव रखना। आहाहा! यह झुकाव झुकाया, नहीं झुकाने पर उस सत्ता में... आहाहा! उसकी तिथि हो कर्ज चुकाने की। न पहुँच सके तो फिर निकाल डाले उसमें से। यह तो उन्मुखता बदल डाली। राग, निमित्त और पर्याय के ऊपर उन्मुखता थी, उस उन्मुखता को ऐसे बदल डाला। आहाहा! रसिकभाई! अब ऐसी बातें हैं। आहाहा! इसके लिए रुके हैं न। इस दुनिया की आमदनी और धूल में कुछ नहीं, बापू! वह मरकर दुःख-पाप है। आहाहा! वैसे का दुःख.. वर्तमान दुःखी है। धूल में कहाँ था? लक्ष्मी के प्रति लक्ष्य जाता है, वही विकार है और दुःख है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तू अपने निधान को देखेगा तो तुझे पर्याय में आनन्द का

वेदन होगा। आहाहा! क्योंकि वह शुद्धपरिणति द्वारा ज्ञात हुआ , इसलिए शुद्धपरिणति तुझे वेदन में आयेगी, ध्रुव वेदन में नहीं आयेगा। आहाहा! जो शुद्धपरिणति-शुद्ध उपयोग की परिणति द्वारा ज्ञात हुआ परन्तु वहाँ शुद्धपरिणति ही वेदन में आयेगी। ज्ञात हुई चीज़, वेदन में नहीं आयेगी। समझ में आया ? जिसमें ज्ञात हुआ, उसे वेदते हैं। जो ज्ञात हुआ, वह वेदन में नहीं आता। आहाहा! पश्चात् स्वभावसन्मुख जो दशा हुई है, उस दशा का झुकाव स्वभावसन्मुख रखना। आहाहा वापस गिर जाऊँगा तो वापस हाथ नहीं आयेगा। आहाहा! मान और सम्मान और महिमा में यदि पड़ गया, हो गया। चूक गया, वह स्वभाव का पुरुषार्थ चूक गया। आहाहा!

पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना, जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर... पहला अंश है न? सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर तू तृप्त होगा। आहाहा! पश्चात् अब स्वभाव सन्मुख के आश्रय का झुकाव रखना। आहाहा! पूर्ण निधान का भोक्ता होगा, **जिससे पूर्ण निधान का...** निधान तो पूर्ण है, वह है, उसका भोक्ता नहीं है, परन्तु पर्याय का अपूर्ण वेदन है, वह पूर्ण वेदन होगा। आहाहा!

तू सदाकाल... भाषा तो ऐसी आवे न? आहाहा! ऐसा नहीं आता कि अनादि से तो पर्याय को, राग को वेदता है। अब जब ध्रुव का ज्ञान हुआ, तब ध्रुव और पर्याय दोनों को जानेगा और वेदेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वेदन है तो पर्याय में। शास्त्र में भाषा ऐसी आती है। ध्रुव को वेदेगा और पर्याय को वेदेगा अर्थात् ध्रुव की ओर का जो ज्ञान हुआ न, ध्रुव के ओर की श्रद्धा हुई न, आहाहा! उसे वेदेगा, वह ध्रुव को वेदेगा, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बातें!

मुमुक्षु : निहालभाई ने ऐसा कहा है कि दोनों भावों का अनुभव एक साथ होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही साथ। अपने बात आ नहीं गयी? आयी न त्रिपुटी में? यहाँ आ गयी न दो दिन पहले। तीन त्रिपुटी। एक तो द्रव्य की ओर का ध्रुव का पुरुषार्थ चालू है। उस समय पर्याय शुद्ध और अशुद्ध की उपेक्षा है—एक। पश्चात् शुद्ध अंश है, वह सुखरूप वेदन में आता है—दो। पश्चात् अशुद्ध अंश है, वह दु:खरूप वेदन में आता है-तीन। पहले आ गया है। आहाहा!

इसमें तो सब आ गया है। इतना सब आया है और सादी भाषा गुजराती और वह सहजरूप से आ गयी है। आहाहा! यह तो तब कहा नहीं था? दीपचन्दजी को याद करके। देखो! इसके पहले ही है। १३६ पृष्ठ में, ३७८ (बोल)। **साधक की दशा एकसाथ त्रिपुटी...** एक पृष्ठ के अन्तर से ही है। **एक तो, उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है, जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा होती है; दूसरा, शुद्ध पर्यायांश का सुखरूप से वेदन होता है; और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावों का समावेश है उसका—दु:खरूप से, उपाधिरूप से वेदन होता है।** आहाहा! शोर मचाते हैं। व्रत, तप, वह दु:खरूप वेदन में आते हैं, बापू! वह विकल्प है, भाई! यह अपवास करता हूँ और यह करता हूँ और यह छोड़ता हूँ। आहाहा!

बहुत कठिन काम। उसका फल भी कितना, बापू! आहाहा! अनन्त-अनन्त भव का अन्त और अनन्त-अनन्त समाधि की प्राप्ति की शुरुआत हो गयी। आहाहा! जिसके फलरूप से अनन्त समाधि आयेगी, अनन्त आनन्द आयेगा, अनन्त ज्ञान आयेगा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! व्रत, तप, भक्ति शुभभाव, वह दु:खरूप-उपाधिरूप वेदन में आते हैं। अब (आजकल) यहाँ कहते हैं कि व्रत, तप और शुभभाव है, उनसे शुद्ध में जाया जायेगा। प्रभु.. प्रभु..! क्या करता है? भाई! भाई! तुझे हाथ नहीं आवे उसमें और भटकने का बन्द नहीं होगा। आहाहा! वह दु:ख का समुद्र चौरासी का अवतार, भाई! तू कहाँ जायेगा? आहाहा! यहाँ दुनिया तुझे स्वीकार करे और तुझे भी ऐसा लगेगा कि हम भी कुछ हैं, परन्तु इसका फल आयेगा, तब कठोर पड़ेगा, भाई! आहाहा!

यह यहाँ कहा न? **पुरुषार्थ करते ही रहना, जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर तू सदाकाल परम तृप्त...** उसमें कहा था न कि आंशिक वेदन कर तृप्त होगा। वह भाषा ही ऐसी शैली आयी है। आहाहा! **पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर तू सदाकाल परम तृप्त-तृप्त रहेगा।** तृप्त-तृप्त होकर पश्चात् तृप्त-तृप्त रहेगा। आहाहा! ऐसी बात है।

पूर्ण-पूर्ण निधान अनन्त गुण का साहिबा ऐसा परमात्मा बादशाह। आहाहा! उसे तू शुद्धपरिणति से अन्दर जाकर देख तुझे पर्याय में शान्ति का-आनन्द का वेदन आयेगा,

आंशिक आयेगा और आंशिक तू तृप्त-तृप्त होगा। पश्चात् भी (पुरुषार्थ) चालू ही रखना, वहाँ स्वभावसन्मुख। आहाहा! तो तुझे पूर्ण पर्याय होकर उसका पूर्ण वेदन होगा और पूर्ण तृप्त-तृप्त होगा। यह दो शब्द प्रयोग किये। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसा उपदेश! आहाहा! अभी तो पूरा दूसरा चलता है। आहाहा! क्या हो? और इसे एकान्त सिद्ध करना है। सम्यक् एकान्त नहीं, मिथ्या एकान्त सिद्ध करना है।

प्रभु! तुझे पहुँच न सके, शुद्ध से आगे जाकर, इससे वैसा श्रद्धा में तू ऐसे कैसे व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार श्रद्धा, हों! निश्चयश्रद्धा तो अनुभव हो वह (है) परन्तु व्यवहार श्रद्धा में भी राग से अन्दर रुचि हो। करणानुयोग और चरणानुयोग में ऐसा कहा है। ऐसा नहीं कहा, भाई! वह तो व्यवहार से व्यवहारव्रत पाल और अतिचार टाल, ऐसा कहा है परन्तु है वह सब शुभराग और दुःख। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार का लोप हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का लोप हो जायेगा, ऐसा कहते हैं परन्तु लोप करने से निश्चय आयेगा। व्यवहार, वह रागादि तुझमें है ही नहीं। आहाहा! वह तो दुःखरूप जहर है। आहाहा! उसे तू न देख। देखनेवाले की नजर में निधान को देख। आहाहा!

देह छूटने के अवसर में बापू! तेरा पुरुषार्थ स्वसन्मुख नहीं हो, तू वहाँ क्या करेगा? आहाहा! यह तेरा जानपना एक के बोल में वहाँ आड़े नहीं आयेंगे और दुनिया ने तुझे स्वीकार किया हो, इससे वहाँ तुझे तृप्ति होगी, (ऐसा नहीं मान)। आहाहा! आहाहा! एक सेठ था। मरने के समय में मरा। गाँव में बहुत काम करता था, सबको मदद करता और ऐसा करते हुए बहुत अन्तिम जिन्दगी गयी। एकदम देह छूटने का अवसर आया। सेठ गृहस्थ सब देखने आवे। आँख में से आँसू बहते जायें। अरे रे! मैंने मेरे लिये कुछ नहीं किया। मैंने इसे और उसे उसका किया और उसे समझाया और उसमें मेरी जिन्दगी गयी। रोवे... रोवे... रोवे... रोवे... देह छूट गयी। आहाहा! गाँव में ठिकाने लगाया, इस झगड़े को ठिकाने लगाया, जाति में बैर-विरोधी को ठिकाने लगाया और उसमें तुझे तेरा क्या? ऐई! शान्तिभाई! आहाहा! यह ३८४ (बोल पूरा हुआ)।

जीव ने अनन्त काल में अनन्त बार सब कुछ किया परन्तु आत्मा को नहीं पहिचाना। देव-गुरु क्या कहते हैं, वह बराबर जिज्ञासा से सुनकर, विचार करके, यदि आत्मा की ठोस भूमि जो आत्म-अस्तित्व, उसे ख्याल में लेकर निजस्वरूप में लीनता की जाय तो आत्मा पहिचानने में आये—आत्मा की प्राप्ति हो। इसके सिवा बाहर से जितने मिथ्या प्रयत्न किये जायें, वे सब भूसा कूटने के बराबर हैं ॥३८५॥

३८५। **जीव ने अनन्त काल में, जीव ने अनन्त काल में अनन्त बार, अनन्त काल में अनन्त बार सब कुछ किया...** अर्थात् शुभाशुभभाव यह सब। **परन्तु आत्मा को नहीं पहिचाना।** आहाहा! अरे! शास्त्र का ज्ञान भी अनन्त बार किया, शुभाशुभभाव भी अनन्त बार किये। आहाहा! सब किया (अर्थात्) यह (सब किया)। दूसरे का सब किया, ऐसा नहीं। यह मानता हो कि मैंने इसका-इसका किया परन्तु किये हैं तो शुभाशुभभाव को। आहाहा! या यह जगत का ज्ञान, यह वकालात का और डॉक्टर का।

मुमुक्षु : बहुतों को जिताया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी जिताया नहीं। वहाँ पाप बाँधा था। आहाहा! कहते हैं कि तूने बहुत किया। क्या? शुभ-अशुभभाव और पर का जानपना। ऐसा कहा न? देखो न! **परन्तु आत्मा को जाना नहीं, पहिचाना नहीं।** विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण -४, शनिवार, दिनाङ्क १८-११-१९७८
वचनामृत-३८५ से ३८६ प्रवचन-१५४

(वचनामृत) ३८५ **जीव ने अनन्त काल में अनन्त बार सब कुछ किया...** सब किया अर्थात् शुभाशुभभाव। अनन्त बार, अनन्त काल में ऐसे शुभ-अशुभभाव अनन्त बार किये। **परन्तु आत्मा को नहीं पहिचाना।** आत्मा इन शुभाशुभ परिणाम से भिन्न है, उसे पहिचाना नहीं, उस ओर नजर नहीं की। उसे आत्मारूप से अस्तित्व शुद्ध चैतन्यदाता है, उसकी इसने पहिचान नहीं की। आहाहा! **देव-गुरु क्या कहते हैं... देव-गुरु क्या कहते हैं, वह बराबर जिज्ञासा से सुनकर,... वह बराबर जिज्ञासा से सुनकर, विचार करके, यदि आत्मा की ठोस भूमि....** आहाहा! आत्मा की मूल ठोस ध्रुव भूमि; मूल भूमि अर्थात् यह। बदलतेरहित ध्रुवज्ञान की वज्रमय भूमि, अकेला ज्ञानदल, आनन्ददल, शान्ति का दल, ऐसी जो ठोस भूमि। आहाहा! जिसमें पर्याय का प्रवेश नहीं और जिसका पर्याय में आना नहीं। आहाहा! ऐसी जो ठोस भूमि, उसे सुनकर, वह ठोस भूमि जो भूमि / अस्तित्व अर्थात् **ठोस भूमि जो आत्म-अस्तित्व...** कायम रहनेवाला ध्रुव अस्तित्व। **उसे ख्याल में लेकर...** क्योंकि देव-गुरु को यह कहना है। देव-गुरु क्या कहते हैं, यह ख्याल में लेने का अर्थ ही यह है। आहाहा! देव-गुरु, उस ध्रुव चैतन्य भगवान की ओर जा, यह उनका कहना है। लाख बात की बात हो, (तो यह है)। आहाहा! आता है न, छहढाला में?

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;
तोरि सकल जगदंद-फंद, निज आतम ध्याओ।

ध्यावे, यह पर्याय है, परन्तु निज आत्मा जो ध्रुव मूल भूमि, अस्तित्व, जिसका महान अस्तित्व जिसकी सत्ता। आहाहा! उसे पहिचानकर, उसे ख्याल में लेकर, आहाहा! **निजस्वरूप में लीनता की जाय...** ख्याल में ले, तब अन्दर स्थिर हो सके न? यह वस्तु है त्रिकाल चैतन्य ज्योत, जलहल ज्योति ध्रुव, यह ख्याल में ले तो उसमें लीनता करे। निज

स्वरूप में लीनता करने में आवे। आहाहा! तीन शब्द प्रयोग किये हैं। आत्मा की ठोस भूमि जो कि आत्म-अस्तित्व, आहा! कि जो निज स्वरूप में लीनता, उसे ख्याल में लेकर निज स्वरूप में लीनता करने में आवे। आहाहा! समझ में आया?

तो आत्मा पहिचानने में आये—क्योंकि भगवान की वाणी और गुरु की वाणी और शास्त्र, यह आत्मा वीतरागमूर्ति है, उसमें उसका वजन वहाँ ले जाते हैं, पूरे सिद्धान्त का सार। आहाहा! यह ठोस भूमि, ध्रुवभूमि, मूल अस्तित्व। आहाहा! पर्याय का अस्तित्व है, वह तो नकली एक समय का अस्तित्व है, यह तो असली-अस्तित्व जो शाश्वत रहनेवाला एकरूप अस्तित्व है। आहाहा! उसे ख्याल में लेकर, उसमें लीनता करके। आहाहा! **जाय तो आत्मा पहिचानने में आये**—कि यह आत्मा तो नित्यानन्द चेतना ध्रुव वस्तु है, ऐसा पर्याय जाने। पर्याय जाने क्या? कि यह असली तत्त्व जो वस्तु, अस्तित्व, असली अस्तित्व है, वह मैं आत्मा, ऐसा पर्याय जाने। आहाहा!

तो उसे **आत्मा की प्राप्ति हो**। पहिचानने में आवे अर्थात् कि ऐसा। पहिचानने में आवे को लाईन करके (लिखा है)। पहिचानने में आवे अर्थात् क्या? कि आत्मा की प्राप्ति हो। अस्तित्व भूमि को ख्याल में लेकर, उस स्वरूप में लीनता की जाये तो आत्मा की प्राप्ति हो, आत्मा पहिचानने में आवे अर्थात् आत्मा की प्राप्ति हो, ऐसा। आहाहा! इतने शास्त्रों का ज्ञान हो तो आत्मा को (पहिचाना जाये), ऐसा नहीं कहा। यह वस्तु है, उसे ख्याल में लेकर, (उसमें लीनता करे)। आहाहा! बहुत संक्षिप्त भाषा, एकदम सिद्धान्त का सार। सदृश ध्रुव धातु। आहाहा! जिसने ध्रुवपना धारण कर रखा है, ऐसी चैतन्यधातु अस्तित्व, उसे ख्याल में लेकर, उसकी लीनता करके आत्मा की प्राप्ति की जाये - आत्मा की प्राप्ति हो। आहाहा!

इसके सिवा बाहर से जितने मिथ्या प्रयत्न किये जायें। आहाहा! ऐसे शास्त्र पढ़ूँ और ऐसे दया, दान, व्रत, और क्रिया करूँ, और अट्ठाईस मूलगुण करूँ, यह करूँ और वह (करूँ) सब बाहर के मिथ्याप्रयत्न हैं। आहाहा! **इसके सिवा बाहर से जितने मिथ्या प्रयत्न...** अर्थात् व्यर्थ के प्रयत्न करना कि इतने शास्त्र पढ़ूँ तो प्राप्त हो, इतनी क्रिया करूँ तो प्राप्त हो। आहाहा! **वे सब भूसा कूटने के बराबर हैं**। आहाहा! छिलका, छिलका। भूसा कूटने में कण नहीं मिलेगा। आहाहा!

कण तो अस्तित्व महाप्रभु को ख्याल में लेकर पहिचान करे तो उसे अस्तित्व-तत्त्व प्राप्त हो। जो है, उस प्रकार से प्राप्त हो। चैतन्यस्वरूप... चैतन्यस्वरूप... चैतन्यस्वरूप... ज्ञायकस्वरूप... ज्ञायकस्वरूप... ज्ञायकस्वरूप...। यह असली तत्त्व, यह असली भूमि है, इसकी पहिचान करके लीनता करे तो उसे प्राप्त होता है, उसे पहिचान कहो या उसे प्राप्त होता है कहो। आहाहा! भाई! आया है एक वह 'वढिया', 'वढिया' है? 'वढिया' के नहीं, बैंक के? नहीं आये? चार दिन हूँ, ऐसा कहा। भाई वढिया में बैंक में हैं। महुआ के श्वेताम्बर हैं। जवान व्यक्ति यहाँ आया था। अभी दोपहर को मैं आत्मधर्म पढ़ता हूँ और यह बहिन की पुस्तक पढ़ता हूँ। मैं यही अभ्यास करता हूँ। श्वेताम्बर है, वढिया में बैंक में। आया और चार दिन से हूँ, ऐसा कहता था, चार दिन से यहाँ हूँ। आहाहा! बहुत सरस पुस्तक है, बहिन की पुस्तक। आत्मधर्म मँगाता हूँ, मुझे भेंट मिली है। आहाहा!

इस एक पैराग्राफ में सब विधि आ गयी। आहाहा! देव-गुरु क्या कहते हैं, यह भी इसमें आ गया। देव-गुरु और शास्त्र को जो कहना है, वह भगवान आत्मा की ओर ले जाना है, उन्हें यह कहना है। आहाहा! चारों अनुयोग में शास्त्र को, देव-गुरु को ऐसा कहना है। भगवान! तेरी अस्तित्व धातु, ध्रुवधातु, भगवान ध्रुवस्वरूप चैतन्यधातु- जिसने चैतन्यपना धार रखा है, ऐसा जो भगवान आत्मा... आहाहा! उसे पहिचान और उसमें लीन हो। तुझे अवश्य आत्मा पहिचानने में आयेगा अर्थात् कि आत्मा प्राप्त होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : ख्याल और लीनता के बीच कितना ख्याल।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना ख्याल कि यह है, अब उसमें एकाग्र होऊँ। ख्याल (आया कि) यह है। फिर एकाग्र होना। आहाहा! श्रद्धा, ज्ञान और लीनता तीनों साथ में होते हैं न! वस्तु एक समय में ध्रुव, ध्रुव, उसका ज्ञान करके, उसकी श्रद्धा करके, उसमें स्वरूप-आचरण स्थिर होना। आहाहा! इसके अतिरिक्त बाहर के जितने मिथ्या प्रयत्न (करे), ऐसी क्रिया करते हैं और ऐसा करते हैं और ऐसा करते हैं, पंच महाव्रत पालते हैं, उपसर्ग-परीषह सहन करते हैं, जंगल में रहते हैं... आहाहा! वह कोई क्रिया आत्मा को प्राप्त करने की नहीं है। आहाहा! यह ३८५ (बोल पूरा हुआ)।

बाह्य क्रियाएँ मार्ग नहीं बतलातीं, ज्ञान मार्ग बतलाता है। मोक्ष के मार्ग का प्रारम्भ सच्ची समझ से होता है, क्रिया से नहीं। इसलिये प्रत्यक्ष गुरु का उपदेश और परमागम का प्रयोजनभूत ज्ञान मार्ग प्राप्ति के प्रबल निमित्त हैं। चैतन्य का स्पर्श करके निकलती हुई वाणी मुमुक्षु को हृदय में उतर जाती है। आत्मस्पर्शी वाणी आती हो और जीव एकदम रुचिपूर्वक सुने तो सम्यक्त्व के निकट हो जाता है॥३८६॥

बाह्य क्रियाएँ मार्ग नहीं बतलातीं,... बाहर की क्रिया ऐसी लगे, परीषह सहन करे, शरीर में पसीना उतर जाये, तमतमाती धूप में ऐसे गरम... गरम.. गरम शरीर हो जाये, तप्तायमान पत्थर की गर्मी पर बैठे और ऐसे सहन करे, वह सब बाहर की क्रिया, उससे कहीं चीज़ (प्राप्त नहीं होती)। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें से लब्धि प्राप्त हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें से धूल भी कुछ प्राप्त नहीं होता। आहाहा! यह तो सम्यक् आत्मा की धातु चैतन्य है, उसे पकड़ने के पश्चात् उसे कोई सच्ची लब्धि हो, अज्ञानी को तो साधारण हो तो विभंग ज्ञान होता है। सात द्वीप, सात समुद्र देखता है। विभंग ज्ञान। सात द्वीप, सात समुद्र (देखे), उससे क्या? आहाहा! वह वापस आवृत होने जानेवाला है। मिथ्यात्व का जोर है, वह निगोद में जानेवाला है। वह वापस अक्षर के अनन्तवें भाग हो जानेवाला है, बापू! आहाहा! ऐसी बात है।

ध्रुव में से ज्ञान के अंकुर फूटे... आहाहा! जो दल-पूरा चैतन्यदल है, जिसमें बन्ध और मोक्ष की पर्याय भी नहीं। आहाहा! बन्ध और मोक्ष की पर्यायवाला जानना, वह भी एक मिथ्या अभिप्राय है। आहाहा! क्योंकि वह तो पर्याय है। आहाहा! द्रव्यस्वभाव जो त्रिकाल ज्ञायक मूर्ति प्रभु... आहाहा! उसे पहिचानकर उसमें स्थिर हो, जरा वहाँ टिक जा। तुझे पहिचानने में आयेगा कि आत्मा पूर्णानन्द नाथ है और तुझे उसकी प्राप्ति पर्याय में होगी। पर्याय में जो राग की प्राप्ति अनादि से है, (वह छूट जायेगी)। आहाहा! अब ऐसी बातें हैं।

बाह्य क्रियाएँ मार्ग नहीं बतलातीं,... जंगल में रहे, प्रचण्ड धूप से तप्त हुई पत्थर की शिला पर बैठे और सर्दी में पानी से भरा हुआ बड़ा तालाब हो, पाँच-पच्चीस कोस में उसकी ठण्डी हवा, शीतलता आवे, पौष महीने का समय हो, पाल पर बैठे, वह उघाड़े शरीर सहन करे, वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! वह क्रियाएँ कोई मार्ग नहीं दिखातीं। आहाहा!

ज्ञान मार्ग बतलाता है। इसका जाननस्वभाव है और यहाँ जाननस्वभाव प्रगट करे तो इसे मार्ग दिखावे। आहाहा! जिसे समस्त विषयानन्द में से रुचि हट जाती है और जिसे बाहर की असुविधा तथा सुविधा में भेद डालना हट जाता है कि यह प्रतिकूल है और यह अनुकूल है, वह वस्तु चली जाये। आहाहा! जिसे आत्मा जानने से परवस्तु ज्ञेयरूप से जाने, परन्तु यह वस्तु मुझे प्रतिकूल है और अनुकूल है, ऐसा चीज़ में नहीं है। चीज़ में तो प्रमेयत्व शक्ति है, तो प्रमाणज्ञान का विषय होती है। आहाहा! क्या कहा यह ? भगवान आत्मा का ज्ञानस्वभाव है। उसका भान होने पर उसे सब चीज़ें ज्ञेयरूप से-परज्ञेयरूप से, परज्ञेयरूप से जाने। परन्तु यह प्रतिकूल है और अनुकूल है, यह दृष्टि उड़ गयी होती है। आहाहा! ऐसी चीज़, आहाहा! क्योंकि परचीज़ तो परज्ञेयरूप से है। आहाहा! उसमें परचीज़ कोई अनुकूल-प्रतिकूल ऐसी कोई छाप उसमें नहीं है। ऐसा कोई ज्ञेय में गुण नहीं कि यह प्रतिकूल और अनुकूल होना। आहाहा! मात्र वह वस्तु जो है, स्वयं जहाँ ज्ञानस्वरूप है, उसका जहाँ भान हुआ तो सब चीज़ें उसे ज्ञेयरूप से जानने में रहती हैं। आहाहा! परन्तु कब ? स्वप्रकाशक पर्याय प्रगटी तब। समझ में आया ? क्योंकि भगवान आत्मा का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। इसलिए स्वप्रकाशक भगवान आत्मा के अस्तित्व का अनुभव हुआ, पहिचान हुई, प्रतीति हुई और आंशिक लीनता भी हुई। आहाहा! तब वह ज्ञान स्व-परप्रकाशक होने से परज्ञेय को जाननेरूप से जानता है, परन्तु उसमें परज्ञेय मुझे ठीक नहीं और अठीक नहीं, ऐसा उसमें नहीं है। आहाहा!

आता है न, निन्दा-प्रशंसा। आगे नहीं आता ? निन्दा-प्रशंसा है, वह तो शब्द की पर्याय है। आहाहा! कोई प्रशंसा करे, कोई निन्दा करे। वह तो स्वप्रकाशक ज्ञान हुआ है, उसमें से परज्ञेय के रूप से जाननेयोग्य है, परन्तु यह निन्दा और यह प्रशंसा मेरी करते हैं, ऐसा उसमें नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! यह आता है न आगे, नहीं ?

निन्दा-प्रशंसा। यह मूल तो ऐसा कहना चाहते हैं कि वह परज्ञेय है। उसमें यह मेरी निन्दा और मेरी प्रशंसा, यह वस्तु में नहीं है। आहाहा! जिसे स्व-आत्मा की प्रतीति और आत्मा सम्यक्त्व में प्राप्त हुआ, उसे परवस्तु ज्ञेयरूप से है क्योंकि आत्मा का प्रमाण स्वभाव है, इसलिए स्व-परप्रकाशकरूप से पर को ज्ञेयरूप से जानता है परन्तु पर मेरा, यह दुश्मन है और यह मेरा सज्जन है, ऐसा कोई ज्ञेय में नहीं है, इसलिए ज्ञान में भी यह नहीं है। आहाहा!

यह मेरा पुत्र है और यह तेरा है, यह उसमें नहीं रहता—ऐसा कहते हैं। यह मेरी स्त्री है और यह लड़के की बहू है। प्रभु.. प्रभु..! तू देख तो सही एक बार! आहाहा! शरीर में मैं निरोगी हूँ और यह रोगी हूँ, ऐसा स्व-परप्रकाशक ऐसा भगवान, उसका भान होने से वह वस्तु पररूप से, परज्ञेयरूप से जानने में रहे, परन्तु मैं रोगी और निरोगी, यह मेरा पुत्र और तेरा, यह स्त्री मेरी और तेरी, ऐसा उसमें नहीं रहता। यदि उसमें भेद डाले तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! क्योंकि ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। स्व को मानना और पर को मानना अर्थात् जानना, किन्तु पर में यह मेरे और तेरे, ऐसा ज्ञान के स्वभाव में नहीं है और सामने की चीज़ में भी यह मेरे-तेरे का भेद नहीं है, वह तो ज्ञेयरूप से है। आहाहा! चेतनजी! आहाहा! क्या इनकी शैली, आहाहा!

मुमुक्षु : श्रीमद् तो प्रतिकूलता को परम मित्र कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो किस अपेक्षा से? वह तो ज्ञेयरूप है, मुझे चाहिए नहीं और वह ले जाता है, इस अपेक्षा से। मित्र अर्थात् प्रिय है, ऐसा वहाँ नहीं है। यह तो जो शरीर है, वह परज्ञेयरूप से है और मेरा-मेरा है, यह है नहीं। अत: वह जीव आकर ले जाये तो उसमें मुझे तो मेरा मित्र है। मेरी श्रद्धा है, वैसा उसने काम किया। आहाहा!

परम मित्र का मानो पाया योग जब
एकाकी विचरुँगा कब श्मशान में
अरु पर्वत पर बाघ-सिंह संयोग जब
अडोल आसन और मन में नहीं क्षोभ हो

आहाहा! बाघ आया और ऐसे पकड़ने के लिये, इसलिए क्षोभ हुआ ऐसा नहीं। ज्ञानस्वरूप तो जानता है। आहाहा! भाई! आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका जिसे प्राप्त भान

हुआ है, वह ज्ञान तो जानता है। आहाहा! वह दो भाग नहीं डालता कि सिंह मुझे प्रतिकूल है और सगे-सम्बन्धी मेरी सेवा-चाकरी करते हैं, इसलिए अनुकूल है। आहाहा! स्त्री है, वह नंगे-भूखे को ढँकती है, इसलिए मेरी प्रिय स्त्री है और शत्रु आकर सिर काटता है, इसलिए प्रतिकूल है, ऐसा ज्ञान में नहीं है। आहाहा! और इसलिए ज्ञेय में ऐसे भेद नहीं हैं। आहाहा!

'मानो पाया मित्र का' अर्थात् हम तो जानते हैं कि हम ज्ञेयस्वरूप जो पर है, उसके जाननेवाले हैं। वह हमारा ज्ञेय जाना, इसलिए जाननेवाले हैं। हमारा भगवान आत्मा ज्ञान, वह स्व-पर प्रकाशकस्वभाव होने से और उसे जाना है; इसलिए हम पर-प्रकाशक ज्ञेय को जाननेवाले हैं, परन्तु यह ज्ञेय ठीक है और अठीक है—ऐसा नहीं है। आहाहा! परममित्र का अर्थ यह कि शरीर हमारा नहीं है और पर है तो पररूप से चला जायेगा और चले जाने पर कोई लेनेवाला आवे लेनेवाला, तो वह तो मेरे चला जायेगा तो वह ले जाता है, वह तो अनुकूल है। आहाहा! ऐसा मार्ग! आहाहा! राग में गश खाकर गिर गया हो, उसे कठोर पड़ता है। आहाहा! आहाहा! मान और अपमान में घूंट गया है, उसे यह बात कठोर पड़ती है। आहाहा!

क्योंकि प्रभु! तू तो ज्ञानस्वरूप प्रभु चैतन्यधातु है न! उस ज्ञानस्वभाव चैतन्यधातु ध्रुव अस्तित्व ठोस भूमि का ज्ञान जहाँ हुआ... आहाहा! पर्याय का ज्ञान हुआ, ऐसा यहाँ नहीं कहा। राग का ज्ञान वह नहीं, पहले यह हुआ। आहाहा! यह स्वरूप भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप की ठोस भूमि, ध्रुवभूमि... आहाहा! जिसमें पर्याय का प्रवेश नहीं तो राग का और पर का प्रवेश कहाँ आया? आहाहा! ऐसी जो ठोस ध्रुवभूमि, प्रभु! उसकी जिसे पहिचान (होकर) प्राप्ति हुई... आहाहा! उसे परज्ञेय में निन्दा और प्रशंसा, ऐसा भेद नहीं रहता। आहाहा!

'करुणा हम पावत है तुमकी यह बात रही गुरुगम की'। भगवान को ऐसा कहते हैं- प्रभु! आपकी करुणा, अर्थात्? आपके ज्ञान में मेरा ज्ञान है, उसका भान हुआ तुमको, तुम्हारे ज्ञान में आया कि यह तो ज्ञानी है, यह आपकी करुणा है। आहाहा! ऐई! यह करुणा है। आहाहा! प्रभु! आपके ज्ञान में मैं अभी समकिती ज्ञानी हूँ, ज्ञान है—ऐसा आपके ज्ञान में आया, वह आपकी करुणा है। आहाहा! ऐई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

वीतरागी अमृत का पिण्ड प्रभु ! आहाहा ! वीतरागी अमृत का सागर नाथ ! आहाहा ! ऐसी ध्रुव धातु जिसने अन्दर से पकड़ी, आहाहा ! उसे सब अनुकूल-प्रतिकूल ज्ञेयरूप से जानने में रहता है। ऐसा समताभाव तो सम्यग्दर्शन होने के साथ इतना तो आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अस्थिरता के कारण जो हो, वह श्रद्धा के कारण नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? अस्थिरता के कारण जरा विकल्प आवे, वह श्रद्धा के कारण नहीं है। श्रद्धा में तो अनुकूल और प्रतिकूल सब एकरूप ज्ञेय है, समभाव से जानता है। आहाहा ! उसे दुनिया को देखना नहीं, उसे दुनिया क्या कहती है, यह जानना नहीं। आहाहा ! यह यहाँ कहते हैं। आहाहा !

बाह्य क्रियाएँ मार्ग नहीं बतलातीं, (अन्तर का) ज्ञान मार्ग बतलाता है। आहाहा ! मार्ग दिखाता है, हों ! **ज्ञान मार्ग बतलाता है।** आहाहा ! जो सम्यग्ज्ञान हुआ, वह मार्ग दिखलाता है। आहाहा ! **मोक्ष के मार्ग का प्रारम्भ सच्ची समझ से होता है,...** जो सम्यग्ज्ञान, जो सच्चे तत्त्व का हुआ, उसका जो ज्ञान (हुआ), उससे मोक्ष की शुरुआत होती है; कोई क्रियाकाण्ड करने से मोक्ष की शुरुआत होती है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! समझ में आया ? **मोक्ष के मार्ग का प्रारम्भ सच्ची समझ...** सत्य समझ। त्रिकाल ध्रुव को पकड़ने से जो ज्ञान हुआ, वह सच्ची समझ है। आहाहा !

क्रिया से नहीं। तू चाहे जितने विकल्प कर। आहाहा ! उनसे, आहाहा ! मोक्षमार्ग की शुरुआत नहीं है। 'साध्य-साधक' में आता है। अनुभवप्रकाश में साध्य-साधक में आता है और आत्मावलोकन में साध्य-साधक (में आता है)। शुभभाव परम्परा, परम्परा। यह तो परम्परा का अर्थ (यह कि) शुद्ध की दृष्टि हुई है, शुद्ध की परिणति हुई है, उसके कारण शुभभाव आया है, वह बाद में जायेगा; इसलिए परम्परा उसमें—साध्य-साधक में कहा है। अब वे यहाँ पकड़ते हैं। अरे ! भाई ! यह सब बातें हैं। आहाहा !

यह तो समयसार में आता है, परम्परा कारण आता है। उसका अर्थ क्या ? यह शुभराग होने पर, शुद्धता का भान और वेदन है, इसलिए इसमें अशुभ टला है। उसको, हों ! अज्ञानी को शुभ में अशुभ टला नहीं है। समझ में आया ? क्योंकि जो शुद्धस्वभाव का आश्रय लिया है, उसमें अशुभ में आश्रय थोड़ा है, शुभ में जरा ऐसे आश्रय बढ़ा है, यहाँ शुभ

हुआ, शुभ के कारण नहीं। आहाहा! और शुद्ध में आश्रय विशेष बढ़ा है। पर्याय शुद्ध में, हों! ऐसा। आहाहा!

चैतन्यस्वभाव जो भगवान आत्मा, उसका जो आश्रय लिया है, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ। अब उसे अशुभभाव होता है, तब जो शुभभाव के समय जरा आश्रय बढ़ाता है, वह शुभभाव के कारण नहीं। जरा-जरा विशेष है, अशुभ में थोड़ा आश्रय है। आहाहा! आश्रय तो सम्यग्दृष्टि को कायम है, ध्रुव का ध्येय तो कायम है। यह तो तीन बोल आ गये न? ये तीन बोल आ गये, त्रिपुटी है साधक जीव को। आहाहा!

ध्रुव का-ध्येय का आश्रय तो कायम है, परन्तु आश्रय में बढ़ जाना, बढ़ना, इसकी पर्याय में यह अन्तर है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में जो आश्रय लिया, उससे जब पंचम गुणस्थान की स्थिरता आंशिक बढ़ी, तब आश्रय विशेष है। आहाहा! ऐसे आश्रय के कारण अशुभ के समय आश्रय; आश्रय तो है परन्तु शुभ के समय जो आश्रय का अंश बढ़ता है, वह अशुभ के समय नहीं। इसलिए शुभभाव आश्रय का कारण है, ऐसा नहीं है। आहाहा! और शुद्धभाव, जब उपयोग शुद्ध होता है, तब प्रभु का आश्रय विशेष है। विशेष है; इसलिए शुद्धोपयोग होता है, इसका अर्थ कि विशेष आश्रय है, इसलिए शुद्धोपयोग होता है। शुद्ध उपयोग के आश्रय से शुद्धोपयोग होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! इसलिए शुभ उपयोग में जरा आश्रय होता है... आया है न? भाई! मोक्ष अधिकार में? शुभ में धीमे-धीमे—क्षण-क्षण यह अपेक्षा है। है, ख्याल है। मोक्ष अधिकार में आता है। शुभभाव के समय क्षण-क्षण में आश्रय बढ़ता जाता है। आहाहा! वह उस शुभ से नहीं, परन्तु राग की मन्दता के समय जहाँ पहला आश्रय जो था, उससे थोड़ा बढ़ता है। आहाहा! और उससे शुद्धोपयोग होने पर विशेष आश्रय बढ़ता है, अर्थात् कि आश्रय विशेष बढ़ता है, तो शुद्धोपयोग होता है। आहाहा!

उसमें परज्ञेय में वह भेद नहीं डालता। आहाहा! चाहे तो सातवें नरक की वेदना हो और चाहे तो चक्रवर्ती को सोलह हजार देव शरीर की सेवा (करते हों)। और जिसका आहार एक ग्रास अरबों रुपये का, जिसे छियानवें करोड़ सैनिक पचा नहीं सकते, ऐसा हो। आहाहा! तथापि वहाँ ज्ञेयरूप से है। यह ठीक है और यह अठीक है, ऐसा नहीं। आहाहा! क्योंकि प्रभु स्वयं वीतराग समतास्वरूप का पिण्ड है। आहाहा! उसका आश्रय लिया है,

वह समता, समता का रस... आहाहा! शान्तरस बढ़ता जाता है। आहाहा! वह **क्रिया से नहीं**। आहाहा! **इसलिए प्रत्यक्ष गुरु का उपदेश...** प्रत्यक्ष गुरु का उपदेश, परोक्ष नहीं – ऐसा कहते हैं। सीधा (उपदेश), यह तो श्रीमद् में भी आता है।

प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार।
ऐसा लक्ष्य हुए बिना, उगे न आत्मविचार॥

(—आत्मसिद्धि, काव्य-११)

आहाहा! कितनी बार तो बातें बहुत सरस की हैं। परन्तु जरा वह श्वेताम्बर-दिगम्बर को दो को भिन्न किया नहीं और... आत्मसिद्धि में भी केवलज्ञानी, छद्मस्थ का विनय करे, यह बात बहुत खटकी। यह बात है नहीं, यह श्वेताम्बर की झलक पड़ गयी है। केवलज्ञानी किसका विनय करे? 'गुरु रहे छद्मस्थपण विनय करे भगवान, ऐसा मार्ग विनय का...' अतिरेक हो गया। यह श्वेताम्बर की झलक है। दशवैकालिक का नौवाँ अध्ययन है, उसमें यह है। 'अनन्त...' यह रह गया था जरा। आहाहा!

मुमुक्षु - बन्द्य बन्दकभाव तो छठवें गुणस्थान तक ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छठवें तक ही होता है, बाद में कैसा? और केवली को कहाँ यह विकल्प है? और उनसे अधिक है कौन? आहाहा! और तीर्थंकर तो दीक्षा के समय भी णमो अरिहंताणं नहीं कहते। आहाहा! णमो सिद्धाणं (कहते हैं।) आहाहा! वरना तो णमो अरिहंताणं पहले क्यों आया? कि जिसकी वाणी है, उसका यहाँ उपकार होता है। यहाँ तो निकाल डाला। तीर्थंकर है, वे जहाँ दीक्षा (ले)... आहाहा! दूसरे दीक्षा लें तो पंच नवकार गिनें... आहाहा! यह तो सीधा ध्येय। अकेला सर्व णमो सिद्धाणं, बस। गजब बात है।

मुमुक्षु : उन्हें भी पहले तो अरिहन्त पद ही प्राप्त होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भले हो, परन्तु वन्दन करते हैं प्रभु सिद्ध को-पूर्ण को। अरिहन्त को चार गये हैं और चार (कर्म) रहे हैं। मेरा नाथ पूर्णानन्द स्वरूप है, वह पूर्ण जिसकी पर्याय प्रगट हो गयी है, उन्हें नमस्कार करके मैं चारित्र अंगीकार करता हूँ। आहाहा! प्रत्येक वाक्य में मर्म है। सन्तों की वाणी कहीं साधारण नहीं है। आहाहा! समझ में आया? और तीर्थंकर का जीव है। आहाहा!

इसलिए प्रत्यक्ष गुरु का उपदेश और परमागम का प्रयोजनभूत ज्ञान... परमागम का प्रयोजनभूत ज्ञान। ऐसे जानपना (हुआ) और यह और वह, ऐसा नहीं। आहाहा! प्रयोजनभूत ज्ञान जो आत्मा को स्पर्श करे, ऐसा जो बतावे, वह प्रयोजनभूत ज्ञान है। आहाहा! **परमागम का प्रयोजनभूत ज्ञान मार्ग प्राप्ति के प्रबल निमित्त हैं।** प्रबल निमित्त है। आहाहा! दूसरे निमित्त हैं, उसकी अपेक्षा प्रबल निमित्त है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निमित्त तो भगवान की मूर्ति कहलाती है, वेदना निमित्त कहलाती है, कठोर वेदना हो वह। आहाहा! बड़े देव की ऋद्धि वैमानिक की बड़ी (ऋद्धि) देखे, वह भी निमित्त कहलाती है। शास्त्र में आता है न! परन्तु वह कब? स्वयं करे, तब उसे निमित्त कहने में आता है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। परमागम का प्रयोजनभूत ज्ञान। भाषा तो देखो! आहाहा! परमागम का ज्ञान, ऐसा नहीं। आहाहा! और गुरु का परोक्ष उपदेश भी नहीं, 'प्रत्यक्ष सद्‌गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार' परोक्ष वीतराग भी (हों), उनका उपकार ऐसा नहीं है, प्रत्यक्ष जैसा। आहाहा! **प्रत्यक्ष गुरु का उपदेश और परमागम का प्रयोजनभूत ज्ञान...** आहाहा! **मार्ग प्राप्ति के प्रबल निमित्त हैं।** निमित्त हैं, हों! उपादान नहीं। आहाहा!

चैतन्य का स्पर्श करके निकलती हुई वाणी... आहाहा! स्पर्श कर वाणी निकले? परन्तु इसका अर्थ कि वाणी में निमित्त है। आहाहा! श्रीमद् ने ऐसा कहा है (कि) आत्मस्पर्शी वाणी। पत्र में आता है। आहाहा! अर्थात् कि जहाँ आनन्द का वेदन है, उसके सम्बन्ध में जो वाणी निकले, वह आत्मस्पर्शी वाणी कहलाती है। आहाहा! वाणी स्पर्श नहीं करती आत्मा के ज्ञान को; ज्ञान नहीं स्पर्श करता वाणी को। आत्मस्पर्श नहीं कहा? तीसरी गाथा में। आहाहा! प्रत्येक द्रव्य अपने गुणधर्म, पर्यायधर्म को चुम्बन करता है परन्तु परद्रव्य को चुम्बन नहीं करता और यहाँ कहते हैं स्पर्शी। क्या अपेक्षा है? आहाहा! श्रीमद् ने पत्र में लिखा। आहाहा! अपेक्षा से बराबर है। अर्थात् कि अज्ञान में से वाणी अज्ञानी की आवे, वह नहीं परन्तु यह तो ज्ञान में से आती है, इसलिए ज्ञान उसे निमित्त है, ऐसा कहना है। आहाहा!

यह तो केवलज्ञान है, वह लोकालोक को निमित्त है। निमित्त है अर्थात्? एक है

इतनी चीज़। केवलज्ञान है, इसलिए लोकालोक है ? और लोकालोक है, वह केवलज्ञान में निमित्त है। आता है न ? अन्त में पीछे समयसार। अमृत भरा है, बापू ! समयसार में। सत्य की रेलमछेल की है। आहाहा !

चैतन्य को अर्थात् जिस वाणी में चैतन्य की निर्मलता का निमित्त है। केवलज्ञान निमित्त है लोकालोक का, उससे क्या ? केवलज्ञान निमित्त है, इसलिए लोकालोक है ? **चैतन्य का स्पर्श करके निकलती हुई वाणी मुमुक्षु को हृदय में उतर जाती है।** आहाहा !

मुमुक्षु : पुद्गल उतर जाये आत्मा में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उतर जाये अर्थात् बैठ जाये। परन्तु मुमुक्षु को। यह जवाबदारी है। जिसे यथार्थ जिज्ञासा है। मुमुक्षु—मोक्ष का अभिलाषी। आहाहा ! एक हजार आठ नाम में... कैसे ? जिनसेनाचार्य ने कहा हे प्रभु ! आप तो मुमुक्षु हो, ऐसा कहा। आहाहा ! एक हजार आठ नाम, आदिपुराण। अभी एक पुस्तक कोई जैतपुरवाला दे गया है। उन्होंने प्रकाशित की है न ? पहले आ गयी थी, पढ़ी गयी थी। जैतपुर से प्रकाशित हुई है। एक हजार आठ नाम। आदिपुराण के और एक हजार आठ नाम भाई के–आशाधरजी के। वह जैतपुरवालों ने प्रकाशित की है। उस मुमुक्षु मण्डल की ओर से (प्रकाशित की है) । अभी एक व्यक्ति आया था, वह दूसरी दे गया।

चैतन्य का स्पर्श करके निकलती हुई वाणी... आहाहा ! सद्गुरु उपदेश से आया न उसमें ? 'है देहादि से भिन्न आत्मा रे' ऐसा आया न ? परन्तु समझे, वह गुरु के उपदेश से समझे, ऐसा आया है। निमित्त से कथन है। आहाहा ! और उसमें ऐसा कहा 'प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार', वीतराग हैं, वे भले परोक्ष हो गये। आहाहा ! परन्तु जो प्रत्यक्ष हैं, आहाहा ! ऐसा उपकार परोक्ष का नहीं होता।

मुमुक्षु को हृदय में उतर जाती है। आहाहा ! वह 'वडिया' का है। 'महुआ' के बैंक में मैनेजर है। आया था, ओहोहो ! पुस्तक बहुत सरस, बहुत सरस। जो पढ़ता है, उसे (ऐसा हो जाता है) । अन्यमति मध्यस्थी हो, वह जरा पढ़े तो चोट खा जाता है। ऐसी शैली से सहज आ गया है, यह तो स्वयं कुछ लिखा नहीं है, लिखा तो किसी ने है। आहाहा !

आत्मस्पर्शी वाणी... देखो ! फिर से आया, **चैतन्य का स्पर्श करके निकलती हुई**

वाणी... यहाँ आत्मस्पर्शी वाणी आती हो... आहाहा! **और जीव एकदम रुचिपूर्वक...** आहाहा! परन्तु ये शर्तें। एकदम रुचिपूर्वक—यह शर्त। आहाहा! जीव **रुचिपूर्वक सुने तो सम्यक्त्व के निकट हो जाता है।** कहो, यह नवलचन्दभाई ने प्रश्न किया न रात्रि को! कहाँ गये? नवलचन्दभाई! यह प्रश्न आया? यह सम्यक्त्व सन्मुख का रात्रि को प्रश्न था न?

मुमुक्षु : कितने घण्टे ध्यान करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कहते हैं एकदम। आहाहा! आहाहा! परन्तु शर्त तो यह कि रुचि अन्दर जाना इसे स्वयं। आहाहा! और उसमें आया न? पद्मनन्दिपंचविंशति, जो अध्यात्म की धारा उपदेश। आहाहा! रुचिपूर्वक सुनता है... आहाहा! वहाँ यह शर्त है, वह शर्त यहाँ रखी है। आहाहा! .....आहाहा! प्रेम से जिसे रुचि अन्दर से (जगी है)... आहाहा! यह क्या चीज़? ऐसे प्रेम रुचिपूर्वक जिसने सुना है। आहाहा! भावि निर्वाण भाजन, उसे अन्तर में भाव पोषा गया है। अन्दर पोषा गया है। आहाहा! वह अल्पकाल में सिद्ध का भाजन होगा अर्थात् सिद्धपद प्राप्त होगा। भावि निर्वाण भाजन का अर्थ यह है। आहाहा! कठिन बात, भाई! यह बातें... आहाहा! बातें अन्दर से जँचना... भाई! **जीव एकदम रुचिपूर्वक सुने...** ऐसी भाषा है न यहाँ तो? विशेषण है। **तो सम्यक्त्व के निकट हो जाता है।** सम्यक्त्व के नजदीक होता है। आहाहा! ३८६ (बोल पूरा हुआ।) विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण -५, रविवार, दिनाङ्क १९-११-१९७८
वचनामृत-३८७ से ३८८ प्रवचन-१५५

आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है। उसमें अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं। देखने जैसा सब कुछ, आश्चर्यकारी ऐसा सब कुछ, तेरे अपने अजायबघर में ही है, बाह्य में कुछ नहीं है। तू उसी का अवलोकन कर न! उसके भीतर एक बार झाँकने से भी तुझे अपूर्व आनन्द होगा। वहाँ से बाहर निकलना तुझे सुहायेगा ही नहीं। बाहर की सर्व वस्तुओं के प्रति तेरा आश्चर्य टूट जायेगा। तू पर से विरक्त हो जायेगा॥३८७॥

३८७ बोल है। यहाँ क्या सिद्ध करना है ? कि बाह्य की जड़ की क्रिया और पुण्य-पाप के परिणाम की क्रिया, वह कोई आत्मा नहीं है। वह कोई आत्मा का स्वरूप नहीं है, वह कोई कल्याण का मार्ग नहीं है। आहाहा! कल्याण का मार्ग तो आत्मा का ज्ञान करे और अनुभव करे तो कल्याण का मार्ग शुरु होता है, तो वह आत्मा कैसा है ? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने देखा, जाना और कहा, उस आत्मा को जानना चाहिए। बाकी सब क्रियाकाण्ड अनन्त बार किये, परन्तु उसमें आत्मा क्या चीज़ है, उसकी इसे महिमा अन्तर में आयी नहीं। पर की महिमा छूटी नहीं और अन्तर की महिमा आयी नहीं। क्यों ?—कि अजायब चीज़ जो है, उसे इसने जाना नहीं था। अनन्त बार साधु हुआ परन्तु वह आत्मा अन्दर कौन चीज़ है, उसे देखने का प्रयत्न नहीं किया। बाहर का देखने में रुक गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा कैसा है, यह तो साधु होने से पहले (विचार) करना चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु होने से पहले, साधु था कब ? साधु है, वह साधु था कब ? अभी आत्मा कैसा है, उसकी खबर नहीं होती (तो) साधुपना कहाँ से आया ? सूक्ष्म बात है, बापू!

आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है। कहीं अजायबघर है न कहीं ? कहाँ ? हैदराबाद, हैदराबाद में है ? अपने वहाँ गये थे, परन्तु देखने नहीं गये थे। बड़ा अजायब (घर) हैदराबाद तो इस बार ही गये थे न पहले ? पहले गये थे ? तब गये थे। हाँ, देखने गये थे। यह तो परमात्मा स्वयं अन्दर आत्मा। शुभ-अशुभक्रिया जो दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह राग है, उनसे भिन्न यह आत्मा कोई अजायबघर है। आहाहा ! एक पच्चीस-पचास लाख का मकान बनावे तो उसे अजायब लगता है, ओहोहो ! सत्तर लाख का मकान। हम उतरे थे न ? वहाँ मुम्बई। रमणीकभाई आमोदवाले, सत्तर लाख का एक मकान। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। एक तो सत्तर लाख का एक मकान। धूल में भी नहीं, कहा। वहाँ उतरे थे।

मुमुक्षु : धूल में उतरा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उतरे कौन ? वहाँ थे, इतना निमित्त में ऐसा कहा जाता है। आहाहा ! आत्मा तो आत्मा में था। आहाहा ! वह कोई मकान में भी नहीं, अरे ! उसकी देह की क्रिया में भी वह आत्मा नहीं। अरे उसके दया, दान और व्रत-भक्ति के, तप के, भगवान के दर्शन करने का भाव, उस राग में भी आत्मा नहीं है, वह तो विकार है। आहाहा ! यह **आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है।** वापिस भाषा इतनी। अजायबघर है प्रभु अन्दर। आहाहा !

उसमें अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं। आहाहा ! भगवान आत्मा यह अन्दर जो वस्तु है, उसमें अनन्त गुणरूप, अनन्त गुण-जिनकी संख्या का पार नहीं। आहाहा ! अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्तगुणा कर डालो तो भी अन्तिम अनन्त, ऐसा उसमें आता ही नहीं, अन्तिम अनन्त आता नहीं। आहाहा ! अनन्त का अन्तिम एक, वह तो आवे नहीं... आहाहा ! परन्तु अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... उसे अनन्त अनन्तगुणा करो तो भी उसका पहला जो अनन्त है, उसका अन्त नहीं आता। आहाहा ! ऐसा जो भगवान आत्मा उत्कृष्ट अनन्त गुणों की अलौकिक अजायबी भरी है। आहाहा ! यह वहाँ देखता नहीं और इन पुण्य और दया पालन की, व्रत किये, अपवास किये... वह तो राग की क्रिया है, वहाँ देखता है। जिसमें तो अकेला दुःख और आकुलता है। आहाहा ! भगवान आत्मा तो आनन्द और अनाकुल शान्ति, आनन्द और शान्ति ये दो चीज़ हैं। एक सुख और शान्ति अर्थात् स्थिरता, चारित्र की। आहाहा ! ऐसी अनन्त-अनन्त शान्ति और अनन्त-अनन्त गुण (भरे हैं), क्योंकि जो अनन्त-अनन्त का

पार नहीं इतने जो गुण, उनमें एक-एक गुण अनन्त गुण से नास्तिरूप है। एक-एक गुण में अनन्त गुणों की नास्ति है। ऐसी एक-एक गुण में ताकत और एक-एक गुण में अनन्त का रूप है, ऐसी ताकत और एक-एक गुण में अनन्त पर्याय होने की ताकत है। आहाहा! इसे कहाँ खबर है कि आत्मा कौन है! आहाहा! वह अजायबीघर है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! जिसकी उत्कृष्ट अजायबी क्यों (कहा)?

अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं। अजायबीघर कैसे? ऐसा है न? आहाहा! अनन्त गुणरूप अलौकिक। आहाहा! आश्चर्य भरे हैं। प्रभु! तुझे खबर नहीं है। यह आत्मा तो कौन? यह हिले-चले, वह आत्मा और स्थिर रहे, वह स्थावर; हिले-चले, वह त्रस। अरे! ऐसी बातें, बेचारे जैन में जन्मे, उन्हें भी भान नहीं होता। आहाहा! उन्हें यहाँ जैन ही नहीं कहते।

यहाँ तो जैन उन्हें कहते हैं कि जिनस्वरूपी अजायबीघर, जिसमें अनन्त अजायबी (आश्चर्यकारी) गुण पड़े हैं। आहाहा! उसमें दृष्टि को स्थापित करे, वहाँ अहंपना करे। पर्याय को और राग को, ऐसा निमित्त है, उसमें अहंपना है। मैं यह हूँ, यह मैं हूँ। आहाहा! ऐसी जिसे अन्दर दृष्टि प्रगट हो, तब तो उसे जैन कहा जाता है। जैन कोई वाड़ा नहीं, जिन, वह स्वरूप है जीव का। अजायबीघर से भरपूर भगवान, आहाहा! सभी गुण वीतरागी गुण हैं। चारित्रगुण हैं न? वीतरागस्वभाव (है), तो प्रत्येक गुण में भी वीतरागीस्वरूप-रूप पड़ा है। वह वीतरागी चारित्रगुण दूसरे गुण में नहीं होता। आहाहा! ऐसा एक भगवान। आहाहा!

अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं। प्रभु! देखने जैसा है, हों! आहाहा! देखने जैसा सब वहाँ है। यह तो एक मकान बनावे, पाँच-दस लाख का, वास्तु करे, लोगों को बुलावे सब बड़े-बड़े अज्ञानी हों उन्हें, कार्यवाहकों को (बुलावे), ...भाई! अरे, प्रभु! सुन तो सही! आहाहा! तूने तेरे घर में कभी वास्तु नहीं किया। आहाहा! वह तो आश्चर्यकारी घर अन्दर है, प्रभु! अन्दर में अनन्त चैतन्य रत्न भरे हैं। आहाहा! वह एक-एक चैतन्य गुण अनन्त गुण के रूप से भरा हुआ है और अनन्त गुणों की उसमें नास्तिवाला भरपूर गुण है। आहाहा!

यह आश्चर्य देखने जैसा है, कहते हैं। है? देखने जैसा सब वहाँ है, यह बाहर में देखने जाते हैं न जहाँ, आहाहा! एक दस-बीस हजार का वह तुम्हारे क्या कहलाता है?

दहेज। लड़की के लिये करे तो सबको-सगे-सम्बन्धियों को बुलाते हैं। इस लड़की को इतना देते हैं। पचास तोला सोना और बहुत तोला धूल... पलंग में बिछाते हैं न? जूतियाँ साथ में... वहाँ तो पाप है, सुन न! आहाहा! यह तो देखने जैसी चीज़ तो आश्चर्यकारी प्रभु तेरे घर में पड़ी है। आहाहा! घर प्रयोग की एक अच्छी बड़ी हो, पाँच-दस लाख, बीस लाख की तो ऐसे देखकर...! आहाहा!

मुमुक्षु : उसके प्रमाण में होवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके प्रमाण में, आहाहा! उसे आश्चर्य लगे। वह मैसूर में नहीं, साढ़े तीन करोड़ का? बादशाह का मकान। बादशाह चला गया, खाली (पड़ा है) एक बार देखने गये थे। साढ़े तीन करोड़ का एक मकान। परन्तु दूसरों को ऐसा लगे। ओहो! परन्तु वहाँ क्या है?

मुमुक्षु : देखने जैसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या देखने जैसा है? धूल। यह देखने जैसी तो अन्दर वस्तु है, प्रभु! ऐसा सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी में आया, वह बात यह है। आहाहा! भाई! तू चैतन्यरत्न से भरपूर भगवान है न! तुझमें आश्चर्यकारी रत्न पड़े हैं, वह देखनेयोग्य है। देखनेयोग्य हो तो सब वहाँ है, ऐसा कहते हैं। देखनेयोग्य सब, ऐसा कहा है न? उसका अर्थ कि देखनेयोग्य बाहर में कुछ नहीं है। आहाहा! दया और दान के, व्रत के परिणाम, वह तो राग है। वह देखनेयोग्य नहीं है, बापू! वह तो विकार-दुःख है। आहाहा! अरे! कैसे जँचे?

मुमुक्षु : एक ओर आपने पुद्गल के परिणाम कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल। परिणाम एक ओर रहे। दो द्रव्य—एक ओर चैतन्यस्वभावी आत्मा। एक ओर पुद्गलस्वभावी भेद, राग और रंग। आहाहा! यह देखनेयोग्य सब वहाँ है। भाषा तो देखो! देखनेयोग्य है, ऐसा भी नहीं। 'देखनेयोग्य सब' वहाँ है, वह ज्ञानस्वरूप भगवान, आनन्दस्वरूप प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत् आनन्द, ज्ञान आदि अनन्त गुणों का भण्डार स्वयं है। देखनेयोग्य हो तो सब वहाँ है। आहाहा! यह बड़ी फिल्म होवे तो देखने जाये। आहाहा! धूल भी नहीं वहाँ, सुन न भाई!

जो यह देखता है, उसे देख न, देखनेवाला उसे देखता है, जो इसमें नहीं है। तो देखनेवाला इसमें है, उसे देख न! आहाहा!

मुमुक्षु : उसे देखने की टिकिट कब मिलती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह टिकिट देखे तब मिले। आहाहा! ऐसे तो पाँच-पाँच, दस-दस लाख के फर्नीचर और बड़ा मकान पचास लाख का और साठ लाख का। दस लाख, करोड़। आहाहा! परन्तु क्या है ? वह सब श्मशान की लकड़ियाँ हैं। आहाहा! जिसे देखनेयोग्य है, उसे देखा नहीं। जो इसमें नहीं है, उन्हें देखने में रुक गया। यह क्या है ? सब है न इसमें (उसका) अर्थ यह है। देखनेयोग्य होवे तो सब यहाँ अन्दर है। भगवान, यह वीतराग सर्वज्ञदेव जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ इन्द्रों के समक्ष कहते थे, वह (बात) यह है। आहाहा! जरा सा कुछ पाँच, पच्चीस, पचास हजार मिल जाये तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। आहाहा! यह क्या मूर्खाई है। आहाहा!

मुमुक्षु : रुपये मिले तब रोने लगना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसे रुपये आते कहाँ हैं ? रुपये तो रुपये में रहे हैं।

मुमुक्षु : यह मानता है न....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मानता है कि मुझे मिले (किन्तु) यह तो इसके पास ममता आयी है। प्राणभाई! अब वहाँ धूल भी नहीं। यह रोता है, पैसे मेरे हैं, यह रोता है। आत्मा का खून कर डालता है। आहाहा! आत्मा में अनन्त-अनन्त आश्चर्यकारी गुण हैं, उनका अनादर करके इसमें (बाह्य में) आश्चर्य मानता है, वह चैतन्य भगवानस्वरूप प्रभु है, उसका यह मरण कर डालता है, मार डालता है और यह राग मेरा और पैसे मेरे, जीवन की ज्योति इसने वहाँ अटका दी है। आहाहा!

अलिंगग्रहण में एक (बोल) आता है। मन और इन्द्रियाँ जिसका जीवन नहीं। पैसा और परिवार, स्त्री तो कहीं परवस्तु है। उनसे क्या सम्बन्ध ? वे कहीं मरकर आवे और कहीं मरकर चले जायें। आहाहा! कहाँ इसकी स्त्री और कहाँ पुत्र-क्या है यह सब ? आहाहा! भ्रमणा में देखने में पड़ा परन्तु भगवान में अन्दर आश्चर्यकारी चैतन्य भरा है, उसे नहीं देखता, कहते हैं। आहाहा! सब।

तीन शब्द आये। एक तो आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर, पहला इतना। अब उस घर में क्या है ? उसे अजायबी क्यों कहा ? कि **उसमें अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं।** इसलिए उसे अजायबघर कहा। आहाहा! दो (बातें हुईं)। तीसरा **देखने जैसा सब कुछ,...** वहाँ है, हों! आहाहा! ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, ईश्वरता, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान आदि आश्चर्यकारी गुण अन्दर भरे हैं। आहाहा! चाहे जितनी पर्याय निर्मल प्रगट हो, तो वे आश्चर्यकारी गुण हैं, उनमें घिसावट नहीं होती। आहाहा! यह केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हो तो भी आश्चर्यकारी गुण में हीनता नहीं आती। आहाहा! ऐसा वह देखनेयोग्य आश्चर्यकारी आत्मघर है। यह क्या कहते हैं ? अब ऐसी बातें! आहाहा! अर्थात् कि तेरी ज्ञान की पर्याय में; जो तुझमें नहीं, उन्हें तूने ज्ञेय बनाया है, यह भ्रमणा है। ज्ञेय बनाया, यह भ्रमणा है परन्तु जो ज्ञान की पर्याय है, उसे स्वज्ञेय में ले जा तो आश्चर्यता तुझे ज्ञान की पर्याय में लगेगी। आहाहा! और वह ज्ञान जब पर जाने, तो वह स्व की सामर्थ्य से पर को जानता है, इसलिए पर बराबर है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! ऐसी बातें भी सुनी नहीं होगी। आहाहा! यह तो दया पालो और सामायिक करो, प्रौषध करो और प्रतिक्रमण करो और रात्रिभोजन नहीं करो। अब कर-करके मर गया, सुन न! करना-करना, यह तो मरना है। यह तो राग की क्रिया है, भगवान! तू यह नहीं है। आहाहा! तुझमें तो ज्ञान-आनन्द आदि चमत्कारी अजायबी गुण भरे हैं।

आश्चर्यकारी ऐसा सब... देखने जैसा सब और आश्चर्यकारी ऐसा सब। यह बाहर में आश्चर्यकारी लगे कि आहाहा! वह जादूगर करता है न ? (जादूगर) के. लाल, ऐसे लड़की को काटे, वहाँ वापस बुलावे वहाँ और वापस (आ जाये)। लोगों को आश्चर्य लगे। धूल भी नहीं है। बेचारा यहाँ आकर कहता था, राजकोट आया था। खबर है। एक बार राजकोट आया था। महाराज! लाखों रुपये कमाता है। एक-एक रात्रि के (कार्यक्रम के) पाँच-पाँच हजार तो वहाँ-राजकोट में लेता था। हमारे पास आकर क्या कहे ? यहाँ तेरे लाख और करोड़ क्या कीमत, धूल है। महाराजा! हम ढ़ोंग चलाते हैं। हाथ की चालाकी का ढ़ोंग है, दूसरा कुछ नहीं। पैसा भी बहुत कमाता है। पाँच-पाँच लाख, एक बार तो तीन-तीन लाख दो-तीन रात्रि में कमाये। बाहर गया था। जापान में (गया था) वह हाथ की चालाकी बहुत है। ५०-५१ वर्ष की उम्र है। ऐसे पहन के आवे तो ऐसे दूसरे को

तो ऐसा आश्चर्य कर दे। वह बेचारा कहता है कि महाराज! हमारा सब ढ़ोंग है। (हमने कहा) बापू! मर जायेगा, हों! यह पुण्य है, वह (पैसा) आता है, इसलिए उसमें मर जायेगा एक बार। नरक और निगोद में चला जायेगा, बापू! आहाहा! फिर कहे, महाराज! कुछ दो। दी, पुस्तक दी। एक-दो पुस्तकें दीं। आत्मसिद्धि। तुम थे? दो-तीन पुस्तकें दी थीं। परन्तु वह पैसा बहुत मिलता है, इसलिए उसमें पढ़ने का समय नहीं मिलता। धूल मिलती है धूल, श्मशान की। आहाहा!

मुमुक्षु : धूल के बिना रोटियाँ किस प्रकार खाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : रोटियाँ धूल, रोटियाँ भी धूल है। यह तो लोग नहीं कहते? अपने काठियावाड़ में कहते हैं, दाने-दाने में खानेवाले का नाम है अर्थात् क्या? नाम लिखा है वहाँ? इसका अर्थ कि जो रजकण यहाँ आनेवाले हैं, वे आयेंगे; नहीं आनेवाले हैं, वे नहीं आयेंगे। तू राग करता है, इसलिए आते हैं और उनका ध्यान न करे तो नहीं आते, इस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा! तुम्हारे हिन्दुस्तान में कहा जाता है न? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : 'दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम'

पूज्य गुरुदेवश्री : खानेवाले का नाम दाने-दाने पर लिखा है। नाम कहाँ? वह तो परमाणु रजकण है। नाम का अर्थ यह कि जो रजकण वहाँ आनेवाले हैं, वह आयेंगे, आयेंगे और आयेंगे। तू राग करे तो आते हैं और राग न करे तो नहीं आते, इस वस्तु में (बात में) कुछ दम नहीं है। आहाहा! कैसे जँचे?

यहाँ तो कहते हैं, ऐसा सब - आश्चर्यकारी ऐसा सब, **देखने जैसा सब कुछ, आश्चर्यकारी ऐसा सब कुछ, तेरे अपने अजायबघर में ही है,...** आहाहा! दृष्टि को पलट तो तुझे दिखायी देगा। काम बहुत कठिन। **अपने अजायबघर में ही है, बाह्य में कुछ नहीं है।** यह इन्द्र के इन्द्रासन, करोड़ों अप्सरायें, आहाहा! चक्रवर्ती के नव निधान, छियानवें हजार स्त्रियाँ। प्रभु! ये कोई तेरे नहीं हैं, तुझमें नहीं हैं। यह कोई देखनेयोग्य नहीं है। आहाहा! ज्ञेय बनानेयोग्य होवे तो वह वस्तु है, ऐसा कहते हैं। तेरे ज्ञान में ज्ञेय बनाने योग्य होवे तो वह आत्मा है। अरे रे! परन्तु यह कैसे (हो)? कभी सुना न हो। पचास-पचास, साठ-साठ वर्ष ऐसी की ऐसी मूढ़ता में गये। बाहर में दुनिया के चतुर कहलाये। ऐ..

शान्तिभाई! आहाहा! लाखों रुपये कमावे, लाखों रुपये दान में दे, लो! लाखों रुपये दान में दे तो बड़ी श्रावक शिरोमणि की पदवी दें सब इकट्ठे होकर। वहाँ धूल भी (कुछ) नहीं है। अभी श्रावक किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर अजायबीघर, आश्चर्यकारी गुणों से भरपूर अजायबी। सब देखनेयोग्य वह (है)। आश्चर्यकारी हो तो भी वह है। आहाहा! उस निज **अजायबघर में ही सब है, बाह्य में कुछ नहीं है।** अरे! दया, दान का राग हो, उसमें कुछ नहीं है, बापू! वह तो राग है, विकार है, वह तुझमें नहीं, वह तेरी जाति नहीं, कुजाति है। कुजाति को देखने में रुका, सुजाति को देखने आता नहीं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें, लो!

तू उसी का अवलोकन कर न! है? पृष्ठ में अन्तर है? गुजराती है? गुजराती है? दूसरी बार की क्या कहलाती है? दूसरी आवृत्ति होगी। इस आवृत्ति में यहाँ इस पृष्ठ पर है। **तू उसी का अवलोकन कर न!** आहाहा! जो देखनेयोग्य आश्चर्यकारी चीज़ है, उसे देखने जा न! आहाहा! अभी आत्मा पड़ा रहा और आत्मा के अतिरिक्त सब बातें करने लगे। आत्मा कौन है और कैसा है, यह बात मुख्य, वर छोड़कर बारात जोड़ दी। वह बारात ही नहीं कहलाती, वह तो मनुष्यों का झुण्ड कहलाता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा को छोड़कर सब बातें। यह सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण (करो) परन्तु किसकी सामायिक, प्रौषध? तूने अभी आत्मा कौन है, यह तो जाना नहीं। ऐई! प्राणभाई! यह सब करके, यह सब तुम बड़े उसी और उसी में घुस गये थे सब। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

तू उसी का... उसी का, ऐसी भाषा है। यह तो एकान्त हो गया। भगवान आश्चर्यकारी गुणों का भण्डार प्रभु, अनन्त आनन्द परमात्मा को-अरिहन्त को प्रगट हुआ, वह तो पर्याय है परन्तु ऐसे-ऐसे अनन्त आनन्द प्रगट हुआ करे, अनन्त काल तक (प्रगट हुआ करे) तो भी कमी न हो, ऐसा आनन्द-गुण अन्दर है, यह क्या कहलाता है? यह गुण क्या और पर्याय क्या, उसे नाम भी न आते हों और हम जैन हैं! धूल भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अरे..! **उसके भीतर एक बार झाँकने से भी...** आहाहा! क्या कहते हैं? **उसके भीतर एक बार झाँकने से भी...** अकेला ख्याल में नहीं, परन्तु अन्दर झाँकने से। आहाहा! श्रद्धा और ज्ञान की पर्याय को अन्दर में झुकाने से। आहाहा! **तुझे अपूर्व आनन्द होगा।**

अनन्त काल में जो आनन्द नहीं आया, वह आनन्द होगा। आहाहा! तुझे सम्यग्दर्शन होगा, सम्यग्ज्ञान होगा। अनन्त आनन्द का अंश स्वाद में आयेगा, तेरी ईश्वरता पर्याय में प्रगट होगी। एक गुण में प्रभु ईश्वर पड़ा है तो एक गुण का अनन्त गुण में रूप है तो प्रत्येक गुण ईश्वर है। आहाहा! ऐसे अनन्त ईश्वर के गुण से भरपूर भगवान, प्रभुता से भरपूर महाप्रभु! आहाहा! प्रभु गुण है न, प्रभु! तो प्रभुत्व का गुण यह है कि जिसका प्रताप कोई खण्ड न कर सके और स्वतन्त्रता से शोभे, ऐसा एक-एक गुण में स्वरूप है। आहाहा! अनन्त गुण में ऐसा इस एक-एक प्रभुता का रूप है। जिसकी स्वतन्त्रता के प्रताप को कोई खण्डित नहीं कर सकता और स्वतन्त्रता से शोभे, ओपे। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, आहाहा! एक बार झाँकने से तुझे आनन्द आयेगा, आनन्द।

वहाँ से बाहर निकलना तुझे सुहायेगा ही नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में वहाँ ज्ञात होगा, तुझे वह चीज़ (ज्ञात होगी तो) तुझे आनन्द आयेगा और उस आनन्द में रहने से बाहर निकलना नहीं रुचेगा। आहाहा! **बाहर निकलना तुझे सुहायेगा ही नहीं।** भाषा यह.. आहाहा! **बाहर की सर्व वस्तुओं के प्रति तेरा आश्चर्य टूट जायेगा।** आहाहा! अकेले हीरा भरे हैं! ऐई! यह तुम्हारे हीरे, वे नहीं। यह तो चैतन्य हीरा भगवान। आहाहा! बाहर की सर्व वस्तुओं के प्रति तेरा विस्मयपना, आश्चर्यपना, अद्‌भुतपना, यह सब टूट जायेगा। आहाहा! अन्तिम पैराग्राफ सब बहुत उत्कृष्ट आये हैं। आहाहा!

बाहर की सर्व वस्तुओं के प्रति तेरा आश्चर्य टूट जायेगा। तू पर से विरक्त हो जायेगा। इसमें रक्त होने से वहाँ से विरक्त हो जायेगा। उनमें रक्त होने से स्वभाव से विरक्त है। राग के विकल्प में रक्त होने से, स्वभाव से विरक्त है। परन्तु भगवान स्वभाव में रक्त होने से, रागादि सबसे विरक्त हो जायेगा। पहले दृष्टि में (होगा)। आहाहा! तुझे कहीं रस नहीं लगेगा। आहाहा! ये अरबों रुपये एक-एक घण्टे की आमदनी हो (तो भी) तुझे आश्चर्य नहीं लगेगा। आहाहा! है न अभी? 'ईराक', परन्तु उसे तो एक घण्टे की डेढ़ करोड़ की आमदनी है तथा एक दूसरे देश है, उसमें एक दिन की एक अरब की आमदनी है। है मुसलमान। क्या कहलाता है वह? अरबी, अरब, अरबी लोगों का देश छोटा है, परन्तु उसमें पेट्रोल के कुएँ, वह भरा हुआ निकला है ऐसे निकले हैं। एक दिन की एक अरब की आमदनी, हों! पूँजी नहीं। अभी है, अरबस्तान में है। एक दिन की एक अरब

की आमदनी और एक यह कहा, जो एक घण्टे की डेढ़ करोड़ की आमदनी। इसे तो छत्तीस करोड़ हुए और उसे एक अरब हुए। परन्तु मरकर नरक जानेवाले हैं। आहाहा! इससे वह क्या चीज़ है? आहाहा! प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये कि.. आहाहा! एक दिन के एक अरब, ऐसे तीन सौ साठ दिन के तीन सौ साठ अरब, इतनी तो आमदनी। आहाहा! धूल में भी कुछ नहीं, सुन न अब। अपना जामनगर का एक बनिया नहीं यहाँ? रामजीभाई का लड़का वहाँ नौकर है न? विसाश्रीमाली है। साढ़े तीन करोड़ की आमदनी एक वर्ष की है।

मुमुक्षु : अमर डाई केम।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमर... जो नाम होगा वह, यहाँ आया था, वहाँ भी-मुम्बई भी मिला था। साढ़े तीन करोड़ की आमदनी, हों! और अभी अधिक करना चाहता है। सब ममता का पोटला है। आहाहा! ऐई! अरे.. अरे..! ऐसी बातें?

प्रभु में अनन्त रत्न के कमरे भरे हैं। आहाहा! एक-एक गुण में अनन्त-अनन्त ताकत है, एक-एक गुण में अनन्त पर्याय होने की ताकत है। अनन्त ताकत है, यह दूसरी बात। वापस अनन्त पर्याय होने की (ताकत है), यह तीसरी बात। आहाहा! ऐसा जो यह भगवान आत्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का यह फरमान है। आहाहा!

कहते हैं कि **तू पर से विरक्त हो जायेगा**। आहाहा! यह साधारण बात की, सम्यग्दर्शन की (बात) की। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने पर... यह सम्यग्दर्शन अर्थात् त्रिकाली अजायबघर जिसमें आश्चर्यकारी रत्न भरे हैं, उसके अन्दर में उसका ज्ञान करके प्रतीति होना, उसका ज्ञान होकर प्रतीति होना, ऐसी जो सम्यग्दर्शनदशा। आहाहा! तुझे वहाँ अन्दर में से निकलना नहीं रुचेगा। विकल्प आयेंगे परन्तु तुझे दुःखरूप लगेंगे। आहाहा! यह दया, दान, व्रत का भी विकल्प आयेगा, परन्तु वह तुझे दुःखरूप लगेगा। आहाहा! विषयवासना का राग भी आयेगा। जब तक पूर्ण वीतराग नहीं है, तब तक अपूर्ण वीतरागता में ऐसा राग आयेगा, परन्तु तुझे दुःखदायक लगेगा। काला नाग-सर्प को देखने पर जैसे भय को प्राप्त होता है, वैसे यह राग तुझे काले नाग जैसा लगेगा। अर..र..र..! कौन सा राग? दया का, दान का, व्रत का, अपवास का यह राग है, विकल्प है। पाप के राग की तो क्या बात करना। आहाहा! परन्तु यह शुभराग भी... अमृत के कमरे भरे हुए भगवान को तूने

देखा... आहाहा! और वर्तमान में तुझे उसका आनन्द आया, तब देखा कहलाये। आहाहा! अनन्त गुण का अंश आता है न? समकित, यह भाषा। 'सर्व गुणांश, वह समकित।' तुझे अन्तरस्वरूप भगवान अनन्त गुण अमाप, उसका ज्ञान होकर निर्विकल्प प्रतीति होने पर जितने गुणों की संख्या है, उनका अंश सब प्रगट होगा।

अरे! अयोग नाम का गुण है, उसका भी एक अंश प्रगट होगा। समझ में आया? प्रतिजीवी गुण जो है... आहाहा! प्रतिजीवी गुण का सर्वथा अभाव चौदहवें (गुणस्थान) के अन्त में होता है, परन्तु एक अंश तो यहाँ तुझे अभाव होगा। अरे! ऐसी बात! योग का कम्पन है, उसका एक अंश अकम्परूप से तुझे दिखायी देगा। आहाहा! यह क्या है? अजायबघर है, भाई! उसमें योग नाम का एक गुण है। अयोग। यह योगरूप से कम्पन है न, तुझे अन्तर्दृष्टि पड़ने पर उसका अंश अकम्पपने का प्रगट होगा। आहाहा! पूर्ण अकम्पन तो चौदहवें में होगा, तथापि यहाँ भी प्रतिजीवी गुण की विपरीतता तो अभी वहाँ पड़ी है, इसलिए उसे संसार कहते हैं, सिद्ध नहीं। आहाहा!

यह अनन्त गुण का आश्चर्यकारी भगवान, इसे देखने से, आश्चर्य लगने से तेरा दूसरी सब चीज़ों का आश्रय और विस्मयता टूट जायेंगे। आहाहा! और उसकी चीज़ से स्व-स्वरूप की दृष्टि में रक्तता के कारण, रागादि सब चीज़ों से विरक्त हो जायेगा। आहाहा! यह तो अभी यहाँ सम्यग्दृष्टि तक की बात की है। आहाहा! समझ में आया? अरे! अभी तक तो क्या करना, इसकी खबर नहीं होती। सवेरे उठा, सामायिक करो... वह मन्दिरमार्गी कहे कि भगवान के दर्शन करो... परन्तु तेरे दर्शन करने तो जा अन्दर। आहाहा!

मुमुक्षु : यह कोई गुरु कहते नहीं थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। बेचारे... आहाहा! गणिनीजी थे बेचारे, गये तब पधारो, कहा बैठने पर। कहा बहिन! मार्ग (यह नहीं है)। एक दूसरे छोटी उम्र के गणिनीजी सेवक थे। सम्यग्दर्शन का स्वरूप दूसरी चीज़ है, भाई! बहिन! आहाहा! ये सब लेकर बैठे, इसलिए साधु हैं, ऐसा नहीं है। ऐसा कहा नहीं था परन्तु अब। आहाहा! अरे रे रे! लोगों को सत्य क्या है, यह सुनने को मिलता नहीं, वह सत् को किस प्रकार शोधे? शोधने योग्य तो तेरा भगवान है, वहाँ शोध न उसे। आहाहा! एक लड़की खो गयी

हो। पाँच लड़के और तीन लड़कियों को आठ पलंग बिछाकर (सुलाया हो) देखो और उसमें एक खाली देखे तो (पूछता है) कहाँ गयी? यह क्यों आयी नहीं? खोज करता है। परन्तु तू पूरा खो गया, उसे तो तू देख। ऐई! पलंग बिछाते हैं न सब।

मुमुक्षु : इसे स्वयं खो गया है – ऐसा लगता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे भान ही कहाँ है? खो गया या नहीं खोया, इसकी खबर कहाँ है? ऐसी की ऐसी मूढ़ता, ऐसे मूढ़रूप से जिन्दगी व्यतीत करता है। दुनिया का चतुर, यह बड़ा मूर्ख है। ऐई! रसिकभाई! क्या है यह? दुनिया की बातें करने बैठे तो मानो चतुर का बेटा उतरा मानो। इसे ऐसा हुआ और इसका ऐसा किया तथा इसका ऐसा किया और वहाँ गये, और फिर सट्टा में मैंने ऐसा किया, एकदम पच्चीस लाख की कमायी हुई। आहाहा! परन्तु यह क्या है? यह सब तेरी मूर्खता के प्रदर्शन हैं।

मुमुक्षु : ज्ञानी को तो ऐसा ही लगता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु की स्थिति ही ऐसी है न, इसलिए यहाँ तो कहा, वस्तु अन्दर अजायबघर से भरपूर प्रभु, जो देखने लायक सब और आश्चर्यकारी सब, वह तुझमें पड़ा है न, प्रभु! यह तुझे खबर नहीं। आत्मा अर्थात् कुछ नहीं। बस, यह करे और यह करे, वह आत्मा (ऐसा तू मानता है)। आहाहा!

मुमुक्षु : देखने की चाबी दे दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चाबी यह है। पर को देखने में रुका हुआ है, उसे स्व-देखने में अटका दे, यह चाबी है। देखनेवाले को देख। देखनेवाला पर को देखता है, वह तुझमें नहीं है। उस देखनेवाले में देखनेवाले की चीज़ जो है... आहाहा! उसे देख। यह उसकी चाबी है। वहाँ अनन्त गुण के ताले खुल जायेंगे। आहाहा! राग की एकता और राग को देखने बैठा, वहाँ तूने अनन्त गुणों को ताला लगाया है, प्रभु! आहाहा! उसकी यह चाबी है। परमात्मा तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं, प्रभु! तू ऐसे देखने गया है (तो) ऐसा देख न, देखनेवाला कितना है? देखनेवाला उसे (पर को) इतना-इतना देखनेवाला, इसलिए इतना, ऐसा नहीं है। वह नहीं निकलते, वह तुम्हारे क्या कहलाते हैं? आगबोट, पर्यटन करने नहीं निकलते? हजार, दो हजार भरकर बड़ी आगबोट (निकलती

है) । पर्यटन करने बड़ा देश देखने । ऐसे देखने गये थे, ऐसे दो हजार दिये थे... धूल में भी नहीं, सब पाप बाँधे हैं । आहाहा !

देखनेवाले को देखा नहीं । सिरपच्ची लेकर बैठा । आहाहा ! जीवित ज्योत चैतन्य स्वभाव का भरोसा भगवान को देखा नहीं । देखेगा तो तुझे पर की विरक्तता हो जायेगी । भले राग आयेगा, संयोग दिखायी देंगे, परन्तु वहाँ रक्तता नहीं होगी । आहाहा ! देखो ! यह भाषा । यह ३८७ (बोल पूरा हुआ) ।

मुनिराज को शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है। सारा ब्रह्माण्ड पलट जाये, तथापि मुनिराज की यह दृढ़ संयमपरिणति नहीं पलट सकती । बाहर से देखने पर तो मुनिराज आत्मसाधना के हेतु वन में अकेले बसते हैं, परन्तु अन्तर में देखें तो अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर में उनका निवास है । बाहर से देखने पर भले ही वे क्षुधावन्त हों, तृषावन्त हों, उपवासी हों, परन्तु अन्तर में देखा जाये तो वे आत्मा के मधुर रस का आस्वादन कर रहे हैं! बाहर से देखने पर भले ही उनके चारों ओर घनघोर अन्धेरा व्याप्त हो, परन्तु अन्तर में देखो तो मुनिराज के आत्मा में आत्मज्ञान का उजाला फैल रहा है । बाहर से देखने पर भले ही मुनिराज सूर्य के प्रखर ताप में ध्यान करते हों, परन्तु अन्तर में वे संयमरूपी कल्पवृक्ष की शीतल छाया में विराजमान हैं। उपसर्ग का प्रसंग आये, तब मुनिराज को ऐसा लगता है कि—'अपनी स्वरूपस्थिरता के प्रयोग का मुझे अवसर मिला है; इसलिये उपसर्ग मेरा मित्र है।' अन्तरंग मुनिदशा अद्भुत है; वहाँ देह में भी उपशमरस के ढाले ढल गये होते हैं ॥३८८॥

अब मुनिराज । मुनि किसे कहना, बापू ! **मुनिराज को शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा...** जो अनन्त-अनन्त अजायब गुण का भण्डार भगवान, उसके अवलम्बन से 'शुद्धात्मतत्त्व का उग्र अवलम्बन'—ऐसा क्यों कहा ?—कि समकिती को अवलम्बन है, परन्तु उग्र अवलम्बन नहीं है । शुद्ध चैतन्य का अवलम्बन है, दृष्टि (हुई है), परन्तु चारित्र चाहिए, उतना अवलम्बन नहीं है । इसलिए यह उग्र अवलम्बन हुआ । आहाहा ! ऐई ! यह

कभी सुना नहीं, प्राणभाई! यह बड़े होकर घूमे जहाँ हो, वहाँ तथा स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी में तो धर्म की गन्ध नहीं। धर्म किसे कहना, इसकी खबर नहीं। हमें पता है न सब। हमने तो वहाँ ४५-५० वर्ष व्यतीत किये हैं न!

मुमुक्षु : किसकी गन्ध है?

पूज्य गुरुदेवश्री : गन्ध है विकार की, राग की, अधर्म की गन्ध है। बापू! ऐसी बात कठिन पड़ेगी, भाई! आहाहा! यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वर ने कहा, वह यहाँ बहिन की वाणी में आया। आहाहा!

मुनिराज को, जो शुद्धात्मतत्त्व आश्चर्यकारी तत्त्व जो कहा, उसके उग्र अवलम्बन से... उग्र आश्रय से। आहाहा! **आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है।** यह संयम आत्मा में से प्रगट होता है। कोई छहकाय की दया पालन की और अमुक (पालन किया), वह कोई संयम नहीं है; वह तो विकल्प / राग है। अरे रे! जगत को ऐसी बातें कठिन पड़ती है। क्या हो? अरे! मरकर जाएगा कहीं, बापू! आहाहा! कोई सगा नहीं, प्रिय नहीं। अनजाना द्रव्य, अनजाना क्षेत्र, अनजाना काल, भाव में (चला जाएगा)। जाननेवाले को देखा-(जाना) नहीं तो जाननेवाला कहाँ जन्मेगा? जिसे देखने में आश्चर्यता लगी थी, वहाँ संयोग में जन्मेगा। आहाहा!

सारा ब्रह्माण्ड पलट जाये... यहाँ तो पहले संयम कैसे प्रगट हो, उसकी बात कही। पहले में सम्यग्दर्शन प्रगट हो, तब आनन्द आवे, तब अन्दर रक्त हो, पर से विभक्त हो, इतनी बात की। अब आगे जाने पर जो सच्चे मुनि होते हैं... समझ में आया? आहाहा! **मुनिराज को शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा...** अलग पुस्तक है न वह? 'धन्य मुनिदशा', उसमें ये सब पैराग्राफ (बोल) आ गये हैं। 'धन्य मुनिदशा', नहीं? अरे! कहाँ मुनि है, बापू! अभी कोई। आहाहा! कठोर पड़ता है। क्या हो?

शुद्धात्मतत्त्व का उग्र अवलम्बन। यह पंच महाव्रत पालते हैं और नग्न होकर घूमते हैं, इसलिए मुनि हैं—ऐसा नहीं। वे वस्त्रवाले तो द्रव्यलिंग भी नहीं है, वे तो मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी-कुलिंगी हैं, हों! द्रव्यलिंगी नहीं, मिथ्यादृष्टि कुलिंगी हैं। परन्तु जिनकी दशा दिगम्बर है—नग्न वस्त्ररहित हुई, ऐसे लिंग में भी जिन्हें राग और महाव्रत के परिणाम में

अटक गया है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! उसे आत्मतत्त्व का जघन्य अवलम्बन तो है नहीं, तो उग्र तो है ही नहीं। आहाहा! जगत को ऐसी बातें बहुत कठोर पड़ती है। क्या हो? वीतराग परमात्मा जिनेश्वर का फरमान तो यह है।

आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है। यह महाव्रत के परिणाम और नग्नपना हुआ है, इसलिए संयम हुआ है – ऐसा नहीं है। सम+यम है न? सम अर्थात् सम्यग्दर्शनपूर्वक। सम्यक् आत्मा की दृष्टि के अनुभवपूर्वक। यम अर्थात् वस्तु में स्थिरता हुई है। आहाहा! आहाहा! यह दशा देखना, मिलना... आहाहा! आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है। कैसे? शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन के कारण (प्रगट हुआ है)। आहाहा! वापस कारण भी बताया।

सारा ब्रह्माण्ड पलट जाये, तथापि मुनिराज की यह दृढ़ संयमपरिणति नहीं पलट सकती। आहाहा! अन्तर आनन्द की धारा बहे। मुनिराज तो उन्हें कहते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द की उग्र धारा (बहे)। प्रचुर स्वसंवेदन आया न पाँचवीं गाथा में? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की प्रचुर संवेदनधारा, वह मुनि की मोहरछाप है। आहाहा! यह महाव्रत पाले, नग्नपना, यह कहीं मुनिपना नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा जघन्य अवलम्बन में जो दृष्टि और ज्ञान हुआ, उसमें भी आनन्द के अंश का वेदन है, परन्तु जिसने त्रिकाल तत्त्व के अवलम्बन की उग्रता ली है... आहाहा! ध्रुवस्वभाव का उग्र अवलम्बन किया है... आहाहा! उससे उन्हें संयम प्रगट हुआ है। अर्थात् संयम कैसे प्रगट हुआ? पंच महाव्रत के विकल्प (किये), नग्नपना लिया, इसलिए प्रगट हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं **'णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे'** (सूत्रपाहुड़, गाथा २३) वस्त्ररहित जो बाह्यद्रव्यलिंग होता है और अन्दर में विकल्परहित संयम चारित्र प्रगट होता है, वह मार्ग है; बाकी सब उन्मार्ग हैं। ऐसा मार्ग? आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है, वह और अन्यमति को... परन्तु यहाँ तो यह कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है। ...अन्दर में विकल्परहित नग्नदशा–वीतरागता और बाहर में वस्त्र के टुकड़ेरहित दशा, उसे मोक्षमार्ग होता है। बाकी जितने वस्त्रवाले और रागसहित धर्म माने,

वे सब उन्मार्गी हैं। अर..र..र..! अब इसमें महत्ता किसकी छोड़ना? स्थानकवासी के प्रमुख होकर सब घूमते हैं। आहाहा!

ऐसी बातें, बापू! बहुत कठिन काम, हों! झेलना, यह तो नग्न सत्य है। परमसत्य परमात्मा जिनेश्वरदेव का यह फरमान है। आहाहा! जहाँ शुद्धात्मवस्तु जो त्रिकाल है, उसका उग्र अवलम्बन। परन्तु जिसने अभी अवलम्बन लिया नहीं, उसे तो उग्र अवलम्बन कहाँ से आवे? पहले जिसने अवलम्बन लिया है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ है। आहाहा! वह जीव जब द्रव्य-शुद्धात्मतत्त्व का उग्र अवलम्बन करे, तब उसे आत्मा में से संवर अर्थात् चारित्रदशा होती है। आहाहा! वह व्यवहारक्रियाकाण्ड से, नग्नपने से चारित्र प्रगट हो, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। अब तो सब स्पष्ट करने पर बाहर आया। आहाहा!

सारा ब्रह्माण्ड पलट जाये तथापि मुनिराज की यह दृढ़ संयमपरिणति... जो आत्मा के अवलम्बन से प्रगट हुई है। त्रिकाल आनन्द का नाथ भगवान, उसके उग्र आश्रय से-अवलम्बन से प्रगट हुई, वह साधना... आहाहा! पूरा ब्रह्माण्ड बदल जाये तो भी बदले, ऐसा नहीं है। आहाहा! **बाहर से देखने पर तो मुनिराज आत्मसाधना के हेतु वन में अकेले बसते हैं, परन्तु अन्तर में देखें तो...** वन में अकेले बसते हैं, ऐसा। शब्द वजन यहाँ है। आहाहा! समझ में आया? **परन्तु अन्तर में देखें तो अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर में उनका निवास है।** आहाहा! जो जैनदर्शन के सच्चे सन्त-मुनि... वह तो बापू! अभी हिन्दुस्तान में नहीं है। आहाहा! क्या हो? अरे रे!

मुनिराज आत्मसाधना के हेतु वन में अकेले बसते हैं, परन्तु अन्तर में देखें तो अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर में उनका निवास है। ऐसे अकेले हैं, अन्तर में अनन्त गुण का वास, अनन्त गुण का नगर भरा है, वहाँ वास है। आहाहा! यह मुनिराज-साधु उन्हें कहते हैं। आहाहा! अन्दर में देखने से, ऐसा है न? अकेले बसते हैं, परन्तु ऐसा होने पर भी, अकेले बसते हैं तो भी—अनन्त गुण नगर में वे बसते हैं, यह कहना है न, इसलिए 'भी' शब्द रखा है। अन्दर में देखने से सन्त, मुनि जिन्हें वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा जिन्हें मुनि कहते हैं, अन्तर से जिन्हें आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है। वे अनन्त गुण से भरपूर

स्वरूपनगर में (बसते हैं) । वह वन में अकेला ऐसे दिखायी दे, तो यह स्वरूप में अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर में उनका वास है । आहाहा ! भाषा गजब ! आहाहा ! अनन्त गुण से भरपूर भरे हुए स्वरूपनगर में मुनिराज का वास है, वहाँ वास है । वह अनन्त गुण से भरपूर घर, वहाँ उनका वास है, वहाँ वास्तु लिया है । आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं, पाँच महाव्रत पालते हैं और दया पालते हैं, वे साधु हैं । धूल भी नहीं है । अब सुन न ! आहाहा ! बाहर में देखने से वन में अकेले बसते हैं; अन्दर में देखने से अनन्त गुण का भरपूर स्वरूपनगर, उसमें बसते हैं । आहाहा ! कहो, चन्दुभाई ! भाषा तो देखो ! एक-एक शब्द की (अद्भुत भाषा है) । आहाहा ! फिर वह बाहर से देखने पर क्या है, यह बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

कार्तिक कृष्ण -६, सोमवार, दिनाङ्क २०-११-१९७८
वचनामृत-३८८ से ३८९ प्रवचन-१५६

(वचनामृत) ३८८, थोड़ा चला है। फिर से। पहली तो सम्यग्दर्शन की बात आयी कि आत्मा ज्ञायक चैतन्य ध्रुवस्वरूप है। उसका आश्रय और अवलम्बन ले तो उसे सम्यग्दर्शन होता है। प्रथम... वह कोई निमित्त से होता है या दया, दान के, क्रिया के राग की मन्दता से होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो सवेरे भी आया था। वह चैतन्य लक्षण से ही ज्ञात होता है; राग से या उससे ज्ञात नहीं होता। तब चैतन्य लक्षण को जिसका है, उसमें लगाये, तब उसका लक्षण कहलाये न? आहाहा! जो चैतन्य की प्रगट पर्याय है, उसे अन्तर में झुकावे, तब वह उसका लक्षण कहलाये। आहाहा! ऐसी बात है। तब उसे आत्मा का अवलोकन हो। आत्मा में अनन्त-अनन्त गुण भरे हैं, अनन्त-अनन्त शान्ति और आनन्द है, उनका इसे सम्यग्दर्शन में, उस काल में सम्यग्ज्ञान में भान होता है। आहाहा! तब तक तो वह चौथे गुणस्थान में-धर्म की शुरुआत में होता है। अब मुनिराज। आहाहा!

मुनिराज को शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है। आहाहा! अब यह तो अभी ज्ञानसागर कहते हैं न (कि) छठवें गुणस्थान तक व्यवहार ही होता है, बस। अरे, प्रभु! क्या करते हो तुम? सातवें में निश्चय होता है। परन्तु स्व चैतन्यमूर्ति स्व है, उसके आश्रय बिना निश्चय कहाँ से आया? और उस आश्रय बिना निश्चय नहीं होता। फिर राग आवे, वह व्यवहार; यह निश्चय हो, उसके व्यवहार कहने में आता है। ऐसी बात है। अकेला व्यवहार है, वह तो व्यवहाराभास है। अनन्त बार किया है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' आहाहा!

यहाँ तो चैतन्य भगवान जिसकी ज्ञान की पर्याय में उसे ज्ञात हुआ है। आहाहा! वह तो निश्चय है, जिसकी श्रद्धा की पर्याय में, वह ज्ञान में ज्ञात हुआ, उसकी प्रतीति हुई है। आहाहा! तब तो उसे निश्चय कहा जाता है। उसके अभी जो रागादि मन्दता रही है...

आहाहा! उसे व्यवहार कहते हैं, परन्तु अकेला व्यवहार है, वहाँ तो सम्यग्दर्शन ही नहीं है। आहाहा!

इसलिए यहाँ कहा **मुनिराज को शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन...** सम्यग्दर्शन में-धर्म की पहली शुरुआत में चैतन्य का अवलम्बन है, परन्तु मन्द होता है, उग्र नहीं। आहाहा! इसलिए 'उग्र' शब्द प्रयोग किया है। मुनि को तो आत्मद्रव्य में प्रभु परमात्मस्वरूप का उग्र अवलम्बन-आश्रय-आधार होता है। आहाहा! तब तो उसमें से—आत्मा में से संयम प्रगट होता है। आत्मा में से चारित्रदशा प्रगट होती है। वह कोई महाव्रत के परिणाम और क्रियाकाण्ड किये, उसमें से संयम आता है (-ऐसा नहीं है)। उसमें से नहीं, वह तो... त्रिकाल, आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन भगवान द्रव्यस्वभाव का उग्र आश्रय, उग्र अवलम्बन... आहाहा! उसे अन्तर में से संयम, आत्मा में से संयम प्रगट होता है। वह कोई पंच महाव्रत के परिणाम और नग्नदशा में से संयम-चारित्र नहीं आता। आहाहा!

सारा ब्रह्माण्ड पलट जाये, तथापि मुनिराज की यह दृढ़ संयमपरिणति नहीं पलट सकती। आहाहा! जो शाश्वत् द्रव्यस्वभाव का जहाँ उग्र अवलम्बन लिया, द्रव्य पलटता नहीं, अब उसकी परिणति पलटती नहीं। ऐसी बात है। समझ में आया? यह मुनिराज दशा, बापू! अलग होती है। आहाहा! 'धन्य मुनिदशा' पुस्तक आती है न अपने? आहाहा!

बाहर से देखने पर तो मुनिराज आत्मसाधना के हेतु वन में अकेले बसते हैं,... बाहर से वन में, वन में अकेले बसते हैं। ये तीन शब्द (हैं), बाहर से देखने पर वन में-जंगल में अकेले बसते हैं। **परन्तु अन्तर में देखें तो अनन्त गुण से भरपूर...** अकेले के साथ में अनन्त गुण भरपूर। उस वन में, वे यहाँ स्वरूपनगर में। बाहर में बसते हैं, यह अन्दर में बसते हैं। आहाहा! **अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर....** जिसमें अनन्त गुण भरे हुए हैं, ऐसे स्वरूपनगर में अन्तर में अनन्त गुणों से (भरपूर) स्वरूपनगर में (बसते हैं)। (बाहर में) वन में अकेले बसते हैं, यह (अन्दर में) अनन्त गुणों में। अनन्त गुणों में, अकेला नहीं, अनन्त गुणों में। आहाहा! और उस **स्वरूपनगर में उनका निवास है।** यहाँ तक तो कल आया था। यहाँ तक कल आया था। आहाहा! अभी मुनिपना किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

बाहर से देखने पर भले ही वे क्षुधावन्त हों,... पेट में क्षुधा हो, ऐसा दिखायी दे,

पेट सिकुड़ गया हो। आहाहा! तीन-तीन, चार-चार, पाँच-पाँच दिन तक आहार नहीं मिला हो क्योंकि उन्हें तो निर्दोष—अन्तरायरहित आहार होता है न? आहाहा! ऐसे जिन्हें क्षुधावन्त हो बाहर से, **तृषावन्त हों,...** दो, **उपवासी हों,...** तीन, **परन्तु अन्तर में देखा जाये तो वे आत्मा के मधुर रस का आस्वादन कर रहे हैं!** आहाहा! बाहर के क्षुधा-तृषा, आहाहा! और उपवासी, तथापि अन्दर में तो मुनिराज को, आहाहा! अन्तर आनन्द की कल्लोल होती है। **वे आत्मा के मधुर रस का आस्वादन कर रहे हैं!** आहाहा! आत्मा का जो अतीन्द्रिय आनन्द, जो सुख... आहाहा! ऐसे आनन्द की पर्याय में मधुर रस का आस्वादन कर रहे हैं, उन्हें मुनि कहते हैं। आहाहा! कहो, देवीलालजी! बापू! वीतराग कहते हैं, वह मुनिपना कोई अलौकिक है। उसकी श्रद्धा की इसे खबर नहीं है। आहाहा!

बाहर से देखने पर भले ही उनके चारों ओर घनघोर अन्धेरा व्याप्त हो,... आहाहा! आमने-सामने व्याख्या की है। बाहर से देखने पर चारों ओर घनघोर अन्धकार व्याप्त हो, **परन्तु अन्तर में देखो तो मुनिराज के आत्मा में आत्मज्ञान का उजाला फैल रहा है।** आहाहा! घनघोर अमावस्या की रात्रि हो और जंगल में अन्धकार दिखायी दे परन्तु अन्दर में तो आत्मा का उजाला पसर गया है। ज्ञान के प्रकाश का तेज प्रगट हुआ है। आहाहा! यह क्या होगा यह? चैतन्य की जो शक्ति, जो अनन्त है, उसमें से उग्र अवलम्बन से चैतन्य के प्रकाश का पूर आया है। आहाहा! **मुनिराज के आत्मा में आत्मज्ञान का उजाला फैल रहा है।**

बाहर से देखने पर भले ही मुनिराज सूर्य के प्रखर ताप में ध्यान करते हों,... आहाहा! **परन्तु अन्तर में वे संयमरूपी कल्पवृक्ष की...** आहाहा! (बाहर में) अन्धकार है, आताप है, तो यहाँ अन्दर कल्पवृक्ष की छाया है। आहाहा! **संयमरूपी कल्पवृक्ष की शीतल छाया में विराजमान हैं।** आहाहा! अतीन्द्रिय शान्त-शीतलस्वभाव भगवान आत्मा का है, उसकी पर्याय में अतीन्द्रिय शीतल छाया में विराजमान हैं। आहाहा! वस्तु में जो अनन्त शीतल-शान्तस्वभाव जो भरा है, उसका उग्र अवलम्बन है, इसलिए उनकी पर्याय में अनन्त शीतल छाया में वे बस रहे हैं। आहाहा! वे सूर्य के आताप में नहीं हैं। आहाहा! है? **कल्पवृक्ष की शीतल छाया में विराजमान हैं।**

उपसर्ग का प्रसंग आये... आहाहा! बाहर में कोई उपसर्ग आवे, आहाहा! बिच्छु

का काट खाना, सर्प का काट खाना, मनुष्य का कोई प्रहार, देव की भी प्रतिकूलता के प्रहार। आहाहा! वर्षा की धारा प्रतिकूलतावाले देव आकर बरसावें, आहाहा! उस समय भी,... आहाहा!

ऐस प्रसंग आये, तब मुनिराज को ऐसा लगता है कि—'अपनी स्वरूपस्थिरता के प्रयोग का मुझे अवसर मिला है... आहाहा! **'अपनी स्वरूपस्थिरता के प्रयोग (आजमाईश) का मुझे अवसर मिला है, इसलिए उपसर्ग मेरा मित्र है।'** आहाहा! जिनका लक्ष्य द्रव्य पर पड़ा है। आहाहा! जिनकी दृष्टि और संयम का ध्येय तो द्रव्य है। आहाहा! उसमें से शीतल छाया अन्दर प्रगट होती है। आहाहा! इसलिए प्रतिकूलता के समय भी, उपसर्ग के समय-ऐसा लिया है। अन्तर के आनन्द की धारा अन्दर बहती है, आहाहा! इससे उपसर्ग है, वह मेरा मित्र है, मेरी स्थिरता की आजमाईश करने का वह समय, मौका यह है। आहाहा!

अन्तरंग मुनिदशा अद्भुत है;... आहाहा! **वहाँ देह में भी उपशमरस के ढाले ढल गये होते हैं।** आहाहा! अन्दर तीन कषाय के अभाव के उपशम ढाले—शान्ति की धारा पर्याय में बरसती है परन्तु शरीर में शान्त.. शान्त.. शान्त.. मानो मर गये हों। आहाहा!

मुमुक्षु : यह चौथे काल की बात है या पाँचवें काल की?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पाँचवें काल की नहीं, साधु होवे तब की। जब चौथे काल में हो या पाँचवें काल में (हो), यह तो पाँचवें काल के साधु की बात है। पाँचवें काल के सन्त-साधुपना कैसा, ऐसा कहते हैं। पाँचवें काल के साधु हों तो ऐसे होते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : अभी तो शुभयोग होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे कहते हैं न। प्रभु.. प्रभु.. प्रभु.. ऐसा हो जाता है। अरे! प्रभु! तूने क्या किया? भाई! आहाहा! ज्ञानसागर भी समयसार में लिखते हैं जगह-जगह... निर्विकल्प समाधि में होवे, तब ज्ञानी कहलाये। वहाँ से भ्रष्ट होकर बाहर आवे तो अज्ञानी कहलाये, सम्यग्दृष्टि नहीं कहलाये। आहाहा! अरे रे!

वस्तु का स्वरूप है, वह तो पवित्र और शुद्ध है, अत: उसके आश्रय-अवलम्बन से तो पवित्रता और शुद्धता प्रगट होती है। शुभयोग के अवलम्बन से प्रगट नहीं होती।

आहाहा! शुभयोग तो निमित्त के आश्रय से प्रगट होता है। वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

अन्तरंग मुनिदशा अद्भुत है;.... अभी यहाँ चौथे काल की बात नहीं है। यह तो पंचम काल के मुनि, मुनिदशा कैसी होती है, इसका वर्णन करते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! और इस दशा के बिना मुक्ति नहीं है। अकेले सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूपाचरण हुआ, इसलिए उसे मुक्ति हो जाये... होनेवाली है, यह बराबर है, परन्तु इससे इतने से हो, ऐसा नहीं है, भाई! आहाहा! जिसे अन्तर के तीव्र स्वभाव के उग्र अवलम्बन लेकर अन्दर शान्ति और आनन्द की प्रचुर धारा बहे, वह मुनिपना, वह मुक्ति का-मोक्ष का कारण है। वह भी व्यवहार से है। अर्थात्? कि ऐसी जो धारा निर्मल, उससे मोक्ष (होवे), यह तो वह धारा है; इसलिए मोक्ष की-केवल(ज्ञान) की पर्याय होती है, ऐसा है नहीं।

साधक को साध्य उसे कहते हैं कि पूर्व पर्याय हो, पश्चात् पर्याय आवे, उसे साधक को साध्य कहते हैं परन्तु साधक, वह साध्य की दशा को जोर से लाता है (ऐसा नहीं है)। आहाहा! उसे मात्र साधक क्यों कहा? केवलज्ञानरूपी भावमोक्ष को यह स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, आनन्द की दशा, वह साधक है; केवलज्ञान पूर्ण आनन्द, वह साध्य है। वह जो पूर्व पर्याय थी, उसके बाद होती है, उसे साध्य कहते हैं और उसके पहले की (पर्याय को) साधक कहते हैं, तथापि वह साधक है; इसलिए बलजोरी से साध्य की पर्याय को लाती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐई! ऐसी बातें हैं।

यह तो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव का उग्र अवलम्बन लेते हैं, तब उसे केवलज्ञान होता है। आहाहा! वह द्रव्यस्वभाव में से केवलज्ञान आता है। मोक्षमार्ग की पर्याय है, उसमें से नहीं आता। ऐसी बातें हैं। आहाहा! वह भी सिद्ध की और केवलज्ञान की पर्याय द्रव्य के लक्ष्य से आती है, इसलिए कहीं द्रव्य का आधार मिला, इसलिए मिलती है,... यह वस्तु ही उसकी ओर ढली, वहाँ अपना परिणमन स्वतन्त्र कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान से वह मोक्षदशा प्रगट होती है। आहाहा! ऐसी बात है।

उपशमरस के ढाले ढल गये... शरीर में, हों! ऐसे शान्त.. शान्त.. शान्त.. चपलता दिखायी न दे, चंचलता दिखायी न दे, आहाहा! शरीर की, हों! आहाहा! ऐसे जिसे ढाले

ढल गये हैं। आहाहा! उन्हें यहाँ मुनिराज अर्थात् निर्ग्रन्थ गुरु कहने में आता है। आहाहा! नग्नपना तो निमित्तरूप से होता ही है परन्तु इससे वह कहीं मार्ग नहीं है।

मुमुक्षु : पिच्छी-कमण्डल भले न आये हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले न हों। तीर्थंकर को तो वह भी नहीं होते। उनके साथ क्या सम्बन्ध है। आहाहा! परन्तु पंच महाव्रत होते हैं, उनसे भी मोक्ष नहीं है, वह चारित्र नहीं है। नग्नपना तो एक ओर रहा, आहाहा! मोरपिच्छी और कमण्डल एक ओर रहा। आहाहा! वह तो परद्रव्य है परन्तु नजदीक की नग्नदशा, वह नहीं, वह तो नहीं परन्तु अन्दर में जो महाव्रत के शुभभाव वर्तते हैं, वह भी मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर... आया था न पहले? अजायबघर, अनन्त गुण से भरपूर ऐसा अजायबघर। आहाहा! उसे देखने से जगत की विस्मयता टूट जाती है। आहाहा! राग के परिणाम की मन्दता भी भगवान आत्मा के अतिशय अनन्त गुणों को देखने से उस राग की महिमा भी वहाँ टूट जाती है। आहाहा! मुझे पंच महाव्रत के परिणाम हुए और यह हुए (यह नहीं होता)। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें।

हमारे तो मूलचन्दजी कहते थे। (संवत्) १९८० के वर्ष। जरा तत्त्व की बात विशेष चली। अट्ठाईसवाँ अध्ययन। १९८० की बात है, हों! कितने वर्ष हुए? ५५। अट्ठाईसवाँ अध्ययन पढ़ा था, उसमें से बहुत तत्त्व की बात रखी थी। कहा, भाई! यह सम्प्रदाय की मान्यता है, उसमें से सम्यग्दर्शन यह नहीं है। संक्षेप रुचि की व्याख्या चलती थी। ५५ वर्ष पहले। हजारों लोग सभा में... उसमें से उन्हें ऐसा हुआ, जब उठने का मौका आया। सबको बुलाकर कहे, देखो भाई! अपने को मिला है, वह सम्यग्दर्शन गणधर जैसा, गौतम जैसा है। उल्टी-सीधी शंका करना नहीं। अपने को अब अन्दर चारित्र लेना है। व्रत और यह चारित्र, ऐसा। चारित्र अंगीकार करना और अपने को तो उससे मुक्ति है। आहाहा! और वे जैन के बैरिस्टर कहलाते थे। मलूकचन्दभाई के गाँव के गुरु थे। आहाहा! ऐसी बातें हैं। क्या कहते हैं? क्या करते हैं यह? तब कहा था, हों! अरे! स्वरूप के अनुभव बिना कभी तीन काल में सम्यग्दर्शन नहीं होता। क्या हो? ऐसा बोलते थे। अट्ठाईसवें अध्ययन में व्याख्या ऐसी तत्त्व की आयी, उनसे झेली नहीं गयी। हजारों लोग, ३००-३०० घर,

व्याख्यान में बहुत लोग आवें, समावे नहीं, उपाश्रय में तो समावे नहीं, पीछे गली भर जाये। उसमें उन्हें झेला नहीं गया। एक बार तो यह तत्त्व की बात चलने पर सम्प्रदाय की श्रद्धा, इसलिए वह धर्म / समकित है, ऐसा नहीं है, कहा। संक्षेप रुचि का अर्थ ऐसा नहीं है। थोड़ा जानपना हो परन्तु उसके तत्त्व सच्चा होता है। आहाहा! और सम्प्रदाय की श्रद्धा से वह संक्षेप रुचि है, ऐसा नहीं है - कहा। ऐई! अट्ठाईसवाँ अध्ययन है। दस रुचि। और सहन नहीं हुआ। बाहर बैठे थे। बाहर पत्थर हैं न, वहाँ पीछे वाड़ा है, वहाँ बैठे थे। सहन नहीं हुआ तो चले गये, भाग गये। जंगल में दिशा को चले गये। आकर फिर अमुक दिन यह बात की, देखो! भाई! यदि तुम इस बात को बाहर प्रसिद्ध करोगे तो हम तुम्हें और वाड़ा को सबको तुरन्त छोड़ देंगे। हम आ गये इसलिए ऐसा नहीं मानो। चार-पाँच व्यक्ति एकान्त में थे।

मुमुक्षु : सबको डराया।

पूज्य गुरुदेवश्री : डराया, नहीं। वे लोग बहुत उल्टा जोर करते थे कि ऐसी श्रद्धा हो और ऐसी श्रद्धा हो, सम्प्रदाय की श्रद्धा वह यथार्थ है न! कहा, देखो! तुम्हें हम मिथ्यादृष्टि मानते हैं, याद रखो। तुम जैन बैरिस्टर कहलाते हो। यह तो ५५ वर्ष पहले की बात है। सामने कमरा... बोटाद का। यदि बाहर प्रसिद्ध करोगे तो उस समय यह सम्प्रदाय और तुम्हें सबको छोड़ दूँगा। हम कोई यहा बँध नहीं गये हैं। आहाहा!

इसके बाद एक बार उल्टा जोर किया। मुँहपत्ती खींचकर, ले लूँ वेश। ले लो। एक व्यक्ति था, उस समय वृद्ध व्यक्ति आया। एक था 'लावजीभाई' नाम से, रायचन्द गाँधी का मुनिम था। विसाश्रीमाली वृद्ध था। वह मौके से आया और उसने कहा, यह तुम क्या करते हो। इसलिए रुक गये। यह तो छोड़ेगा तो भागकर चला जायेगा। यह कहीं वाड़े में रहेगा, ऐसा नहीं है। तब लेना बन्द किया। नहीं तो मुँहपत्ती और वेश ले लूँ (कहते थे)। आहाहा! वह मार्ग नहीं, बापू! कहा। मार्ग तो यह है। आहाहा!

अन्तर स्वभाव का भले संक्षेप ध्यान थोड़ा हो परन्तु अन्तर के आनन्द के स्वभाव की जिसे रुचि प्रगट हुई है, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन कहा जाता है। बाकी संक्षेप रुचि अर्थात् थोड़ा ज्ञान हो, उसे सम्प्रदाय की दृष्टि हो, इसलिए संक्षेप रुचि है, ऐसा बिल्कुल नहीं है।

मानो, न मानो, सभा माने, न माने—इसके साथ हमें सम्बन्ध नहीं है। यह तो १९८० की बात है। यह तो उठते हुए अन्त में दूसरे को शिक्षा करते थे, अपने को तो देखो, बराबर सम्यग्दर्शन गणधर जैसा मिला है, हों! स्थानकवासी। हीराजी महाराज नहीं थे, तब हीराजी महाराज गुजर गये थे। यह (संवत्) १९७४ में गुजर गये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, बापू! मुनिराज किसे मुनि कहते हैं? भाई! आहाहा! जिसे आत्मा का ज्ञान प्रथम प्रगट हुआ है। आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द का स्वाद पहले थोड़ा आया है। आहाहा! उसे तो अभी सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में अविरति सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! जिसे अब आनन्द का उग्र आस्वाद आया है, आहाहा! पाँचवें में भी आनन्द का स्वाद जरा चौथे की अपेक्षा विशेष है, छठवें में उससे विशेष, सातवें में विशेष। यह उग्र आनन्द की धारा अन्दर, भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत है। आहाहा! उसमें एकाग्र होने से आनन्द की उत्कृष्ट धारा बहती है, उसे स्व के स्वाद के समक्ष पर की प्रतिकूलता किसी गिनती में नहीं दिखती। आहाहा! चाहे तो दुनिया निन्दा करो। आहाहा! उनके आत्मा में तो अद्भुत दशा है, परन्तु देह में उपशम रस ढल गया है। आहाहा! ३८८ (बोल पूरा हुआ)।

जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है, उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है, शरीरादि कुछ भासित नहीं होता। भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है। दिन को जागृतदशा में तो ज्ञायक निराला रहता है परन्तु रात को नींद में भी आत्मा निराला ही रहता है। निराला तो है ही परन्तु प्रगट निराला हो जाता है।

उसको भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है परन्तु चाहे जिस संयोग में उसकी ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है। मैं तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही हूँ, निःशंक ज्ञायक हूँ; विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए; ज्ञायक पृथक् ही है, सारा ब्रह्माण्ड पलट जाय, तथापि पृथक ही है।—ऐसा अचल निर्णय होता है। स्वरूप-अनुभव में अत्यन्त निःशंकता वर्तती है। ज्ञायक ऊपर चढ़कर—ऊर्ध्वरूप से विराजता है, दूसरा सब नीचे रह जाता है॥३८९॥

३८९, **जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है,...** यह पर का कर सकता हूँ और देश की सेवा कर सकता हूँ और गरीबों को आहार-पानी देकर मैं कुछ धर्म करता हूँ, यह दृष्टि महामिथ्यात्व है। आहाहा! कार्यवाहक होते हैं, वे सबके कार्य करें तो (मानते हैं कि हम) सब सेवा करते हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि द्रव्यदृष्टि... सेवा कर नहीं सकता परन्तु देह की क्रिया वह भी मेरी नहीं है और राग होता है, वह भी मेरी चीज़ नहीं है, तथा राग को जाननेवाली एक समय की पर्याय है, उतना भी मैं नहीं हूँ। आहाहा!

वस्तु जो भगवान आत्मा पूर्ण वस्तु है द्रव्य (है)। द्रव्य अर्थात् यह पैसा नहीं, हों! वस्तु जो पूर्ण परमात्म पिण्ड प्रभु! आहाहा! उसकी दृष्टि यथार्थ प्रगट होती है। उसकी दृष्टि यथार्थ प्रगट होती है। **उसे दृष्टि के जोर में...** उसे दृष्टि के जोर में। आहाहा! **अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है,...** लाईन की है न? आहाहा! यह तो कल आ गया था। अजाबय, अनन्त गुण का अजायबीघर है। आहाहा! उसकी जहाँ दृष्टि हुई, वहाँ दृष्टि में द्रव्य आया, द्रव्य का सामर्थ्य आया। आहाहा! उसे अनन्त गुण नजर में पड़े हैं। आहाहा!

उसे अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है,... सम्यग्दृष्टि को प्रथम द्रव्यदृष्टि हुई, उसे अकेला ज्ञायक अर्थात् चैतन्य। है न? लाईन की है न? ज्ञायक ही अर्थात् चैतन्य ही भासित होता है। आहाहा! भगवान जानने-देखनेवाला ज्ञायक है, उसकी दृष्टि हुई है तो वही भासित होता है। ऐसी बातें हैं। इसके बिना भव का अन्त नहीं है, प्रभु! आहाहा! चौरासी के अवतार कर-करके यह दु:ख में डूब गया है। आनन्द के सागर की द्रव्यदृष्टि करने से उसे आनन्द आता है, वहाँ भव का अन्त आता है। आहाहा!

उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है, शरीरादि कुछ भासित नहीं होता। कहाँ? दृष्टि के विषय में। आहाहा! यथार्थ दृष्टि प्रगट होती है, उसे दृष्टि के जोर में, ऐसा कहा है न? आहाहा! अकेला ज्ञायक ही-चैतन्य ही भासित होता है। शरीरादि उसकी दृष्टि के जोर में भासित नहीं होते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शरीर, वाणी, राग आदि कुछ भी दृष्टि के जोर में दूसरा भासित नहीं होता। आहाहा! देखो, यह दृष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शन। आहाहा! अब यहाँ तो वह सम्यग्दर्शन अर्थात् कुछ नहीं, वह तो एक शुभयोग करे, वह सम्यग्दर्शन, (ऐसा अज्ञानी मानता है)। अरे! प्रभु, प्रभु! क्या करता है? भाई! तू महाप्रभु का अनादर करता है। महाचैतन्य चमत्कारी प्रभु चैतन्यस्वभाव ज्ञायकभाव।

आहाहा ! उसे शुभयोग से लाभ होता है, वह चैतन्य का महा अनादर करता है । आहाहा ! और जिसे दृष्टि में यह भगवान भासित हुआ, उसके दृष्टि के जोर में शरीर और रागादि भी भासित नहीं होते । उनका ज्ञान होता है और देखे, परन्तु दृष्टि के जोर में वे भासित नहीं होते, ऐसा कहते हैं । दृष्टि तो मात्र ज्ञायक चैतन्यप्रकाश... शरीरादि कुछ भासित नहीं होता । वह अकेला भासित होता है । आहाहा ! यहाँ कुछ नहीं । आहाहा ! देखो न, यह आया बाहर ।

शरीरादि कुछ भासित नहीं होता । अकेला भासित होता है। दृष्टि के जोर की अपेक्षा है, हों ! ज्ञान है, वह भले जाने, परन्तु दृष्टि जो है, उसमें द्रव्य पर जिसका जोर है.. आहाहा ! उसे दृष्टि के विषय में अकेला ज्ञायक-चैतन्य भासित होता है । उसके विषय में राग और शरीर कुछ भासित नहीं होता, ऐसा कहते हैं । आहाहा ! अब ऐसी बातें । पूरे दिन पाप करना, धन्धा (करना), उसे ऐसी बातें बैठना ! आहाहा ! कहाँ गये बड़े भाई ? सपाणी ! गये ?

आहाहा ! दृष्टि है, वह निर्विकल्प है और इसलिए द्रव्य जो है, वह भी निर्विकल्प अभेद है । आहाहा ! निर्विकल्प दृष्टि के द्रव्य के प्रति जोर के कारण... आहाहा ! अकेला चैतन्य प्रकाश का नूर वह अकेला ज्ञायक भासित होता है, क्योंकि दृष्टि का विषय ज्ञायक है । आहाहा ! उस विषय में दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक भासित होता है । आहाहा ! **शरीरादि कुछ भासित नहीं होता** । आहाहा ! क्योंकि वह दृष्टि का विषय ही नहीं है । आहाहा !

भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है... आहाहा ! अब साथ में ज्ञान लिया । भेदज्ञान की परिणति राग और शरीरादि से भगवान भिन्न, ऐसा जो पर्याय में भेदज्ञान हुआ, उसकी परिणति... परिणति लेना है न ? उसकी दशा, वर्तमान प्रवर्तित परिणति, सम्यग्दृष्टि की भेदज्ञान परिणति / पर्याय यहाँ लेना है । आहाहा ! **ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है** । आहाहा ! भेदज्ञान की परिणति अर्थात् दशा, ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से पृथक् भासित होता है । आहाहा ! ऐसी भेदज्ञान की परिणति । पहला सम्यग्दर्शन लिया, द्रव्यदृष्टि के जोर में (अकेला ज्ञायक भासित होता है, ऐसा कहा) आहाहा ! अब यहाँ भेदज्ञान की परिणति ली है । साथ में ज्ञान लिया है । आहाहा !

भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से (राग

से) भिन्न भासता है। आहाहा! यह शरीर ही कहलाता है। राग और शरीर, सब शरीर कहलाता है। इस ओर आत्मा अशरीरी चैतन्यस्वरूप है। आहाहा! **दिन को जागृतदशा में तो ज्ञायक निराला रहता है...** दिन में जागृतदशा... तो वह निद्रा कही न और उसमें स्वप्न आया है, ऐसा कहा। स्वप्न में भी आत्मा शरीर से (भिन्न भासित होता है)। निद्रा में, ऐसा नहीं कहा, यहाँ तो स्वप्न में (स्वप्न आवे) तो उसे पृथक् भासित हो ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह क्या कहा? निद्रा में भिन्न भासित होता है, ऐसा नहीं कहा, भाई! उसमें स्वप्न आवे। आहाहा! निद्रा में स्वप्न आवे, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

शरीर से भिन्न भासता है। दिन को जागृतदशा में तो ज्ञायक निराला रहता है परन्तु रात को नींद में भी आत्मा निराला ही रहता है। भासित होता है, यह स्वप्न में लिया और उसमें निराला लिया। आहाहा! क्या कहा? स्वप्न आवे तो मानो निराला गोला पड़ा हो। आहाहा! भासित होता है, ऐसा यहाँ लेना है न? और यहाँ निद्रा में भासित होता है, ऐसा नहीं परन्तु निद्रा में निराला रहता है, क्या कहा, समझ में आया? यहाँ तो एक-एक शब्द की कीमत है। और यह सहजरूप से निकली हुई भाषा है। आहाहा!

तीन बातें ली हैं। एक तो द्रव्यदृष्टि में तो अकेला जोर दृष्टि से चैतन्य भासित होता है और स्वप्न में भेदज्ञान की परिणति से भी शरीर भिन्न भासित होता है, भासित होता है, हों! ऐसा कहते हैं। अब दिन में जागृतदशा में तो ज्ञायक भिन्न रहता है। यहाँ निराला रहता है। भासित हो, उसकी बात वहाँ पूर्ण हो गयी। आहाहा!

दिन को जागृतदशा में तो ज्ञायक निराला रहता है परन्तु रात को नींद में भी आत्मा निराला ही रहता है। आहाहा! नींद में कोई एकत्व हो नहीं गया, ऐसा कहते हैं। भले भासित न हो ज्ञान वहाँ नींद में है इसलिए, परन्तु भिन्न रहता है। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा! रात्रि में नींद में दृष्टि की बात की, भेदज्ञान की परिणति में स्वप्न की बात की, अब दिन में जागृतदशा में तो पृथक् रहता है। आहाहा! **परन्तु रात को नींद में भी आत्मा निराला ही रहता है।** आहाहा!

निराला तो है ही... वस्तु है, वह निराली तो है ही, ऐसा कहते हैं। परन्तु यहाँ तो पर्याय में निराला हो जाता है। भले नींद में भासित न हो परन्तु वहाँ निराला ही रहता है। आहाहा! **निराला तो है ही...** अर्थात् द्रव्य-वस्तु है वह तो निराला ही है। वस्तु जो भगवान

परमात्मस्वरूप है, वह तो मुक्त और अबन्धस्वरूप ही है। **निराला तो है ही परन्तु प्रगट निराला हो जाता है।** पर्याय में प्रगट निराला हो गया, पर्याय में। प्रगट कहा न ? समझ में आया ? आहाहा ! बहुत सरस, बहुत मीठी-मधुर भाषा है। आहाहा ! अपने आप पढ़े तो बराबर समझ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा ! ऐसी गूढ़-गम्भीर (बात है)। आहाहा !

नींद में निराला रहता है, ऐसा जो कहा, परन्तु द्रव्य तो निराला है किन्तु प्रगट निराला पर्याय में हो जाता है। भले नींद में हो। समझ में आया ? आहाहा ! एक पैराग्राफ में बहुत बात आ गयी। आहाहा ! ऐसा मार्ग। दृष्टि के जोर में चैतन्य ही भासित होता है। आहाहा ! शरीरादि भासित नहीं होता। भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है, (कि) स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासित होता है। आहाहा ! जागृत में तो ज्ञायक निराला रहता है, पर्याय से, हों ! परन्तु रात्रि में नींद में भी आत्मा निराला ही रहता है। आहाहा ! पश्चात् कहते हैं कि परन्तु **निराला तो है ही (वस्तु) परन्तु प्रगट निराला हो जाता है।** पर्याय में प्रगट निराला हो जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! राग से भिन्न वस्तु तो निराली है परन्तु पर्याय में राग से भिन्न निराली हो जाती है। आहाहा ! उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहाहा ! यह वस्तु।

अब कहते हैं, **उसको भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है...** रागादि के परिणाम होते हैं। आहाहा ! वह तो अकेला निराला भासित होता है, भेदपरिणति ऐसी दृढ़ हुई है कि स्वप्न में भी निराला भासित होता है, दिन में तो जागृत परिणति में निराला है, नींद में भी निराला रहता है। आहाहा ! तब कहते हैं कि यह प्रवृत्ति का विकल्प आता है, उसका क्या ? ऐई ! आहाहा ! देवीलालजी ! आहाहा ! भूमिकाप्रमाण, ऐसा क्यों लिया ? कि चौथा गुणस्थान है, पाँचवाँ है, छठवाँ है, वह भूमिका।

भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है... चौथे गुणस्थान प्रमाण उसे देव-गुरु-शास्त्र का विकल्प होता है, उसे व्रत का विकल्प नहीं होता। भक्ति का होता है, देव-गुरु-शास्त्र की विनय का होता है। उसकी भूमिकाप्रमाण वह होता है। आहाहा ! पाँचवें गुणस्थान की भूमिकाप्रमाण उसे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विनय आदि होते हैं, तदुपरान्त व्रत का विकल्प होता है। आहाहा ! समझ में आया ?

परन्तु चाहे जिस संयोग में उसकी ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है। भूमिका प्रमाण बाह्य विकल्प वर्तन होता है। आहाहा! परन्तु चाहे जिस संयोग में समकिती की चौथे, पाँचवें, छठवें में ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई अलग ही होती है। आहाहा! निर्जरा अधिकार में आता है न, ज्ञान और वैराग्य दो। वह कहते हैं। भगवान ज्ञायकस्वरूप का ज्ञान और राग से अभावरूप वैराग्य। आहाहा! यह ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई अलग ही रहती है। आहाहा!

मैं तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही हूँ,... ज्ञायक, चैतन्य ज्ञायक द्रव्य, वह मैं तो ज्ञायक ही हूँ। **निःशंक ज्ञायक हूँ; विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए;...** आहाहा! विकल्प जो वर्तन प्रमाण आवे, ऐसा कहा परन्तु उसके साथ एकत्व कभी नहीं हुआ और होता नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें, इसमें कहीं... आहाहा! दृष्टि और ज्ञान, स्वप्न में भासित हो और नींद में निराला रहे तथा जागृतदशा में निराला रहे। यह क्या है? भाई! बापू! यह वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! यह वर्तन के परिणाम होने पर भी... ऐसा है न? वर्तन होता है परन्तु चाहे जिस संयोग में रागादि के परिणाम के समय भी ज्ञान और वैराग्यशक्ति कोई अलग ही रहती है।

मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा ज्ञान और राग से रहित, ऐसी वैराग्यशक्ति तो भिन्न ही रहती है। आहाहा! संक्षिप्त में बहुत-बहुत डाला है। आहाहा! आचरण के विकल्प के समय भी ज्ञान और वैराग्य शक्ति कोई अलग काम करती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह पुस्तक तो अब सबके पास आयी है। भेंट में दी है। पूनातर! पढ़ी है या नहीं? कितनी बार? दो बार, ठीक।....भाई! पढ़ी है या नहीं? आहाहा! पढ़ी हो, उसे समझने में ठीक पड़े कि हम तो इसमें से ऐसा समझे थे, यह तो कुछ दूसरा निकला।

हमारे मास्टर थे, (हम) छठवीं में पढ़ते थे, पाँचवीं-छठी। एक नरोत्तम ब्राह्मण थे, स्त्री, स्त्री वहाँ नहीं थी। उस समय कहीं दूसरा अकेला पकाता। पकाने के बाद जो लड़के होशियार हों न, कक्षा में, दो-चार को बुलावे और बुलाकर कहे, तुम पढ़कर आना और मैं उस समय दाल, चावल पकाकर निवृत्त होवे ऐसी बातचीत करे। तुम क्या (समझे)? देखो, इसका अर्थ ऐसा है। तुम क्या समझे थे? कि हम तो ऐसा समझे थे। इसका अर्थ ऐसा है। कणवीवाड में सुतार का मकान था। उसमें ऊपर रहते थे परन्तु यह तो ७८ वर्ष पहले

की बातें हैं। आहाहा! इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि यदि इसने एक बार पढ़ा हो तो यह समझने में क्या आया था और यहाँ क्या (कहते) हैं, (यह अन्तर समझ में आये)। आहाहा!

मैं नि:शंक ज्ञायक हूँ; विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए;... आहाहा! अज्ञानरूप से भी कभी राग और स्वभाव एक हुए ही नहीं थे; माना था। आहाहा! विभाव के अध्यास के कारण माना था परन्तु वस्तु, विभाव और राग को दोनों एक हुई नहीं कभी। आहाहा! **ज्ञायक पृथक् ही है,...** भगवान आत्मा ज्ञायक, वह तो पृथक् ही है। आहाहा! **सारा ब्रह्माण्ड पलट जाय, तथापि पृथक ही है।—ऐसा अचल निर्णय होता है।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि का-धर्मी का ऐसा निर्णय होता है। आहाहा!—**ऐसा अचल निर्णय होता है।** फिर विशेष ऐसा निर्णय होता है, इतना नहीं कहा। ऐसा अचल निर्णय होता है। आहाहा!

स्वरूप-अनुभव में अत्यन्त नि:शंकता वर्तती है। आहाहा! स्वरूप को जो आनन्द आदि का वेदन है, उसमें अत्यन्त नि:शंकता वर्तती है। आहाहा! **ज्ञायक ऊपर चढ़कर—ऊर्ध्वरूप से विराजता है,...** क्या कहते हैं? राग हो या पर्याय हो, उनसे भिन्न नि:शंकरूप से ऊँचा अधिकरूप से पृथक् वर्तता है। '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' कहा न? (समयसार) ३१ गाथा। वह राग (आता है), तथापि यह ज्ञायकभाव तो निराला भिन्न वर्तता है। आहाहा! ऊँचा अर्थात् भिन्न वर्तता है, ऊँचा अर्थात् अधिकरूप वर्तता है। आहाहा! पर्याय से भी अधिकपने पृथक् वर्तता है, कहते हैं। आहाहा! अकेला निचोड़ है। ऊपर चढ़कर, ऊपर चढ़कर अर्थात्? राग और पर्याय से भिन्न अधिक-पृथक् वर्तता है। आहाहा! **दूसरा सब नीचे रह जाता है।** आहाहा! पर्याय और राग, दया, दान के, व्रत के विकल्प, ये सब नीचे रह गये, वह ऊपर चढ़ गया। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा, वह यह रीति है। आहाहा!

दूसरा सब नीचे रह जाता है। अर्थात् अधिक भिन्न ज्ञायकभाव से नीचे अर्थात् भिन्न (रह गया होता है)। यहाँ अधिक अर्थात् यहाँ नीचे, यहाँ यह मुख्य, तब वह गौणपने अन्दर रह जाते हैं। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! यह ३८९ (बोल पूरा हुआ)। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण -७, मंगलवार, दिनाङ्क २१-११-१९७८
वचनामृत-३९० प्रवचन-१५७

मुनिराज समाधिपरिणत हैं। वे ज्ञायक का अवलम्बन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्रगट करने को उत्सुक हैं। मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि मुनि 'सकल विमल केवलज्ञानदर्शन के लोलुप' हैं। 'स्वरूप में कब ऐसी स्थिरता होगी, जब श्रेणी लगकर वीतरागदशा प्रगट होगी? कब ऐसा अवसर आयेगा, जब स्वरूप में उग्र रमणता होगी और आत्मा का परिपूर्ण स्वभाव ज्ञान-केवलज्ञान प्रगट होगा? कब ऐसा परम ध्यान जमेगा कि आत्मा शाश्वतरूप से आत्मस्वभाव में ही रह जायेगा?' ऐसी भावना मुनिराज को वर्तती है। आत्मा के आश्रय से एकाग्रता करते-करते वे केवलज्ञान के समीप जा रहे हैं। प्रचुर शान्ति का वेदन होता है। कषाय बहुत मन्द हो गये हैं। कदाचित् कुछ ऋद्धियाँ—चमत्कार भी प्रगट होते जाते हैं; परन्तु उनका उनके प्रति दुर्लक्ष है। 'हमें ये चमत्कार नहीं चाहिए। हमें तो पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिए। उसके साधनरूप, ऐसा ध्यान—ऐसी निर्विकल्पता—ऐसी समाधि चाहिए कि जिसके परिणाम से असंख्य प्रदेशों में प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्याय से प्रगट हो, चैतन्य का पूर्ण विलास प्रगट हो।' इस भावना को मुनिराज आत्मा में अत्यन्त लीनता द्वारा सफल करते हैं॥३९०॥

(वचनामृत) ३९०। सम्यग्दर्शन में प्रथम द्रव्यस्वभाव का आश्रय होता है। उस समय भी शुद्धोपयोग का भाव होता है। शुद्धोपयोग (अर्थात्) शुभ और अशुभोपयोग से रहित शुद्ध चैतन्यघन वस्तु है, तो शुद्धोपयोग से उसमें प्रतीति होती है। आहाहा! कितने ही कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में तो शुभयोग ही होता है। यह दृष्टि विपरीत है। शुभयोग तो राग है। उस राग से चौथा गुणस्थान प्रगट नहीं होता। आहाहा!

यहाँ तो अभी मुनिराज की व्याख्या चलेगी। ऊपर यह आया न कि सम्यग्दर्शन में आत्मा मुख्य और ऊर्ध्व रहता है। रागादि होते हैं परन्तु वे नीचे गौणरूप रहते हैं। आहाहा! तब तो उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

अब तदुपरान्त जब मुनिपना प्रगट होता है, वे **मुनिराज समाधिपरिणत हैं**। आहाहा! शान्त और वीतरागस्वरूप आत्मा है। उसकी परिणति में शान्त और वीतरागपरिणतिरूप समाधि होती है। वे बाबा समाधि कहते हैं, वह समाधि नहीं। आधि, व्याधि, उपाधि रहित आत्मा की शान्ति को यहाँ समाधि कहते हैं। व्याधि अर्थात् शरीर की दशा से रहित। आधि, व्याधि, उपाधि। बाहर की उपाधि से रहित, अन्दर में संकल्प-विकल्प से रहित, ऐसी जो आत्मा में आनन्दरूप समाधि है। आहाहा! ऐसी समाधि परिणत मुनिराज हैं। आहाहा! मात्र नग्नपना है और पंच महाव्रत के परिणाम हैं, वह मुनिपना नहीं। आहाहा!

मुनिराज समाधिपरिणत हैं। वे ज्ञायक का अवलम्बन लेकर... (ज्ञायक का अवलम्बन लेकर) आहाहा! द्रव्यस्वभाव जो सनातन शुद्ध है, उसका अवलम्बन कर। आहाहा! **विशेष-विशेष समाधिसुख प्रगट करने को...** समाधिपरिणत तो हैं। आहाहा! परन्तु **ज्ञायक का अवलम्बन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्रगट करने को उत्सुक हैं**। आहाहा! जैसे लक्ष्मीवाले को पाँच लाख, दस लाख मिले तो पच्चीस-पचास लाख की भावना करता है, इसी प्रकार मुनि आत्मा की समाधि वीतराग शान्तिरूप परिणमित हो, (उसकी भावना करते हैं)।

मुमुक्षु : ....लोलुप हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोलुप हैं, यह आता है। वे केवलज्ञान के लोलुपी हैं। आहाहा! अज्ञानी पैसे का, इज्जत का, पुण्य का लोलुपी है। धर्मी आत्मा के लोलुपी हैं। उसमें ये मुनिराज तो आत्मा के विशेष लोलुपी हैं। आहाहा!

एक बात तो यह है कि आठ जड़कर्म हैं, वह तो जड़ की दशा है। आत्मा में जो विकार आदि अवस्था है, वह आत्मा की, आत्मा के कारण से विकार अवस्था है, क्योंकि विकार अवस्था है, वह कर्म को स्पर्श नहीं करती और कर्म है, वह विकार अवस्था को स्पर्श नहीं करते। आहाहा! कर्म जो जड़ हैं, वह तो द्रव्यसंसार है। जड़, परन्तु आत्मा में

तत्प्रमाण विकृत अवस्था होती है, वह भावसंसार आत्मा की पर्याय में है। वह भावसंसार कर्म से नहीं है। समझ में आया ? अपनी विकारी परिणति में स्वयं से स्वतन्त्र विकार है। अज्ञानरूप से वह विकारी का परिणाम स्वयं से होता है, तो उसमें भावसंसार विकारदशा है, उसे संसार से मुक्त करने का अभिलाषी... आहाहा!

स्त्री, कुटुम्ब, परिवार यह संसार है और उनसे मुक्ति होना, ऐसा नहीं है। उनसे तो मुक्त ही है। अज्ञानी भी इनसे तो मुक्त ही है। आहाहा! जहाँ आठ जड़कर्मरूपी हैं, उन्हें अरूपी भगवान स्पर्श नहीं करता, तो फिर स्त्री, कुटुम्ब परिवार को स्पर्श करे और मकान बनावे, स्त्री से विवाह करे, यह बात तो है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु इसकी पर्याय में-जीव की पर्याय में स्वयं से जो विकृत अवस्था हुई, वह संसार है, उससे मुक्त होना है। उस संसार से मुक्त होना है, कर्म से नहीं; पर से तो मुक्त ही है। आहाहा!

यह समाधि कहा न ? तो पर्याय में जो असमाधि थी, राग और द्वेष की असमाधि थी... आहाहा! वह कर्म के कारण नहीं; स्वयं की कमजोरी से जो असमाधि-राग-द्वेष थे, उनसे रहित समाधि परिणति हुए। अपने आत्मा के अवलम्बन से... आहाहा! वीतरागी शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... आहाहा! उस समाधि परिणत हुए। अपनी पर्याय में जो असमाधि थी, वह कर्म से नहीं थी। समझ में आया ?

यह प्रश्न एक बार (संवत्) १९८४ के वर्ष में हुआ था। वीरजीभाई ने राणपुर में प्रश्न किया था। १९८४ के वर्ष। कितने वर्ष हुए ? ५१ वर्ष पहले। कि यह कर्म और आत्मा को क्या सम्बन्ध है ? मैंने कहा, कुछ नहीं। कर्म, कर्म में है, विकारी पर्याय विकार में है। जितने प्रकार से कर्म में प्रदेश, संख्या और स्थिति, अनुभाग है, वह तो उसमें है। उतने प्रमाण में विकार की अवस्था अपनी योग्यता से अपने में है। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो ऐसा कहना है कि संसार से रहित होना, वह समाधि है। संसार जो अन्दर विकार की दशा है। आहाहा! भ्रमणा और राग-द्वेष, वह जो असमाधि और दुःख है, संसार है, उससे—मिथ्यात्व से मुक्त होता है तो मिथ्यात्व / संसार से मुक्त हुआ। स्व के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन प्रगट किया तो मिथ्यात्वरूपी संसार से मुक्त हुआ। समझ में आया ? और स्वरूप में जितनी शान्ति की स्थिरता हुई, उतने अनन्तानुबन्धी जो भाव संसार था, उनसे

रहित हुआ। ऐसी बातें हैं। अभी तो यही लगाते हैं कि कर्म के कारण विकार... कर्म के कारण विकार... कर्म के कारण विकार (होता है)। परन्तु कर्म तो जड़ है। भगवान तो अरूपी चैतन्य है, तो (समयसार) तीसरी गाथा में कहा कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी चुम्बन नहीं करता। आहाहा! यहाँ आत्मा है, वह शरीर को स्पर्शा ही नहीं है। आहाहा! अज्ञानरूप से भी आत्मा शरीर को और कर्म को छुआ ही नहीं है। प्रभु! तुझे खबर नहीं है। आहाहा! यह अपनी पर्याय में विकृत अवस्था को करे, उसे पर्याय में स्पर्शा है, द्रव्य में नहीं। समझ में आया? अनादि से कर्म और शरीर को आत्मा अज्ञान में भी कभी स्पर्शा नहीं है। आहाहा!

अब स्पर्श किया है तो अपनी विकारी पर्याय में स्पर्श किया है। विकारी पर्याय विकारी में स्पर्श किया है। द्रव्य तो विकारी पर्याय को भी स्पर्श नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? उस द्रव्य का अवलम्बन लेने से जो विकार को, पर्याय को द्रव्य स्पर्शा भी नहीं... आहाहा! ऐसा भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, ज्ञान की पर्याय में उसे ज्ञेय बनाकर जो ज्ञान हुआ, उतना विकारी असमाधि से भिन्न हुआ। आहाहा! मुनिराज तो बहुत विकारी अवस्था थी, उससे भिन्न हुए हैं। आहाहा! स्त्री, पुत्र, परिवार छोड़ा, कर्म छूटे; इसलिए छूटा, ऐसा यहाँ नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा द्रव्यस्वरूप जो शुद्ध है, वह तो कभी पर्याय को भी स्पर्शा नहीं है। आहाहा! पर्याय कर्म को, शरीर को छुई नहीं है। आहाहा! ऐसी वस्तु का स्वत:सिद्ध स्वभाव है। अब जो विकारी पर्याय परिणमती है, वह दु:खरूप है, आकुलता है। ऊपर-ऊपर पर्याय में द्रव्य से ऊपर विकृत अवस्था पर्याय में हुई है। आहाहा! वह द्रव्य में नहीं, तो द्रव्य जो ज्ञायक आनन्द और शान्तस्वभाव का पिण्ड प्रभु है, उसके अवलम्बन से जितना अवलम्बन लिया, उतनी अशुद्धता का व्यय हुआ। जितना असमाधि का नाश हुआ, उतनी समाधि प्रगट हुई। अरे! आहाहा!

लोगस्स में आता है। रसिकभाई! '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' पहाड़े बोले होंगे या नहीं पहले? लोगस्स का किया नहीं? लोगस्स में आता है न? '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' इसे अर्थ की भी कहाँ खबर है? लोगस्स में आता है, लोगस्स। '**लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे**

जिणे' अजितभाई! लोगस्स किया था या नहीं? नहीं किया होगा। सीधे इस ओर आ गये न। उसमें आता है। यहाँ तो दस वर्ष की उम्र से किया है। समझ में आया?

उसमें समाधि आवे, वह समाधि कौन सी? कि आत्मा में आनन्दरूप शान्ति जो पड़ी है, उसके अवलम्बन से पर्याय में समाधि और शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... आनन्द की दशा समाधिरूप हो, उसका नाम यहाँ समाधि कहते हैं। अरे! ऐसी बातें हैं। तुमने नहीं किया होगा लोगस्स। किया होगा या नहीं? ऐई! कृपाणी! सामायिक के पाठ में नहीं आता? णमो अरिहंताणं, इच्छामि, तत्सुत्री, लोगस्स, नमोथुणं... ये पाँच बोले तो सामायिक हो जाये। आहाहा! धूल में भी सामायिक (नहीं है)। वह तो शब्द है। यह पाठ बोले, वह तो शब्द है। शब्द तो आत्मा को स्पर्श ही नहीं करते। आहाहा! आत्मा ने स्पर्श किया हो तो विकारी पर्याय को, पर्याय पर्याय से स्पर्शी। द्रव्य तो उसे भी स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

उस विकारी पर्याय को, जो द्रव्य का-शुद्धचैतन्य भगवान का अवलम्बन लेकर अभाव हुआ, उतनी समाधि हुई। शान्ति, आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आहाहा! तृप्ति... तृप्ति... तृप्ति... आनन्द का भोजन करके तृप्ति (होती है)। जैसे लड्डू का भोजन करके तृप्त होता है, वैसे यह आनन्द का भोजन करके तृप्ति होती है। आहाहा!

यह **ज्ञायक का अवलम्बन लेकर...** यह तो समाधि कैसे होती है, यह बतलाना है। आहाहा! इस **ज्ञायक का अवलम्बन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्रगट करने को...** पहले आत्मा के अवलम्बन से समाधि हुई है, परन्तु विशेष समाधि होने के कारण... आहाहा! मुनि तो **समाधिसुख प्रगट करने को उत्सुक हैं**। कब मैं उग्र अवलम्बन लेकर आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. उग्र आनन्द में आऊँ! आहाहा! ऐसी मुनिदशा की भावना है।

मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि मुनि 'सकल विमल केवलज्ञानदर्शन के लोलुप' हैं। आहाहा! पूर्ण ज्ञान और पूर्ण दर्शन और पूर्ण आनन्द। आहाहा! उसके मुनि लोलुपी हैं-उसके अभिलाषी हैं। आहाहा! पूर्ण होने की अभिलाषा है। अपूर्ण शान्ति और समाधि में रहा है, उसे पूर्ण होने की अभिलाषा में लोलुप है। आहाहा! देखो! यह मुनिदशा।

'स्वरूप में कब ऐसी स्थिरता होगी...' आहाहा! अनाकुल आनन्द का सागर,

प्रभु! ऐसे स्वरूप में विशेष स्थिरता कब होगी? थोड़ी स्थिरता तो है। समाधि तीन कषाय का अभाव (हुआ है), परन्तु अन्दर विशेष स्थिरता... आहाहा! **होगी, जब श्रेणी लगकर...** क्षपकश्रेणी। धारावाही धारा। निर्मल धारावाही धार लगाकर **श्रेणी लगकर वीतरागदशा प्रगट होगी?** ओहोहो! यह तो बारहवें गुणस्थान में वीतरागभाव कैसे प्रगट हो, ऐसी भावना है। आहाहा!

पहले आ गया है। वह नहीं आया? घड़े में से पतली (धारावाला) पानी... कल आ गया है। अमृत का घड़ा भरा हो, उसमें से यह पतली धारा से पीवे, परन्तु उन्हें विशेष धारा की भावना है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अनन्त शान्ति, अतीन्द्रिय अनन्त सुख से भरपूर घड़ा है। उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति (प्रगट हुई), वह पतली धारा है। आहाहा! ऐसा शब्द भी कहीं सुना नहीं होगा। चन्दुभाई! यह तुम तो दिगम्बर थे। आहाहा!

मुमुक्षु : दुष्काल था।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! अरे! प्रभु! मार्ग तो ..... आहाहा! अनादि धोख मार्ग है, वह वर्तता है वीतरागमार्ग। आहाहा! वीतराग.. वीतराग.. वीतराग.. स्वरूप। मुनिराज वीतराग... वीतराग.. वीतराग का उपदेश देते हैं। आहाहा! मुई मुई बारम्बार वीतरागता प्रगट कर... वीतरागता प्रगट कर... वीतरागता प्रगट कर...। आहाहा! यह मुनिराज का उपदेश है। व्यवहार, व्रत आदि का उपदेश आया, वह तो ज्ञान कराया कि उस समय ऐसा राग होता है, परन्तु वीतरागता प्रगट करनी है। आहाहा! ऐसी बात है।

चौथे गुणस्थान में भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान आंशिक स्थिरता (प्रगट हुए), वह वीतराग पर्याय है। आहाहा! उसे फिर शुद्धोपयोग वहाँ नहीं होता। उसका दृष्टान्त दिया है। है न? 'सुविदित' 'सुविदित' शास्त्र नहीं? प्रवचनसार में श्लोक है न? उसे शुद्धोपयोग होता है, ऐसा कहते हैं। नीचे नहीं होता। आहाहा! अरे! प्रभु! क्या हो? यह शुद्ध स्वरूप ही है। आहा! अलिंगग्रहण में नहीं आया? शुद्धस्वभाव, वह विकार का कर्ता है ही नहीं। आहाहा! वह शुद्धोपयोगी जीव है। अलिंगग्रहण में आया है। आहाहा! इन रागादि की क्रिया का कर्ता आत्मा है ही नहीं। आहाहा! अलिंगग्रहण में है। यह तो शुद्धोपयोग ही है, ऐसा आया है। आहाहा! आत्मा राग को ग्रहण करता ही नहीं। आहाहा! वह तो शुद्ध

उपयोगी आत्मा है। आहाहा! अब यहाँ तो अभी चौथे गुणस्थान में शुभराग होता है। बस, हो गया (ऐसा लोग कहते हैं)। अरे! प्रभु! प्रभु! तू यह क्या करता है? भाई! तू पहुँच नहीं सकता, इसलिए ऐसे बचाव! आहाहा!

यह शुद्ध चैतन्य महागंज विद्यमान है। ओहोहो! क्या कहलाता है वह? चारा। चारा कहते हैं न? गाड़ी में भरते हैं, गाड़ी में ऐसे चारा भरते हैं। इसी प्रकार यह आत्मा अनन्त गुण का चारा अन्दर है। अरे रे! अनन्त-अनन्त गुण का भरपूर यह चारा है। आहाहा! उसके अवलम्बन से अशुद्धता का नाश होता है और उसके अवलम्बन से शुद्धता, शान्ति और धर्म प्रगट होता है। ऐसी बात है। लोगों को कठिन लगता है। वे मानो कि यह सोनगढ़ की बात है। सोनगढ़ की है या शास्त्र की? अरे! प्रभु! आहाहा! इसे अभी श्रद्धा में ही न ले, उसे यह प्रगट कब हो? समझ में आया? चौथे गुणस्थान में वह शुभराग ही होता है और वह (श्रुतसागर) और ऐसा कहते हैं, हैं तो बड़े, शान्तिसागर के पथानुसारी, शान्तिसागर के वीरसागर, वीरसागर के शिवसागर और शिवसागर के ऐसे कुछ हैं। शिवसागर के... धर्मसागर हैं। उनके साथ श्रुतसागर हैं। उन्होंने बहुत पढ़ा हुआ है, अभी धर्मसागर आचार्य हैं। वह कहते हैं अभी पंचम काल में शुभयोग ही होता है। ऐसा अखबार में आया है। अर..र..र..! इसका अर्थ (यह कि) धर्म होता ही नहीं। शुभयोग, वह धर्म नहीं है। अरे रे! क्या जगत चलता है? कहाँ चलता है? लोग हजारों लोग... नग्नदशा, दिगम्बरदशा। ये हमारे गुरु हैं। ऐसी प्ररूपणा ऐसी महामिथ्यात्व की। आहाहा! शुभयोग, इस पंचम काल में शुभयोग ही होता है, ऐसा अखबार में आया है। अरे! भगवान! शुभयोग तो विकार है न? भाई! विकाररूप तो द्रव्य परिणमित ही नहीं हुआ न, प्रभु! वह तो पर्याय में विकृत है। वह सम्यग्दर्शन होने पर विकार से रहित द्रव्यस्वभाव है, उसका परिणमन होता है। वह निर्विकारी पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? उस निर्विकारी पर्याय के बिना सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, परन्तु क्या हो? बहुत फेरफार हो गया और बनियों को धन्धे के कारण फुर्सत नहीं मिलती। ऐई! रसिकभाई! यह तुम्हें उलाहना देते हैं। व्यापार में-व्यापार में पूरे दिन यह किया... यह किया.. यह किया। अब इस छोटे व्यापारी को लड़का भी नहीं तो भी वहीं का वहीं ऐसा का ऐसा लगा रहता है। ऐई! यह तो दृष्टान्त आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : लड़का होवे तो रुकना पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़का तो कौन हो? वह कहाँ इसका था? वह तो लड़का नहीं। पति-पत्नी, हुतो-हुती (पति-पत्नी दो हैं) तो भी मजदूरी (छोड़ते नहीं)। बराबर है न? भाई! यह तो निवृत्ति लेकर निर्णय करने का समय निकालना, ऐसा कहना है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा तो विकृत पर्याय से निवृत्त है। आहाहा! अभी बाह्य से तो अनादि से निवृत्त ही है परन्तु बाह्य से निवृत्ति मानी नहीं। आहाहा! कहो, हीरालालजी! यह बड़ा व्यवसायी है। छोटी उम्र से बड़ा पैसेवाला, बहुत लाखोंपति। ऐई! धन्धा, मुम्बई में दुकान, आसाम में दुकान, गया में दुकान, अरे रे! यह गजब, प्रभु! तेरी दुकान यह अन्दर है न!

मुमुक्षु : इसमें से गेहूँ-बाजरा कहाँ आता है, उसमें से गेहूँ-बाजरा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें से आनन्द बाजरा आता है। हीराभाई! आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, ऐसा यह आत्मा है। आहाहा! बाजरा का स्वाद आत्मा नहीं लेता। बाजरा तो जड़ है। जड़ को तो आत्मा स्पर्श नहीं करता। मात्र जड़ की ओर लक्ष्य करके 'ठीक है' इस राग को स्पर्श करती है पर्याय। राग को पर्याय छूटी है, द्रव्य नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! परमसत्य तो ऐसा ही है। आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव का सत्य का पुकार जगत के समक्ष प्रसिद्ध करना है।

यहाँ तो ऐसा कहना है कि **कि मुनि 'सकल विमल केवलज्ञानदर्शन के लोलुप' हैं।** आहाहा! यह पंच महाव्रतधारी के विकल्प के लोलुप नहीं। उसके तो वे ज्ञाता हैं और ज्ञाता की अपूर्ण पर्याय है, उसे पूर्ण करने के लोलुपी हैं। आहाहा! सम्यक्मति-श्रुतज्ञान तो हुआ है। वस्तु के अवलम्बन से जिसमें ज्ञान का सागर भगवान है, उसकी पर्याय में ज्वार आता है। आहाहा! मुनि को, समकिती को ऐसा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तो है परन्तु केवलज्ञान, पूर्ण केवलज्ञान, एक समय में पूर्ण ऐसा जो केवलज्ञान, उसके वे अभिलाषी, लोलुपी हैं। आहाहा! साध्य तो वहाँ है। ध्येय द्रव्य है, परन्तु साध्य तो पूर्ण केवलज्ञान-दर्शन लेना है। है? लोलुप है।

'स्वरूप में कब ऐसी स्थिरता होगी, जब श्रेणी लगकर वीतरागदशा प्रगट होगी? आहाहा! **कब ऐसा अवसर आयेगा, जब स्वरूप में उग्र रमणता होगी...** कब

ऐसा अवसर आवे कि स्वरूप में उग्र रमणता जमे। **कि आत्मा का परिपूर्ण स्वभाव ज्ञान...** आहाहा! ऐसी भावना है। महाव्रत का विकल्प आता है, ऐसी भावना रखूँ, (ऐसा नहीं है)। व्यवहारनय में ऐसा आता है कि महाव्रत है, उसकी भावना। एक-एक की पाँच-पाँच, पाँचों की पच्चीस (भावनाएँ हैं)। यह तो आता है, उसका ज्ञान कराया है। समझ में आया? पच्चीस भावना नहीं? एक-एक का अर्थ पाँच, पाँच की पच्चीस भावना करना, यह भावपाहुड़ में आता है। वह तो अशुभ से बचने की अपेक्षा से बात है। आहाहा! बाकी प्रभु तो सम्यग्ज्ञान-दर्शन में जो आनन्द का भास हुआ, उसकी परिणति में जो मति और श्रुतज्ञान की दशा हुई, वह दशा केवलज्ञान को साधती है। क्योंकि मति-श्रुतज्ञान, केवलज्ञान का अंश है। केवलज्ञान अवयवी है और मति-श्रुतज्ञान उसका अवयव / भाग है, तो वह भाग अवयवी पूर्ण चीज़ को प्राप्त करने की अभिलाषा है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसा उपदेश। इसमें कुछ अता-पता हाथ नहीं (आता)। बापू!

मुमुक्षु : इसमें ही अता-पता हाथ आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें आत्मा हाथ आवे, ऐसा है। आहाहा!

जिसे मुनिदशा... बापू! यह कहाँ है? आहाहा! अभी तो कठोर क्रियाकाण्ड करे, वह मुनिपना। आहाहा! जड़ की क्रिया, जंगल में रहे, अपवास करे, तीन-चार दिन में आहार ले, महीने में आहार ले। ओहोहो! उसका अर्थ क्या है? आहाहा!

मुनि तो अपने स्वरूप में रहते हैं, वे जंगल में नहीं। आहाहा! आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द की जहाँ... आहाहा! धारावाही ज्ञान है, धारावाही आनन्द है। भेदज्ञान धारावाही। परन्तु उसमें से... आहाहा! मुनि को केवलज्ञान की भावना है। केवलज्ञान कब प्रगट होगा? **कब ऐसा परम ध्यान जमेगा...** आहाहा! आनन्दस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप, ऐसा जहाँ अनुभव में आया, उसके आनन्द का स्वाद आया तो इस पूर्णानन्द के नाथ में मेरी पूर्णानन्द पर्याय कब होगी? आहाहा! ऐसी मुनियों को भावना है। आहाहा!

कब ऐसा परम ध्यान जमेगा कि आत्मा शाश्वतरूप से आत्मस्वभाव में ही रह जायेगा?' आहाहा! विकल्पमात्र तो नहीं परन्तु अपूर्णदशा भी नहीं। आहाहा! **कब ऐसा परम ध्यान जमेगा कि आत्मा शाश्वतरूप से आत्मस्वभाव में ही रह जायेगा?'** सादि

अनन्त-अनन्त समाधिसुख में। आहाहा! **ऐसी भावना मुनिराज को वर्तती है**। यह भावना वर्तती है। मैं दुनिया को समझाऊँ.. आहाहा! समझ में आया? दुनिया समझे, यह भावना मुनि की नहीं है। समझ में आया? विकल्प आता है, इसलिए शास्त्र रचना होती है परन्तु ऐसी भावना नहीं है कि मैं शास्त्र कब बनाऊँ। यह आया न? नियमसार में पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं न? मुझे अभी यह टीका बनाऊँ, ऐसा विकल्प आया करता है। विकल्प आया करता है। आहाहा! शुरुआत का पहला अधिकार है। आहाहा! इस कारण से यह टीका बनेगी। और यह टीका बनी है, मैंने नहीं बनायी। यह तो वाणी से बनी है, यह तो ठीक, परन्तु यह टीका तो गणधर से बनी हुई है। उसमें आता है न? गणधरदेवों ने कही है, वह बात यहाँ आयी है। हम और टीका करनेवाले कौन? आहाहा!

पद्मप्रभमलधारिदेव, जिन्होंने टीका में परम पंचम भाव, ऐसा... ऐसा... आहाहा! घोंटाया है और शोभित किया है, आहाहा! कि पंचम भाव के समक्ष क्षायिकभाव की पर्याय भी जिसमें नहीं है। क्षायिकभाव की पर्याय की भी भावना नहीं है। आहाहा! यह आता है न? चार भाव की भावना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्षायिक, उपशम, क्षयोपशम, उदय की भावना नहीं। भावना तो पंचम पारिणामिक की भावना है। आहाहा! है वह भावना क्षयोपशम, क्षायिक परन्तु क्षयोपशम क्षायिक की भावना नहीं। आहाहा! त्रिकाली परमस्वभावभाव ध्रुव, ज्ञायकभाव परमपारिणामिकभाव, शुद्धपारिणामिक परमभाव लक्षण, निज परमात्मतत्त्व द्रव्य। यह ३२० (गाथा समयसार की) जयसेनाचार्य की टीका में है। आहाहा! ऐसे निज परमात्मद्रव्य में एकाकार होता है। आहाहा!

पंचम भाव। राग की तो भावना नहीं परन्तु समकित आदि का जो क्षायिकभाव प्रगट हुआ है, उसकी भी भावना नहीं है। आहाहा! क्योंकि उसकी भावना पर्याय की है। पर्याय की भावना से क्या होगा? पर्याय में से कोई पर्याय नहीं आयेगी। आहाहा! जिसमें अनन्त आनन्दनिधि, अजायब अनन्त गुण का भरपूर भगवान अजायबघर है... यह आया था। आहाहा! उसके अवलम्बन से, उसकी भावना से मोक्षमार्ग प्रगट होता है। यह भावना, वही मोक्षमार्ग है। पंचम भाव की (भावना), हों! मोक्षमार्ग की पर्याय की भावना नहीं। क्योंकि मोक्षमार्ग क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय है। आहाहा! मेरा नाथ पूर्णानन्द और शान्ति से भरपूर प्रभु, वह निजपरमात्मद्रव्य मैं हूँ, ऐसी ज्ञानी की भावना होती है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **ऐसी भावना मुनिराज को वर्तती है। आत्मा के आश्रय से एकाग्रता करते-करते...** देखा? आत्मा परमस्वभावभाव जो त्रिकाल। आहाहा! सादी भाषा में यह रख दिया है। आहाहा! **आत्मा के आश्रय से...** यह पर्याय प्रगट हुई, उसके आश्रय से नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा नित्यानन्द सहजानन्दमूर्ति प्रभु, जो पर्याय में भी आया नहीं, तो राग में तो आवे कहाँ से? ज्ञान की पर्याय राग को स्पर्श नहीं करती। ज्ञान की पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

ऐसे **आत्मा के आश्रय से एकाग्रता करते-करते वे केवलज्ञान के समीप जा रहे हैं।** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य इत्यादि सन्त... आहाहा! पंचम काल के सन्त भी ऐसी भावना करते हैं। यह तो पंचम काल के मुनि की बात है न! सच्चे सन्त, हों! आहाहा! ऐसी भावना करते-करते वे **केवलज्ञान के समीप जा रहे हैं।** आहाहा! मुनिराज पूर्ण केवलज्ञान के निकट जा रहे हैं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

प्रचुर शान्ति का वेदन होता है। यद्यपि मुनि को तो प्रचुर शान्ति (का वेदन होता है)। (समयसार) पाँचवीं गाथा में आया न? यह शब्द है। पाँचवीं गाथा में है। हमारा निज वैभव। सन्त कहते हैं कि हमारा निज वैभव। प्रचुर स्वसंवेदन और प्रचुर आनन्द की जिसमें मोहरछाप है, ऐसे अनुभव से हम कहेंगे। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। प्रचुर शान्ति का वेदन होता है। आहाहा! जिन्हें मुनि कहते हैं, सर्वज्ञ परमात्मा के पन्थ के मुनि (जिन्हें कहते हैं), उन्हें तो प्रचुर शान्ति का वेदन होता है। आहाहा! अरे रे! यहाँ तो (आजकल) कहते हैं कि छठे गुणस्थान तक शुभराग होता है, व्यवहार होता है, बस। निश्चय वहाँ नहीं है। अरे! प्रभु! यह तो निश्चय नहीं तो चारित्र का निश्चय नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का निश्चय तो चौथे से शुरु होता है और वहाँ भी सम्यग्दर्शन पूरा होता है। क्षायिक भी चौथे (गुणस्थान में) पूर्ण होता है।

प्रचुर शान्ति का वेदन होता है। यह पाँचवीं गाथा का भाव यहाँ ले लिया है। **कषाय बहुत मन्द हो गये हैं।** संज्वलन की मन्दता का उदय वर्तता है। पंच महाव्रतादि का विकल्प, कषाय बहुत मन्द है। आहाहा! **कदाचित् कुछ ऋद्धियाँ—चमत्कार भी प्रगट होते जाते हैं;...** आहाहा! चमत्कार-ऋद्धि भी प्रगट हो। आहाहा! दो लड्डू हों और उसमें से चक्रवर्ती की सेना जीम जाये, ऐसी लब्धि आ जाये, परन्तु लब्धि पर उनका लक्ष्य नहीं

है। आहाहा! मैं तो केवलज्ञान का लोलुपी हूँ। मुझे केवलज्ञान कब हो? बस। आहाहा! एक सेर पानी हो, गर्म पानी, छियानवें करोड़ सैनिक पीवे, ऐसी लब्धि होती है। यह क्या? प्रभु! यह क्या चीज़ है? आहाहा! यह कहते हैं। **चमत्कार भी प्रगट होते जाते हैं;...** 'भी' अर्थात्? शान्ति है, प्रचुर स्वसंवेदन है और उसमें चमत्कार 'भी' प्रगट होते जाते हैं।

परन्तु... आहाहा! **उनका उनके प्रति दुर्लक्ष है।** आहाहा! मुनि की बात नहीं आती? उन्हें मुनिपने की लब्धि थी परन्तु खबर नहीं थी। यह कुमार क्या कहा? विष्णुकुमार। विष्णुकुमार मुनि। एक क्षुल्लक ने सुना कि यहाँ हस्तिनापुर में बहुत उपद्रव है। साधुओं को उपद्रव है। चारों ओर अग्नि लगायी है और मन्त्री के हाथ में सात दिन का राज्य आया है। मुनि को बहुत उपद्रव है। आहाहा! मुनिराज ध्यान में खड़े हैं, चारों ओर अग्नि सुलगायी है। क्षुल्लक को किसी ने कहा कि ऐसा है। तुम विष्णुकुमार के पास जाओ। विष्णुकुमार को लब्धि प्रगट हुई है। आहाहा! तो वे क्षुल्लक गये। महाराज! हस्तिनापुर में ऐसा हुआ है। तो क्या है? आपको लब्धि है न, प्रभु! उन्हें लब्धि की खबर भी नहीं। ऐई! आहाहा! है न? कैसी लब्धि? आहाहा! प्रभु! हाथ लम्बा करो। लम्बा हो जायेगा। आहाहा! उसकी भी खबर नहीं कि यह लब्धि प्रगट हुई है। आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द के समक्ष इन चमत्कारों का भी दुर्लक्ष हो जाता है। आहाहा! कि चमत्कार हुए और दुनिया को बताऊँ और मुझे मान मिले (– ऐसी भावना नहीं)। आहाहा! मुझे तो केवलज्ञान मिले, ऐसी भावना है, कहते हैं। आहाहा!

कुछ ऋद्धियाँ—चमत्कार भी प्रगट होते जाते हैं; परन्तु उनका उनके प्रति दुर्लक्ष है। 'हमें ये चमत्कार नहीं चाहिए। आहाहा! जिसकी हवा किसी को स्पर्श कर जाये तो रोग मिट जाये, ऐसी लब्धि प्रगट हुई हो, आहाहा! उससे क्या? वह तो पुण्य की प्रकृति का फल है। उसमें आत्मा नहीं आया। आहाहा! **'हमें ये चमत्कार नहीं चाहिए।** आहाहा! केवलज्ञान के लोलुपी को ऐसे चमत्कार का क्या काम? आहाहा! हमारे तो बहुत मार्ग पार करना है। इन चमत्कार में मैं खड़ा नहीं रहूँगा। मार्ग में जाना हो, दस कोस कट गये हों, पाँच कोस बाकी हों, अन्धकार हो जायेगा। बीच में बहुत मान दे तो कहे भाई! मैं यहाँ खड़ा नहीं रहूँगा, मुझे तो वहाँ जाना है। आहाहा!

मुनिराज को अपनी पर्याय में चमत्कार की लब्धि हुई हो, परन्तु वह मेरी नहीं है।

मुझे तो मार्ग पार करके केवलज्ञान में जाना है। मैं चमत्कार में रुकूँगा नहीं। आहाहा! **हमें तो पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिए।** आहाहा! भाषा तो देखो! आहाहा! हमारा आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर है। इस पर्याय में पूर्णानन्द हो, यह हमारा चमत्कार है, बस। आहाहा! 'सादि अनन्त-अनन्त समाधिसुख में, अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन सहित जब' आहाहा! अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा? आहाहा! जहाँ वीतराग की सीख अन्दर चलती हो... आहाहा! वीतराग की शिक्षा चलते-चलते वीतराग पूर्ण हो जाऊँ। आहाहा! यह मेरा चमत्कार है। मुनिराज की ऐसी भावना होती है, ऐसा कहते हैं। अरे रे!

उसके साधनरूप, ऐसा ध्यान—किसका? **हमें तो पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिए।** केवलज्ञान पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिए। **उसके साधनरूप,...** अब साधन बतलाते हैं। उसका साधन क्या? **ऐसा ध्यान**—पूर्ण केवलज्ञान प्राप्त करने का साधन क्या? पंच महाव्रत और विकल्प, यह (साधन) नहीं। आहाहा! **ऐसा ध्यान**—अर्थात् **ऐसी निर्विकल्पता**—लाईन की है न? आहाहा! **पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिए। उसके साधनरूप, ऐसा ध्यान**—आत्मा के स्वरूप का ध्यान, वह साधन है। केवलज्ञान प्राप्त करने के लिये कोई राग और संहनन मजबूत हो, वह कहीं साधन नहीं है। आहाहा!

ऐसा ध्यान—कैसा? कि **पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिए। उसके साधनरूप, ऐसा ध्यान**—अर्थात् **ऐसी निर्विकल्पता**—अर्थात्। अर्थात् **ऐसी समाधि...** एक के तीन अर्थ हुए। आहाहा! **ऐसी समाधि चाहिए कि जिसके परिणाम से असंख्य प्रदेशों में...** आहाहा! असंख्य प्रदेशों में अन्दर लीला लहर हो जाये। आहाहा! मेरे असंख्य प्रदेश—देश, आहाहा! उसमें **प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्याय से प्रगट हो,...** आहाहा! **जिसके परिणाम से... समाधि चाहिए कि जिसके परिणाम से...** समाधि चाहिए ऐसा ध्यान, ऐसी निर्विकल्पता, ऐसे परिणाम से असंख्य प्रदेशों में (प्रगट हो)। आहाहा! वापस असंख्य प्रदेश सिद्ध किये। सर्वज्ञ के सिवाय यह बात कहीं नहीं है। आहाहा! असंख्य प्रदेशी प्रभु! इन असंख्य प्रदेशों में जो गुण व्यापक हैं... आहाहा! **प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्याय से प्रगट हो,...** देखो! आहाहा! अपने—भगवान आत्मा के असंख्य प्रदेश उनमें प्रत्येक गुण उसकी... उसमें अनन्त गुण जो हैं, उनमें **प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्याय से प्रगट हो,...** प्रत्येक गुण... आहाहा! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. असंख्य प्रदेशों में गुण हैं। उस प्रत्येक गुण की... आहाहा!

एक तो असंख्य प्रदेशी द्रव्य सिद्ध किया। उसमें अनन्त गुण सिद्ध किये और अनन्त गुणों में एक-एक गुण प्रत्येक अपने परिपूर्ण पर्याय से प्रगट होता है क्योंकि एक गुण की पर्याय परिपूर्ण प्रगट हो, उसमें दूसरे गुण की पर्याय परिपूर्ण प्रगट होने का कोई साधन नहीं है—ऐसा कहना है। आहाहा! वह गुण जो त्रिकाल असंख्य प्रदेश में अनन्त हैं, उनके एक-एक गुण की परिपूर्ण परिणति में दूसरे गुण और दूसरी पर्याय साधन नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए यह शब्द प्रयोग किया है। **असंख्य प्रदेशों में प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्याय से प्रगट हो,...** अनन्त-अनन्त गुण अपनी पर्याय से प्रगट हों। आहाहा! अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, असंख्य प्रदेश में उसके प्रत्येक गुण की परिपूर्ण पर्याय प्रगट हो, ऐसी मुनिराज की भावना है। आहाहा! कब शिष्य बनाऊँ? कब मेरी इज्जत बढ़े? कब पुस्तक बनाऊँ – ऐसी भावना नहीं है। आहाहा! बनाते हैं, बनती है परन्तु वह विकल्प आया और छूट गया, इतना। आहाहा! ऐसी भावना! ओहोहो!

प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्याय से... प्रत्येक गुण अपनी पर्याय में अपूर्ण पर्याय से तो प्रगट हुए हैं। प्रत्येक गुण-अनन्त गुण हैं। यह चौथे गुणस्थान में एक अंश प्रगट हुआ है, तो मुनि को तो बहुत अंश व्यक्त / प्रगट हुआ है। आहाहा! पर्यायरूप से, हों! सर्व गुण वह समकित। आया न? सर्वगुणांश वह समकित। यहाँ ज्ञानादि एकदेश। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में यह आया है। एकदेश और सर्वदेश पूर्ण दशा परमात्मा हुआ। एकदेश तो प्रगट है। आहाहा! परन्तु एक गुण की परिपूर्ण पर्याय। आहाहा! जहाँ कोई अपेक्षा ही नहीं होती। आहाहा!

प्रगट हो, चैतन्य का पूर्ण विलास प्रगट हो। पूर्ण पर्याय प्रगटे, इसका अर्थ यह कि **चैतन्य का पूर्ण विलास प्रगट हो**। क्या कहा? कि प्रत्येक गुण असंख्य प्रदेश में है, उसकी परिपूर्ण पर्याय प्रगट हो, अर्थात्? कि चैतन्य का पूर्ण विलास प्रगट हो। भगवान आत्मा जो अनन्त गुण से भरपूर है, उसका पूर्ण विलास प्रगट हो। आहाहा! पंचम काल के सन्त भी ऐसे होते हैं, यह कहते हैं। उनकी बात है न? आहाहा!

इस भावना को मुनिराज आत्मा में अत्यन्त लीनता द्वारा... आहाहा! जयसेनाचार्य में वह भावना आती है न? श्रावक सामायिक में भावना... इसका अर्थ उन्होंने यह किया है कि भावना अर्थात् चिन्तवन का विकल्प है। भावना का अर्थ कोई शुद्धोपयोग करता है, यह बात नहीं है। अरे रे! भगवान!

मुमुक्षु : शुद्धोपयोग की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ शुद्धोपयोग की भावना है। सामायिक है, सम्यग्दृष्टि है। अन्दर समता में आनन्द में स्थित हैं, उसमें शुद्धोपयोग आ जाता है। आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका में आता है न? वे लोग नहीं। शुद्ध आत्मा का अर्थ खोटा करते हैं। उसकी चिन्तवना है कि ऐसा होता है (ऐसा अर्थ करते हैं)। अरे रे! क्या हो? थोड़ा पढ़ा था। वह ज्ञानसागर का। आहाहा! कहाँ आत्मावलोकन की भाषा और कहाँ यह?

इस भावना को मुनिराज आत्मा में अत्यन्त लीनता द्वारा... यह क्यों कहा? लीनता तो है, परन्तु **अत्यन्त लीनता द्वारा मुनिराज सफल करते हैं।** आहाहा! क्या पैराग्राफ है न! आहाहा! **इस भावना को मुनिराज आत्मा में अत्यन्त लीनता द्वारा सफल करते हैं।** आहाहा! अन्तर्लीनता द्वारा सफल करते हैं। आहाहा! कोई राग द्वारा या निमित्त द्वारा सफल करते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें!

मुमुक्षु : अजायबघर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अजायबघर, अजायब गुणों से भरपूर। चैतन्य चमत्कार से प्रभु भरपूर है। आहाहा! जिसका एक-एक गुण अनन्त शक्तिरूप और एक-एक गुण अनन्त पर्याय में प्रगट होने की योग्यतारूप है। आहाहा! रागादि वेष तो ऊपर की पर्याय में विकृत है। उससे (भिन्न) जहाँ आत्मभान हुआ तो उससे भिन्न हो गया। वे विकृत अवस्थायें तो नीचे रह गयीं। आ गया था न? नीचे रह गयीं। ऊर्ध्व को ज्ञायकभाव रहा। कल नीचे आ गया। ३८९ वाँ बोल। **ज्ञायक ऊपर चढ़कर—ऊर्ध्वरूप से विराजता है, दूसरा सब नीचे रह जाता है।** आहाहा! इसका नाम सिद्धान्त कहलाता है। है? आहाहा! लो, **सफल करते हैं।** ३९० हो गया, पूरा हो गया, हों!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण -८, बुधवार, दिनाङ्क २२-११-१९७८
वचनामृत-३९१ से ३९३ प्रवचन-१५८

अज्ञानी ने अनादि काल से अनन्त ज्ञान-आनन्दादि समृद्धि से भरे हुए निज चैतन्यमहल को ताले लगा दिये हैं और स्वयं बाहर भटकता रहता है। ज्ञान बाहर से ढूँढ़ता है, आनन्द बाहर से ढूँढ़ता है, सब कुछ बाहर से ढूँढ़ता है। स्वयं भगवान होने पर भी भीख माँगता रहता है।

ज्ञानी ने चैतन्यमहल के ताले खोल दिये हैं। अन्तर में ज्ञान-आनन्दादि की अखूट समृद्धि देखकर, और थोड़ी भोगकर, पहले कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ था, ऐसी विश्रान्ति उसे हो गयी है॥३९१॥

(वचनामृत) ३९१ है न? ३९० हुआ। **अज्ञानी ने अनादि काल से अनन्त ज्ञान-आनन्दादि समृद्धि से भरे हुए निज चैतन्यमहल को ताले लगा दिये हैं...** राग का कण-अंश है, वह मेरा है – ऐसी दृष्टि वहाँ है; इसलिए उसने अनन्त गुण से भरपूर भगवान को ताला लगा दिया है। आहाहा! खजाना खोला नहीं। राग का कण भी, गुण-गुणी के भेद का जो विकल्प हो, वह भी राग है, वह वास्तव में तो पुद्गल है। आहाहा! उसकी जिसे एकता है, स्वभाव त्रिकाल के साथ उसकी एकताबुद्धि हुई (नहीं), उसने निज समृद्धि से – आनन्द आदि से भरपूर चैतन्य महल को ताले लगा दिये हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

वस्तु तो पूरी पूर्णानन्द और अनन्त ज्ञान आदि स्वभाव से-समृद्धि से भरपूर (है)। आदि शब्द है न? अर्थात् अनन्त। ज्ञान-आनन्द आदि अर्थात् अनन्त समृद्धि से भरपूर। आहाहा! निज चैतन्य महल को, वापस ऐसा कि कोई दूसरे आत्मा को, भगवान को – ऐसा नहीं। अपना निज आत्ममहल। आहाहा! अन्दर प्रवेश करना चाहिए, उसके बदले ताले लगाये। आहाहा! बहुत संक्षिप्त शब्द, परन्तु एकदम मूल... मूल है।

कहा न ? अभी वह प्रोफेसर का पत्र आया है, कोई अर्धमागधी का बड़ा प्रोफेसर है। यहाँ आया था, प्रसन्न हुआ, ब्राह्मण है... उसमें लिखे तो नव पद... तक अभ्यास किया होगा। ऐसा कि यह मैंने पढ़ा है, यह पढ़ा हूँ और गुरु की वाणी ऐसी होती है। आहाहा! वचनामृत में तो अकेले रत्न भरे हैं, ऐसा लिखा है। अर्धमागधी का बड़ा प्रोफेसर (है)। आहाहा! अब मैं इस प्रकार मेरे आत्मा को उज्ज्वल करने के लिये प्रयत्न करूँगा, ऐसा लिखा है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, प्रभु! तेरा जो तत्त्व है, उसमें न जाकर, जो तत्त्व में नहीं, ऐसे राग और पुण्य-पाप तथा बाह्य में एकत्वबुद्धि से, स्वभाव की एकता तोड़ डालकर राग की एकता करके... आहाहा! इस अनन्त.. अनन्त गुण से भरपूर भगवान को तूने ताले लगाये हैं। प्रभु! आहाहा! भले यह ग्यारह अंग पढ़ा हो। आहाहा! ग्यारह अंग में तो अरबों-अरबों श्लोक, परन्तु वह पढ़े हुए ज्ञान की पर्याय है, वह तो परलक्ष्यी है। (जो) उसमें लीन है, उसने चैतन्य समृद्धि को ताले लगाये हैं। आहाहा! राग और परलक्ष्यी ज्ञान की जिसे अन्तर में महिमा है, उसने भगवान अनन्त समृद्धि से भरपूर प्रभु को भारी ताले लगाये है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बहुत संक्षिप्त में।

और स्वयं बाहर भटकता रहता है। आहाहा! यह शुभ विकल्प और यह अशुभ विकल्प तथा यह ठीक है और यह अठीक है। आहाहा! अपनी अनन्त-अनन्त समृद्धि से भरपूर भगवान के सन्मुख में न जाकर, उससे विमुख होकर। आहाहा! इस शुभ-अशुभभाव में शोध रहा है, मानों इसमें कुछ है, इसमें कुछ है। इस तरह शास्त्र का ज्ञान करके भी खोज रहा है कि इसमें कुछ है। आहाहा! वह बाहर भटका करता है। यह भटकाव हो गया है, कहते हैं।

ज्ञान बाहर से ढूँढ़ता है,... अर्थात् ज्ञानस्वरूपी भगवान है, उसमें न जाकर मानो ज्ञान बाहर से आता हो शास्त्र पढ़ने से, सुनने से (आता हो)। आहाहा! भगवान की वाणी और शास्त्रों को सुनने से वह ज्ञान मानो बाहर से आता हो। क्योंकि बाह्यलक्ष्यी है न। आहाहा! ज्ञान तो अन्तर के स्वभाव में से आवे, उसे ज्ञान कहते हैं। आहाहा! **स्वयं बाहर भटकता रहता है**। आहाहा! विकल्प के जाल में रुककर बाहर में भटकता है। आहाहा!

महाप्रभु ज्ञान आनन्द आदि अनन्त गुण की समृद्धि से भरपूर भगवान को नहीं देखता और यह बाहर का ज्ञान तथा राग, उसे देखता है। आहाहा! समझ में आया? मुद्दे की रकम की बात सूक्ष्म पड़ती है, बापू! प्रभु! तू महाप्रभु है, भाई! आहाहा! उस प्रभुता को तूने ताले लगाये हैं। आहाहा! पामर ऐसे राग तथा अल्प पर्याय जो जानने की (चीज़) है। उसे तूने महिमा दी है। आहाहा!

अब यह बाहर भटका करता है, इसकी व्याख्या करते हैं। **ज्ञान बाहर से ढूँढ़ता है,...** देखा? पहले साधारण दो बातें की – ताले लगाये और बाहर खोजता है, अब बाहर क्या? आहाहा! **ज्ञान बाहर से ढूँढ़ता है,...** मानो बहुत पढ़ूँ, बहुत सुनूँ तो मुझे ज्ञान होगा। आहाहा! ज्ञान अन्तर के स्वभाव में है, उसमें एकाग्र होने से जो ज्ञान आवे, वह ज्ञान है। उसके बदले यहाँ से मानो ज्ञान (होगा)। राग मन्द करूँ तो ज्ञान होगा। आहाहा! निगोद के जीव को अक्षर के अनन्तवें भाग (ज्ञान) है। वह जब मनुष्य हो, आहाहा! तब दिगम्बर साधु हो और ग्यारह अंग का ज्ञान हो। आहाहा! यह ग्यारह अंग का ज्ञान है, वह कहीं ज्ञान नहीं है। ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञान का निधान, जिसमें से केवलज्ञान की पर्याय अनन्त-अनन्त निकाला करे तो कमी न हो, ऐसा ज्ञाननिधान है, उसमें से ज्ञान निकालता (प्रगट करता) नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : निधान देखे तो निकाले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए कहते हैं न, देखने जा न! यहाँ कहाँ पड़ा है? यह इसीलिए कहते हैं। आहाहा! ज्ञान जिसकी ज्ञान की पर्याय है, उसे अन्दर ज्ञान में झुका न! आहाहा! तब ज्ञान होगा। बाकी बाहर से जितना पठन और पठन, वह सब ज्ञान नहीं है। आहाहा! उस पठन के ज्ञान में भी एकत्वबुद्धि है, उसने ज्ञानस्वरूपी भगवान को ताले लगाये हैं। ऐसी बात है, अजितभाई! नैरोबी में वहाँ कहीं नहीं है। आहाहा! शास्त्र बनाऊँ और शास्त्र बाहर बहुत प्रसिद्ध करूँ तो मेरा ज्ञान बाहर में प्रगट हो। यह एक बाह्य बुद्धि है। आहाहा!

ज्ञान बाहर से ढूँढ़ता है, आनन्द बाहर से ढूँढ़ता है,... मानो कि स्त्री में सुख है, इज्जत में सुख है, पैसे में सुख है। अरे! अशुभभाव में सुख है और शुभभाव में सुख है, ऐसा मानकर वहाँ अटकता है। आहाहा! दो बोल मुख्य लिये हैं। आहाहा! **सब कुछ बाहर से ढूँढ़ता है।** फिर मेल किया। वह आनन्द आदि है न? आदि। आहाहा! **ज्ञान बाहर से ढूँढ़ता**

है,... बहुत वाँचन करूँ और बहुत पढ़ूँ, बहुत सुनूँ तो मुझे ज्ञान होगा। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

इसी प्रकार **आनन्द बाहर से ढूँढ़ता है,...** आहाहा! पैसे में सुख, स्त्री के विषय में सुख, इज्जत में सुख, बाहर से कोई मेरी महिमा करे तो उसमें सुख। आहाहा! अर..र..! कोई मेरी प्रशंसा करे न, तो मुझे ठीक पड़ता है। आहाहा! **सब कुछ बाहर से ढूँढ़ता है।** देखा? तीनों आ गये-ज्ञान, आनन्द और दूसरे सब। आहाहा! सब बाहर से खोजता है। अब इसका योगफल करते हैं। आहाहा!

स्वयं भगवान होने पर भी... समझ में आया? **स्वयं भगवान होने पर भी भीख माँगता रहता है।** आहाहा! अपने में सब पड़ा है, ऐसा भगवान होने पर भी बाहर से कुछ मिले, ऐसे भिक्षा माँगता है। भगवान भिक्षा माँगता है। आहाहा! भिक्षा माँगा करता है, वापस भिक्षा माँगा करता है, ऐसी भाषा है। भिक्षा माँगता है, ऐसा नहीं। भिक्षा माँगा करता है। जब तब बाहर से, बाहर से। भिक्षा माँगता है, यह एक वचन हो गया, एक बात। आहाहा! **भीख माँगता रहता है।** आहाहा! यह एक पैराग्राफ। अब इसके सामने...

ज्ञानी ने... धर्मी ने, सम्यग्दृष्टि ने... आहाहा। **चैतन्यमहल के ताले खोल दिये हैं।** उसने (अज्ञानी ने) जब ताले लगा दिये हैं, तब यहाँ खोल डाले हैं। आहाहा! अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके सन्मुख जो एकाग्रता हुई, आहाहा! वह राग की एकता टूट गयी और स्वभाव की एकता हुई (तो) निधान खुल गये। आहाहा! भले थोड़ा ज्ञान हो परन्तु उस ज्ञान को विज्ञान कहा है। चौदहवीं गाथा में अर्थ में है और अज्ञानी का ग्यारह अंग और नौ पूर्व का ज्ञान... आहाहा! वह अज्ञान है और धर्मी को द्रव्यस्वभाव का-वस्तु के स्वभाव का एकाग्र होकर जो ज्ञान हुआ है, वह भले थोड़ा हो, तथापि वह विज्ञान है और चैतन्य के एकताबुद्धि के ताले खुल गये हैं। आहाहा! अब ऐसा उपदेश!

आहाहा! **अन्तर में ज्ञान-आनन्दादि की...** ऊपर शब्द था न? **अनन्त ज्ञान-आनन्दादि समृद्धि से भरे हुए...** अब सुल्टा आया। आहाहा! **अन्तर में ज्ञान-आनन्दादि...** अर्थात् सब आ गया, ऊपर कहा वह (सब आ गया)। **अखूट समृद्धि देखकर,...** आहाहा! अजायब गुण से भरपूर अजायबघर। आहाहा! यह आ गया है। आहाहा! उसे जिसने अन्दर देखा और अनुभव किया। आहाहा! उसे ज्ञान आदि अखूट सम्पत्ति देखकर; कम न हो—ऐसी समृद्धि है। आहाहा! पूरा खजाना है।

ज्ञान-आनन्दादि (अर्थात् अनन्त गुण) की अखूट समृद्धि देखकर,... आहाहा! **और थोड़ी भोगकर,...** आहाहा! जानने-देखने में पूर्ण अखूट समाधि आयी, परन्तु भोगने में पूर्ण अखण्ड समाधि नहीं आयी। आहाहा! **थोड़ी भोगकर,...** अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण की समृद्धि के ताले खुल गये परन्तु खिलावट में जो पर्याय आयी है, वह तो अल्प है। जो त्रिकाल गुण का समुद्र भगवान, आहाहा! उसमें से एक नमूना बाहर आया। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्शान्ति, आनन्द (बाहर आया) उसे भोगकर। आहाहा!

पहले कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ था... आहाहा! **पहले कभी जिसका...** यहाँ भोगकर कहा न? अनन्त आनन्द में से थोड़ा आनन्द, थोड़ा ज्ञान, थोड़ा वीर्य इत्यादि... शुद्ध अनन्त गुण की थोड़ी भोगकर, **पहले कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ था...** अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. काल में, प्रवाह में। आहाहा! **पहले कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ था, ऐसी विश्रान्ति उसे हो गयी है।** लो! सन्तुष्ट हो गया है। कहते हैं। आहाहा! जिसे अब बाहर से कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! अन्दर में अखूट खजाना जाना, देखा, उसमें से थोड़ा बाहर अनुभव किया। आहाहा! **ऐसी विश्रान्ति उसे हो गयी है।** लो! यह एक पैराग्राफ हुआ। ३९१। आहाहा!

एक चैतन्यतत्त्व ही उत्कृष्ट आश्चर्यकारी है। विश्व में ऐसी कोई विभूति नहीं है कि जो चैतन्यतत्त्व से ऊँची हो। वह चैतन्य तो तेरे पास ही है, तू ही वह है। तो फिर शरीर पर उपसर्ग आने पर या शरीर छूटने के प्रसंग में तू डरता क्यों है? जो कोई बाधा पहुँचाता है, वह तो पुद्गल को पहुँचाता है, जो छूट जाता है, वह तो तेरा था ही नहीं। तेरा तो मंगलकारी, आश्चर्यकारी तत्त्व है। तो फिर तुझे डर किसका? समाधि में स्थिर होकर एक आत्मा का ध्यान कर, भय छोड़ दे॥३९२॥

३९२, **एक चैतन्यतत्त्व ही उत्कृष्ट आश्चर्यकारी है।** आहाहा! एक चैतन्यतत्त्व जो वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. आहाहा! चैतन्यतत्त्व, चैतन्यवस्तु, चैतन्यसत्त्व, आहाहा! वही उत्कृष्ट आश्चर्यकारी है। वही उत्कृष्ट आश्चर्यकारी है। पहले आ गया है। उत्कृष्ट है, ऐसा कहीं आ गया है। उत्कृष्ट है न कहीं? सर्वोत्कृष्ट था। ३७९ (बोल) **जगत में सर्वोत्कृष्ट**

वस्तु तेरा आत्मा ही है। यह। आहाहा! **उसमें चैतन्यरस और आनन्द भरे हैं। वह गुण-मणियों का भण्डार है।** आहाहा! **ऐसे दिव्यस्वरूप आत्मा की दिव्यता को तू नहीं पहिचानता...** आहाहा! यहाँ यह कहते हैं।

अब यहाँ जरा दूसरी बात है। **एक चैतन्यतत्त्व ही उत्कृष्ट आश्चर्यकारी है।** आहाहा! **विश्व में ऐसी कोई विभूति नहीं है कि जो चैतन्यतत्त्व से ऊँची हो।** आहाहा! समझ में आया? आहाहा! विश्व में, अनन्त-अनन्त पदार्थ स्वरूपी विश्व, उसमें ऐसी कोई विभूति नहीं है कि जो चैतन्यतत्त्व से ऊँची हो। आहाहा! चक्रवर्ती का राज्य और इन्द्र के इन्द्रासन यह कोई विभूति चैतन्य से विशेष नहीं है, वह तो बाहर की धूल है। आहाहा! **कि जो चैतन्यतत्त्व से ऊँची हो।** आहाहा!

वह चैतन्य तो तेरे पास ही है,... अर्थात् तू ही है, ऐसा। तेरे पास शब्द लेकर, पर्याय के पास है न। आहाहा! एक समय की पर्याय के पास ही है, वह तत्त्व। आहाहा! और वह तू ही है। **तू ही वह है।** ऐसी भाषा ली है। **तू ही वह है।** आहाहा! पास है कहकर, वापस तू, तू ही है (ऐसा कहा)। आहाहा! चैतन्य तो तेरे पास ही है। आहाहा! **तू ही वह है। तो फिर शरीर पर उपसर्ग आने पर या शरीर छूटने के प्रसंग में तू डरता क्यों है?**

अभी कोई कहता था कि मुम्बई में यह पीलिया का रोग है, ऐसा कोई कहता था। ऐसा कोई कहता था। अभी दो मर गये न दो? कहते हैं पीलिया का रोग है। वह भी होगा, हों! वह तो लीवर में से कुछ होता है, कोई कहता था। आहाहा! दो-चार दिन में एकदम देह छूटकर चला जाता है। आहाहा! यह तो एक सेकेण्ड में राग से छूटकर अन्दर में चला जाए। आहाहा! ऐसी निरोगी वस्तु भगवान... आहाहा! उसे पकड़। आहाहा!

यह उपसर्ग कहा न? यह पीलिये का रोग आवे, क्षय रोग हो जाये, सर्प काट खाये, बिच्छु काट खाये, देह छूटने का प्रसंग आ जाये, हार्ट रुक जाये, हार्टफेल हो जाये। यह खून जमकर श्वास भी नहीं लिया जाये। आहाहा! ऐसा उपसर्ग आने पर या शरीर छूटने के प्रसंग में, ऐसी अन्तिम स्थिति। पहली स्थिति शुरुआत में आयी, मृत्यु के पहले। आहाहा! **शरीर पर उपसर्ग आने पर या शरीर छूटने के प्रसंग में तू डरता क्यों है?** आहाहा! भगवान! तू पूर्णानन्द का नाथ तो तू है न अन्दर! आहाहा! समझ में आया? आहाहा! दुनिया कहाँ पड़ी और वस्तु कहाँ रह गयी!

जो कोई बाधा पहुँचाता है, वह तो पुद्गल को पहुँचाता है,... आहाहा! रोग है, वह तो शरीर में है, छुरी की चोट पड़ती है, वह शरीर में है, छूता तो नहीं परन्तु... आहाहा! ऐसी बातें! परन्तु बाधा पहुँचाता है, वह तो पुद्गल को पहुँचाता है। भगवान आत्मा को कोई बाधा पहुँचा सकता है? आहाहा! शाश्वत् का चैतन्यरत्न भगवान अनन्त गुण से शोभित जलहल... जलहल जिसका तेज, उसे कौन बाधा पहुँचा सकता है? आहाहा! बाधा पहुँचावे तो शरीर को, आहाहा! अर्थात् पुद्गल को।

मुमुक्षु : दूसरे को?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे की बात तो क्या करना, यहाँ तो शरीर के ऊपर की बात आयी। स्त्री, कुटुम्ब और अमुक-अमुक मिले और फिर मरे, उनके साथ कुछ नहीं। यहाँ तो अब यहाँ शरीर के साथ अन्दर उपसर्ग आवे। आहाहा! तो वह उपसर्ग कहीं आत्मा को नहीं आता। आहाहा!

जो छूट जाता है, वह तो तेरा था ही नहीं... था ही नहीं तेरा तो मंगलकारी, आश्चर्यकारी तत्त्व है। आहाहा! तेरा तो मंगलकारी... आहाहा! और आश्चर्यकारी तत्त्व है। मंगलस्वरूप, मंगलकारी, ऐसा। आहाहा! आश्चर्यकारी तेरा तत्त्व प्रभु तुझे... आहाहा! **तो फिर तुझे डर किसका?** ऐसा तत्त्व है, फिर तुझे डर किसका? आहाहा! **समाधि में स्थिर होकर एक आत्मा का ध्यान कर,...** आहाहा! देह छूटने का प्रसंग आवे, ख्याल आवे कि यह देह छूटने का प्रसंग ही है। अन्दर जा न! यह छूटेगा तो छूटा हुआ था, वह छूटेगा। आहाहा!

अन्तर आनन्दस्वरूप में समाधि में जा न! आहाहा! आत्मा का ध्यान समाधि में स्थिर होकर... समाधि अर्थात्? आहाहा! आधि, उपाधि रहित जो वीतरागी शान्ति है, वह समाधि है। आहाहा! भाषा अलग, बापू! भाव अलग चीज़ है। आहाहा! भगवान आत्मा समाधिस्वरूप ही है अर्थात् जिसमें आधि, व्याधि, उपाधि है ही नहीं, उसकी अन्दर में दृष्टि करके उसका स्थिर ध्यान कर। आहाहा! पर्याय को द्रव्य में झुका ले। यह समाधि का ध्यान कहा जाता है। आहाहा! आत्मा में स्थिर होकर, आत्मा में स्थिर होकर अर्थात् समाधि में स्थिर है। वह राग में है और उसे यहाँ स्थिर होकर ऐसा कहते हैं। आहाहा! अब ऐसी बातें।

समाधि में स्थिर होकर एक आत्मा का ध्यान कर,... आहाहा! भगवान.. भगवान.. णमो अरिहंताणं.. णमो अरिहंताणं.. णमो अरिहंताणं.. यह कहीं आत्मा का ध्यान नहीं है, यह तो विकल्प है, यह तो दु:खरूप है। णमो अरिहंताणं कहते हुए देह छूट गयी, तो क्या हुआ? वह तो विकल्प है और वह तो दु:खरूप है। आहाहा! तेरा नाथ जो याद आया है, तुझे वस्तु के अनुभव में, ऐसा कहे। आहाहा! उसे याद करके वहाँ जा न, एकाकार हो न! आहाहा! दूसरे भगवान को कहाँ याद करने जाता है? आहाहा!

जो वस्तु स्वभाव परिपूर्ण आनन्द आदि, उसकी दृष्टि होकर वेदन हुआ है तो अब तू वहाँ जा। ऐसे अवसर के काल में या देह छूटने के काल में-दो बातें ली हैं। जिन्दगी में जीवन-मृत्यु से पहले उपसर्ग के काल में और मृत्यु के समय, दो (बातें) आयी। आहाहा! **समाधि में स्थिर होकर एक आत्मा का ध्यान कर,...** आहाहा! नवकार का ध्यान कर, ऐसा भी यहाँ तो नहीं आया। गुरु को याद कर, भगवान को याद कर, (ऐसा भी नहीं आया)...। आहाहा! एक आत्मा का अर्थात् गुण-पर्याय का और भेद (का भी) नहीं। आहाहा! पर का तो नहीं, पर देव-गुरु का (तो नहीं), परन्तु द्रव्य-गुण-पर्याय तीन का भी नहीं। आहाहा! क्योंकि जहाँ तीन का ध्यान करने जाये तो विकल्प-दु:ख होगा। आहाहा! आवश्यक में आता है न? आहाहा! इसलिए एक आत्मा, ऐसा लिया है। आहाहा! यह द्रव्य है और यह गुण है और यह पर्याय है—ऐसे तीन भेद के विचार में जायेगा तो भी राग होगा। आहाहा! वह भी आकुलता होगी। आहाहा!

एक आत्मा का... आहाहा! उसका ध्यान, वह पर्याय है। एक आत्मा, वह द्रव्य त्रिकाली अभेद है। आहाहा! उसका ध्यान, वह पर्याय है। आहाहा! मरते समय मुझे सुनाओ, यह सब तो विकल्प है, यह सुनना तो (विकल्प है)। आहाहा! एक आत्मा, आहाहा! उसका अन्दर ध्यान कर। **भय छोड़ दे।** यह तो फिर नास्ति से बात की है। अरे! शरीर छूटता है, यह होता है, हाय.. हाय..! कहाँ जाऊँगा? कहाँ जाये, अन्दर में जा न! वहाँ रहेगा। आहाहा! शब्द तो सादे हैं परन्तु भाव तो (गम्भीर है)।

आहाहा! वह प्रोफेसर प्रसन्न हो गया। बड़ा पण्डित। कोई भाई कहता है, पहले यहाँ गुरुकुल में शिक्षक था। ऐसा पत्र आया है बहुत... आहाहा! अरे! मुझे यह चैतन्य वचनामृत दिया। आहाहा! मैं बहुत भाग्यशाली। यह तो चैतन्यरत्न खजाना अन्दर भरा है। आहाहा!

उसमें क्या, जिसकी जितनी कीमत है उतनी करना, उसका अर्थ क्या ? आहाहा ! ऐई ! **भय छोड़ दे**। आहाहा ! दो पैराग्राफ हुए। अकेला... होता है न, बाहर के दृष्टान्त से। आहाहा !

जिसे भवभ्रमण से सचमुच छूटना हो, उसे अपने को परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके, अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर, सम्यग्दर्शन प्रगट करने का प्रयास करना चाहिए। यदि ध्रुव ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो तो जीव साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा ? ज्ञायक की ध्रुव भूमि में दृष्टि जमने पर, उसमें एकाग्रतारूप प्रयत्न करते-करते, निर्मलता प्रगट होती जाती है।

साधक जीव की दृष्टि निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य पर होती है, तथापि साधक जानता है सबको;—वह शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों को जानता है और उन्हें जानते हुए उनके स्वभाव-विभावपने का, उनके सुख-दुःखरूप वेदन का, उनके साधक-बाधकपने का इत्यादि का विवेक वर्तता है। साधकदशा में साधक के योग्य अनेक परिणाम वर्तते रहते हैं परन्तु 'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है। पुरुषार्थरूप क्रिया अपनी पर्याय में होती है और साधक उसे जानता है, तथापि दृष्टि के विषयभूत ऐसा जो निष्क्रिय द्रव्य वह अधिक का अधिक रहता है।—ऐसी साधक-परिणति की अटपटी रीति को ज्ञानी बराबर समझते हैं, दूसरों को समझना कठिन होता है॥३९३॥

जिसे भवभ्रमण से सचमुच छूटना हो... वास्तव में छूटना हो। मुझे भवभ्रमण नहीं करना, नहीं करना ऐसी बातें भले करे। आहाहा ! समझ में आया ? 'भव भय से डरि चित्त' नहीं आता ?

मुमुक्षु : योगसार।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, योगसार। भवभ्रमण से वास्तव में छूटना हो, ऐसा शब्द है। हमें तो भव चाहिए नहीं, ऐसी बातें करे परन्तु वास्तव में मुझे भवभ्रमण ही नहीं करना है। ऐसी अन्दर में (लगन लगे) । आहाहा ! भव करना, वह तो कलंक है। भगवान को भव ? आहाहा !

भवभ्रमण से सचमुच छूटना हो, उसे अपने को परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके,... अर्थात्? (जिसे) भव से छूटना हो, उसे अपने को परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करना चाहिए, परपदार्थ से भिन्न भगवान है, ऐसा निर्णय करके... आहाहा! जिसे राग और कर्म के साथ कुछ सम्बन्ध ही नहीं। ऐसी चीज़ है, ऐसा उसे निर्णय करके... आहाहा! निर्णय करके। है? आहाहा! **परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके,...** उसमें देव-गुरु और शास्त्र, ये परद्रव्य आये। आहाहा! **अपने को परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके,...** राग से लेकर सब परद्रव्य हैं, सब अजीव हैं। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु से रागादि दूसरे सब परपदार्थ हैं, ऐसा निर्णय करके। आहाहा! यह धर्मास्ति आदि में आ गया है, नहीं? छह धर्म आदि मैं नहीं, ऐसे परजीव भी मैं नहीं। जीव अधिकार में, जीव अधिकार में आया है। यह परजीव नहीं अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र का जीव है, वह मैं नहीं। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है।

तब (संवत्) २०१० के वर्ष में व्याख्यान चलता था बोटाद में। शिवलालभाई के पिता वीरजीभाई थे क्योंकि वे तो भक्ति में और सब अगास जानेवाले। इसलिए देव-गुरु, वे पर? वे तो शुद्ध हैं न! परन्तु शुद्ध है तो क्या? भक्ति करे, बारम्बार अगास जाये। आहाहा! अब यह इतनी उन्हें खबर नहीं। आहाहा! तब तो लल्लूजी वहाँ थे। उसमें जाते थे, वहाँ मकान रखा था। आहाहा! यह तो २०१० के वर्ष की बात है, पच्चीस वर्ष हुए। बोटाद में वह क्या कहलाता है? मकान, म्युनिसिपल्टी का मकान, हॉल। वहाँ व्याख्यान होता था। देव-गुरु तो शुद्ध हैं, पवित्र हैं, वे आत्मा से परद्रव्य कहलायें? ऐसा कहे। अरे! बापू! पाँच परमेष्ठी हैं, वे भी परद्रव्य हैं, प्रभु! आहाहा!

अपने को परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके,... आहाहा! **अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर,...** आहाहा! अपना जो ध्रुवस्वभाव है, उसकी महिमा, पर्याय में उसकी महिमा लाकर। आहाहा! परपदार्थ से भिन्न निर्णय करके और ध्रुवस्वभाव की पर्याय में महिमा लाकर। आहाहा! अर्थात् परद्रव्य से भिन्न हुआ। अब ध्रुव ज्ञायकस्वभाव है, उसकी महिमा लाकर, यह पर्याय हुई। त्रिकाली ज्ञायक भगवान पूर्ण आनन्दमूर्ति प्रभु... आहाहा! उसकी महिमा, पर्याय में महिमा लाकर। ध्रुव की पर्याय में महिमा लाकर। आहाहा! क्योंकि अनुभव तो पर्याय में है, कहीं ध्रुव का अनुभव नहीं है, तथापि शास्त्र में

ऐसा आता है, पर्याय का अनुभव और ध्रुव का अनुभव। अर्थात् ध्रुव पर लक्ष्य गया है, इसलिए ध्रुव का अनुभव, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की... भगवान आत्मा अपना ध्रुवस्वभाव जो ज्ञायक है। आहाहा! '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' (समयसार, गाथा ६) आया है न? आहाहा! ऐसा जो ज्ञायक भगवान आत्मा, आहाहा! जिसमें अनन्त शान्ति और समृद्धि आनन्द की ऋद्धि पड़ी है। आहाहा! ऐसा जो यह भगवान आत्मा, आहाहा! उसकी महिमा लाकर। परद्रव्य और राग की तथा पर्याय की महिमा छोड़कर। आहाहा! पर्याय में राग और अपनी पर्याय की महिमा छोड़कर; पर्याय में त्रिकाली ध्रुवस्वभाव की महिमा लाकर। आहाहा! आहाहा! **सम्यग्दर्शन प्रगट करने का प्रयास करना चाहिए।** आहाहा! सम्यग्दर्शन प्रगट करने का... आहाहा! प्रयास करना चाहिए। प्रथम धर्म की दशा। यद्यपि धर्म तो चारित्र है '**चारित्तं खलु धम्मो**' (प्रवचनसार, गाथा ७) परन्तु उस धर्म का मूल कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र नहीं हो सकता। आहाहा! सम्यग्दर्शन जो आत्मा का अनुभव, उसकी जो प्रतीति, ऐसी जहाँ प्रतीति आयी नहीं, सम्यग्दर्शन आया नहीं, सच्चा पूर्ण दर्शन... आहाहा! (आया नहीं), उसे तो चारित्र हो ही नहीं सकता। भले व्रत, तप और भक्ति लाख-करोड़ करे, वह चारित्र नहीं है। आहाहा!

इसलिए कहते हैं कि **सम्यग्दर्शन प्रगट करने का प्रयास करना चाहिए।** आहाहा! **यदि ध्रुव ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो...** आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा जो ध्रुव है, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्-उसमें जो आत्मा ध्रुव है, ध्रुव है। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु! आहाहा! उसका यदि आश्रय न हो, ध्रुवरूपी ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो। अकेला ध्रुव, ऐसा नहीं परन्तु यहाँ ध्रुव किसे कहना? ध्रुव तो परमाणु भी ध्रुव है। इसलिए इस ध्रुव ज्ञायक भूमि का आश्रय न हो, (ऐसा कहा है)। आहाहा! जिसकी ध्रुव ज्ञायक भूमि त्रिकाल है। आहाहा! भगवान आत्मा की। **उसका आश्रय न हो तो जीव साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा?** आहाहा!

ध्रुव ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो तो जीव साधना का बल... आहाहा! मोक्ष का मार्ग जो साधन, उस साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट होगा? आहाहा! **किसके आश्रय से प्रगट करेगा?** आहाहा! ज्ञायक चिदानन्द प्रभु ध्रुव के आश्रय की भूमिका

बिना। आहाहा! **साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा ?** आहाहा! क्या पर्याय के आश्रय से साधन प्रगट होगा ? आहाहा! दया, दान, व्रत, व्यवहाररत्नत्रय के आश्रय से यह साधन प्रगट होगा ? आहाहा! ध्रुव ज्ञायक भूमि का आश्रय न हो... आहाहा! तो जीव साधना का बल, स्वरूप की साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा ? आहाहा! बहुत थोड़े से शब्दों में...

मुमुक्षु : परम सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला परम सत्य है। कहते हैं कि पूर्ण ज्ञायक ध्रुवस्वभाव के आश्रय बिना... आहाहा! **जीव साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा ?** आहाहा! ध्रुव ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से साधना का बल प्रगट होता है। आहाहा! सिद्धान्त रचा है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि साधना का बल उस ध्रुव के आश्रय से प्रगट होता है। आहाहा! उसे जो साधना प्रगट हुई है, उसके आश्रय से भी वह साधना प्रगट न हो, समझ में आया ? आहाहा! बहुत संक्षिप्त। यहाँ उस दिन लाईन की थी।

ध्रुव ज्ञायक भूमि, ध्रुव परन्तु ज्ञायक भूमि आत्मा। परमाणु ध्रुव है परन्तु वह कहीं ज्ञायक भूमि नहीं है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश! उसमें कहाँ... वह व्रत करो और अपवास करो... श्रेणिक राजा की रानी ने बहुत उपवास किये थे। ...आता है, इसलिए यह करो, तुम्हें निर्जरा होगी। आहाहा! एक आर्यिका कहती थी कि दूसरी सब तुम बात (करते हो) परन्तु तप में निर्जरा नहीं मानते ? तप तो निर्जरा है, उपवास करना... अरे! भाई! उपवास है, वह तो राग की मन्दता हो तो अपवास कहलाता है। अपवास है, माठोवास है। आहाहा! उपवास वस्तु जो त्रिकाली ज्ञायकभाव के समीप में बसे नहीं तो उसे उपवास कहा ही नहीं जाता। आहाहा!

उसमें यह तप की व्याख्या की है, हों! उसमें यह है न ? आत्मावलोकन, नहीं ? दया की व्याख्या की है। विकारमय परिणामों द्वारा अपने निजस्वभाव का घात नहीं करना, अपने स्वभाव का पालन करना दया है। यह दया है। पर की दया, वह दया (नहीं)। आहाहा! दीपचन्दजी (में ऐसा लिखा है) फिर उन्होंने तप लिया है। कहाँ है ? व्रत का लक्षण:— इन सबमें बहुत अच्छा आता है, कहीं तप का लिखा है। तप का लक्षण:—तप किसे कहना ? शरीर, परिग्रह, भोग, कुटुम्ब, इष्टमित्र, शत्रु, परज्ञेयों को छोड़ना आदि

ममतारहित परिणति होना, तथा उसमें तृष्णारहित होना और अपने स्वभाव में स्थिरता होना, ऐसी तपस्या ही तप कहलाती है। आहाहा! यह दीपचन्दजी का है, आत्मावलोकन है। इसका नाम तप है। अपवास-उपवास किये और हो गयी तपस्या, वह तो लंघन है। आहाहा! है ? आहाहा! ....अन्तर आनन्दस्वभाव में शोधन करना, स्थिरता करना, इसका नाम तप है। बाकी सब लंघन है। बहुत व्याख्या की है।

व्रत का लक्षण:—इन्द्रिय, मन और भोगादिक (की) ओर जाने से अपने परिणामों का रोकना। इन्द्रिय मन और भोग की ओर जाने से मन को रोकना, वह व्रत। बहुत अच्छी (व्याख्या) की है। आहाहा! पहले के पण्डितों ने तो... यह क्या कहा ?

जो स्वभाव का साधन है, पूर्ण स्वभाव का केवल(ज्ञान) प्राप्त करने का यह साधन ज्ञायक के आश्रय बिना किसके बल से साधन करेगा ? बराबर है ? आहाहा! **ध्रुव ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो तो जीव साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा ?** आहाहा! निमित्त के आश्रय से साधना का बल नहीं आता, राग के आश्रय से नहीं आता, पर्याय के आश्रय से नहीं आता। आहाहा! द्रव्य, गुण और भेद के आश्रय से नहीं आता। यह ध्रुव है, इसके आश्रय से साधना का बल आता है। आहाहा! भाषा बहुत ही संक्षिप्त और एकदम मर्म रहा हुआ है। आहाहा!

ध्रुव ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो तो जीव साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा ? ज्ञायक की ध्रुव भूमि में दृष्टि जमने पर,... आहाहा! चैतन्यदल जो ध्रुव है, उसकी भूमि अर्थात् स्थान। उसकी दृष्टि जमने पर। आहाहा! **ज्ञायक की ध्रुव भूमि में दृष्टि जमने पर, उसमें एकाग्रतारूप प्रयत्न करते-करते,...** आहाहा! **निर्मलता प्रगट होती जाती है।** निर्मलता प्रगट होती जाती है। होती है, ऐसा नहीं। होती जाती है। जिसके आश्रय से विशेष निर्मलता प्रगट हुई। आहाहा! ध्रुव के आश्रय से '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' (समयसार, गाथा ११) त्रिकाली भगवान परमानन्द प्रभु ध्रुव के आश्रय से साधना का बल प्रगट होता है। बाकी निमित्त के और पर्याय के आश्रय से वह बल प्रगट नहीं होता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण -९, गुरुवार, दिनाङ्क २३-११-१९७८
वचनामृत-३९३ से ३९४ प्रवचन-१५९

(वचनामृत) ३९३ बोल दूसरा पेराग्राफ है।

साधक जीव की दृष्टि निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य पर होती है,... क्या कहते हैं? जिसे धर्म की दृष्टि हुई, तो त्रिकाली शुद्ध चैतन्य द्रव्य, उस पर दृष्टि होती है। दृष्टि है, वह पर्याय है, परन्तु पर्यायवान वस्तु ध्रुव है। धर्मी की-साधक जीव की उस पर कायम दृष्टि होती है। आहाहा! है? **साधक जीव की दृष्टि निरन्तर...** ऐसा शब्द पड़ा है। जो ध्रुवधाम, ध्रुवधाम ध्रुव की **दृष्टि निरन्तर...** चाहे जो शुभाशुभ विकल्प आवे, तो भी दृष्टि तो ध्रुव पर कायम **शुद्धात्मद्रव्य पर होती है,...** आहाहा! ऐसी बात है।

तथापि... ऐसा होने पर भी। **तथापि...** अर्थात् **साधक जीव की दृष्टि निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य पर होती है,...** आहाहा! उसकी दृष्टि पुण्य-पाप के ऊपर नहीं, उसकी दृष्टि पर्याय के ऊपर नहीं, उसकी दृष्टि निमित्त के ऊपर नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव की दृष्टि तो हमेशा ध्रुव के ऊपर है। आहाहा! **ऐसा होने पर भी साधक जानता है...** धर्मी, सम्यग्दृष्टि, दृष्टि हमेशा शुद्धात्मद्रव्य के ऊपर होने पर भी उसके ज्ञान में **साधक जानता है सबको...** आहाहा! त्रिकाल को भी जाने, पर्याय को भी जाने, राग होवे, उसे भी जाने। आहाहा! ऐसा काम है।

वह शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों को जानता है... आहाहा! आत्मा त्रिकाली शुद्ध चैतन्यघन प्रभु, उसकी दृष्टि वहाँ होने पर भी, निरन्तर दृष्टि वहाँ होने पर भी, साधक ज्ञान में त्रिकाल को भी जाने, पर्याय को भी जाने, राग को भी जाने, इस गुण-गुणी के भेद को भी जाने। आहाहा! ऐसी बात है। वीतरागमार्ग.... वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा त्रिकाली आनन्दरसकन्द प्रभु पर दृष्टि होने पर भी, निरन्तर वहाँ दृष्टि होने पर भी, साथ में जो ज्ञान

हुआ, वह ज्ञान त्रिकाल को भी जाने, पर्याय को भी जाने, राग को भी जाने, **शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों को जानता है...** आहाहा ! है ? **और उन्हें जानते हुए...** शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों को जानता है। आहाहा ! कठिन बात, बापू ! प्रभु ! तेरा मार्ग..... वीतराग-सर्वज्ञ परमेश्वर, उन्हें दिव्यध्वनि में जो मार्ग आया, तो भगवान ऐसा कहते हैं कि यह बात सन्त-दिगम्बर सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा !

वह शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों को जानता है और उन्हें जानते हुए उनके स्वभाव-विभावपने का,... आहाहा ! त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का और पर्याय में जो शुभ-अशुभ विभाव, **उनके सुख-दु:खरूप वेदन का,...** आहाहा ! स्वभाव का वेदन और विभाव का वेदन। आहाहा ! साधक है न ? ऐसा मार्ग है। आहाहा ! लोगों को कठिन पड़ता है। यह चीज़ कभी सुनने को मिलती नहीं। बाहर से यह करो, यह व्रत करो, अपवास करो, तप करो, भक्ति करो, (इससे) धर्म होगा। धूल में भी नहीं। आहाहा ! धर्म तो आत्मा धर्मी जो है, उसमें जो अनन्त... अनन्त... अनन्त... धर्म जो गुण पड़े हैं, उस अभेद की दृष्टि करने से... आहाहा ! सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की पहली सीढ़ी।

ऐसा होने पर भी पर्याय में स्वभाव का वेदन भी जानता है। आहाहा ! क्या कहा ? सब एकदम मक्खन है। आहाहा ! कल पत्र पढ़ा न ? प्रोफेसर (का पत्र था) । वह कहता है—पेराग्राफ-पेराग्राफ के रत्न का खजाना भरा है। बड़ा प्रोफेसर है। आहाहा ! आत्मा एक समय में जो ध्रुव अर्थात् पूर्ण स्वरूप है, उस पर दृष्टि पड़ने से सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की पहली सीढ़ी। तब वह साधक हुआ। पूर्ण स्वरूप का साधन। वह साधक (है) । आहाहा ! उस साधक जीव को त्रिकाली ज्ञायक पर दृष्टि निरन्तर-अन्तर बिना रहने पर भी ज्ञान, स्वभाव को और विभाव को जानता है। आहाहा ! वह दृष्टि का विषय नहीं है। स्वभाव की शुद्धता आनन्द की दशा प्रगट हुई और अशुद्धता जो दु:खरूप है, वह कहीं सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। आहाहा ! ऐसी बात है।

तथापि ज्ञानी, धर्मी जीव स्वभाव की, आनन्द की, शान्ति की पर्याय जो व्यक्त हुई, उसके वेदन को भी जानता है और अभी साथ में कमजोरी के कारण अशुद्धता—शुभ-अशुभभाव आदि होते हैं, उन्हें वेदता है, यह जानता है। आहाहा ! है ? पुस्तक सामने है, भाई ! यह तो वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर की शैली है, वह बहिन के वचन में आ गयी है।

आहाहा! यह वस्तुस्थिति है। यह तो सहज बोला गया और आ गया है। आहाहा!

उनके स्वभाव-विभावपने का, उनके सुख-दु:खरूप... स्वभाव का सुखवेदन। जितनी स्वभाव की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा प्रगट हुई, उतना सुख है और जितना अन्दर शुभ-अशुभभाव बाकी रहा, वह दु:ख है। आहाहा! साधक जीव को विभाव भी आता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह है अशुद्ध परन्तु अशुद्ध को वेदन भी जानता है और जो स्वभाव की दृष्टि होने पर शक्ति में से अनन्त गुण की व्यक्तता पर्याय अंश प्रगट हुआ, उसके वेदन को भी जानता है। आहाहा!

वेदन का, उनके साधक-बाधकपने का इत्यादि का विवेक वर्तता है। आहाहा! जितना शुद्धस्वरूप चैतन्य, उसके आश्रय से जो निर्मल दशा प्रगट हुई, उसे भी जानता है। है साधक... आहाहा! और बाधक, बीच में रागादि शुभराग आता है। वह साधक-बाधक दोनों को जानता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **साधक-बाधकपने का इत्यादि...** अर्थात् रागादि, शुभ-अशुभ आदि **इत्यादि का विवेक वर्तता है।** आहाहा! मैं तो शुद्ध स्वभाव पवित्र हूँ। ऐसी जो प्रगट दशा है, वह मैं हूँ और रागादि मैं नहीं परन्तु वेदन में आते हैं। राग आये बिना रहता नहीं। अब ऐसा मार्ग! आहाहा! लोगों ने कुछ कर डाला, फिर मार्ग को नोंच डाला। आहाहा! व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, यात्रा करो। यह तो सब राग की क्रिया है। शरीर की क्रिया तो जड़ की है परन्तु अन्दर राग है, वह शुभराग तो आकुलता की, दु:ख की क्रिया है। आहाहा!

भगवान आत्मा निराकुल अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव, उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन आदि निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह साधक है, उसे भी जानता है; बीच में रागादि बाधक विघ्न है, उसे भी जानता है। आहाहा! अब ऐसा मार्ग। वे कहे, भाई! सम्मेदशिखर की यात्रा, गिरनार की यात्रा, पालीताणा की यात्रा। धमाल.. धमाल..।

मुमुक्षु : बारह महीने में एक बार जाये तो पाप धुल जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया। पाप धुल जाये, लो! धूल में भी पाप धुलते नहीं। भाई! तुझे खबर नहीं है। भगवान पवित्रता का पिण्ड, प्रभु! उसकी दृष्टि हुए बिना मिथ्यात्व धुलता नहीं है। आहाहा! शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान, वह तीर्थ है, उसमें अन्दर जाने से

मिथ्यात्व का नाश होता है, तब थोड़ी अशुद्धता का नाश होता है। बाकी अशुद्धता है। उसे जानता है कि यह बाधकपना अन्दर है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! यह ऐसा है। दिल्ली से आये हैं न?

साधकदशा में साधक के योग्य अनेक परिणाम वर्तते रहते हैं... आहाहा! आत्मा शुद्धचैतन्य प्रभु, पवित्र का धाम, ध्रुवधाम, उसे दृष्टि में लिया तो पर्याय में शुद्ध निर्मलदशा हुई, वह साधक। आहाहा! और उस **साधक के योग्य अनेक परिणाम वर्तते रहते हैं...** पर्याय अनेक है। वह निर्मल भी होती है। आहाहा! उसके योग्य अर्थात् जो भूमिका है, चौथा, पाँचवाँ (गुणस्थान), उसके योग्य शुभभाव भी होते हैं। आहाहा! **परन्तु 'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है।** आहाहा! समुद्र में जहाज चलता है तो ध्रुवतारे के लक्ष्य से चलता है। ध्रुव-ध्रुव, ध्रुवतारा है न? ध्रुव। इसी प्रकार यह ध्रुव वस्तु भगवान आत्मा, इसके लक्ष्य से पर्याय में निर्मलता आती है। आहाहा! बाकी आत्मज्ञान और आत्म-अनुभव नहीं है, वहाँ जो कुछ व्रत, भक्ति और तपादि करे, वह सब संसार है। चार गति में भटकने की चीज़ है। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़ती हैं। क्या हो? भाई! अरे! ऐसी मनुष्यदेह मिली, वीतरागमार्ग का सुनने को मिले, उस समय यह न समझे तो प्रभु! यह कब समझेगा?

यह सब क्रियायें - व्रत, उपवास, देव-गुरु-शास्त्र का विनय और भक्ति, यह सब भाव तो राग है। यह साधक को आता है परन्तु उस साधक को स्वरूप की शुद्धता का आश्रय होने से जो निर्मलता प्रगट हुई, वह साधक और धर्म है। आहाहा! **'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है।** साथ का साथ रहता है। क्या?—कि पर्याय में अनेक प्रकार के साधक और बाधक के परिणाम होते हैं। आहाहा! तथापि आहाहा! **'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है।** आहाहा! अब ऐसी बातें! वस्तु है, वह परिपूर्ण आनन्दकन्द प्रभु। उसका तो बल सतत रहता है। चाहे जो शुद्ध-अशुद्ध परिणाम हों। आहाहा! परन्तु **'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है... साथ ही साथ रहता है।** अनेक प्रकार के सम्यग्दर्शन-ज्ञान परिणाम और शुभादिक परिणाम हों, परन्तु निरन्तर साथ में परिपूर्ण हूँ, यह दृष्टि हटती नहीं है। आहाहा! खसती नहीं है को क्या कहते हैं? हटती नहीं है। आहाहा! **ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है।**

पुरुषार्थरूप क्रिया अपनी पर्याय में होती है... आहाहा! पुरुषार्थ जो स्वभावसन्मुख प्रयत्न जाता है, वह पुरुषार्थ होता है। आहाहा! पुरुषार्थरूप क्रिया अर्थात् परिणति पर्याय में। पुरुषार्थ, वह **अपनी पर्याय में होती है...** उस पुरुषार्थ की क्रिया अपनी पर्याय में होती है। आहाहा! द्रव्य जो है, उसमें नहीं। आहाहा! वस्तु जो भगवान आत्मा, उसकी पर्याय में अनेक प्रकार का पुरुषार्थ वर्तता है और साधक उसे जानता है। आहाहा! पर्याय में है न? पुरुषार्थ है न? आहाहा!

तथापि दृष्टि के विषयभूत ऐसा जो निष्क्रिय द्रव्य... वह क्रिया कही न क्रिया? **पुरुषार्थरूप क्रिया (अपनी) पर्याय में...** अरे! पर्याय क्या? द्रव्य क्या? कुछ खबर नहीं होती। आहाहा! वर्तमान जो पर्याय है, उसमें पुरुषार्थ की क्रिया, स्वसन्मुख की क्रिया होती है। आहाहा! **तथापि दृष्टि के विषयभूत ऐसा जो निष्क्रिय द्रव्य...** आहाहा! जो वस्तु है, वह तो निष्क्रिय द्रव्य है। पर्याय के अतिरिक्त द्रव्य है। पर्याय उससे भिन्न है। आहाहा! पुरुषार्थ की पर्याय, पर्याय में होती है। पुरुषार्थ की क्रिया पर्याय में होती है। वह क्रिया होने पर भी... आहाहा! **निष्क्रिय द्रव्य, वह अधिक का अधिक रहता है।** आहाहा! उस पर्याय में चाहे तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—मोक्षमार्ग उत्पन्न हो, तथापि उसका लक्ष्य तो **निष्क्रिय द्रव्य, वह अधिक का अधिक रहता है।** आहाहा!

पर्यायरहित निष्क्रिय द्रव्य। पुरुषार्थ, वह क्रिया पर्याय में है। पुरुषार्थ (अर्थात्) द्रव्यसन्मुख झुकना, वह पुरुषार्थ पर्याय में है। पुरुषार्थ की क्रिया। आहाहा! तथापि **निष्क्रिय द्रव्य वह अधिक का अधिक रहता है।** यह पुरुषार्थ की पर्याय है, इससे निष्क्रिय द्रव्य तो भिन्न-अधिक का अधिक रहता है। आहाहा! जो ध्येय, द्रव्य का ध्येय जो कुछ हो, वह तो निष्क्रिय द्रव्य है। निष्क्रिय द्रव्य है। यह पुरुषार्थ, पर्याय में मोक्ष के मार्ग का पुरुषार्थ... आहाहा! पर्याय में होने पर भी निष्क्रिय द्रव्य के ऊपर दृष्टि है। वह अधिक का अधिक रहता है। फिर चाहे जितना पुरुषार्थ पर्याय में हो परन्तु द्रव्य तो भिन्न और अधिक रहता है। आहाहा! ऐसी बात है।

निष्क्रिय द्रव्य... सक्रिय पुरुषार्थ। पुरुषार्थ सक्रिय, हों! स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थ जो सक्रिय है, निर्मल है। आहाहा! ऐसा होने पर भी **दृष्टि के विषयभूत ऐसा जो निष्क्रिय**

द्रव्य वह... वह तो भिन्न, अधिक और ऊँचा रहता है। आहाहा! यह क्या कहते हैं? पर्याय में द्रव्यसन्मुख का पुरुषार्थ, पुरुषार्थ की–वीर्य की क्रिया पर्याय में होने पर भी... आहाहा! निष्क्रिय ऐसा जो द्रव्य, वह अधिक का अधिक रहता है। उससे भिन्न का भिन्न रहता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है। वीतराग जिनेश्वरदेव परमात्मा की वाणी, वह सन्तों की वाणी; सन्तों की वाणी, वह सम्यग्दृष्टि की वाणी। आहाहा!

क्या कहते हैं? कि द्रव्य, पर्यायरहित वस्तु जो निष्क्रिय है, तो उसकी पर्याय में पुरुषार्थ की क्रिया होने पर भी **निष्क्रिय द्रव्य वह अधिक का अधिक...** भिन्न रहता है। आहाहा! इस पुरुषार्थ की पर्याय में निष्क्रिय द्रव्य नहीं आता। आहाहा! यह क्या कहते हैं? पर्याय में ज्ञान की पर्याय, श्रद्धा की पर्याय में निष्क्रिय द्रव्य की ज्ञान और श्रद्धा होती है। पूर्ण निष्क्रिय है, उसकी श्रद्धा और पूर्ण है, उसका ज्ञान। ऐसा होने पर भी... आहाहा! पर्याय से भिन्न–अधिक द्रव्य रहता है। आहाहा! ऐसा सुना नहीं हो, उसे ऐसा लगता है यह क्या कहते हैं? ऐसा मार्ग! हमने तो भाई! व्रत करना, तपस्या करना, यात्राएँ करना, गजरथ निकालना (इसे धर्म समझते थे)। अरे! भाई! आहाहा! यह मन्दिर बनाना... मन्दिर तो परमाणु की पर्याय है। वह कहीं आत्मा बना सकता है? आहाहा! इसका भाव होवे तो शुभराग हो। राग वह अशुद्ध क्रिया है।

मुमुक्षु : उसमें धर्म कितना होगा मन्दिर बनाने में?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी धर्म नहीं। ऐई! यह सब नैरोबी में बनानेवाले हैं न, आहाहा! कौन बनावे? भाई! आहाहा! जिस समय उस पुद्‌गल स्कन्ध की पर्याय जिस समय में जो उत्पन्न होनेवाली है, वह उत्पन्न होगी। दूसरा कोई करे, ऐसा नहीं है। आहाहा! उसे तो करे नहीं, परन्तु राग है, वह साधक को कर्तृत्वबुद्धि से नहीं आता। आहाहा! क्योंकि भगवान तो ज्ञानस्वरूपी है। आहाहा! उसमें राग आता है, वह आत्मा का कार्य नहीं है। आहाहा! तथापि परिणमन की अपेक्षा से ज्ञान जानता है कि मुझमें परिणमन है। बस! आहाहा!

ऐसी साधक-परिणति की... ऐसी साधक-परिणति की... क्या? **अटपटी रीति को...** आहाहा! पर्याय में द्रव्य की ओर का पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ की क्रिया पर्याय में है,

तथापि निष्क्रिय द्रव्य उससे भिन्न रहता है। ऐसी अटपटी बात ज्ञानी जानता है। अज्ञानी को पता नहीं लगता। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यहाँ तो समाज का सुधार करना... अरे! भगवान! किसका सुधार करे? भाई! आहाहा! कन्या को दहेज दे, उसका सुधार करो। आहाहा! क्या करे? भाई! वह तो जड़ की क्रिया जड़ के कारण होती है। वहाँ तेरा भाव होवे तो अशुभभाव हो परन्तु अशुभभाव की क्रिया भी पर्याय में है। द्रव्य जो निष्क्रिय है, वह तो उससे सदा भिन्न-अधिक रहता है। सामने पुस्तक है न?

मुमुक्षु : आप अर्थ करते हो, तब समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी साधक-परिणति की अटपटी रीति को ज्ञानी बराबर समझते हैं,... आहाहा! धर्मी, साधक वस्तु की दृष्टि हुई और दृष्टि निरन्तर ध्रुव के ऊपर है, ऐसे साधक को ऐसी अटपटी (परिणति) का बराबर ज्ञान होता है। आहाहा! तब लोग ऐसा कहते हैं कि भरत चक्रवर्ती और बाहुबलीजी लड़े, वे ज्ञानी थे? अरे रे! भगवान! ज्ञानी तो सप्तम गुणस्थान में, निर्विकल्प समाधि में रहे, ऐसा (वे) कहते हैं। क्या हो? आहाहा! यहाँ तो 'करे कर्म सो हि करतारा, जो जाने सो जाननहारा; जाने सो कर्ता नहीं होई, कर्ता सो जाने नहीं कोई।' आहाहा! ऐसी बातें वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा! इतिहास में एक लेख आता है। श्वेताम्बर का बड़ा लेख (है कि) भगवान माँस खाते थे। अर..र..र! बड़ा लेख है। अरे! प्रभु! माँस क्या, केवली को आहार नहीं होता।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : आहार कैसा? आहाहा! अकेला अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय केवलज्ञान जहाँ पूर्ण प्रगट हुआ, वहाँ भगवान को आहार कैसा? दाल-भात का आहार कैसा? माँस की तो बात नहीं, भाई! माँस का आहार तो सम्यग्दृष्टि को नहीं होता। बड़ा लेख है। किसी ने बड़ा विस्तार करके लिखा है। श्वेताम्बर के सामने डाला है। बापू! यह मार्ग कोई अलग है। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान को भी कर्म-नोकर्म आहार तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म होते हैं, उसमें क्या? उसमें दाल, भात, रोटी... भगवान पानी पीते हैं, भगवान को रोग होता है, दवा लेते हैं, (ऐसा श्वेताम्बर कहते हैं)। भगवान

को कुछ नहीं होता। आहाहा! बड़ा लेख है। कोई व्यक्ति है, उसने बनाया है। फिर उन लोगों ने टीका (आलोचना) की है परन्तु वह श्वेताम्बर के पन्द्रहवें शतक में यह बात है। आहाहा! कि मूल माँस लेना, वृद्ध आचार्य ऐसा कहते हैं। अर..र..र! अरे! माँस तो सम्यग्दृष्टि को नहीं होता। आहाहा! भगवान को माँस! प्रभु! प्रभु! यह तू क्या करता है? अरे रे! भगवान का विरह पड़ा, उसमें ऐसा मार्ग चलावे। यह आत्मा को नुकसान करेगा, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो केवली का बड़ा अवर्णवाद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा अवर्णवाद। आहाहा! मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है। भगवान को आहार और उसमें भी माँस। प्रभु को आहार होता ही नहीं। अनन्त-अनन्त आनन्द का आहार अनुभव अन्दर है। उन्हें आहार लेना, यह विकल्प कैसा? आहाहा! उन्हें दूसरे को वन्दन करूँ, ऐसा विकल्प कैसा? आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ, ऐसी पर्याय प्रगट हो, ओहो! उसमें आहार या रोग नहीं होता। शरीर को रोग नहीं होता। आहाहा! तीर्थंकर को तो जन्म से आहार होता है परन्तु निहार और पेशाब नहीं होता। आहाहा! यह जिनेश्वर प्रभु! आहाहा! उसके बदले केवली को माँस-आहार! अर..र..र! प्रभु! तू क्या करता है? भाई! यह पन्थ निकला, तब से घोटाला खड़ा हुआ है। आहाहा! दो हजार वर्ष (पहले) दिगम्बर में से श्वेताम्बर पन्थ निकला है। पश्चात् गड़बड़ हो गयी, भाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, साधक को रागादि आते हैं और शुद्धता आदि होती है। **ऐसी साधक-परिणति की अटपटी रीति को ज्ञानी बराबर समझते हैं, दूसरों को समझना कठिन होता है।** आहाहा! राग होता है और कर्ता नहीं होता। आहाहा! राग करनेयोग्य है, ऐसा ज्ञानी को नहीं होता, तथापि राग आता है। आहाहा! अरे! प्रभु! आहाहा! जिनेश्वरदेव भगवान तो महाविदेह में रह गये। आहाहा! त्रिलोकनाथ वहाँ तो समवसरण में विराजते हैं। आहाहा! उनकी बात अभी पंचम काल में फेरफार कर दी है। आहाहा! यह ३९३ (बोल पूरा) हुआ। आहाहा!

मुनिराज के हृदय में एक आत्मा ही विराजता है। उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है। आत्मा के आश्रय से बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है। घोर जंगल हो, घनी झाड़ी हो, सिंह-व्याघ्र दहाड़ते हों, मेघाच्छन्न डरावनी रात हो, चारों ओर अंधकार व्याप्त हो, वहाँ गिरिगुफा में मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही मस्त होकर निवास करते हैं। आत्मा में से बाहर आयें तो श्रुतादि के चिन्तवन में चित्त लगता है और फिर अन्तर में चले जाते हैं। स्वरूप के झूले में झूलते हैं। मुनिराज को एक आत्मलीनता का ही काम है। अद्‌भुत दशा है ॥३९४॥

अब, मुनिराज की बात आयी। आहाहा! मुनि अर्थात् क्या ? बापू! आहाहा! जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ पर्याय में आती है। आहाहा! यह नग्नपना और पंच महाव्रत के परिणाम, वह कोई मुनिपना नहीं है। आहाहा! मुनिपना तो अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु, आहाहा! प्रचुर स्वसंवेदन से प्रगट हुआ है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में-उग्र में प्रगट हुआ है, उसे मुनि कहते हैं। बापू! आहाहा! ऐसी अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद बिना पंच महाव्रतादि की क्रिया करे, वह कोई मुनि नहीं है। आहाहा!

मुनिराज के हृदय में एक आत्मा ही विराजता है। आहाहा! 'ध्रुव धणी माथे कियो रे कुण गंजे नर खेट...' ध्रुव... आहाहा! मुनि को तो ध्रुव के ऊपर दृष्टि है और स्वरूप में इतनी स्थिरता है कि प्रचुर आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! उसे मुनिपना कहते हैं। राग की क्रिया आवे, उसे मुनिपना है, वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! साधक है; पूर्ण साध्य प्रगट नहीं हुआ, तो राग आता है, परन्तु वह कहीं धर्म नहीं है, वह कहीं चारित्र नहीं है। आहाहा! चारित्र तो अन्दर आनन्द के नाथ में चरना, रमना, जमना। अतीन्द्रिय आनन्द का... आहाहा! गटक.. गटक.. आनन्द का स्वाद लेना। आहाहा! मुनिराज के हृदय में तो भगवान आत्मा विराजता है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ये मुनि होनेवाले थे। दिल्ली... दिल्ली।

मुमुक्षु : आपका उपदेश बराबर लागू पड़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू! मार्ग यह है, प्रभु! मेरा कहाँ, यह तो भगवान का मार्ग है।

आहाहा! अरे रे! अभी सम्यग्दर्शन क्या है, इसकी खबर नहीं, और वहाँ मुनि हो जाए। बापू! वह तो द्रव्यलिंगी भी नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं **मुनिराज के हृदय में एक आत्मा...** एक आत्मा—ऐसा शब्द है न? भेद नहीं। आहाहा! पर्याय नहीं, गुणभेद नहीं। आहाहा! **एक आत्मा ही...** वापस देखा? **विराजता है।** आहाहा! **उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है।** आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द की रमणता, वह उनका प्रवर्तन है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, वह उनका प्रवर्तन है। आहाहा! पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं, परन्तु वह कोई साधकदशा नहीं है। वह तो बीच में विकल्प आता है। वह साधक नहीं है। वह सिद्ध की-मुक्ति को साधता नहीं है। आहाहा!

उनका सर्व प्रवर्तन... भाषा देखो! **मुनिराज के हृदय में एक आत्मा ही...** आत्मा ही। जिन्हें पर्याय में भगवान की भेंट हुई है। आहाहा! वह आत्मा ही उनके हृदय में विराजता है। आहाहा! **उनका सर्व प्रवर्तन...** यहाँ रागादि की बात नहीं है। **सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है।** अन्दर में रमणता... रमणता... रमणता... रमणता... आहाहा! सर्व प्रवर्तन आत्मामय कहा न? राग नहीं। आहाहा! राग आता है तो उसे जानते हैं। यह जानने का प्रवर्तन उनका है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें! और इस दशा के बिना मुक्ति नहीं है। अकेले सम्यग्दर्शन-ज्ञान से मुक्ति होती है—ऐसा नहीं है। आहाहा!

उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय... देखो! यहाँ आत्मामय प्रवर्तन क्या? ज्ञान में एकाग्रता, आनन्द में एकाग्रता, स्वभाव में, ईश्वरता में यह सब प्रवर्तन आत्मामय है। आहाहा! समझना कठिन पड़े, ऐसा है। **सर्व प्रवर्तन आत्मामय...** रागादि प्रवर्तन उनका नहीं है। आहाहा! **आत्मामय ही है।** आहाहा! वे तो शुद्ध चैतन्य ध्रुव की ओर अन्दर ढल गये हैं। आहाहा! उसकी ओर का सब प्रवर्तन, शुद्धपर्याय का प्रवर्तन आत्मामय है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें! यहाँ तो पंच महाव्रत (ग्रहण करके) और वस्त्र छोड़कर नग्न हुआ, तो हो गया साधु। अरे! भाई! अभी सम्यग्दर्शन भी किसे कहना? बापू! तीन लोक का नाथ, पूर्णानन्द प्रभु, आहाहा! पर्याय में उसका साक्षात्कार न हो, तब तक सम्यग्दर्शन नहीं है। आहाहा!

आत्मा के आश्रय से... भगवान पूर्णानन्द प्रभु, अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण का

पिण्ड प्रभु, उसके आश्रय से... आहाहा! **बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है।** आहाहा! नि:शंकता कहते हैं न? निर्भयता। आहाहा! आनन्द के नाथ में रमणता करते हैं। आहाहा! मुनिराज तो उन्हें कहते हैं। आहाहा! अन्तर में आनन्द, ज्ञान और शान्ति में रमते हैं। निर्मलता प्रगट हुई है। आहाहा! भय किसका? सिंह, बाघ और काला नाग नजर में आवे तो भी भय नहीं है। आहाहा!

श्रीमद् में आया है न? आहाहा! 'एकाकी विचरूँगा जब श्मशान में।' अकेला आत्मा आनन्द का नाथ और विचरता श्मशान में। आहाहा! 'अरु पर्वत पर बाघ-सिंह संयोग जब।' पर्वत में बाघ और सिंह का संयोग हो। 'अडोल आसन अरु मन में...' आसन तो अडोल भले हो, परन्तु मन में क्षोभ नहीं। आहाहा! 'अडोल आसन अरु मन में नहीं क्षोभ हो; परम मित्र का मानो पाया योग जब।' आहाहा! उस परीषह-उपसर्ग के काल में द्रव्य को तीव्रता से पकड़ते हैं। आहाहा! ज्ञायकमूर्ति वस्तु द्रव्य है। आहाहा! मुनिराज ऐसे परीषह और उपसर्ग के काल में त्रिकाल (स्वभाव में) लिपट जाते हैं। आहाहा!

आत्मा के आश्रय से बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है। घोर जंगल हो, घनी झाड़ी हो,... घोर जंगल... आहाहा! जिसमें **सिंह-व्याघ्र दहाड़ते हों,...** परन्तु मुनिराज तो अन्दर आनन्द में केलि करते हैं। आहाहा! आहाहा! **सिंह-व्याघ्र दहाड़ते हों,... घनी झाड़ी हो,...** झाड़ी हो। वृक्ष.. वृक्ष.. वृक्ष.. वृक्ष.. हजारों-लाखों वृक्ष। नीचे अकेले। आहाहा! **सिंह-व्याघ्र दहाड़ते हों,...** दहाड़ मारते हों। सिंह और बाघ, जिनकी दहाड़ सुनकर मनुष्य भागे। ऐसी यह दहाड़ सुनकर अन्दर में जाते हैं। अन्तर आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... उन्हें ऐसे अवसर में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद उग्र होता है। आहाहा! अभी मेरे स्वरूप साधन की परीक्षा है, ऐसा मानते हैं। आहाहा! बापू! मुनिपना, वह तो कोई अलौकिक बात है। अभी सम्यग्दर्शन ही अलौकिक है, वहाँ मुनिपने की क्या बात करना! आहाहा!

सम्यग्दर्शन (अर्थात्) अभी चौथा गुणस्थान। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ ध्रुव प्रभु! उसकी ओर झुकाव हुआ। आहाहा! तथापि निष्क्रिय में वह झुकाव की पर्याय नहीं आती। झुकाव की पर्याय में निष्क्रिय द्रव्य नहीं आता। आहाहा! यह तो आ गया, नहीं? पर्याय में पुरुषार्थ की क्रिया होने पर भी, निष्क्रिय द्रव्य / वस्तु जो अन्दर है, वह तो इससे अधिक / भिन्न रहती है। इसका नाम चारित्र-मुनिपना है। आहाहा! जिसे गणधर नमस्कार

करे। चौदह पूर्व की और बारह अंग की अन्तर्मुहूर्त में रचना करे। आहाहा! वे भी णमो लोए सव्व साहूणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। आहाहा! जिनके चरण में गणधर का नमस्कार पहुँचे। आहाहा! वह मुनिपना कैसा होगा? प्रभु!

मेघाच्छन्न डरावनी रात हो,... क्या कहते हैं? मूसलधार बरसात गिरे और मेघाच्छन्न रात्रि। मूसलधार वर्षा। मुनि तो वहाँ आनन्द में-आनन्द में प्रविष्ट हो गये हैं। **चारों ओर अंधकार व्याप्त हो,...** चारों ओर अन्धकार व्याप्त हो, अन्दर चैतन्यप्रकाश पूर्णानन्द में व्याप्त है। आहाहा! **चारों ओर अंधकार व्याप्त हो, वहाँ गिरिगुफा में मुनिराज बस अकेले...** आहाहा! **चैतन्य में ही मस्त होकर...** आहाहा! बाहर का ज्ञान भी भूल जाते हैं। अन्दर ख्याल हो, परन्तु उपयोग अन्दर जम जाता है। आहाहा! अन्दर में आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ पर्याय में-अवस्था में आती है।

उस अँधेरी रात्रि में भी **गिरिगुफा में मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही...** अकेले चैतन्य में ही, आहा! **मस्त होकर...** सम्यग्दर्शन में द्रव्यस्वभाव जो अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उसका जो ज्ञान हुआ है और उसकी प्रतीति हुई है, उसमें रमणता करते हैं। आहाहा! **अकेले चैतन्य में ही मस्त होकर निवास करते हैं।** अन्दर में। **आत्मा में से बाहर आयें तो श्रुतादि के चिन्तवन में चित्त लगता है...** आहाहा! ध्यान और आनन्द में से बाहर निकलते हैं तो भगवान ने कहे हुए सर्वज्ञ परमेश्वर ने (कहे हुए), ऐसे **श्रुतादि के चिन्तवन में चित्त लगता है...** देव-गुरु-शास्त्र श्रुतादि इत्यादि। आदि है न? **चित्त लगता है और फिर अन्तर में चले जाते हैं।** आहाहा!

क्या कहते हैं? सप्तम गुणस्थान में अन्दर आनन्द में झूलते हैं। जरा विकल्प आया तो शास्त्र स्वाध्याय आदि (करते हैं) और वापिस अन्दर चले जाते हैं। आहाहा! शास्त्र स्वाध्याय आदि हुआ, इसलिए अन्दर चले गये, ऐसा नहीं है। आहाहा! **अन्तर में चले जाते हैं।** आनन्द-आनन्द अप्रमत्त दशा। आहाहा! **बाहर आयें तो श्रुतादि के चिन्तवन में चित्त लगता है...** शुभविकल्प। **और फिर अन्तर में चले जाते हैं।** आहाहा! आनन्द के घर में, निजघर में चले जाते हैं। विकल्प आया, वह तो बाह्य घर है। वह निजघर नहीं है। आहाहा! इतनी निर्मलता प्रगट हुई है, इतना द्रव्य का उग्र आश्रय लिया है कि विकल्प आया तो स्वाध्याय करके वापस अन्दर चले जाते हैं। आहाहा! समाज और बाहर की उन्हें

कुछ नहीं पड़ी है। प्रकरण में यह शब्द है। सिर पर कोई काम नहीं लेना, कि भाई! इतनी पाठशाला में तुम्हें उपस्थित रहना पड़ेगा या इतनी पुस्तकें बनाना। आहाहा!

मुमुक्षु : शिष्यों की सम्हाल रखना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शिष्य की सम्हाल के लिये नहीं। विकल्प आया तो ऐसा कहते हैं कि शिष्य की सम्हाल का विकल्प। अन्दर चले जायें तो सब छूट जाता है। आहाहा!

आत्मा में से बाहर आयें तो श्रुतादि के चिन्तवन में चित्त लगता है और फिर अन्तर में चले जाते हैं। आहाहा! सातवें गुणस्थान में आनन्द में रमते हैं। जहाँ फिर विकल्प आया तो छठा गुणस्थान हुआ। वापस सातवें गुणस्थान में चले जाते हैं। जो सच्चे मुनि सच्चे भावलिंगी हैं, उन्हें तो छठा-सातवाँ गुणस्थान अन्तर्मुहूर्त में सैकड़ों बार आता है। आहाहा! अन्तर घर में जम जाते हैं। बाहर थोड़ा विकल्प आवे तो स्वाध्याय करते हैं। फिर अन्दर चले जाते हैं। आहाहा! ऐसा मुनिपना!

स्वरूप के झूले में झूलते हैं। मुनिराज तो अपने आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलते हैं। आहाहा! ऐसा मुनिपना है। ऐसा मुनिपना हो, उसे मुनि मानना, ऐसा (कहते हैं)। आहाहा! इससे विरुद्ध को मानना, वह तो श्रद्धा मिथ्या है। आहाहा! बहुत कठिन बात। दुनिया से तो एक ओर होकर बाहर अलग पड़ जाये। हजारों लोग, दस-दस हजार, बीस-बीस हजार... ओहोहो! महिमा करते हों, बाहर की क्रिया करे। उसमें क्या हुआ?

स्वरूप के झूले में झूलते हैं। स्वरूप के झूले में झूलते हैं। आहाहा! **मुनिराज को एक आत्मलीनता का ही काम है।** मुनिराज को एक आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान में लीनता का ही एक काम है। आहाहा! **अद्भुत दशा है।** मुनिदशा तो अद्भुत है। जिसे गणधर नमस्कार करें, वह दशा कैसी होगी? भाई! आहाहा! बारह अंग और चौदह पूर्व की रचना और चार ज्ञान अन्तर्मुहूर्त में गणधर को होते हैं। वे भी णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं (कहते हैं)। आहाहा! जिनके चरण में गणधर का नमस्कार पहुँचे, बापू! वह मुनिपना कैसा होगा? आहाहा! **अद्भुत दशा है।** विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण -९, शुक्रवार, दिनाङ्क २४-११-१९७८
वचनामृत-३९५ से ३९६ प्रवचन-१६०

चेतन का चैतन्यस्वरूप पहिचानकर उसका अनुभव करने पर विभाव का रस टूट जाता है। इसलिए चैतन्यस्वरूप की भूमि पर खड़ा रहकर तू विभाव को तोड़ सकेगा। विभाव को तोड़ने का यही उपाय है। विभाव में खड़े-खड़े विभाव नहीं टूटेगा; मन्द होगा, और उससे देवादि की गति मिलेगी, परन्तु चार गति का अभाव नहीं होगा॥३९५॥

(वचनामृत) ३९५, **चेतन का चैतन्यस्वरूप पहिचानकर उसका अनुभव करने पर विभाव का रस टूट जाता है।** आहाहा! क्या कहते हैं? चेतन, ऐसा जो आत्मा, उसका चैतन्यस्वरूप, उसे पहिचानकर, उसमें अनुभव होने से विभाव की एकता का रस टूट जाता है। ऐसे शब्द हैं। चेतन का, चेतन अर्थात् द्रव्य वस्तु। उसका चैतन्यस्वरूप त्रिकाली। उसे पहिचानकर। एक प्रश्न ऐसा आया था कि पर्याय में छह द्रव्यों को जाने, तब तो अभी इसने पर्याय मानी कहलाये, द्रव्य नहीं। एक समय की पर्याय में छह द्रव्य (जाने), परन्तु उसे कही है न पर्याय? ३९२ कलश। एक बार बात हो गयी थी कि पर्याय को जाने, उसने छह द्रव्यों को जाना, उसने पर्याय जानी। दूसरे प्रकार से कहें तो देव-गुरु को जाना, वह पर्याय में जाना। आहाहा! उनकी भक्ति का भाव तो राग है, परन्तु उनका ज्ञान हुआ... वे परद्रव्य है न? आहाहा! उनका जो ज्ञान हुआ, वह पर्याय में हुआ और वह पर्याय है। आहाहा! उसमें खड़े रहकर चैतन्य का ज्ञान नहीं होता। आहाहा! अब ऐसी बातें! बेचारे क्या करे? वे बड़ोदरा के आये थे। हम सब जानते हैं परन्तु हम कर सकते हैं क्या? यह व्रत और तप। धूल भी नहीं। आहाहा! भाई! यहाँ तो चेतन जो वस्तु है द्रव्य; पर्याय में छह द्रव्यों का ज्ञान होता है, तब उस पर्याय की इतनी ताकत है, उसका ज्ञान हुआ। आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो देव-गुरु का ज्ञान हुआ, वह पर्याय में ज्ञान हुआ। वह परद्रव्य का ज्ञान हुआ, स्वद्रव्य का नहीं। वह पर्याय परद्रव्य... आहाहा!

यहाँ तो चेतनद्रव्य का चैतन्यस्वरूप। आहाहा! उसे पहिचानकर। पर्याय ने उसे पहिचानकर। पर्याय में जो देव-गुरु का ज्ञान था, वह भी वह तो परद्रव्य का ज्ञान पर्याय का स्वभाव है, परन्तु इससे स्वद्रव्य का ज्ञान नहीं आया। आहाहा! ऐसा गजब मार्ग!

मुमुक्षु : यह विभाव का लक्ष्य ही कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परद्रव्य का प्रेम है, इसका अर्थ यह। उसका अर्थ कि विभाव के ऊपर उसका लक्ष्य है। पर्याय के ऊपर लक्ष्य है अर्थात् विभाव के ऊपर लक्ष्य है। आश्रय की अभी बात नहीं है। पर्याय का आश्रय करना कि यह यहाँ (नहीं है) पर्याय में इसे... पर्याय उसे कहते हैं कि जिसमें छह द्रव्य का ज्ञान हो, उसे पर्याय कहते हैं। भाई! आहाहा!

एक बार कहा था, पर्याय में... सूक्ष्म बात, भगवान! आहाहा! कोई ऐसा कहे कि देव-गुरु की भक्ति से (होता है) तो वह तो राग है, वह तो कुछ नहीं परन्तु देव-गुरु का ज्ञान यहाँ पर्याय में हुआ परन्तु वह परद्रव्य का ज्ञान हुआ तो वह पर्यायमात्र रहा। आहाहा! यह चेतन का चैतन्यस्वरूप, उसका ज्ञान नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें। कहो, देवीलालजी! ऐसा है।

भगवान आत्मा में दो अंश-एक प्रभु का-चेतन का चैतन्यस्वरूप और एक पर्याय अंश। अब दो के बीच में पर्याय जो है, उसे पर्याय कहते हैं कि जो छह द्रव्य को जाने, उसका नाम पर्याय। आहाहा! और वह पर्याय देव-गुरु को भी जाने, देव-गुरु को जाने कि यह देव ऐसे हैं, यह अरिहन्त ऐसे हैं। आहाहा! एक ओर ऐसा कहा कि अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय जाने। यह तो निमित्त का कथन बतलाया। परन्तु देव-गुरु और पर्याय को जाने वह तो पर्याय में ज्ञान हुआ। भाई! फिर तो उन्हें जाना व्यवहार से कब कहलाये कि जब द्रव्यस्वभाव की ओर, चैतन्यस्वरूप की ओर पर्याय को गुण में मिलाना, गुण को द्रव्य में मिलाना। एक ओर ऐसा कहना कि देव-गुरु का ज्ञान, वह पर्याय का ज्ञान है, वह परद्रव्य का ज्ञान है। पर्याय स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य है। आहाहा! नियमसार में कहा न? बहुत

गजब बात। ओहोहो! क्या उनकी शैली, क्या उनकी पद्धति! सन्तों के सिद्धान्त बहुत गहन!! आहाहा! वह पर्याय... है न, अतत् का बोल है लगभग। तत् और अतत् है न? पहले दो बोल। चौदह बोल, नहीं? तत्, अतत् एक अनेक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, अस्ति, नास्ति बारह और नित्य-अनित्य, (इस प्रकार) चौदह। चौदह बोल है न? उसमें यह है। उस दिन कहा गया था। पर्याय उसे कहते हैं कि जो छह द्रव्य को जाने, उतनी पर्याय में (ताकत है)। उसे ही पर्याय कहते हैं। आहाहा! तो उसमें देव-गुरु आ गये। और सैंतीस गाथा में कहा न? धर्म आदि। धर्म आदि अर्थात् छहों द्रव्य। उसमें जीव आये। देव-गुरु का जीव भी आ गया। है न? वह मैं नहीं। मैं तो उपयोग, आनन्द, ज्ञानस्वरूप उपयोग, वह मैं हूँ। आता है न? भाई! ३७ (गाथा समयसार) ओहोहो! उसका अर्थ यह हुआ कि जिसे एक समय की पर्याय में देव-गुरु ज्ञात हुए परन्तु वह निमित्त हो गया, व्यवहार हुआ और इससे आत्मा ज्ञात होता है, ऐसा जो कहा, वह तो उसे जाने तो इन्हें व्यवहार से जाना - ऐसा कहा जाता है। आहाहा! यह क्या कहा? आहाहा!

'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं। सो जाणदि अप्पाणं' वहाँ तो ऐसा कहा। यह तो उसे जानकर यहाँ जानने में अभेद होता है, उसकी अपेक्षा से बात ली है। उन्हें जानना, वह तो पर्याय में जानना होता है। समझ में आया? भाई! आहाहा! द्रव्य, गुण केवलज्ञान की पर्याय। आहाहा! परन्तु वह तो परद्रव्य है। उससे स्वद्रव्य का ज्ञान होता है, यह तो व्यवहार की बातें हुईं। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहा कि परद्रव्य का ज्ञान करे, उतना मात्र आत्मा माने, वह एकान्त मिथ्यात्व है अर्थात्? छह द्रव्य को और उसमें जीव को, देव-गुरु के जीव को भी पर्याय में जाने उतना माने... आहाहा! उसने परद्रव्य को माना, मिथ्यात्व है। आहाहा! पश्चात् स्वद्रव्य को जानने पर जो ज्ञान हुआ, उसमें परद्रव्य का ज्ञान पर प्रकाशक आता है, इतना। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो चैतन्यद्रव्य ही, यहाँ से शुरु किया है। आहाहा! उसका जो चैतन्य स्व.. रूप, चेतन, चेतन का चैतन्यस्वरूप, उसे पहिचानकर आहाहा! स्वद्रव्य को पहिचानकर, ऐसा उसका अर्थ है। पर्याय में देव, गुरु को पहिचानकर, ऐसी बात नहीं आयी। आहाहा!

तथा शास्त्र को पहिचाना, शास्त्र का ज्ञान हुआ, यह भी परज्ञान, पर्याय में ज्ञान है, वह पर्याय यह है। आहाहा! यहाँ तो **चेतन का चैतन्यस्वरूप पहिचानकर...** आहाहा! **उसका अनुभव करने पर विभाव का रस (एकता) टूट जाता है।** एकता टूट जाती है, ऐसे विभाव का रस टूट जाता है। आहाहा! विभाव का रस टूटने का यह एक ही उपाय है। आहाहा! कठिन पड़े। अरे! चलता नहीं, अभ्यास नहीं। वस्तु तो यह सीधी है। आहाहा!

इसलिए चैतन्यस्वरूप की भूमि पर खड़ा रहकर... आहाहा! चैतन्यस्वरूप की भूमि, ध्रुव में खड़ा रहकर (अर्थात्) पर्याय को वहाँ रखकर, आहाहा! **तू विभाव को तोड़ सकेगा।** आहाहा! ऐसे संक्षिप्त शब्दों के सिवाय पूरा तत्त्व भरा है इसमें। आहाहा! इसलिए पर्याय में देव-गुरु को जाना, भक्ति करना वह तो और विकल्प। समझ में आया? परन्तु उनका—देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान किया। वह परलक्ष्यी ज्ञान है। वह पर्याय में हुआ, उस पर्याय की इतनी ताकत, बस! उसमें खड़ा रहकर विभाव नहीं टूटेगा। आहाहा! चैतन्यस्वरूप की भूमि, ध्रुव, ज्ञायक। ज्ञायक कहो या त्रिकाली चैतन्यस्वरूप कहो। आहाहा!

चैतन्यस्वरूप की भूमि पर खड़ा रहकर तू विभाव को तोड़ सकेगा। इस कथन का समझाना किस प्रकार? विभाव वहाँ टूट जाता है। उसे तोड़ सकेगा, ऐसा कहा। कथन तो शास्त्र में यही आवे न! आहाहा! प्रत्याख्यान में भी ऐसा आया न? जिसने पहले जाना, पश्चात् वह छोड़ देता है। छोड़ देता है का अर्थ कि स्थिर होता है, तब वह नहीं होता। आहाहा! **विभाव को तोड़ने का यही उपाय है।** आहाहा! अर्थात्? दु:ख की दशा को टालने का, सुख की, सुखस्वरूप जो चैतन्यस्वरूप, उसका धारक जो चेतन, ऐसे चेतनस्वरूप में अर्थात् आनन्दस्वरूप में... आहाहा! रहकर दु:ख की दशा को नाश कर सकेगा। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : दूसरा कोई उपाय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य बात है, परन्तु इस बात को लोगों ने ऐसा कर डाला। यह क्या? हमको पकड़ में नहीं आता तो हमें करना क्या? परन्तु पर को पकड़कर तो बैठा है। पकड़ में नहीं आता अर्थात् क्या? एक समय की पर्याय को पकड़कर तो बैठा है 'पर्याय मूढ़ा परसमया' आहाहा! पकड़ना तो आता है। आहाहा! ध्यान करना आता है। इसे

आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं आता ? तो फिर इस ओर ध्यान करना न आवे, इसका अर्थ क्या ? आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! वहाँ जोर दे।

मुमुक्षु : देव-गुरु-शास्त्र को जाने....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पर्याय हुई। जाना उसमें वह कहीं मूल मिथ्यात्व मिटा नहीं। इससे क्या ? गृहीतमिथ्यात्व, वह कोई चीज़ नहीं, ऐसा तो अनन्त बार टालकर नौवें ग्रैवेयक गया। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है, पाँचवें अध्याय में। ऐसा कि देव-गुरु-शास्त्र की, देव-गुरु को भी अनन्त बार माना है। ऐसे सच्चे देव-गुरु को माने बिना स्वर्ग में नौवें (ग्रैवेयक तक) नहीं जा सकता। भाई ! उसमें है। मोक्षमार्गप्रकाशक में पाँचवें अध्याय में है और एक चौथे में भी है। चौथे में है। आहाहा ! वह नववें ग्रैवेयक जाता है, उसने देव-गुरु को माना है परन्तु वह परद्रव्यरूप से जाना है न ? स्वद्रव्य नहीं जाना। गजब बात है। यह कभी सुना न हो तो ऐसा लगे यह (क्या है ?) बापू ! मार्ग यह है, भगवान ! आहाहा ! 'अनन्त काल से भटक रहा बिना भान भगवान।' आहाहा !

चैतन्यस्वरूप की भूमि पर खड़ा रहकर तू विभाव को तोड़ सकेगा। आहाहा ! **विभाव को तोड़ने का यही उपाय है।** आहाहा ! अरिहन्त के द्रव्य, गुण, पर्याय को जानकर भी वापस तो ऐसा कहा है न ? यह तो ख्याल में लिया इतना, परन्तु पश्चात् ऐसे झुके तब, तब उसे सम्यग्ज्ञान होता है। आहाहा ! फिर कोई ऐसा कहे कि इस पर्याय को जानता हो तो वहाँ ८० गाथा में ऐसा कहा है न ? आहाहा ! वहाँ तो जाननेवाला ऐसा लिया है कि जिसे केवलज्ञान की पर्याय अरिहन्त की ऐसी होती है, ऐसा जिसे ख्याल में आया, पश्चात् अपना ख्याल करने को... आहाहा ! उस पर्याय को गुण में मिलावे और गुण को द्रव्य में मिला दे। आहाहा ! तब उनसे हुआ हो, ऐसा नहीं कहा जाता। आहाहा ! यह तो निमित्त के व्यवहार के कथन हैं। आहाहा !

विभाव में खड़े-खड़े विभाव नहीं टूटेगा;... आहाहा ! दूसरे प्रकार से कहें। आहाहा ! देव-गुरु के द्रव्य (-गुण) और पर्याय को जाना और उनमें खड़ा रहकर, पर्याय में खड़ा रहकर विभाव को नहीं तोड़ सकेगा। आहाहा ! बहुत कठिन। यह देव, गुरु के ऊपर फिदा हो जाये तो अपने को... आहाहा ! विभाव में खड़े रहकर यह ऐसे से ऐसे कहा,

पर्याय में खड़े होकर विभाव नहीं टूटेगा; मन्द होगा,... देव-गुरु की भक्ति का राग है, राग वह घातिकर्म को बाँधता है। मुख्यरूप से राग है, पुण्य को बाँधे परन्तु साथ में घातिकर्म भी बँधते हैं। आहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक है, बापू! अरे! वस्तु की स्थिति क्या है, इसे ज्ञान न हो, वह कहाँ जाए? आहाहा! **मन्द होगा,...** अर्थात् पर्याय में वहाँ देव-गुरु को जाना, छह द्रव्य को जाना... अरे! राग की मन्दता हुई, उसे ज्ञान ने जाना। आहाहा! परन्तु वह भी पर्यायबुद्धि है। आहाहा!

और उससे देवादि की गति मिलेगी,... आहाहा! गति मिलेगी; सिद्धपद नहीं मिलेगा। आहाहा! देवादि की है न? मनुष्य हो, देव हो। आहाहा! परन्तु चार गति का अभाव नहीं होगा। आहाहा! पर्याय में विभाव रहे और पर्याय में उसका ज्ञान रहे। आहाहा! और वहाँ आगे लक्ष्य रहे, वहाँ चार गति का अभाव नहीं होगा। गति मिलेगी। आहाहा! ऐसा है। व्यवहारवालों को तो कठिन ऐसा लगे। इसमें गुरु की, देव की भक्ति करूँगा- अब साधन? ऐसा पूछते थे। वहाँ अगास (आश्रम में)। दिन में व्याख्यान सुना तब कि निश्चय अर्थात् बराबर, परन्तु इसका साधन? ऐसे वे लोग साधन (अर्थात्) यह भक्ति करना और देव-गुरु को मानना, वह साधन। अरे! भगवान! भाई! परद्रव्य को मानना, वह तो विकल्प है और उसका ज्ञान वह परलक्ष्यी है। आहाहा! इसे गति मिलेगी कि जिसमें से वापस दूसरी गति मिलेगी परन्तु चार गति का अभाव होकर सिद्धगति नहीं मिलेगी कि फिर से गति (में) नहीं जाए। आहाहा! देवादि शब्द है न? मनुष्य हो। आहाहा! ऐसा मन्द आदि हो तो मनुष्य, तिर्यंच भोगभूमि का हो। भोगभूमि देवकुरु, उत्तरकुरु (का तिर्यंच हो) परन्तु वह तो गति है, प्रभु! वह कहीं तेरी जाति नहीं है। आहाहा!

मन्द होगा,... आहाहा! पर्याय में खड़े रहकर कदाचित् राग की मन्दता होगी। आहाहा! इससे देव, मनुष्य आदि की गति मिलेगी। **परन्तु चार गति का अभाव नहीं होगा।** आहाहा! अब इसकी आलोचना करते हैं, लो! कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र रखकर बहिन के शब्द पढ़ते हैं। बापू! परन्तु वस्तु यह है। कुन्दकुन्दाचार्य यह कहते हैं और यह भी यह कहते हैं। आहाहा! यह एक पैराग्राफ देखो तो... वस्तु की स्थिति ही ऐसी है वहाँ। आहाहा! यह ३९५ (बोल पूरा हुआ)।

तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है, उसकी महिमा तुझे क्यों नहीं आती ? आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है, अपने में ही सब भरा है। आत्मा सारे विश्व का ज्ञाता-दृष्टा एवं अनन्त शक्ति का धारक है। उसमें क्या कम है ? सर्व ऋद्धि उसी में है। तो फिर बाह्य ऋद्धि का क्या काम है ? जिसे बाह्य पदार्थों में कौतूहल है उसे अन्तर की रुचि नहीं है। अन्तर की रुचि के बिना अन्तर में नहीं पहुँचा जाता, सुख प्रगट नहीं होता ॥३९६॥

३९६, **तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है,...** उसमें आत्मा भी आ गया। आत्मा और तीन लोक को जाननेवाला वह तत्त्व है। आहाहा! पर्याय द्रव्य के आश्रय में जहाँ हुई, वह पर्याय प्रगट हुई, उसका भी स्वभाव तीन लोक को और स्व को जानने का है। आहाहा! परन्तु यह तो तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है। उपयोग में आता है न ? नियमसार में, त्रिकाली उपयोग। त्रिकाली उपयोग स्व को और पर को जानने की शक्तिवाला, भले शक्तिवाला। आहाहा! नियमसार में है। त्रिकाली ज्ञान उपयोग, ज्ञानशक्ति, वह स्व जो त्रिकाली वस्तु है, उसे जानता है। आहाहा! त्रिकाली गुण को जानता है और पर्याय को- समस्त लोकालोक को जानता है, ऐसा उसका त्रिकाली स्वभाव है। वह तेरा तत्त्व ऐसा है। तीन लोक को जाननेवाला। लोक शब्द से अलोक आ गया। तेरा तत्त्व है, प्रभु! आहाहा! उपयोग में उपयोग। शुद्धपरिणति से उपयोग आत्मा ज्ञात होता है। वह आत्मा तीन काल, तीन लोक के तत्त्व को जाननेवाला है। आहाहा! उसकी महिमा तुझे क्यों नहीं है ? आहाहा! और यह कोई दया, दान के परिणाम और कोई भक्ति के परिणाम की तुझे महिमा आती है। आहाहा! एक समय की पर्याय के अनन्त-अनन्त तीर्थंकरों को जाना। आहाहा! उसकी पर्याय की महिमा तुझे क्यों आती है ? आहाहा! भगवान आत्मा, आहाहा! संसार में रचे-पचे प्राणी को यह समझना बहुत कठिन है।

तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है, उसकी महिमा तुझे क्यों नहीं आती ? क्यों नहीं आती ? आहाहा! **आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है,...** आहाहा! सर्व... स्व। आहाहा! सब सर्व स्वयं ही है। आहाहा! उसके समक्ष दूसरी चीज़ उसमें अभावस्वरूप है।

आहाहा! वास्तव में तो उसकी पर्याय में भी जब स्व को, पर को जानने का स्वद्रव्य को जाने तब कैसे कहलाये कि उसकी तीनों काल की पर्यायवाला द्रव्य है न! आहाहा! हो गया यह तो। तीनों काल आदि-अन्त रहित। ऐसी जो पर्याय है, उसे जाने तो वह त्रिकाली द्रव्य ज्ञात हो। आहाहा! क्योंकि तीनों काल की पर्याय तो द्रव्य में से होती है। आहाहा! इसमें ध्यान रखे बिना समझ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : महासूक्ष्म और महागम्भीर है...

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है,... स्वयं 'ही' एकान्त हो गया, स्व एकान्त। आहाहा! सर्वस्व है। यह सब जानना और स्व को जानना, उसमें सब आ गया। यह सब जानने का स्वभाव आत्मा सर्वस्व है। आहाहा! **आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है,...** आहाहा! भगवान आत्मा, आहाहा! सर्व-स्व। सबका ज्ञान और स्व का ज्ञान सर्वस्व स्वयं है। आहाहा! सम्प्रदाय में यह बात नहीं आती, इसलिए यह एकान्त है, ऐसा कहा जाता है। बेचारे क्या करें? आहाहा! भाई! प्रभु! तू इतना है न, प्रभु! यह पर है, इसलिए तू जानता है, ऐसा भी नहीं है। तेरा स्वभाव ही सर्वस्व... तुझे जानने का तेरा स्वयं से है। आहाहा! ये दूसरी चीजें इतनी लोकालोक है, इसलिए यहाँ सर्वस्व ज्ञानस्वभाव है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यह सर्वस्व स्वयं ही, स्वयं ऐसा कहा न यहाँ? स्वयं सर्वस्व है, पर के कारण नहीं। आहाहा! परवस्तु है, इसलिए यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। यह तेरा स्वयं ही सर्वस्व है। सब स्व को, पर को जानने का स्वरूप वह तू है। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! अरे! इसे चैतन्य की महिमा नहीं आयी। आहाहा! और उसके बिना सिरपच्ची करके मर गया। बाहर में रखड़पट्टी करके। आहाहा! आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है अर्थात् लोकालोक का ज्ञान, वह लोकालोक के कारण नहीं, वह स्वयं सर्वस्व है। आहाहा! एक ही स्वयं सर्वस्व वस्तु है। आहाहा! दूसरी है या नहीं, वह तो दूसरी में भले बात रही। आहाहा! समझ में आया?

चेतन का चैतन्यस्वरूप वह सर्वस्व स्वयं है। आहाहा! पर है, इसलिए जानता है; पर है, इसलिए पर को जानने का यहाँ काम है, (ऐसा नहीं है)। वह स्वयं ही सर्वस्व है।

आहाहा ! कितनों के तो कान में पहले पड़ना मुश्किल पड़े, ऐसा लगता है। यह तो जैनधर्म ऐसा होगा ? आहाहा ! बापू ! जैनधर्म तो वस्तु का स्वरूप है, वस्तु ऐसी है।

यह सर्वस्व स्वरूप आत्मा अर्थात् कि आहाहा ! स्वयं को, स्वयं के गुण को, अपनी तीन काल की पर्याय को, अनन्त द्रव्य, गुण की पर्याय को, स्वयं से स्वयं के द्वारा, स्वयं जानता है, वह सर्वस्व है। आहाहा ! **अपने में ही सब भरा है**। आहाहा ! सब भरा हुआ है अर्थात् ? सब और अपना ऐसा जो ज्ञान, वह तुझमें सब भरा हुआ है। आहाहा ! अपने में ही सब भरा हुआ है। यह लोकालोक भरा है, ऐसा नहीं, परन्तु लोकालोक और तेरा उसका ज्ञान सब तुझमें तुझसे भरा हुआ है। आहाहा ! ज्ञान तो लोकालोक को जानता है, वह जानना तो स्वयं का स्वभाव है, सर्वस्व अपना स्वभाव है। आहाहा !

आत्मा सारे विश्व का ज्ञाता-दृष्टा है... है ? पूरा विश्व अर्थात् समस्त पदार्थों का ज्ञाता-दृष्टा है। वह उसका अपना स्वभाव है। आहाहा ! विश्व का ज्ञाता-दृष्टा, वह उसका स्वभाव है। विश्व है, इसलिए ज्ञाता-दृष्टा है-ऐसा नहीं। आहाहा ! कहो, पुनातर ! सूक्ष्म पड़े, यह ऐसा है। कहीं भी धन्धा कभी किया है कभी ? ऐसी बात है, बापू ! आहाहा ! प्रभु ! तेरी प्रभुता कोई अलौकिक है। आहाहा ! आत्मा पूरा विश्व लोकालोक। विश्व शब्द से समस्त। उसका अर्थ ज्ञाता-दृष्टा। वह अपने स्वभाव से ज्ञाता-दृष्टा है। आहाहा ! पर के कारण ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! यह कलकत्ता-बलकत्ता में मिले, ऐसा नहीं है। अभी रुक गये तो ठीक किया। आहाहा ! आहाहा !

मुमुक्षु : जिस दुकान में माल मिलता हो, वहाँ आवे न !

पूज्य गुरुदेवश्री : आये है न ! बैठे हैं। ऐसा करने योग्य है, बापू ! यह है। आहाहा ! यह देह छूटने पर प्रभु, जिसने ऐसा जाना होगा, उसे ज्ञान में-आनन्द में देह छूट जाएगी। आहाहा !

ऐसा जो भगवान आत्मा, यहाँ परमात्मा कहते हैं, वही यह है। विश्व का-लोकालोक जो विश्व है, उसका तू ज्ञाता-दृष्टा प्रभु तू है। आहाहा ! उसका कर्ता नहीं, उसके कारण ज्ञाता-दृष्टा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अरे ! प्रभु ! देख तो सही एक बार ! आहाहा ! लोकालोक जगत के... आहाहा ! विश्व सारा। आहाहा ! यह लोक अलोक का अन्त नहीं,

आहाहा! एक द्रव्य के गुण का अन्त नहीं। आहाहा! ऐसे एक-एक द्रव्य में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुणों का अन्त नहीं, ऐसे ऐसे अनन्त द्रव्य। आहाहा! लोक-अलोक का अन्त नहीं, ऐसे जो अनन्त प्रदेशों का कहीं अन्त नहीं। आहाहा! प्रभु! तू उसका ज्ञाता-दृष्टा है। उसके कारण से नहीं; तेरा स्वभाव इतना है। आहाहा! देखो! यह वीतरागमार्ग का पन्थ। आहाहा! अरे! लोगों ने कुछ का कुछ कर डाला है। पर की दया पालना, जाओ। 'दया वह सुख की बेलडी, दया वह सुख की खान।' पर की। अपने तो यहाँ बात की थी। नहीं आयी ? अभी नहीं की थी ? दया। उसमें है आत्मावलोकन में। दया की व्याख्या अन्तिम। अन्दर में वीतरागभाव की पर्याय प्रगट हो, वह दया है। आहाहा! अर्थात् कि जितना जिसका जीवन ताकतवाला और स्वभाववाला है, उतना उसने स्वीकार किया, यह उसकी दया हुई। आहाहा! नहीं तो मार डाला उसे। उसे रागवाला और पर के जाननेवाला जितना और उतना माना। आहाहा! मरणतुल्य कर डाला, प्रभु! तेरे जीवन की अस्ति जितनी बड़ी है, उसे उसरूप से तूने नहीं जाना। ऐसा है, बापू! आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा... आहाहा! वे इन्द्रों के बीच एकावतारी गणधरों के मोक्ष की बात कहते होंगे प्रभु! क्या होगा ? आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! जिसमें एकावतारी इन्द्र ऐसे पिल्ले की भाँति बैठे। आहाहा! सुनने को (बैठे), इतना तो उन्हें विनय होता है। आहाहा! वह वाणी कैसी होगी भाई! आहाहा! जहाँ अमृतधारा बरसती हो। आहाहा!

वचनामृत वीतराग के परमशान्त रसमूल।
औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल॥

आहाहा! ऐसा जो **आत्मा सारे विश्व का ज्ञाता-दृष्टा एवं अनन्त शक्ति का धारक है।** ज्ञाता-दृष्टा, यह ज्ञान और दर्शन की पर्याय की बात की है; पश्चात् दूसरी सब... ली है। आहाहा! समझ में आया ? यह तो मात्र ज्ञान और दर्शन की जानने-देखने की, सर्व को, सर्व के कारण नहीं, वह शक्ति तेरी इतनी है। ज्ञान-दर्शन की इतनी शक्ति। आहाहा! किसी का कुछ करने की या किसी को रखने की, यह नहीं। आहाहा! पर की दया पालने की और पर की... यह तुझमें नहीं, प्रभु! आहाहा!

प्रभु! तेरा स्वभाव तो लोकालोक को ज्ञान-दर्शन अर्थात् ज्ञाता-दृष्टारूप से जाने, वह तेरा स्वभाव है, उससे तू जानता है। आहाहा! **अनन्त शक्ति का धारक है।** इसके अतिरिक्त दूसरी अनन्त शक्तियाँ हैं। फिर दो गुणरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह ब्राह्मण प्रोफेसर भावनगर का अन्यमति ने यह पढ़कर तो ऐसा... आहाहा! यह तो रत्न खजाना भरा है। अरे! बापू! यह कहीं विद्यमान चीज़ हो, वह कहीं जाती रहेगी? आहाहा! आत्मा सम्पूर्ण विश्व का ज्ञाता-दृष्टा में दो गुण आये—ज्ञान और दर्शन। और तदुपरान्त अनन्त शक्तियों का धारक है। आहाहा! अनन्त गुणों का धारक है। आहाहा! कर्ता, कर्म, करण, षट्कारक, जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, ऐसी अनन्त शक्तियों का धारक है। द्रव्य लेना है न? इसलिए अनन्त शक्तियों का धारक है।

उसमें क्या कम है? आहाहा! प्रभु! तुझमें क्या कमी है? आहाहा! प्रभु! तुझमें क्या कमी है, उसे बाहर लेने जाता है, भाई! आहाहा! मुझे शास्त्र से ज्ञान होगा, इससे मुझे ऐसा होगा और देव-गुरु का प्रेम होगा तथा कृपा होगी तो मुझे ज्ञान होगा, परन्तु यह तुझे क्या है? आहाहा! ऐसे मोक्षमार्गप्रकाशक में ऐसा कहा है कि आगम का अभ्यास कर तो तेरा कल्याण होगा। आता है न? वहाँ अभ्यास जानने के लिये अभ्यास है न? आहाहा! उसे तो यह आगम का अभ्यास करके स्वयं क्या है, उसका ज्ञान करना है, इसके लिये है। आगम का अभ्यास करके वहाँ रुक जाना है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें। पागल जैसा लगे, प्रभु! परन्तु वह क्या? आहाहा! अभ्यास नहीं, अभी पुनातर कहते थे, भाई! बहुत सूक्ष्म पड़ता है। पुनातरजी! बात तो सत्य है। अभ्यास नहीं न, बापू! आहाहा!

लोकालोक को जाननेवाला-देखनेवाला। वह अपना स्वभाव इतना है कि उसे जानना-देखना अर्थात् उसे जानना-देखना ऐसा नहीं। है, उसे जानना, वह जानने-देखने का स्वयं से स्वयं में पूर्ण स्वभाव है और इसके अतिरिक्त अनन्त-अनन्त शक्तियों का भण्डार भगवान है। आहाहा! जिसके ज्ञाता-दृष्टा में लोकालोक ज्ञात हो और दृष्टा स्वयं से स्वयं होता है। आहाहा! जिसके दो गुण की दो पर्यायों में... आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त लोकालोक होवे तो भी ज्ञात हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो भी ज्ञात हो। यह तो इतने इन दो गुण की शक्ति इतनी।

दो की, तो ऐसी तो अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं, प्रभु! आहाहा! भगवान तू समीप है, पर्याय के (समीप में) तू है। आहाहा! अरे! तूने नजर नहीं की, आहाहा! जहाँ प्रभु का निधान पड़ा है, जिसके दो गुण में विश्व का, लोकालोक का और स्वयं का ज्ञान स्वयं से होता है। आहाहा! भाषा तो सादी है। कोई चार पुस्तक पढ़ा हो। हमारे धर्मचन्दभाई कहते हैं, चार पुस्तक (कक्षा) पढ़ा हुआ हो, वह भी समझ सकता है। कहाँ गये धर्मचन्द? वे कहते हैं। आहाहा!

क्या कहा? कि जितना लोकालोक है द्रव्य, गुण, पर्याय और अन्तरहित क्षेत्र, अन्तरहित गुण, अन्तरहित एक समय की भी इतनी पर्यायें। इन सबको अपना ज्ञातादृष्टा स्वभाव है, ऐसा तो इसका स्वत: स्वत: स्व से स्वभाव है, पर से नहीं। आहाहा! कहो, गुणवन्तभाई! यह गुण ऐसे भरे हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दो गुण की अथवा उसकी पर्याय की इतनी ताकत! गुण में तो ताकत है, शक्तिरूप से और पर्याय में ताकत व्यक्तरूप से है। आहाहा! और अनन्त शक्ति दूसरी अनन्त... आहाहा! जिसके दो भाव में सब आ गया। आहाहा! कुछ बाकी नहीं रहा। क्षेत्र का, काल का, गुण की संख्या का। आहाहा! ऐसे जो अनन्त गुण, अनन्त दूसरी शक्तियाँ, प्रभु! तुझमें भरी है। आहाहा!

अनन्त शक्ति का धारक है। उसमें क्या कम है? आहाहा! तुझमें क्या कमी है? किसकी कमी है। आहाहा! ऐसे ज्ञाता-दृष्टा के पूर्ण स्वभाव से भरपूर और इसके अतिरिक्त इससे अनन्त गुणे ज्ञाता-दृष्टा के गुण से भी अनन्त गुणे... आहाहा! भले ज्ञान की शक्ति अनन्त है, वह अलग वस्तु है परन्तु उसकी शक्ति और उसकी पर्याय से दूसरे अनन्त गुणे गुण हैं। आहाहा! **क्या कम है? सर्व ऋद्धि उसी में है।** आहाहा! वह अजायबघर है। आहाहा!

अब ऐसी बातें! इसे बाहर में कुछ व्रत करे, तप करे, अपवास करे और तप किया कहलाये। अरे! भगवान! तूने अल्पज्ञ और कम माना, उसे ऐसा मानना और ऐसे अल्पज्ञ कम का त्याग होना, वह कहीं त्याग नहीं है? आहाहा! क्या कहा यह? तुझे अल्पज्ञ माना, अल्पज्ञ, अल्प श्रद्धावाला, अल्प क्षेत्र में रहनेवाला। आहाहा! उसे ज्ञाता-दृष्टा पूर्ण और दूसरे अनन्त गुण पूर्ण, उसमें इतना मानना, जिसका त्याग हुआ और पूर्ण मानना, जिसका प्रसिद्ध हुआ। आहाहा! वह त्याग नहीं? आहाहा! यह तो बाह्य त्याग करे और व्रत करे तो

त्यागी। अरे प्रभु! क्या हो? भाई! वे कहते हैं, तुम चौबालीस वर्ष चालीस इतने वर्ष हुए, तुम्हारे उन्होंने नहीं कहा होगा परन्तु कोई पाँचवाँ गुणस्थानवाला निकला? ...ज्ञानमति... अरे भगवान! आहाहा!

भाई! तू भगवान! इतना है, तेरी एक शक्ति प्रभुता की पूर्णता से भरपूर। आहाहा! ऐसी अनन्त शक्ति और अनन्त शक्ति की पर्यायें अनन्त और इसके अतिरिक्त पूरा लोकालोक, उसे तेरी ज्ञान और दर्शन की पर्याय जानने को समर्थ है, वह उनकी अस्ति के कारण नहीं; वह यह अपने स्वभाव का इतना ही, इतना सामर्थ्य है। आहाहा! इससे अनन्त गुणे गुणों का धारक, वे गुण भी बेहद हैं। संख्या से बेहद हैं परन्तु उनकी शक्ति से भी बेहद हैं। जैसे ज्ञाता-दृष्टा जैसे अनन्त को ऐसे अनन्त को श्रद्धा करना, अनन्त को वीर्य में रोककर रचना करना। आहाहा! अनन्त को अपने से जाना, उसका कर्ता-कर्म होकर अपना कार्य होना। आहाहा!

सर्व ऋद्धि उसी में है। तो फिर बाह्य ऋद्धि का क्या काम है? आहाहा! जिसे स्वऋद्धि का भान हुआ, उसे बाहर की ऋद्धि का क्या काम है? आहाहा! 'अन्तर की लक्षी सौं अजाची लक्षपति है' यह बाहर की लक्ष्मी-धूल नहीं। इज्जत और मान और दुनिया माने, वह सब बाहर धूल। आहाहा!

'अन्तर की लक्षी सौं अजाची लक्षपति है
दास भगवन्त के उदास रहे जगत सौं॥

भगवन्त अर्थात् आत्मा। आहाहा! 'सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं' आहाहा!

जिसे बाह्य पदार्थों में कौतूहल है... अर्थात् जिसे भगवान आत्मा की महिमा के अतिरिक्त किंचित् भी दूसरी चीज़ पर्याय में, राग में किसी परचीज़ के दिखाव में विस्मयता लगती है, कौतुहलता लगती है। आहाहा! **उसे अन्तर की रुचि नहीं है।** कौतुहलता (लगती है), उसे अन्दर की रुचि नहीं है। आहाहा! कैसे शब्द आये हैं न? जिसे बाहर के पदार्थों में किंचित् विस्मयता अचिन्त्यता, आश्चर्यकारी, किंचित् ठीक है, ऐसा जहाँ हुआ... आहाहा! **उसे अन्तर की रुचि नहीं है। अन्तर की रुचि के बिना अन्तर में नहीं पहुँचा जाता,...** आहाहा! बहुत सरस आया। आहाहा! और **सुख प्रगट नहीं होता।** आहाहा!

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण -१०, शनिवार, दिनाङ्क २५-११-१९७८
वचनामृत-३९७ से ३९९ प्रवचन-१६१

चैतन्य मेरा देव है; उसी को मैं देखता हूँ। दूसरा कुछ मुझे दिखता ही नहीं है न!—ऐसा द्रव्य पर जोर आये, द्रव्य की ही अधिकता रहे, तो सब निर्मल होता जाता है। स्वयं अपने में गया, एकत्वबुद्धि टूट गयी, वहाँ सब रस ढीले हो गये। स्वरूप का रस प्रगट होने पर अन्य रस में अनन्त फीकापन आ गया। न्यारा, सबसे न्यारा हो जाने से संसार का रस घटकर अनन्तवाँ भाग रह गया। सारी दशा पलट गयी॥३९७॥

३९७ बोल है, अकेला मक्खन है। यह चैतन्यवस्तु जो चैतन्य है, **चैतन्य मेरा देव है;...** आहाहा! ऐसा अन्दर जोर आये बिना दृष्टि वहाँ जमेगी नहीं। आहाहा! यह करना है।

मुमुक्षु : कमाना कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाना, यह तो बात हो गयी न कि ये परमाणु शरीर आदि जड़ हैं, उन्हें आत्मा तो कर्ता नहीं परन्तु उन परमाणु की जो पर्याय है, ऐसी, उसे वह परमाणु नहीं करता। आहाहा! तू प्रभु है, चैतन्यदेव है। तेरी दिव्यशक्ति का तू स्वामी है। तेरे अतिरिक्त यह परपदार्थ जो है, शरीर, वाणी, जड़ आदि परमाणु, उनकी कोई क्रिया कोई आत्मा नहीं कर सकता। (कर सकता हूँ, ऐसा) माने तो भ्रम है। वे परमाणु जो हैं, उनकी जो पर्याय-अवस्था होती है, उसे वह परमाणु भी नहीं करता। उस पर्याय को पर्याय करती है। आहाहा! यह बात! परम सत्य तो यह है। एक बात रह गयी, पर की।

अब आत्मा में देव, गुरु और शास्त्र का ज्ञान होता है। आहाहा! वह ज्ञान की पर्याय परलक्ष्यी है, इसलिए वहाँ भी ध्यान देने योग्य नहीं है। आहाहा! पर की पर्याय में तो नहीं, पर के द्रव्य की कर्ता (तो नहीं), आहाहा! परन्तु अपनी जो पर्याय में देव-गुरु का ज्ञान

हो कि ये देव हैं, ये गुरु हैं, परद्रव्य का (ज्ञान हो), वह ज्ञान भी पर है। वह पर का ज्ञान वह भी पर है, स्व नहीं। समझ में आया? ऐसा है, रमणीकभाई! आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त जितने अनन्त परद्रव्य हैं, वे द्रव्य उनकी पर्याय को भी नहीं करते। आहाहा! क्योंकि द्रव्य है, वह तो ध्रुव है। उनकी वर्तमान पर्याय जो होती है, उनकी पर्याय स्वयं करे और पर्याय स्वयं का कार्य। वह द्रव्य का कार्य नहीं, तो आत्मा का तो वह कार्य है ही नहीं तीन काल में। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

अब यहाँ देव, गुरु और शास्त्र रहे। वे भी परद्रव्य हैं। उनका यहाँ ज्ञान में, उनका ज्ञान होता है कि यह देव-गुरु-शास्त्र हैं। आहाहा! वह भी आत्मा को वह लक्ष्य करनेयोग्य नहीं है, उस पर (लक्ष्य करनेयोग्य नहीं है) आहा! अब रह गयी अपनी पर्याय। उस पर्याय को द्रव्य नहीं करता परन्तु पर्याय उसके चैतन्यदेव को स्वीकारे। स्वीकार का अर्थ (कि) उसका आश्रय करे अर्थात् वह वर्तमान पर्याय है, वह उसका लक्ष्य करे। यह देव है- चैतन्यदेव है, ऐसा लक्ष्य करे। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वह चैतन्य जो पर्याय है, वह अपना देव भगवान चैतन्यदेव त्रिकाल ध्रुव, वह देव है - ऐसा वह पर्याय स्वीकार करे। राग नहीं, पुण्य नहीं, आहाहा! ऐसा जो चैतन्यदेव, दिव्यशक्तियों का भण्डार भगवान चैतन्यद्रव्य, वह मैं हूँ। पर के लक्ष्य का ज्ञान वह मैं नहीं, वर्तमान पर्याय है, उतना वह मैं नहीं। आहाहा!

चैतन्य मेरा देव है;... ऐसा कौन माने? पर्याय। आहाहा! चैतन्यवस्तु अनन्त-अनन्त गुणों का, मर्यादारहित गुणों का पिण्ड है, वह मैं हूँ। वह मेरा देव है। **उसी को मैं देखता हूँ।** पर को नहीं। आहाहा! देखनेवाले को देखता हूँ। समझ में आया? वचनामृत का बहुत भरकर आया है। पढ़ा है या नहीं? रमणीकभाई! पढ़ा नहीं? पैसे के कारण धन्धा, पाप। कहो, यह पढ़ा नहीं। उन अन्यमति के हाथ में आता है तो दो-दो बार पढ़ गया है कि यह तो क्या चीज़ है? बलुभाई! पढ़ा है या नहीं तुमने? रोज पढ़ा जाता है।

यहाँ एक ब्राह्मण प्रोफेसर आया था, भावनगर का ब्राह्मण प्रोफेसर है। अर्धमागधी की बड़ी पाठशाला है। उसे (यह पुस्तक) दी, वहाँ गया, पढ़ी (फिर लिखता है), महाराज! मुझे आपके करकमल से जो (पुस्तक) दी, उसका पैराग्राफ, वह सब रत्न से निधान भरे हैं। है ब्राह्मण, यह तो वस्तु है। जिसमें एक-एक पैराग्राफ में एक-एक बोल

में रत्न के निधान भरे हैं। चिमनभाई! अब वहाँ पढ़ने को फुरसत नहीं मिलती तुम्हें। आहाहा! यह ऐसा कहते हैं यहाँ। देखो! ३९७, आहाहा!

जिसे चैतन्यद्रव्य नित्यानन्द प्रभु, वह देव क्या, वह मेरा देव है। आहाहा! **उसी को मैं देखता हूँ।** यह नहीं, यह सब नहीं। आहाहा! **उसी को...** भाषा है, देखा? मैं तो मेरे भगवान को देखता हूँ। जहाँ देखूँ वहाँ भगवान चेतन। आहाहा! पर को देखता है, वह कोई वस्तु नहीं है। इस पर्याय में स्व को देखे, वह वस्तु है। आहाहा! उसे 'ही', उसे 'ही' जिसकी सत्ता में यह है, यह है, यह है (-ऐसा) जो दिखता है, उस सत्ता को मैं देखता हूँ। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वीतरागमार्ग...।

दूसरा कुछ मुझे दिखता ही नहीं है न! मेरा नाथ! आहाहा! चैतन्यदेव, उसे ही मैं देखता हूँ। आहाहा! उसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं दिखता, ऐसा जोर द्रव्य पर आये बिना... आहाहा! है? **ऐसा द्रव्य पर जोर आये,...** आहाहा! अन्य मत में ऐसा कहते हैं...

हरतां फरतां प्रगट हरि देखूँ, मारूं जिव्यूं सफल तब देखूं
मुक्तानन्द नो नाथ विहारी, ओघा जीवन डोरी अमारी रे॥
हरतां फरतां प्रगट....

मैं तो ध्रुव चिदानन्द देव है, वह मुझे दिखता है। आहाहा! ऐसा अन्दर में जोर आये बिना। आहाहा! है? **ऐसा द्रव्य पर जोर आये, द्रव्य की ही अधिकता रहे,...** आहाहा! जिसे निमित्त की अधिकता नहीं, राग की नहीं, एक समय की पर्याय की अधिकता नहीं। आहाहा! भाषा तो बहुत सादी है परन्तु अन्दर भाव भरे हैं। आहाहा! द्रव्य की ही अधिकता रहे। पर की तो नहीं परन्तु अपनी पर्याय की अधिकता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, प्रभु! यह बड़ा भगवान महाप्रभु है। उसकी यदि दृष्टि हुई, जोर आया... आहाहा! (तो) दूसरे की अधिकता नहीं रहेगी। आहाहा! पर्याय ने जहाँ द्रव्य देखा तो पर्याय की अधिकता वहाँ नहीं रही। निर्मल पर्याय प्रगटे तो भी उसकी अधिकता नहीं रहती। आहाहा! अब यह तुम्हारे पैसे-धूल में और उसमें कहाँ अधिकता आ गयी? आहाहा!

द्रव्य की ही अधिकता रहे, तो सब निर्मल होता जाता है। ज्ञायक भगवान, वह मैं हूँ, वह मेरा देव, उसकी अधिकता रहे तो पर्याय में निर्मलता बढ़ती जाती है। आहाहा!

ऐसी बात है। वह... गुजर गये। आहाहा! बेचारे यहाँ बैठे थे, आते थे। यहाँ सामने बैठने का कहें तो पेशाब का कारण हो... यह देह की स्थिति, बापू! आहाहा! अहमदाबाद में जो मुख्य वांचनकार और रुचिवाला।

मुमुक्षु : बहुत वर्षों से....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत वर्षों से। ओहो! ब्लडप्रेशर घट गया। अस्पताल में ले गये। कहते हैं वहाँ समाप्त हो गये। आहाहा! यह देह की स्थिति! उसे तू न देख। अब यहाँ तो कहते हैं, आहाहा! तेरी पर्याय के ऊपर उस दृष्टि को रोकना रहने दे, पर को देखना तो रहने दे... आहाहा! देखनेवाली जो पर्याय है, उस पर अब जोर रहने दे। आहाहा! ऐसी अधिकता (रहे), भगवान ज्ञायकदेव पर्याय में उसकी अधिकता ज्ञात हो... आहाहा! तो पर्याय में सब निर्मल होता जाता है। देखो! यह पैराग्राफ। आहाहा!

स्वयं अपने में गया,... स्वयं जो ऐसे बाहर भटकता था, पर्याय में और राग में लक्ष्य करके (भटकता था), आहाहा! वह जहाँ अपने ज्ञानघर में गया। आहाहा! पर्याय ने निज घर देखा। अनन्त-अनन्त निधान-गुण रत्न के कमरे जिसमें भरे हैं। आहाहा! ऐसे बादशाह को जिसने पर्याय में देखा। आहाहा! अब ऐसी बातें। **स्वयं अपने में गया,...** जहाँ स्वयं है, वहाँ गया। ध्रुव जो चैतन्य भगवान पूर्णानन्द प्रभु, वह जहाँ स्वयं वहाँ है, वहाँ गया। ऐसा उपदेश है। यह तो अकेला मक्खन है। आहाहा!

एकत्वबुद्धि टूट गयी,... पर्याय ने जहाँ मेरा देव यह है—ऐसा जहाँ देखा, जोर जहाँ आया, वहाँ राग की एकता टूट गयी; तोड़नी नहीं पड़ी। आहाहा! भगवान अनन्त गुण का निधान... आहाहा! आठ वर्ष का राजा का पुत्र हो.. आहाहा! और जहाँ यह अन्दर में देखे, उसमें सब मुझे ठीक है और इसके कारण ठीक है, यह रस छूट गया है। देवीलालजी! आहाहा! अब ऐसा उपदेश अब! मार्ग तो यह है, प्रभु!

तेरी प्रभुता अनन्त गुण की महत्ता से प्रभु विराजता है। प्रभुता नाम का एक गुण है तो प्रत्येक गुण में प्रभुता का रूप है। अनन्त गुण हैं, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अपार जिसके अनन्त के अनन्त भाग गुणाकार करो तो भी अन्तिम अनन्त जहाँ नहीं आता, इतने-इतने अनन्त गुण आत्मा में हैं। अनन्त अन्तिम यह है, ऐसा नहीं आता। आहाहा!

जिसके गुणों की संख्या अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ऐसे गुणाकार करे और अन्तिम अनन्त हो, वह इसमें है ही नहीं। अन्तिम अनन्त इसमें है ही नहीं। आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त गुण के भण्डार को जिसने देखा, जाना और अनुभव किया। आहाहा! उसे दूसरे रस टूट जाते हैं।

वहाँ सब रस ढीले हो गये। आहाहा! उसे छियानवें करोड़ सैनिक और छियानवें हजार स्त्रियों के प्रति का रस ढीला पड़ गया अर्थात् रस ही छूट गया। आहाहा! जरा आसक्ति रहे, परन्तु उस आसक्ति का रस नहीं है। आहाहा! स्वरूप का रस प्रगट होने पर, स्व-रूप—भगवान आत्मा का स्व-रूप, आनन्द आदि अनन्त गुण का स्वरूप, आहाहा!

स्वरूप का रस प्रगट होने पर अन्य रस में अनन्त फीकापन आ गया। आहाहा! भले थोड़ी अस्थिरता रहे, परन्तु फीकापन आ गया, टूट गया। बिल्ली की कमर टूटे और फिर चले। आहाहा! इसी प्रकार एकता की बुद्धि की कमर टूट गयी। आहाहा! ऐसी बातें। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा कहा था, वह भगवान दूसरे को ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वरूप का रस प्रगट होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ देव, उसका रस; रस अर्थात्? एक ही ज्ञान जो है, उसमें एकाग्र (होना), वहाँ दूसरा सब भूल जाए, उसे रस कहते हैं। आता है न, अपने समयसार में आता है, पहला अधिकार, नहीं? रस का आता है। आहाहा! **स्वरूप का रस प्रगट होने पर अन्य रस में अनन्त फीकापन आ गया**। आहाहा! आहाहा!

एक बार कहा था। बहुत वर्ष पहले की बात है (संवत्) १९६९ के वर्ष की बात है। १९६८-६९ के पहले एक दो वर्ष की होगी। भावनगर में देश में से आकर देखने गये ध्रुव का नाटक। ध्रुव आता है न अन्यमत में? ध्रुव और प्रहलाद अविचल पद दिया, वह तो सब ठीक, परन्तु यह तो ध्रुव एक राजा का कुँवर था। उसकी माँ मर गयी थी, उसके पिता ने नया विवाह किया। स्वयं वैराग्य होकर तपस्वी-साधु हो गया। वह बड़ा होता है न? वह क्या कहलाता है? नाटक। उसके पर्दे ऐसे सब हरे। इसलिए ऐसे अन्दर वन दिखायी देता है। उसमें ऊपर से देवियाँ उसे डिगाने को आती हैं। शरीर की बहुत चेष्टाएँ सब करती हैं। फिर उससे कहती है-कुमार! यह देख तो सही हमारा शरीर, कोमल केल के समान शरीर। (ध्रुव कहता है), माता! उसने इस अपेक्षा से वैराग्य की बात (की थी), माता! मुझे भव करना नहीं है, परन्तु कदाचित् भव होवे तो माता! तेरे गर्भ में आऊँगा, दूसरी

बात मत करना। उस दिन देखा था। यहाँ भावनगर थियेटर है, नाटक का। उस समय वैराग्य के नाटक (आते थे)। भले अमुक प्रकार के (आते थे)। अभी तो यह सब फिल्म-बिल्म करके जगत को मार डाला। आहाहा!

यह दिखाव देखो तो ऐसा... आहाहा! ऐसी देवियाँ लकड़ियों के... उतरे, दोनों ओर से ऐसे। डिगाती है। (वह कहता है-) माता! मुझे भव तो करना नहीं है परन्तु कदाचित् भव होवे, माता! तू मेरी माँ होयेगी। बाकी दूसरा है नहीं, तेरे गर्भ में अवतरित होऊँगा।

इसी प्रकार जिसने भगवान आत्मा के आनन्द का रस जिसे आया है। आहाहा! उसे बाहर की जागृति और आकर्षण चाहे जो करो, वह नहीं खिंचता। आहाहा! खिंचाव तो अन्दर हो गया है अब। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! धर्म, वह कोई अपूर्व चीज़ है, वह कहीं साधारण यह दया पालन की और अमुक किया और अमुक किया और दया पाली। कौन पाले? दया का भाव है, वह राग है, हिंसा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जिसे अन्दर का रस आया, **स्वरूप का रस प्रगट होने पर अन्य रस में अनन्त फीकापन आ गया। न्यारा, सबसे न्यारा हो जाने से...** आहाहा! **संसार का रस घटकर अनन्तवाँ भाग रह गया। सारी दशा पलट गयी।** आहाहा! जिस दशा का परसन्मुख की दिशा की ओर लक्ष्य था, उस दशा का (लक्ष्य) स्वसन्मुख में आ गया, जहाँ दिशा पलट गयी, बापू! आहाहा! उसे यहाँ धर्मी द्रव्य के ऊपर जोर देने से ऐसा हूँ, ऐसा उसे वहाँ भान होता है। आहाहा!

मैंने अपने परमभाव को ग्रहण किया उस परमभाव के सामने तीन लोक का वैभव तुच्छ है। और तो क्या परन्तु मेरी स्वाभाविक पर्याय—निर्मल पर्याय प्रगट हुई वह भी, मैं द्रव्यदृष्टि के बल से कहता हूँ कि, मेरी नहीं है। मेरा द्रव्यस्वभाव अगाध है, अमाप है। निर्मल पर्याय का वेदन भले हो परन्तु द्रव्यस्वभाव के आगे उसकी विशेषता नहीं है।—ऐसी द्रव्यदृष्टि कब प्रगट होती है कि जब चैतन्य की महिमा लाकर, सबसे विमुख होकर, जीव अपनी ओर झुके तब॥३९८॥

३९८, **मैंने अपने परमभाव को ग्रहण किया...** पर्याय ऐसा कहती है कि मेरा परमभाव है, उसे मैंने ग्रहण किया। त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु, वीतराग के समरस से भरपूर भगवान, ऐसा जो मेरा परमभाव त्रिकाल है, उसे ग्रहण किया। **उस परमभाव के सामने तीन लोक का वैभव तुच्छ है।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि को जहाँ अपना परमभाव ग्रहण हुआ, उसके समक्ष तीन लोक की तुच्छता लगती है। इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़े हुए तृण जैसे लगते हैं। आहाहा! ऐसा है। मैंने अपने **मैंने अपने परमभाव को ग्रहण किया, उस परमभाव के सामने तीन लोक का वैभव तुच्छ है।** आहाहा! करोड़ों अप्सराएँ और दो सागर की स्थिति इन्द्र की, वह सब वैभव तुच्छ है। आहाहा! जैसे गन्दगी में विष्टा पड़ी हो, वैसा सब तुच्छ है। वह सब चीज़ (तुच्छ है)। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को स्व का अनुभव हुआ। आहाहा! उसके वैभव की महत्ता के समक्ष तीन लोक का वैभव तुच्छ है। आहाहा!

और तो क्या... आहाहा! **परन्तु...** वह तुच्छ है परन्तु, ऐसा। दूसरा कहता हूँ कि उससे जोरदार कहूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसे जहाँ ग्रहण किया-परमभाव को, आहाहा! उसके समक्ष तीन लोक की ऋद्धि भी तुच्छ है। आहाहा! वह तो ठीक, **और तो क्या परन्तु मेरी स्वाभाविक पर्याय—निर्मल पर्याय...** आहाहा! यह मोक्षमार्ग की पर्याय—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो मोक्षमार्ग की पर्याय। आहाहा! **स्वाभाविक पर्याय—निर्मल पर्याय...** व्याख्या की है। मेरी स्वाभाविक पर्याय अर्थात् क्या? इसलिए लाईन (डेश) की है। **निर्मल पर्याय प्रगट हुई वह भी,...** आहाहा! **मैं द्रव्यदृष्टि के बल से कहता हूँ...** आहाहा! मोक्षमार्ग की निर्मल पर्याय आनन्ददायक दशा प्रगट हुई, वह भी मैं द्रव्य-वस्तु की दृष्टि से, उसके बल से कहता हूँ... आहाहा! **कि, मेरी नहीं है।** वह पर्याय मेरी नहीं है। आहाहा! स्त्री, पुत्र, परिवार और धूल धमाका तो कहीं रह गया। आहाहा! और अन्दर पुण्य का भाव दया, दान और व्रत, तप आदि का, वह कहीं रह गया। यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो निर्मल पर्याय स्व के आश्रय से होती है, आश्रय का अर्थ लक्ष्य करने से होती है... आहाहा! वह पर्याय भी द्रव्यदृष्टि के जोर के समक्ष वह पर्याय मेरी नहीं है। वह पर्याय पर्याय की है। मैं तो अनन्त ज्ञान का धनी द्रव्य, वह मैं हूँ। आहाहा! अरे! कैसे जँचे यह बात। धर्म के नाम से अभी तो दया पालो और व्रत करो, भक्ति करो और पूजा करो, दान करो, धमाल-धमाल में... आहाहा! यह तो नहीं, यह

क्रिया तो कर नहीं सकता। परन्तु अन्दर राग होता है, वह तो नहीं परन्तु अन्दर जो त्रिकाली द्रव्य को जाननेवाली पर्याय होती है, वह भी मैं नहीं हूँ। द्रव्यदृष्टि के जोर से ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

भगवान आत्मा द्रव्य अर्थात् एक समय में पूर्णानन्द का नाथ प्रभु है। उसकी दृष्टि के जोर से... आहाहा! सम्यग्दृष्टि ऐसा कहता है कि इस दृष्टि के जोर से मुझे जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसकी भी कोई कीमत नहीं है, मेरी नहीं है। मेरा तो भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वह मैं हूँ। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दृष्टि की दशा, चौथे गुणस्थान की दशा। अभी किसे कहना सम्यक्त्व और क्या कहना कुछ खबर नहीं होती और हो गया धर्म! आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? कि मैं तो परमदेव हूँ। आहाहा! पर्याय की परिणति से भी मैं तो भिन्न महादेव हूँ। आहाहा! ऐसी दृष्टि के जोर से जो निर्मल पर्याय भी प्रगट हुई, वह द्रव्यदृष्टि के जोर से ऐसा (कहते हैं) वह मेरी नहीं है, मैं यह हूँ। कहो, ऐसा है रमणीकभाई! पहले सुना नहीं कभी ऐसा। बस, ऐसा और वैसा जिन्दगी चली जाती है, चली जाती है। आहाहा! अभी देखो वहाँ सुना था न, मुम्बई में दो, पीलिये में मर गये दो व्यक्ति। मुम्बई में एक विंछियावाले और एक ये फतेपुरवाले। बाबूभाई की लड़की का ननदोई, माणेकचन्दभाई का दामाद, वह दामाद पुत्री का वर। आहाहा! चार-पाँच दिन पीलिया और पीलिया (तेज) हुआ जरा सा... जाओ भटकने। अर..र..! कहते हैं, पैसा बहुत खर्च किया, दस हजार खर्च किये। तीसरा हरिभाई अपने बिछियावाला, उनका छोटा भाई टेपरिकार्डिंग में धन्धा करता है। वह भी चार-पाँच दिन में पीलिया होकर गुजर गया। आहाहा! वह भी चीज़ उसकी थी कहाँ से, वह उसमें रहे। उसकी थी कहाँ, वह उसके पास रहे। राग भी उसका नहीं तो उसके पास रहे किस प्रकार?

यहाँ तो कहते हैं कि निर्मल पर्याय हुई, वह भी मेरा त्रिकाली आनन्द का नाथ, उसे देखने पर उस दृष्टि के बल से कहता हूँ कि पर्याय मेरी नहीं है। आहाहा! मेरा द्रव्य पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसा पर्याय कहती है, जानती है। आहाहा! ऐसी धर्मी की बातें। बलुभाई! कहीं नहीं मिलता यह सब। व्यर्थ की व्यर्थ सब बातें। आहाहा! प्रतिक्रमण किया और प्रत्याख्यान किया, व्रत किये और दया पालन की। धूल भी नहीं, सुन न! आहाहा!

तू ही देव का देव परमात्मा तू कौन है? आहाहा! मैं परमस्वभावभाव ऐसा मेरा तत्त्व

हूँ। उसकी दृष्टि के जोर से निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह भी मैं नहीं, मैं तो यहाँ हूँ। आहाहा! अब ऐसी बातें इस धर्म की। अरे! वीतराग परमात्मा का यह मार्ग है। आहाहा!

मेरा द्रव्यस्वभाव अगाध है,... आहाहा! जिसमें अनन्त-अनन्त गुण और एक-एक गुण में भी अनन्त शक्ति के कमरे भरे हैं। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त का कोई अन्त नहीं है, इतने गुण और एक-एक गुण में अनन्त गुणों की नास्ति का गुण और एक-एक गुण में अनन्त गुण के रूप का अस्तित्व, ऐसा जो भगवान आत्मा, आहाहा! मेरा द्रव्यस्वभाव अगाध। आहाहा! जिसे तल पकड़ना आता है, उसे अगाध लगता है। आहाहा! मेरा द्रव्यस्वभाव; पर्यायस्वभाव को नहीं लिया, द्रव्यस्वभाव। आहाहा! **अगाध है, अमाप है।** आहाहा! उसका माप में आना कठिन पड़े, ऐसा है। पर्याय उसका माप ले लेवे, परन्तु है अमाप। अमाप का माप लेती है पर्याय। आहाहा! जिसमें अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द (भरा है)। उस आनन्द के गुण में भी अनन्त ज्ञानादि गुणों का रूप है। आहाहा! अथवा ज्ञान-दर्शन आदि जो अनन्त धर्म-गुण है, उनमें एक-एक गुण में अनन्त आनन्द का रूप है। ऐसे अगाध गुणों का समुद्र भगवान, आहाहा! वह अमाप है। आहाहा! बाहर से, विकल्प से उसका माप आ सके, ऐसा नहीं है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! अब ऐसी बात! निवृत्ति नहीं मिलती बनिये को मानो पूरे दिन धन्धे के पाप में। ऐ.. कान्तिभाई! यह किया और यह किया और यह किया। बाईस घण्टे पाप के धन्धे में रुकना। अब उसमें धर्म तो दूसरा परन्तु उसमें दो-चार घण्टे समागम (करे), सत्समागम और ऐसा वांचन करे, सुने, वह भी समय नहीं मिलता। आहाहा! अरे रे! उसे कहाँ जाना है? भाई!

कोई भाई यहाँ कहता था, यह सच्चा झूठा कौन जाने परन्तु भाई कहता था पुनातर। कोई लड़का हुआ है कहीं वहाँ, कहते हैं। वह कहता है मैं लल्लूजी का जीव हूँ और तिर्यंच में गया था, वहाँ से आया हूँ। श्रीमद्जी थे न? तिर्यंच में नहीं जाए। श्रीमद् का भक्त, बहुत प्रेम था और भद्र। आहाहा! अब वह कोई कहता है। वहाँ-मुम्बई में बात चलती है। कोई लड़का है, वह कहता है कि मैं लल्लूजी का जीव मरकर तिर्यंच में गया हूँ, वहाँ से यहाँ मैं आया हूँ क्योंकि १९९२ में गुजर गये न? भाई! १९९२ में गुजर गये। आहाहा! ...यह १९९२ में तो कितने वर्ष हुए? ४३ वर्ष हुए, ४३ हुए। अब वह कहता है कि मैं पहले तिर्यंच

में अवतरित हुआ था, ऐसा कहता है। लल्लूजी का जीव। बात जँचती नहीं, भद्रिक जीव और उन्हें भक्ति में भाव बहुत...

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ परन्तु वह तिर्यंच में जाए और फिर मनुष्य होवे और ऐसी बातें कोई चाहे जिस प्रकार से रचना। आहाहा! उन्हें श्रीमद् में बहुत प्रेम था और उनके लिये तो पूरी जिन्दगी अर्पित कर दी थी। स्थानकवासी का साधुपना छोड़कर दासरूप से रहे थे, उनकी मर्यादा प्रमाण। अरे! लोग ऐसा रच देते हैं। ऐसा करके पुजवाना... रच दिया हो किसी ने... आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! जिसे उस स्वभाव के प्रति बहुमान आवे, अभी स्वभाव भले (प्राप्त) हुआ न हो... आहाहा! तो भी वह प्राणी देह छूटकर स्वर्ग में जाता है। आहाहा! दिव्यशक्ति का जहाँ भान नहीं, बहुमान आया, वह भव बाकी हो तो देव में दिव्यशक्तिवाले देव में जाता है। बाहर देव, अन्तर का देव...

अगाध है, अमाप है। अमाप है अर्थात्? इतने अधिक गुण हैं, इतने अधिक गुण हैं कि किसी प्रकार से विकल्प से उनका माप आवे, ऐसा नहीं है। उस पर्याय का सामर्थ्य है कि वह उसका माप ले लेती है। आहाहा! अमाप का भी पर्याय माप ले लेवे, इतनी ताकत पर्याय में है। अरेरे! उसके द्रव्य की तो क्या बात करना! पर्याय में प्रभु को पचाया। पूरा ज्ञान में ले लिया, तथापि वह द्रव्य पर्याय में आया नहीं परन्तु द्रव्य की जितनी सामर्थ्य थी, वह सब पर्याय में आ गयी। आहाहा! ऐसी बात अब। वे तो कहें, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। वे श्वेताम्बर फिर कहे भक्ति करो और यात्रा करो, यह करो- उपधान करो। अरे! भाई! बापू! प्रभु! तेरा पन्थ कोई निराला है। आहाहा!

अगाध है, अमाप है। निर्मल पर्याय का वेदन भले हो... आहाहा! अगाध और अमाप ऐसे द्रव्यस्वभाव का भान हुआ, पर्याय में आनन्द का वेदन आया। आहाहा! **परन्तु द्रव्यस्वभाव के आगे उसकी विशेषता नहीं है।** आहाहा! जिसने भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसका जहाँ अन्तर में पर्याय में स्वीकार हुआ, वह पर्याय निर्मल हुई परन्तु उस पर्याय की द्रव्य के समक्ष कीमत नहीं है। आहाहा! दया, दान में राग की तो बात क्या

करना, वह तो कोई कीमत है नहीं। आहाहा! परन्तु भगवान पूर्ण आनन्द का अमाप शक्ति का धनी, उसे ज्ञान ने माप लिया कि इतना है अर्थात् पर्याय में निर्मलता हुई, परन्तु वह निर्मलता द्रव्यशक्ति के समक्ष उसकी कुछ कीमत नहीं है। आहाहा! है? **परन्तु द्रव्यस्वभाव के आगे उसकी विशेषता नहीं है।** उसकी कुछ खास विशेषता नहीं है। आहाहा! विशेषता तो अन्दर भगवान आत्मा की है।

ऐसी द्रव्यदृष्टि कब प्रगट होती है... ऐसी द्रव्यदृष्टि, **द्रव्यदृष्टि...** द्रव्य की दृष्टि **कब प्रगट होती है कि जब चैतन्य की महिमा लाकर,...** पर्याय में चैतन्य की महिमा लाकर, आहाहा! यह तो कोई परमात्मा है, यह तो क्या! जिसके एक-एक गुण में अनन्त चमत्कार, ऐसे उन अनन्त गुण का चमत्कारी पदार्थ प्रभु की महिमा लाकर। आहाहा! **सबसे विमुख होकर,...** निमित्त से, राग से, पर्याय से विमुख होकर... आहाहा! **जीव अपनी ओर झुके तब।** तब द्रव्यदृष्टि प्रगट होती है। ऐसा है न? कब प्रगट होती है कि जीव अपनी ओर ढले तब। यह सूक्ष्म ऐसा है इसमें। आहाहा! पोपटभाई ने यह चार बार पढ़ा है। पोपटलाल तो बहुत करोड़पति। बहुत करोड़पति लड़के। कोई तो कहता था कि एक-एक लड़के को एक करोड़ है। कोई ऐसा कहता था। इनके पास अलग। ऐसा कहता था। यह बलुभाई बैठे वे। परन्तु सुना हुआ है तुम्हारा कहा हुआ। हमें खबर है। बलुभाई कहते थे कि एक-एक के पास करोड़ है, छह लड़कों के पास छह करोड़ और उनके पिता के पास पैसा था पचास-साठ लाख तो उसका उत्तराधिकार आया तो बाईस लाख सरकार में भरने पड़े। आहाहा! परन्तु वह स्वयं इतनी स्थिति है, तथापि थोड़े समय में चार बार पढ़ा। आहाहा!

सबसे विमुख होकर,... आहाहा! जीव कब प्रगट होता? **सबसे विमुख होकर, जीव अपनी ओर झुके तब।** आहाहा! भाषा है संक्षिप्त परन्तु भाव... आहाहा! गम्भीर है, भाई! यह तो एकदम सिद्धान्त का दोहन है। आहाहा! जगत का भाग्य कि ऐसी वस्तु बाहर आ गयी और मौके से आ गयी। आहाहा! **ऐसी द्रव्यदृष्टि कब प्रगट होती है कि जब चैतन्य की महिमा लाकर,...** भगवान आत्मा की महिमा लाकर। **सबसे विमुख होकर, जीव अपनी ओर झुके तब** दृष्टि होती है। आहाहा! कब? आहाहा! कि तब। अर्थात्? आहाहा! वस्तुस्वभाव की दृष्टि कब होती है? कि सबसे विमुख होकर अन्तर में झुके तब। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अनजाने लोगों को तो ऐसा लगे कि क्या है यह बात ऐसी? हम

तो भाई ! दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो और दान करना दो, पाँच, दस लाख का। बलुभाई ! इन बलुभाई ने नहीं किया था लंघन ? वर्षीतप किया था। इनके घर में आहार करने गये थे न। पश्चात् बदल गये। यह तो सब विकल्प है, भाई ! आहाहा !

तप तो उसे कहते हैं... आया था न उसमें ? यहाँ है लो, है ? तप उसे कहते हैं। है ? इसमें है। तप उसको कहते हैं। शरीर, परिग्रह, भोग, कुटुम्ब, इष्टमित्र, शत्रु, परज्ञेयों को छोड़ना यानी उनमें ममतारहित परिणति होना तथा उनमें तृष्णारहित होना और अपने स्वभाव में स्थिरता होना, अपने स्वभाव में स्थिरता होना– ऐसी तपस्या ही तप कहलाती है। तप की व्याख्या की है। अब दया की व्याख्या। दया की व्याख्या की है। विकारमय परिणामों के द्वारा अपने निज स्वभाव का घात नहीं करना और अपने स्वभाव का पालन करना, स्वभाव का पालन करना, इसका नाम दया कहने में आती है। यह व्याख्या। आहाहा ! ३९८ (बोल पूरा हुआ)।

सम्यग्दृष्टि को भले स्वानुभूति स्वयं पूर्ण नहीं है परन्तु दृष्टि में परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है। ज्ञानपरिणति द्रव्य तथा पर्याय को जानती है परन्तु पर्याय पर जोर नहीं है। दृष्टि में अकेला स्व की ओर का—द्रव्य की ओर का बल रहता है ॥३९९॥

३९९, **सम्यग्दृष्टि को...** आहाहा ! जिसे पूर्णानन्द के नाथ की जहाँ दृष्टि हुई है, ऐसा चौथे गुणस्थान में हो तो भी **भले स्वानुभूति स्वयं पूर्ण नहीं है...** अभी उसे अनुभव पर्याय में पूर्ण केवली को चाहिए, उतना नहीं है। क्या कहा यह ? सम्यग्दृष्टि को पर्याय में अन्तर द्रव्य का अनुभव हुआ, वह **स्वानुभूति स्वयं पूर्ण नहीं है परन्तु दृष्टि में परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है।** आहाहा ! चैतन्य परमस्वभावभाव पूर्ण का अनुभव होने पर पर्याय में वेदन आया, वह अनुभूति पूर्ण नहीं है, पूर्ण तो केवली को होती है, तथापि वह अनुभूति ऐसी होने पर भी दृष्टि में परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है। आहाहा ! सम्यग्दृष्टि को दृष्टि में तो पूर्ण ध्रुव आत्मा है। वह अनुभूति की पर्याय भले थोड़ी हो, परन्तु दृष्टि में पूर्ण भगवान है। विशेष कहा जाएगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

कार्तिक कृष्ण -११, रविवार, दिनाङ्क २६-११-१९७८
वचनामृत-३९९ से ४०१ प्रवचन-१६२

३९९, पैराग्राफ कहलाता है न ? क्या कहलाता है ? बोल, ३९९ बोल। एक शब्द चला है कल। जिसे धर्म होता है; धर्म तो वास्तव में चारित्र है परन्तु उसका मूल सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन कैसे हो ? कि वह **सम्यग्दृष्टि को भले स्वानुभूति स्वयं पूर्ण नहीं है...** अर्थात् क्या ? कि जिसे आत्मा की शक्ति जो वस्तु पूर्ण है, उसके ऊपर दृष्टि पड़ने से उसे दृष्टि में पूर्ण आत्मा की प्रतीति और उसका ज्ञान होता है, तब उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। वह सम्यग्दृष्टि कोई देह की क्रिया से होता है या कोई पाप के परिणाम से होता है, ऐसा नहीं। ऐसा तो नहीं, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा के भाव होते हैं, उनसे सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! इस प्रकार उसकी पर्याय के ऊपर दृष्टि रखने से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो वस्तु जो परिपूर्ण भगवान एक समय में ध्रुव नित्यानन्द प्रभु के ऊपर दृष्टि पड़ने से उसका सम्यग्दर्शन का परिणमन हो, उस दृष्टि में उसे पूर्ण आत्मा का ज्ञान और प्रतीति आती है। आहाहा! ऐसी बात जरा सूक्ष्म है।

वह **सम्यग्दृष्टि को भले स्वानुभूति स्वयं पूर्ण नहीं है...** अर्थात् क्या ? कि दृष्टि में पूर्ण परमात्मतत्त्व अपना, हों! निज, निज परमात्मतत्त्व का दृष्टि में अनुभव हुआ, तथापि वह अनुभूति पूर्ण केवलज्ञानी को है, उतनी अनुभूति नहीं है। अनुभूति अर्थात् उसकी शान्ति के वेदन की और आनन्द के वेदन की दशा पूर्ण नहीं है। दृष्टि में वस्तु पूर्ण है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

सम्यग्दृष्टि को भले स्वानुभूति स्वयं पूर्ण नहीं है... आहाहा! अरे, कहाँ-कहाँ भटके, कहाँ जाए और कहाँ ? अन्दर का मार्ग ऐसा कोई है कि अनन्त काल में (एक) सेकेण्ड किया नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा एक समय में सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर ने जो पूर्ण देखा, उसे जो ज्ञान में लेकर प्रतीति की और अनुभवे, तब तो उसे

सम्यग्दृष्टि—धर्म की पहली शुरुआत का सोपान कहा जाता है। आहाहा!

उसे वह अनुभूति अर्थात् जो चीज़ सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु स्वयं है, उसे अनुसरकर अनुभूति अर्थात् आनन्द की अवस्था हुई, सम्यग्ज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, स्वरूपाचरण की स्थिरता भी हुई। अरे! अनन्त गुण जितने हैं, उतने की शक्ति में से व्यक्तता का अंश, अनन्त का वेदन में आया। आहाहा! क्या यह ऐसा कहाँ से धर्म निकाला? ऐसा कितने ही कहते हैं। बापू! वस्तु यह है। आहाहा!

यह सम्यक् सत्य दृष्टि को; सत्य दृष्टि अर्थात् त्रिकाल सत्य प्रभु के ऊपर दृष्टि को अहंपने की मान्यता में जोड़ना। आहाहा! उसे पर्याय में... यह तो द्रव्य हुआ, उसका विषय, परन्तु उसका अनुभव होने पर पर्याय में पूर्ण अनुभव न हो, पूर्ण अनुभव तो सर्वज्ञ परमेश्वर को होता है, इसलिए कहते हैं, सम्यग्दृष्टि को... ऐसा धर्म कहाँ से निकाला? ऐई पुनातरजी! तुम्हारे यहाँ मन, वचन और सरलता करे, वह धर्म होता है। (संवत्) १९८२ में ताराचन्दभाई ऐसा कहते थे। मैंने कहा, भाई! यह नहीं है, बापू! मन, वचन और काया की सरलता का शुभभाव पुण्यबन्ध का कारण है। नवकार के उपाश्रय में उतरते थे न वहाँ। पहले तो वहाँ उतरे। यह तो १९८२ की बात है। मूल बाह्य से पूरी बात। अन्तर भगवान पूर्ण आनन्द का नाथ, यह उसकी खबर नहीं और खबर पड़ने का पन्थ जो है, वह इसे कठिन लगता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं सम्यक् सत्दृष्टिवन्त पूर्ण जो सत् परमात्मस्वरूप अपना निज जिनस्वरूप, उसकी सम्यक् अर्थात् सच्ची दृष्टि, अनुभव होकर हुई, उसे भले स्वानुभूति के अनुभव की दशा प्रतीति और ज्ञान में विषय जो है, वह पूर्ण है परन्तु पर्याय में पूर्ण अनुभूति नहीं है। समझ में आया? आहाहा! वह **स्वयं पूर्ण नहीं है परन्तु दृष्टि में परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है।** ऐसी दो बातें, गुलाँट खायी है। वर्तमान में सम्यग्दर्शन में और सम्यग्ज्ञान की अनुभूति में, अनुभूति पूर्ण परमात्मा की जो चाहिए, उतनी अनुभूति नहीं है परन्तु तो भी उसका विषय जो है... आहाहा! है न? **दृष्टि में परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है।** आहाहा! अपूर्ण अनुभूति के काल में भी। बात तो ऐसी है, बापू! आहाहा! अपूर्ण अनुभूति के काल में भी दृष्टि का जो विषय है, वह दृष्टि में तो परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है। क्या कहा, समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को, सत्यदृष्टि को, सत्यदृष्टिवान को ध्रुव के ऊपर दृष्टि है, वह तो ध्रुव है परन्तु उसका अनुभव है, वह अपूर्ण है। अनुभव अपूर्ण होने पर भी उस काल की दृष्टि तो ध्रुव परिपूर्ण के ऊपर है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का पन्थ कोई अलौकिक है। अरे! कहीं सुनने को नहीं मिलता, वहाँ यह विचार कब करे? अरे! इतना दो कड़ी में डाला, दो कड़ी नहीं, यह तो दो लाइनें कहलाती हैं। कड़ी तो वह गायन की होती है। आहाहा!

सत्यदृष्टिवन्त को सम्यक् अर्थात् सत्यदृष्टिवन्त को सत् पूर्ण है, उसकी दृष्टि हुई उसे, उसकी अनुभूति होती है, वह भले अनुभूति वर्तमान दशा में पूर्ण नहीं है, तथापि उसका दृष्टि में जो परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है, वह पूर्ण है। अनुभूति में पूर्ण नहीं, धर्मी जीव हुआ, सम्यग्दृष्टि हुआ, उसे वर्तमान दशा में उसका अनुभव पूर्ण नहीं है परन्तु उसका दृष्टि का विषय है, वह ध्रुव परिपूर्ण है। अरे! ऐसी बात है। भाषा तो सादी है, प्रभु! आहाहा!

ज्ञानपरिणति द्रव्य तथा पर्याय को जानती है... अब क्या कहते हैं? अनुभूति थोड़ी होने पर भी, दृष्टि में तो परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है। अब जब दृष्टि में परिपूर्ण आत्मा है, तब उस समय का ज्ञान जो है, वह द्रव्य तथा पर्याय को दोनों को जानता है। आहाहा! दृष्टि जो है, वह तो अन्दर ध्रुव को ही स्वीकार करती है। दृष्टि परिपूर्ण ध्रुव को मानती है। आहाहा! और उस दृष्टि के साथ में हुआ जो ज्ञान, वह ज्ञान त्रिकाल को भी जानता है, वर्तमान पर्याय को भी जानता है। आहाहा! है? इसलिए सवेरे मैंने पूछा। रमणीकभाई को कहा, पढ़ा है? कहे, नहीं। कहो, एक भी बार पढ़ा नहीं। पैसा.. पैसा.. मार डाला जगत को धूल में। रमणीकभाई को पाँच-छह करोड़ रुपये हैं, उसी-उसी में उलझ गये हैं। कितने ही पढ़ते हैं, अभी तो साधारण व्यक्ति पढ़ते हैं, यह तो कितने समय से बाहर प्रसिद्ध हो गया है। चिमनभाई! आहाहा!

दृष्टि में परिपूर्ण ध्रुव आत्मा होने पर भी उसके साथ में हुआ ज्ञान, वह ज्ञानपरिणति अर्थात् ज्ञान की वर्तमान दशा। त्रिकाली ज्ञान की यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो वर्तमान दशा उस द्रव्य तथा पर्याय को जानती है। वह त्रिकाल को भी जानती है और पर्याय को जानती है। ज्ञान तो दोनों को जानता है, दृष्टि एक को-ध्रुव को देखती है। परिपूर्ण को मानती है और उसके साथ हुआ ज्ञान (दोनों को जानता है)। आहाहा! ऐसी बातें!

ज्ञानपरिणति द्रव्य अर्थात् वस्तु जो पहले कहा कि दृष्टि में परिपूर्ण ध्रुव आतमा वह; उसे भी ज्ञान जानता है तथा पर्याय को जानता है। वर्तमान अनुभूति थोड़ी है, उसे भी ज्ञान जानता है। आहाहा! दृष्टि परिपूर्ण ध्रुव को जानती है, देखती है, श्रद्धती है और उसके साथ में हुआ ज्ञान पूर्ण को भी जानता है, पर्याय को जानता है। मेरी अनुभूति थोड़ी है, ऐसा ज्ञान जानता है। आहाहा! ऐसा है।

परन्तु पर्याय पर जोर नहीं है। ज्ञान दृष्टि के साथ हुआ, वह पर्याय को जानता है, द्रव्य को जानता है, तथापि पर्याय के ऊपर जोर नहीं है। यह पर्याय के ऊपर जोर नहीं है। आहाहा! ऐसा सब सुना नहीं था तुम्हारे पिता ने वे वहाँ हिम्मतभाई भक्ति करना, श्रीमद् का यह करना। ऐई! आये थे न? ढेला में रहते और आहार लेने आये थे अन्दर। हिम्मतभाई थे। तब की बात है, हों! खबर है न। यह बात बहुत फेरफार हो गया। आहाहा! वे फिर ऐसा कहे कि व्रत, तप, अपवास और यात्रा करो तो समकित होगा। ये लोग ऐसा कहे, गुरु की भक्ति करो तो होगा। भक्ति आती है।

नियमसार में श्लोक आता है न? भाई! इष्टफल ऐसी जो मुक्ति, उसका जो उपाय, वह सम्यग्ज्ञान से ज्ञात होता है। नियमसार में विद्यानन्दस्वामी क्या कहते हैं? कि इष्टफल जो मुक्ति, उसका जो उपाय, सुशास्त्र से ज्ञात होता है, सम्यग्ज्ञान से ज्ञात होता है। सम्यग्ज्ञान सुशास्त्र से ज्ञात होता है। सुशास्त्र आप्तपुरुष से निकला हुआ है, इसलिए धर्मात्मा पूज्य पुरुषों का उपकार भूलते नहीं हैं। आता है न? समझ में आया? आहाहा! मुक्ति का जो उपाय, वह सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान का कारण सुशास्त्र है, सुशास्त्र की उत्पत्ति तीर्थंकर सर्वज्ञ से है, आप्त से है। इसलिए सर्वज्ञ की कृपा का फल... वापस ऐसा अन्दर लिखा है। उसका अर्थ यह कि सर्वज्ञ की वाणी में ये शास्त्र आये, उन्हें जिसने सुना और सुनकर अपनी ओर का ज्ञान हुआ, उसके वाणी को निमित्त कहने में आता है और इसलिए उसे जिससे सम्यग्ज्ञान हुआ, ऐसे पुरुषों का वह उपकार भूलता नहीं है। है या नहीं इसमें? नियमसार, कितने में है वह? पाँचवीं में? आहाहा!

छठी गाथा, छठी गाथा है। **इष्टफल की सिद्धि का उपाय सुबोध है...** इष्टफल अर्थात् मुक्ति। उसका उपाय सुबोध / सम्यक्‌बोध / सम्यग्ज्ञान है और **सुबोध, सुशास्त्र से होता है।** सुशास्त्र दोनों को लागू किये हैं। **सुबोध, मुक्ति का उपाय है, वह सुबोध, सुशास्त्र**

से होता है, सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है... सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा, यह सुशास्त्र वहाँ से होता है। निमित्त-निमित्तसम्बन्ध कहते हैं न, **इसलिए उनके प्रसाद के कारण आप्त पुरुष बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य है...** आहाहा! निश्चय में तो स्वयं आत्मा पूजनेयोग्य है परन्तु व्यवहार में सुशास्त्र की उत्पत्ति जिससे हुई है, वह पूजनेयोग्य है।

अर्थात् मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल है... उसका अर्थ यह। सुशास्त्र वहाँ से -प्रभु से निकले, उनसे ज्ञान हुआ, ज्ञान से मुक्ति होती है, इसलिए वह सर्वज्ञ की कृपा का फल है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! अथवा ऐसा भी कहा जाता है, श्रीमद् में आता है। 'करुणा हम पावत है तुमकी' हे नाथ! आपके ज्ञान में मेरा मोक्षमार्ग और मुक्ति आपने जानी, उस समय मुझे होती है, यह आपकी कृपा है। आहाहा! समझ में आया? श्रीमद् कहते हैं 'करुणा हम पावत है तुमकी' हे नाथ! आपके ज्ञान में मुझे मुक्ति कब होगी और उपाय कब होगा, यह आपके ज्ञान में आया है। वह ज्ञान में आया, अर्थात् मेरी दशा जो हुई, वह आपकी कृपा का फल है। आहाहा! ऐसी बात है।

सर्वज्ञदेव ज्ञानियों द्वारा पूजनीय है क्योंकि 'कृतमुपकारं साधवो न हि विस्मरन्ति।' किये गये उपकार को साधु पुरुष (सज्जन) भूलते नहीं हैं... ऐसा होता है, परन्तु फिर भी वह सम्यग्ज्ञान सुशास्त्र से कहा परन्तु सम्यग्ज्ञान स्वद्रव्य का लक्ष्य करे, तब होता है। समझ में आया? सुननेमात्र से (नहीं होता)। सुनने में तो उसका लक्ष्य आया कि यह वस्तु परिपूर्ण है, उसका आश्रय करने से तुझे ज्ञान होगा, ऐसा ख्याल आया निमित्तरूप से, परन्तु उस ख्याल के लक्ष्य से सम्यग्ज्ञान नहीं होगा। आहाहा! ऐसी बात है।

इसलिए ऐसा कहा न कि शास्त्र दिशा दिखाकर अलग रहते हैं। दिशा दिखाते हैं, देख भाई! अन्दर पूर्ण भगवान है, प्रभु! वहाँ दृष्टि दे, तुझे सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान होगा, ऐसा उसे ख्याल आया। उस ख्याल में उपकार भगवान की वाणी का है और उस ख्याल का तुरन्त फल आया। उसे ऐसा होगा, ऐसा जो ख्याल आया था, वह उसने द्रव्य पर दृष्टि देकर ख्याल को सिद्ध किया। ऐसा मार्ग है। एक-एक बात अनजानी लगे छोटी, बापू! मार्ग तेरे घर का है, भाई! आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, ज्ञान के ऊपर जोर नहीं है, मानो ज्ञान अवश्य। वह ज्ञान भी अपने

दृष्टि का जो विषय है, उसके साथ हुआ ज्ञान, वह द्रव्य को जाने, पर्याय को जाने। कान्तिभाई! कहाँ इसमें कहीं था नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग, भाई! आहाहा! अरे! आठ-आठ वर्ष के बालक भी अनुभव करते थे। आहाहा! राजकुमार, जिनके घर स्फटिक के महल और... आहाहा! वे भी अन्दर जहाँ भगवान की वाणी सुनी और उन्हें ख्याल में आया कि भगवान तो पूर्णानन्द के नाथ का आश्रय कर तो तुझे ज्ञान होगा। ऐसा भगवान का ख्याल आया और उस ख्याल को... समझ में आया? आहाहा! भगवान की वाणी-दिव्यध्वनि समवसरण में सुनी। ख्याल में आया, उसकी ज्ञान की पर्याय में ख्याल आया कि भगवान ऐसा कहते हैं कि तेरा आत्मा पूर्णानन्द प्रभु भरपूर भगवान है, अनन्त-अनन्त गुण का गोदाम प्रभु है। वहाँ तू दृष्टि दे। तुझे सम्यग्दर्शन होगा, सम्यग्ज्ञान होगा, स्वरूपाचरण की स्थिरता के साथ में आनन्द आयेगा। ऐसा ख्याल आया था, उस ख्याल का लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! और स्वसन्मुख जहाँ दृष्टि की अर्थात् जो ख्याल था, उस ख्याल को यथार्थ बनाया। समझ में आया? आहाहा! इसलिए भगवान का उपकार है, ऐसा यहाँ कहने में आता है। आहाहा!

वह ज्ञान, पर्याय को जानता है परन्तु पर्याय के ऊपर जोर नहीं है। **दृष्टि में अकेला स्व की ओर का—...** स्व की ओर का अर्थात्? लाईन की है न? **दृष्टि में अकेला स्व की ओर का—द्रव्य की ओर का बल रहता है।** आहाहा! भगवान परिपूर्ण परमात्मस्वरूप, उस दृष्टि का बल वहाँ रहता है। समझ में आया? आहाहा!

मैं तो शाश्वत् पूर्ण चैतन्य जो हूँ सो हूँ। मुझमें जो गुण हैं वे ज्यों के त्यों हैं, जैसे के तैसे हैं। मैं एकेन्द्रिय के भव में गया, वहाँ मुझमें कुछ कम नहीं हो गया है और देव के भव में गया वहाँ मेरा कोई गुण बढ़ नहीं गया है।—ऐसी द्रव्यदृष्टि ही एक उपादेय है। जानना सब, किन्तु दृष्टि रखना एक द्रव्य पर ॥४००॥

४००, **मैं तो शाश्वत् पूर्ण चैतन्य जो हूँ सो हूँ।** आहाहा! मैं तो मेरा जो स्वरूप, मैं तो शाश्वत् पूर्ण चैतन्य, शाश्वत् पूर्ण चैतन्य। आहाहा! जो हूँ, शाश्वत् पूर्ण चैतन्य जो हूँ।

आहाहा! वह हूँ। जो हूँ वह हूँ। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दृष्टि की भावना। आहाहा! धर्मी ऐसा जानता है, आहाहा! मैं तो शाश्वत् नित्य पूर्ण, शाश्वत् पूर्ण चैतन्य जो हूँ, जो हूँ वह हूँ। आहाहा! भाषा बहुत सादी परन्तु... शशीभाई! हीराभाई नहीं आये? आहाहा! धर्मी की दृष्टि मैं.. शाश्वत्..चैतन्य.. पूर्ण, पूर्ण चैतन्य, शाश्वत् पूर्ण चैतन्य। आहाहा! जो हूँ वह मैं हूँ। आहाहा!

मुझमें जो गुण हैं... दूसरा बोल लिया। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का पन्थ कोई अलौकिक है। लोगों ने लौकिक करके तोड़ डाला है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि का भाव धर्मी की शुरुआत की दशा का भाव, वह ऐसा मानता है कि मैं तो शाश्वत् हूँ। नया नहीं हुआ, पर्याय में आता नहीं। आहाहा! इसलिए जिसे बदलना नहीं, ऐसा पूर्ण चैतन्य हूँ। **मैं तो शाश्वत् पूर्ण चैतन्य जो हूँ...** शाश्वत् तो परमाणु भी है। परन्तु **मैं तो शाश्वत् पूर्ण चैतन्य जो हूँ सो हूँ**। आहाहा! लोग कुछ का कुछ लोगों की सेवा करना और उसका यह करना और हम सेवा करते हैं, (ऐसी मान्यता में) जगत को मार डाला। आहाहा!

मुमुक्षु : जग की सेवा करना यह तो श्रावक का धर्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सेवा करता था? यह तो विकल्प आया तो उसे पर के ऊपर लक्ष्य जाता है, इतनी बात है परन्तु वह कोई सेवा कर सकता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो मैं शाश्वत् पूर्ण चैतन्य हूँ, वह हूँ। वह तो ऐसी पर्याय उसे इस प्रकार स्वीकार करती है। आहाहा! मैं रागवाला हूँ और राग से किसी का कुछ कर सकता हूँ, यह तो मुझमें है ही नहीं। आहाहा! एक बात।

मुझमें जो गुण हैं... चैतन्य जो चेतन है, उसके चैतन्य आदि **जो गुण हैं, वे ज्यों के त्यों हैं,...** अर्थात् वे वैसे के वैसे, वैसे के वैसे **ज्यों के त्यों हैं,...** आहाहा! चाहे जिस गति में भटका परन्तु मेरे गुण तो जैसे हैं, वैसे हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा! सब हीरा के कण हैं। मुझमें अर्थात् मैं जो चैतन्य शाश्वत् पूर्ण हूँ वह; उसमें जो गुण हैं, वे ज्यों के त्यों ही हैं। वे गुण वह के वही हैं। पर्याय में चाहे जितना परिवर्तन हुआ परन्तु जो गुण हैं, वे तो वह के वही हैं। आहाहा!

ज्यों के त्यों हैं,... है? **ज्यों के त्यों हैं, जैसे के तैसे हैं**। जैसे के तैसे गुण अनादि

हैं। आहाहा! दृष्टि में विश्वास आना, बापू! आहाहा! हीन दशा में भी द्रव्य जो चैतन्य शाश्वत् हूँ, वह हूँ और मेरे गुण भी जैसे हैं, वैसे ही हैं। आहाहा! **ज्यों के त्यों हैं, जैसे के तैसे हैं**। आहाहा!

मैं एकेन्द्रिय के भव में गया,... आहाहा! निगोद के भव में एक शरीर में अनन्त जीव। भगवान परमात्मा निगोद को कहते हैं लहसुन, प्याज आदि, काई, एक टुकड़े में असंख्य तो शरीर हैं, एक राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर, एक शरीर में अनन्त जीव। जिसकी पर्याय में अक्षर के अनन्तवें भाग का विकास है, तथापि मेरा द्रव्य और गुण तो जितना है, उतना है। आहाहा!

वे तो कहते हैं न? रतनचन्दजी (मुख्तार कहते हैं) पर्याय में अशुद्धता आयी तो द्रव्य भी अशुद्ध हो गया। वह द्रव्य अशुद्ध हुआ, यह पर्याय की अपेक्षा से कहा जाता है। द्रव्य गुण अशुद्ध नहीं होते। प्रवचनसार का (आधार) देते हैं न! शुभ में शुभरूप हो जाता है। परन्तु वह तो पर्याय की बात है और उसे अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से ऐसा कहा जाता है द्रव्य अशुद्ध हुआ। वह तो अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहा या व्यवहार कहो या पर्याय कहो। आहाहा! यह तो अशुद्ध क्यों कहा? कि जो द्रव्य है, वह पर्यायरूप से अशुद्ध हुआ है। पर्यायरूप से; द्रव्यरूप से नहीं। आहाहा!

वह पर्यायरूप से ऐसा होने पर भी, एकेन्द्रिय में रहने पर भी, (उस) भव में गया, वहाँ मुझमें कुछ घट नहीं गया। मेरा द्रव्य चैतन्य परिपूर्ण, ऐसे ही मेरे गुण, ऐसे के ऐसे और ज्यों के त्यों रहे हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी पागल जैसी बातें लगे लोगों को। परन्तु चतुर का पुत्र बड़ी-बड़ी बातें करे न ऐसे। ऐसा होता है और ऐसा करना और ऐसा करना, वह मानो कि आहाहा! वह ज्ञान नहीं है, बापू! वह तो सब विपरीत मान्यताओं की बातें हैं। पर की दया पालो, व्रत करो, अपवास करनेवाले तपस्यावालों की कुछ इज्जत करो, पैसा-बैसा दो.. आहाहा! यह तो सब राग की बातें हैं, बापू! आहाहा! यह धर्म नहीं और यह धर्म का कारण भी नहीं। आहाहा!

धर्म की दशा - पर्याय का कारण तो त्रिकाली भगवान है। आहाहा! यह द्रव्य वह वैसा का वैसा मेरा रहा है। आहाहा! अरे! अल्पज्ञ दशा में भी, निगोद की अल्पज्ञ दशा में

भी द्रव्य और गुण जैसे हैं, वैसे ही रहे हैं। अब यह विश्वास कैसे आवे ? बापू! आहाहा! आहाहा! निगोद के एक शरीर में अनन्त जीव, ऐसे असंख्य शरीर का एक राई जितना टुकड़ा होता है। उसमें एक शरीर में अनन्त आत्माएँ, उसकी पर्याय बहुत ही हीन अक्षर के अनन्तवें भाग की, तथापि मेरे गुण और द्रव्य तो जैसे हैं, उतने ही रहे हैं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! कहो जवाहरमलभाई! यह सब समझना पड़ेगा, हों! पैसा-बैसा धूल में कुछ नहीं है। मुम्बई आये वहाँ से। देश में-यहाँ आत्मा में आना पड़ेगा। आता है इसमें, ४०१ में आएगा। आहाहा!

अरे रे! हम राग के विकल्प में आये, हम कहाँ परदेश में आये। आहाहा! हमारा देश तो अनन्त ज्ञान, आनन्द से भरपूर जहाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द, वीर्य आदि यह मुख्य कहे, अनन्त गुण का देश मेरा प्रभु है। आहाहा! उसमें से यह दया, दान और व्रत की, यात्रा का, भक्ति का विकल्प आया। अरे रे! हम कहाँ परदेश में आ पड़े ? आहाहा! ४०१ में आएगा। है ?

देखो! ४०१ में है, देखो! '**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।**' है ? जवाहरमलभाई! अजितभाई! क्या कहा तुम्हारा गाँव वहाँ ? नैरोबी। भूल गये। वह तो परदेश नहीं परन्तु यह भगवान आनन्द का नाथ अनन्त गुण ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द, वीर्य आदि से भरपूर वह देश स्व का-अपना देश है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन की तो बात ही क्या करना ? वे तो पर हैं परन्तु यहाँ दया, दान, व्रत और भक्ति का विकल्प आया है जरा। अरे रे! हम परदेश में आ गये, हमारा स्वदेश रह गया एक ओर। अजितभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! गायन में जोड़ा है, नहीं ? भाई ने-रमेश ने। यह हमारा स्वदेश छोड़कर हम कहाँ परदेश में आ गये। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! विभावभाव यह दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठा। पाप का तो एक ओर रहा। कमाना और भोग और विषय तथा पूरे दिन धन्धे का राग पाप का (भाव) और स्त्री-पुत्र को सम्हालने का पाप का (भाव), वह तो कहीं परदेश भिन्न। यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प आया। आहाहा! वह हमारा देश नहीं है। है ? ४०१। यह तो और आ गया, वापस कितने ही चले जानेवाले हैं न... आहाहा!

इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ? पूर्ण आनन्द का नाथ परमात्मस्वरूप प्रभु में तो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि भरे हैं, वह हमारा स्वदेश है और जहाँ शुभराग में

आये... आहाहा! अरे! हम यहाँ कहाँ आ पहुँचे? आहाहा! देखो! यह भाषा, भाव तो देखो। आहाहा! **हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता**। धर्मी जीव को आत्मा के आनन्द में से निकलकर विकल्प में सुहाता नहीं। आहाहा!

यहाँ हमारा कोई नहीं है। आहाहा! यह दया का, दान का, भक्ति का विकल्प आया, सुनने का (विकल्प) आया। आहाहा! अरे रे! इस भाव में हमारा कुछ नहीं है। शरीर, वाणी, मन नहीं। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, आहाहा! चैतन्य की जलहलज्योति अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, वहाँ से निकलकर इस विकल्प में आया। आहाहा! अरे रे! **यह हमारा देश नहीं है, हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता**। आहाहा! है?

जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि... मुख्य लिये हैं, आदि स्वदेश हैं। आहाहा! हमारा स्वदेश तो ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द और वीर्यादि अनन्त गुण जो हमारा स्वदेश है। आहाहा! **अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है,...** आहाहा! स्त्री, पुत्र, परिवार तो कहीं रह गये, वह इसका परिवार नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! हमारा अनन्त गुण का पिण्ड नाथ, मेरा प्रभु, आहाहा! हम हमारे गुण का, हमारा परिवार बसता है, वहाँ हमारा स्वदेश है। आहाहा! कहो, चिमनभाई! ऐसी बातें हैं।

यह शुभराग आया, राग। देव, गुरु, शास्त्र की विनय-भक्ति आदि, वह हमारा देश नहीं है, वह हमारा परिवार नहीं है। आहाहा! जहाँ ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि अनन्त आनन्द आदि... आहाहा! बसते हैं, जहाँ हमारे गुण आदि का **परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है**। आहाहा! यह लींबडी स्वदेश नहीं, ऐसा कहते हैं। यह और वढवाण (रहते हैं)। इन्हें लींबड़ी... बाजार में खड़की में। आहाहा! इनके घर गये थे वहाँ जालीवाला घर है। आहाहा! वह देश होगा? कहो, रसिकभाई! आहाहा! 'रसिक जो रैन का सपना' आहाहा! ऐसा विकल्प आया। अरे रे! हमारा स्वदेश अनन्त आनन्द और ज्ञानगुण से भरपूर परिवार, वहाँ हम हैं और यह विकल्प आया, वह तो परदेश में आ गये। शान्तिभाई! आहाहा! ऐसी बात है। यह तो दूसरे को ऐसा करो और सेवा करो और देश सेवा करो और सबका कल्याण करो, नारी घर की रक्षा करनेवाली है, इसलिए नारी उत्तम कहलाती है। धूल भी नहीं, सुन न! आहाहा! क्योंकि स्त्री को स्त्री और पुत्र को पोषण करना और यह तो धन्धा दुकान में बैठा हो। पीछे लड़के सात-आठ हुए हों उनमें दो-दो वर्ष में लड़के हुए हों तो सोलह वर्ष

के आठ हुए हों। छह लड़कियाँ और दो लड़के, सात लड़कियाँ और एक लड़का। अब उन्हें सम्हालना और उनका पालन करना... आहाहा! इसलिए स्त्री घर की वास्तविक मालिक तो वह है, ऐसा कहते हैं। धूल भी नहीं, सुन न! यह सब पाप के पाखण्ड की बातें हैं। पण्डितजी! ऐसा ही है? आहाहा!

हमारा स्वदेश है। अब हम... आहाहा! यहाँ आ गया और वे तुम्हारे कितने ही चले जानेवाले हैं न, वह यहाँ आ गया, यहाँ तो बाकी रहा अभी। हमारे गाँव से आये हैं न? यह सुनना कठिन पड़े ऐसा है। गाँधी! सम्प्रदाय में है नहीं, बापू! यह क्या कहें? कठिन पड़े। अर..र! हमारा देश गुण का भरा हुआ। ज्ञान, श्रद्धा, आनन्द आदि गुण से भरपूर हमारा देश अन्दर है। हम उस देश में से हटकर विकल्प में आ गये। आहाहा! भान तो है, दृष्टि वहाँ है परन्तु अस्थिरता के कारण विकल्प आया है। आहाहा! वह हमारा परिवार नहीं है, वह हमारा देश नहीं है। आहाहा! रसिकभाई! ऐसा रस है। आहाहा!

अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं। आहाहा! हमारा स्वरूप स्वदेश, उसमें जा रहे हैं। आहाहा! वह हमारा मूल वतन है। आहाहा! देखो! यह धर्मी का देश और वतन। लींबड़ी नहीं। चिमनभाई का कौन सा गाँव है महुआ। इनका चिमन ठाकरसी का का लींबड़ी तो जानते हैं। तुम्हारा घर तो बाजार में है न? आये हैं न घर में। महुआ, वह देश नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो मलवा देश है। आहाहा!

हमें त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर... आहाहा! प्रभु की ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता भरी है, हमारे तो मूल वतन में जाना है। आहाहा! यहाँ पाँच-पच्चीस लाख पैदा करे, तब कहते हैं न भाई! देश में आकर स्वयं भोगे। आता है न? भाई! नियमसार में (आता है)। बाहर में लक्ष्मी पैदा की, पच्चीस-पचास लाख, एक करोड़-दो करोड़। जैसे अपने यह लखाणी नहीं? कोई आया है या नहीं लखाणी का? वे दो भाई। वे पैसे अठारह लाख लेकर चले आये थे मुम्बई से। फिर लेकर चले आये, सब छोड़ दिया। इसी प्रकार जिसे बाहर में पैसे पैदा हुए हैं, वह फिर देश में आकर निश्चिन्तता से (रहता है) ढिंढ़ोरा नहीं पीटता। नहीं तो लुटेरे निकलेंगे। वह कहे हमको दो, वह कहे हमको दो। स्त्री, पुत्री कहे हमको दो, दामाद कहे हमको दो। गाँव में क्या कहलाता है? चन्दा चले तो चन्दे में भरना पड़ेगा तुम्हें। तुम करोड़पति हो। यह कहते हैं अकेले खाना, बापू! बाहर (ढिंढ़ोरा)

पीटना नहीं कि हम पैसे कमाकर आये हैं। आहाहा! नियमसार में है। इसी प्रकार तेरा ज्ञानस्वभाव देश... आहाहा! ज्ञाननिधि को पाकर अकेले रहना। तू बाहर पुकार नहीं करना। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ......किसी के साथ वाद-विवाद नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : वाद-विवाद करना नहीं तो कहा। यह तो यह ऐसा कहा कि निधि को पाकर। आहाहा! बाहर प्रचारित नहीं करना कि हमें समकित है और हमें ज्ञान है। तुझे लोग लूटने आएँगे। हमें अभी समझाओ, हमें कुछ कहो न! इस संग में तुझे विकल्प आएगा। आहाहा! ...समझ में आया? आहाहा! देखो! यह वाणी। यह वचनामृत। आहाहा!

वचनामृत वीतराग के परम शान्त रस मूल,
औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।
रे गुणवन्ता ज्ञानी अमृत बरस्या रे पंचम काल में॥

कायर को प्रतिकूल लगता है (कि) यह क्या कहते हैं? क्या बकते हैं यह? हम जो करते हैं, उसमें से कुछ बात नहीं आती, नहीं की हुई दूसरी बातें। आहाहा! भाई! तूने किया क्या है? आत्मा को भूलकर पुण्य और पाप के विकल्प असंख्य बार के अभ्यास में किये हैं। दूसरा तो तूने कुछ किया नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, आहाहा! उसके वतन में जाकर... आहाहा! निश्चिन्तता से बसना है, वहाँ निश्चिन्तता से बसना है। हमारा निज वतन, निज देश। वतन, देश सादी भाषा अपनी गुजराती। हमारा वतन अनन्त आनन्द-ज्ञान आदि वह हमारा वतन है। आहाहा! वहाँ जाकर निश्चिन्तता से बसना, राग में आने से तो दुःख होता है। आहाहा! वहाँ (निज वतन में) निश्चिन्तता से बसना। आहाहा! सुमनभाई! ऐसी बातें तुम्हारे मुम्बई में भी कहीं नहीं मिलती। आहाहा!

मुमुक्षु : मुम्बई में है, वह यहाँ नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या धूल है मुम्बई में। ऐसा कि वहाँ वेतन मिलता है आठ-दस हजार का, दस हजार का, पन्द्रह हजार का। अपने एक दलीभाई का लड़का नहीं है न वहाँ एक? मोरबीवाला। पन्द्रह हजार का वेतन महीने का है, एक को आठ हजार का है। क्या

कहलाता है ? टाटा, टाटा में है। वहाँ हम गये थे। अपने एक भाई थे न ? विजय। किडनी का दर्द हुआ। बारह महीने का विवाहित। बहुत प्रेम था। अविवाहित आया, तब भी बहुत प्रेम और फिर यह किडनी का दर्द हुआ और वहाँ आहार करने जाए... मणिभाई के यहाँ... आहाहा! पाँच, छह करोड़ रुपये। आहार करके फिर और कहलवाया - महाराज! आप यहाँ आते हों, मुझे दर्शन करना है। गये थे। आहाहा! बेचारे को बहुत प्रेम। स्त्री खड़ी थी, माँ-बाप खड़े थे और अन्दर शक्ति हीन हो गयी थी। आहाहा! बारह महीने का विवाहित। लड़का ऐसा जवान। विजय। उसकी माँ ने किडनी दी थी। देह छूट गयी। बहुत प्रेम, बहुत। ऐसा था वहाँ मैं गया फिर भी हम गाँव में आये, तब वापस दर्शन करने आया था। कहीं नहीं ? कौन सा गाँव ? दादर में दर्शन करने आया था। आहाहा!

अरे रे! कौन है ? भाई! तू कहाँ है ? शरण कहाँ है प्रभु ? आहाहा! शरणदाता प्रभु आत्मा है, भाई! आहाहा! वहाँ तेरी नजर पड़ने पर तुझे शरण मिलेगी, शरण देगा, नजर वहाँ स्थिर होगी। ध्रुव है, इसलिए नजर वहाँ स्थिर होगी। अध्रुव में नजर करने जाए तो नजर नहीं टिकेगी। आहाहा!

आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं। आहाहा! जहाँ सब हमारे ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण, अनन्त शक्तियों का संग्रहालय सागर, अनन्त गुण का गोदाम, अनन्त स्वभाव का सागर अन्दर उछलता है। आहाहा! धर्मी ऐसी भावना भाता है। हमें तो हमारे देश में निश्चिन्तता से जाकर बसेंगे। आहाहा! विकल्प में आने पर तो आकुलता और दु:ख होता है, वहाँ हमारा सुहाता नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। यह तो थोड़ा लिया।

मैं एकेन्द्रिय के भव में गया, वहाँ मुझमें कुछ कम नहीं हो गया है... ४०० बोल। **और देव के भव में गया...** नौवें ग्रैवेयक तक। वहाँ मेरा कोई गुण बढ़ नहीं गया। आहाहा! तैंतीस सागर का आयुष्य, ऐसे इकतीस हजार वर्ष में आहार की डकार आवे, श्वास अमुक पक्ष में (आवे) आहाहा! वह कैसी स्थिति ? ऊँचा-नीचा। इकतीस सागर है तो इकतीस पखवाड़े में श्वास आवे। आहाहा! इकतीस हजार वर्ष में कण्ठ में से अमृत झरे। धूल का आहार का अमृत। वहाँ मैं गया परन्तु मुझे कुछ गुण में वृद्धि नहीं हुई, गुण बढ़ नहीं गया।

आहाहा ! कहाँ नौवाँ ग्रैवेयक और कहाँ निगोद में, एकेन्द्रिय में। आहाहा ! मेरा द्रव्य और मेरे गुण तो ऐसे के ऐसे और वह के वही, वह के वही, वह के वही, उतने के उतने... आहाहा ! रहे हैं।

ऐसी द्रव्यदृष्टि ही एक उपादेय है। आहाहा ! द्रव्य वैसा का वैसा, गुण वैसे और उतने (रहे हैं)। चाहे वह एकेन्द्रिय में रहा, नौवें ग्रैवेयक में गया। आहाहा ! परन्तु ऐसा का ऐसा, गुण भी इतने के इतने, भाई ! आहाहा ! उसके ध्रुवपने में कहाँ अन्तर पड़ा है ? आहाहा ! वही एक उपादेय है। **वही एक उपादेय है**। ऐसा भगवान अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु, वह एक ही आदरणीय है। आहाहा ! **जानना सब,...** जानने में तो सब आता है। पर्याय रागादि (सब जानने में आते हैं) **दृष्टि रखना एक द्रव्य पर**। विशेष कहेंगे....

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

कार्तिक कृष्ण -१२, सोमवार, दिनाङ्क २७-११-१९७८
वचनामृत-४०१ से ४०३ प्रवचन-१६३

ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है। ज्ञानी निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है। 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं। हमें त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं'।।४०१।।

४०१, थोड़ा, दो लाईनें बाकी है। पहली शुरुआत। ४०१, **ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है।** आहाहा! धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा परमानन्दस्वरूप ध्रुव जो निश्चय आत्मा है, उसका जिसे अनुभव हुआ हो। आहाहा! उसे ध्रुवस्वरूप भगवान को अनुसरकर परिणति—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति प्रगट हुई हो। आहाहा! इससे धर्मी का परिणमन, ज्ञानी का है, इसलिए कोई ऐसा माने कि ज्ञानी को ऐसा होगा परन्तु धर्मी को क्या ? किन्तु धर्मी कहो या ज्ञानी कहो, एक ही बात है। आहाहा!

धर्म, यह आत्मा का त्रिकाली स्वभाव है, इसका धारक धर्मी अर्थात् आत्मा। उसके स्वभाव के प्रति झुकाव होकर, अन्तर में एकाग्रता होकर निर्मल श्रद्धा-ज्ञान हो, उसे ज्ञानी का परिणमन कहा जाता है। आहाहा! रागादि, वह कहीं ज्ञानी का परिणमन नहीं है, वह विकार है। उसे जाननेवाला ज्ञान, ज्ञाता-दृष्टारूप परिणमने पर उसका ज्ञान होता है। आहाहा! इसलिए धर्मी... आहाहा! वस्तु जो त्रिकाली परमस्वभावभाव, ज्ञायकभाव,

ध्रुवभाव, अभेदभाव की दृष्टि होने से वह सम्यग्दृष्टि होता है। आहाहा! यह ऐसा है। भाई नहीं आये? मलूकचन्दभाई! होंगे। गाँव में है? शरीर कमजोर पड़ गया है और शोजिस चढ़ी है।

धर्मी उसे कहते हैं कि जिसका झुकाव राग और द्वेष तथा पुण्य-पाप के प्रति था, वह झुकाव बदल जाता है। यह ऐसी बात कहाँ? 'जैनप्रकाश' में आज आया है, भाई! भीखालाल गिरधर है न! उसमें कब थी यह बात? उसमें उसने लिखा है। समकिती को अनुभव होता है और वह अनुभव उपयोग बहुत काल में होता है। पाँचवें वाले को थोड़े (काल में) होता है परन्तु यह बात थी कब तुम्हारी? यह तो दिगम्बर की बात है।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर शास्त्र में बात ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही कहाँ यह बात। वहाँ तो... अट्ठाईसवें अध्ययन में। उसमें डाला है यह जैनप्रकाश। परन्तु जैनप्रकाश का जो साधु है स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी उसमें यह है कहाँ? परन्तु उन्हें ऐसा लगता है कि... यहाँ का पढ़कर उसे जैनप्रकाश में डाल देते हैं।

समकिती, जिसे आत्मज्ञान हुआ हो, उसे उस आत्मज्ञान के उपयोग में जब जुड़ान होता है, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। अब उसे वापस वह उपयोग लब्धरूप रहता है। प्रतीति को तो लब्ध और उपयोग का कुछ है नहीं। वह प्रतीति कायम रहती है परन्तु फिर उसमें उपयोग अन्दर जमे, वह कितने काल जमे? किसी को अन्तर्मुहूर्त में भी आ जाए, किसी को महीने-दो महीने में भी आ जाए। पाँचवें (गुणस्थानवाले) को शीघ्र आता है, छठवें में तो क्षण-क्षण में आता ही है सातवाँ और छठवाँ (गुणस्थान)। यह बात कहाँ है? सुनी थी, त्रंबकभाई! यह स्थानकवासी में से (आते हैं)। आहाहा! अरे! भाई! किसी की बात को किसी के नाम से चढ़ाना... आहाहा! यह तो अनुभवप्रकाश, चिद्विलास में यह बात है। वह तो दिगम्बर सन्त-गृहस्थ का-दीपचन्दजी का बनाया हुआ है। वे बात करते हैं परन्तु यह ऐसा कहते हैं कि हमारे में भी ऐसा है। ऐसा है नहीं, भाई! क्या हो?

एक सुखरातभाई हुआ है, नहीं? ईशु ख्रिस्ती जैसा, नहीं। सुना है बड़ा हुआ है, सुना अवश्य है। सत् का शोधक। उसमें बहुत आया है। वह तो सत्य का बोलनेवाला है ऐसा

कहते हैं। उसकी मानी हुई बात। परन्तु उसमें फिर कोर्ट ने उसे मार डालने को जहर का कटोरा दिया, पी जाओ। ऐसा उसमें है, नाम सुना है। इतिहास में कहीं पढ़ा होगा। पीता है, महिलाओं को कहता है यहाँ से चली जाओ। तुम नहीं देख सकोगी। उसकी महिलाओं को (कहा)। लड़की-लड़के तुम मेरी मृत्यु नहीं देख सकोगे। उसके भक्त नहीं देख सकते तुम, भाई! ऐसे जहर का प्याला पीता है। कोर्ट से हुक्म हुआ है। लोग सहन नहीं कर सकेंगे। अपनी जाति की जो बात बुनकर रखी हो, उससे कुछ विरुद्ध कहनेवाला निकले (तो सहन नहीं कर सकते)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तू सुन। आहाहा! यह सत्य तो उसे कहते हैं... आहाहा! परमप्रभु भूतार्थ जो सत्यार्थ त्रिकाली चीज़ है, जो राग से तो भिन्न है परन्तु एक समय की पर्याय से भी भिन्न है। आहाहा! ऐसा जो परम... यह एक विचार जरा आया था। यह वे सेब करते हैं न? भाई! सफरजन तुम्हारे नहीं? ऐई! तुम्हारे हिन्दी में उसे सेब कहते हैं न? उसे (गुजराती में) सफरजन कहते हैं। उसके ऊपर से विचार आया था। सफरजन पाँचों ही एकाक्षर। भगवान आत्मा अन्दर में सफर करे, जन अर्थात् आत्मा, उसका नाम सफरजन है। यह तो वह सेब तुम्हारे बहुत आते हैं न। आहाहा! सेब शब्द है वहाँ। स-एव, ऐसा लेना चाहिए। यह भगवान आत्मा... जैसे सफरजन के (सेब के) टुकड़े कर-करके खाते हैं। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का दल पड़ा है। आहाहा! उसमें जितनी एकाग्रता करे, उतना अन्दर दल का टुकड़ा अनुभव में आता है। आहाहा! ऐसी बात है।

यह यहाँ कहते हैं, धर्मी का परिणमन अर्थात् दशा विभाव से विमुख होकर (अर्थात्) पुण्य और पाप के विकल्प राग हैं, उनके ऊपर जो अनादि का लक्ष्य था अर्थात् पर्यायबुद्धि वहाँ थी... आहाहा! उसमें से विमुख होकर, स्वरूप सन्मुख ढल रहा है। आहाहा! कितना समाहित किया है, देखो न! आहाहा! परिणमन अर्थात् दशा। धर्मी की दशा, विभाव की दशा से विमुख होकर... आहाहा! स्वरूप, स्वरूप आनन्द का नाथ प्रभु अखण्डानन्द स्वरूप के सन्मुख उसकी दशा-परिणमन ढल रहा है।

ज्ञानी निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से... आहाहा! धर्मी ने अपने आनन्द के नाथ को पकड़ा है और अनुभव किया है। अब वह **निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने**

को तरसता है। ऐसी बात है कहाँ ? आहाहा ! अरे रे ! ऐसी बात के बिना जगत की जिन्दगी चली जाती है। सम्प्रदाय में जहाँ पड़ा हो, उसकी मान्यता और वह मान्यता तथा उसका वह यथार्थपना निवृत्ति कहाँ है कि यह क्या कहते हैं, यह (निर्णय करे) । आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं, जब तक पुण्य और पाप आदि, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम के ऊपर रुचि थी तो वहाँ उसका परिणमन विकारी था। अब जब रुचि से गुलांट खायी... आहाहा ! पूर्णानन्द का नाथ जिसे पोषाण में, रुचि में, दृष्टि में आया, वह अब उसे परिपूर्ण करना चाहता है। दूज उगी, वह पूर्णिमा होती है। आहाहा ! ऐसी बात कहाँ है ? उस पूर्ण स्वरूप में **परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है।** अन्दर में स्थिर हो जाना। आहाहा ! फिर यह तो कल आ गया था, परन्तु थोड़ा साथ में ले लेते हैं। भाई ने रिकार्ड तो किया है।

'**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** आहाहा ! शरीर, वाणी, मन-यह तो मिट्टी, धूल, जड़ है, परन्तु अन्दर में जो कुछ विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का उठता है... आहाहा ! वह धर्मी ऐसा जानता है कि यह हमारा देश नहीं है। अरे ! हम कहाँ परदेश में आ पड़े ? आहाहा ! जिसे यह दुनिया अभी दया, दान, व्रत, परिणाम को धर्म मानती है। आहाहा ! ऐई... चिमनभाई ! आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर ने जो आत्मा कहा, वह पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता, ऐसे परिपूर्ण गुण से भरपूर भण्डार भगवान है। इसकी ओर की जहाँ दृष्टि हुई, तब पुण्य और पाप के विकल्प जो विकारी थे, उनसे विमुख हो जाता है और स्वभावसन्मुख होता है। अब ऐसी बातें।

वह जीव परिपूर्ण स्थिर होने के लिए तरसता है। अरे ! मेरी चीज़ परिपूर्णरूप से कैसे हो, यह उसकी भावना होती है। '**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** आहाहा ! ज्ञानी को विकल्प आवे, दया का, कोई व्रत का, कोई भक्ति का, पूजा का, भगवान के स्मरण का (विकल्प आवे) परन्तु वह सब राग है। आहाहा ! धर्मी को ऐसा लगता है, यह हमारा देश नहीं है। **परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ?** आहाहा ! जैसे आर्य घर में से निकलकर कोई कसाईखाने में चढ़ जाए, इसी प्रकार अरे..रे.. ! हम तो इस राग में-परदेश में आ पहुँचे। आहाहा ! यह हमारा देश नहीं है। **हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता।** झाँझरीजी ! पढ़ा हो या नहीं ? कितनी बार पढ़ा है पूरा ?

मुमुक्षु : आपके समक्ष जो सुनते हैं, वह....

पूज्य गुरुदेवश्री : भले वह, परन्तु यह तो पढ़ा है या नहीं, इतना। भले पकड़ में आया हो, न पकड़ में आया हो (वह अलग बात है)। यह तो भाई को पूछा था रमणीकभाई को। अबकी दोगुना हुआ है उसके पास। पाँच, छह करोड़ रुपये में रच-पच गया है तो अभी पढ़ा भी नहीं, यह रमणीकभाई। आहाहा!

हमें यहाँ राग आता है, आहाहा! अरे! भगवान की भक्ति का, नाम स्मरण का, प्रभु का पंचपरमेष्ठी के स्मरण का, परन्तु वह राग है प्रभु! तुझे खबर नहीं है। आहाहा! धर्मी को वहाँ सुहाता नहीं है। **यहाँ हमारा कोई नहीं है।** आहाहा! हम इस विभाव में, स्वभाव में से हटकर कहाँ आ पहुँचे? अर..र..! आहाहा!

जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है,... आहाहा! हमारा त्रिकाली स्वभाव, वहाँ तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द, चारित्र, वीर्य वर्तता है, वह हमारा देश है। आहाहा! यह कल आ गया है। **वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं।** आहाहा! धर्मी तो उसे कहते हैं। आहाहा! यह तो सामायिक की और प्रोषध किया, प्रतिक्रमण की और रात्रिभोजन नहीं किया (तो) हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं, सुन न! आहाहा! जहाँ धर्मी स्वयं ज्योति सुखधाम पड़ा है। आहाहा! उसकी ओर ढलने से, बाहर निकलने पर राग को परदेश देखता है। आहाहा! **हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं।** राग का भाव आवे परन्तु हमें वहाँ रुचता नहीं है, सुहाता नहीं है, किन्तु कमजोरी के कारण आ जाता है। आहाहा! **हमें त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर...** आहाहा! हमारे तो त्वरा से-शीघ्रता से एकदम। आहाहा! **अपने मूल वतन में जाकर...** हमारा मूल वतन तो अन्तर अनन्त आनन्द, ज्ञान, दर्शन विराजता है, वह हमारा मूल वतन है। आहाहा!

मुमुक्षु : गुणस्वरूप मूल वतन कहलाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वही वतन है, मूल स्वरूप ही वह है। आहाहा! यह श्रीमद् में आया न पहली लाईन में? 'जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त' वह स्वरूप यह है। आहाहा! 'समझाया उन पद नमूँ श्री सद्गुरु भगवन्त।' व्यवहार कहा है परन्तु समझाया

उन पद नमूँ श्री सद्गुरु भगवान आत्मा। समझ में आया? आहाहा! बहुत फेरफार।

हमें तो शीघ्रता से हमारे मूल वतन में जाना है। मूल वतन तो वह देश। आहाहा! **आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं।** उसमें (राग में) रुचता नहीं था और यहाँ आराम से बसना है। आहाहा! यह तो कल आ गया था, इसलिए थोड़ा (शीघ्रता से ले लिया है)।

जो केवलज्ञान प्राप्त कराये, ऐसा अन्तिम पराकाष्ठा का ध्यान, वह उत्तम प्रतिक्रमण है। इन महा मुनिराज ने ऐसा प्रतिक्रमण किया कि दोष पुनः कभी उत्पन्न ही नहीं हुए; ठेठ श्रेणी लगा दी कि जिसके परिणाम से वीतरागता होकर केवलज्ञान का सारा समुद्र उछल पड़ा! अन्तर्मुखता तो अनेक बार हुई थी, परन्तु यह अन्तर्मुखता तो अन्तिम से अन्तिम कोटि की! आत्मा के साथ पर्याय ऐसी जुड़ गयी कि उपयोग अन्दर गया सो गया, फिर कभी बाहर आया ही नहीं। चैतन्यपदार्थ को जैसा ज्ञान में जाना था, वैसा ही उसको पर्याय में प्रसिद्ध कर लिया॥४०२॥

४०२, **जो केवलज्ञान प्राप्त कराये...** आहाहा! एक समय में तीन काल–तीन लोक को जाने, ऐसा जो केवलज्ञान, उसे जो प्राप्त करावे, **ऐसा पराकाष्ठा का...** उत्कृष्ट में उत्कृष्ट ध्यान। आहाहा! परमानन्द का नाथ प्रभु है, उसे ध्यान में विषय बनाकर, ध्यान में उसे–ध्रुव को विषय बनाकर ध्यान में जुड़ गया। इस प्रकार से ध्यान में जुड़ा कि **वह उत्तम प्रतिक्रमण है।** वह उत्तम प्रतिक्रमण है। आहाहा! यह तो पहाड़े बोल जाए, मिच्छामि दुक्कडम्... ऐसे पहाड़े तो अनन्त बार गिने हैं, सुन न! आहाहा! जिससे उत्तम ध्यान द्वारा केवलज्ञान प्राप्त होता है, उसे यहाँ प्रतिक्रमण कहते हैं। उत्तम प्रतिक्रमण–वापिस ढला, अन्दर में ढला। आहाहा!

हमारे बोटाद में सायंकाल प्रतिक्रमण करने सब बहुत आते हैं। फिर एक बार कहा था, कहा भाई! अनुभव चीज़ अलग है। अरे! अनुभव, और अपने क्या? ऐसा ठाकरसी गोपाणी कहा था। भूख गोपाणी अहमदाबाद में। शाम–सवेरे बेचारे राग की मजदूरी करे और माने कि हमने प्रतिक्रमण किया। मिथ्यात्व का पोषण है, मिथ्याश्रद्धा की पुष्टि वहाँ है,

उसे इसने प्रतिक्रमण माना है। आहाहा! यहाँ तो भगवान आत्मा पूर्ण स्वस्वरूप है, उसे ध्यान में लेकर पूर्ण स्वरूप प्राप्ति करे, पूर्ण स्वरूप को ध्यान में लेकर पूर्ण प्राप्ति-केवलज्ञान की करे, उसे उत्तम प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा!

इन महा मुनिराज ने ऐसा प्रतिक्रमण किया कि दोष पुनः कभी उत्पन्न ही नहीं हुए;... आहाहा! उत्कृष्ट बात ली है न ठेठ। परिपूर्ण आनन्द का भण्डार... आहाहा! जिस प्रकार मक्खी शक्कर की डली पर बैठकर चिपटी रहती है... आहाहा! उसी प्रकार अनन्त आनन्द का नाथ भगवान आत्मा, वहाँ ध्यान की पर्याय ऐसी लगा दी... आहाहा! कि उससे केवलज्ञान प्राप्त होगा। ऐसी दशा को उत्तम प्रतिक्रमण कहते हैं। ऐसी बात भी सुनी नहीं होगी। आहाहा! अरे! बेचारे जैन में नाम धराकर भी भटकनेवाले चार गति में भटकेंगे। आहाहा! क्या वस्तु है, इसकी खबर नहीं होती।

ऐसा (उत्तम) प्रतिक्रमण किया कि दोष पुनः कभी उत्पन्न ही नहीं हुए;... आहाहा! राग से विमुख होकर स्वरूप के ध्यान में ऐसा जाए कि केवलज्ञान उत्पन्न हो। उसे फिर अब राग उत्पन्न नहीं होगा। आहाहा! यह उत्तम प्रतिक्रमण है। **ठेठ श्रेणी लगा दी...** ध्यान में आत्मा को ध्येय बनाकर। आहाहा! ध्यान में विषय कुरु-ऐसा पाठ है। अध्यात्मतरंगिणी है न? जो तेरी ध्यान की दशा, जो राग और पुण्य में पड़ी है, वह तो मिथ्याध्यान है। आहाहा! परन्तु जिस ध्यानदशा में पूर्णानन्द प्रभु पूर्ण परमात्मस्वरूप विराजमान है... अरे! कैसे जँचे? जो पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भरा हुआ प्रभु है। आहाहा! भगवान अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द से पूर्ण लबालब भरा हुआ है। उसे ध्यान में विषय बनाकर स्थिर हो जाए। आहाहा! उसे अब दोष की उत्पत्ति नहीं होगी।

ठेठ श्रेणी लगा दी... अर्थात्? स्वरूप जो आनन्द और ज्ञानस्वरूपी है, उसमें एकाग्रता की धारा ऐसी जमी, उसे श्रेणी कहते हैं। आहाहा! **लगा दी कि जिसके परिणाम से वीतरागता होकर केवलज्ञान का सारा समुद्र उछल पड़ा!** आहाहा! उत्कृष्ट बात है। भगवान ज्ञान का-अनन्त ज्ञान का सागर अन्दर है, प्रभु! अनन्त आनन्द का वह सागर है, अनन्त प्रभुता का भरपूर प्रभु है वह। आहाहा! उसके ओर की धारा-ध्यान की धारा चलने पर... आहाहा! **केवलज्ञान का सारा समुद्र उछल पड़ा!** पर्याय में उसकी बाढ़ आयी। सागर। आहाहा! त्रिकाली भगवान में एकाग्र हुआ, इससे उसकी पर्याय में, जैसा पूर्णरूप

अन्दर है, वैसी ही पर्याय में पूर्णता का ज्वार आया। आहाहा! अरे! यह किस प्रकार की बातें? भाई! वीतरागमार्ग कोई अलग प्रकार है। इसकी श्रद्धा और समकित क्या है, इसकी भी अभी खबर नहीं होती। आहाहा! यह तो देव-गुरु-शास्त्र को मानो, वह समकित है। अरे! भाई! अनन्त बार माना है, सुन न अब यह तो। यह तो राग है। नव तत्त्व को मानो, बस! नव तत्त्व के भेद को मानना, वह भी राग है। आहाहा!

एक तत्त्व परमात्मस्वरूप स्वयं। आहाहा! जिसके समक्ष सिद्ध की पर्याय भी कीमती नहीं, ऐसा जो भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु स्वयं, आहाहा! वह भी जिनेश्वर ने कहा वह आत्मा। आहाहा! उसका ध्यान लगाने से। उत्कृष्ट बात ली है न? अर्थात् कि कोई ऐसा कहे कि यह क्रिया, दया, व्रत, भक्ति और पूजा करने से यह पूर्ण पर्याय होती है तो ऐसा नहीं है। जिसे ध्यान में लिया है, उसे ध्यान में धारावाही लेने से केवलज्ञान प्रगट होता है। पूरा आत्मा उछलता है। आहाहा! बाढ़ आती है न? बाढ़; इसी प्रकार भरपूर भगवान की दृष्टि एकाग्र होने से पर्याय में बाढ़, भरपूर बाढ़ आती है। आहाहा! अब ऐसी बातें। यह तो कहीं जैनधर्म ऐसा होगा? यहाँ तो कहे भाई! सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, रात्रि में चारों प्रकार का आहार छोड़ो, रात्रि को आहार न करो, छह परबी कन्दमूल आदि नहीं खाना और छह परबी ब्रह्मचर्य पालन करना। अब सब बातें सुन न, यह तो सब राग की क्रिया की बातें हैं। आहाहा!

यह तो परमात्मा स्वयं आनन्द का नाथ है। आहाहा! वह विकार के परिणाम से विमुख होकर निर्विकारी स्वभाव में जहाँ ध्यान में जाता है... आहाहा! और उस ध्यान में जहाँ उत्कृष्ट जमता है, वहाँ पूर्ण केवलज्ञान पूर्ण सागर उछलता है। आहाहा! वह सर्वज्ञशक्ति जो थी, अन्दर गुणस्वरूप सर्वज्ञशक्ति थी, उसका ध्यान करने से सर्वज्ञशक्ति पर्याय में उछलकर सर्वज्ञपना होता है। आहाहा! ऐसी बात है। कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह नया मार्ग कहाँ से निकाला? भाई! तुझे खबर नहीं है। आहाहा!

अन्तर्मुखता तो अनेक बार हुई थी,... क्या कहते हैं? कि अन्तर प्रभु है, उसकी दृष्टि हुई है और फिर बारम्बार उस ओर झुकाव भी हुआ था परन्तु यह ऐसा उत्कृष्ट झुकाव हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **अन्तर्मुखता तो अनेक बार हुई थी,...** सम्यग्दृष्टि की बात है। **परन्तु यह अन्तर्मुखता तो अन्तिम से अन्तिम कोटि की!** आहाहा! आनन्द का नाथ

का भान होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर बहुत बार अन्तर्मुख में जाता है, परन्तु वापिस यह अन्तर्मुखता ऐसी है कि उसमें पूर्ण स्थिर नहीं होता, वापिस बाहर निकल जाता है। यह अन्तर्मुखता ऐसी है... आहाहा! अन्तिम में अन्तिम कोटि की है। आहाहा!

आत्मा के साथ पर्याय ऐसी जुड़ गयी... परन्तु वह आत्मा क्या वह वस्तु, बापू! आहाहा! आत्मा अर्थात् साक्षात् जिनस्वरूप, परमात्मस्वरूप। आहाहा! ऐसा जो द्रव्यस्वरूप, ध्रुवस्वरूप, अभेदस्वरूप—ऐसा जो आत्मा, उसके साथ उसकी पर्याय जुड़ गयी। पर्याय और आत्मा परिपूर्ण... आहाहा! ऐसा स्वरूप है, भाई! उसने आत्मा की ऐसी सेवा की है कि वापिस हटा ही नहीं, वहाँ से हटा ही नहीं, वहीं का वहीं जम गया। आहाहा!

आत्मा के साथ पर्याय ऐसी जुड़ गयी कि उपयोग अन्दर गया सो गया,... आहाहा! वर्तमान जो दशा का उपयोग है, वह अन्दर में गया सो गया, पूरा हो गया। आहाहा! **फिर कभी बाहर आया ही नहीं।** आहाहा! पर्याय को... यह पर्याय क्या? इसकी वर्तमान दशा को, दशावान जो भगवान त्रिकाली आत्मा, उसमें जोड़ दी पर्याय को, ऐसी जोड़ दी कि वह वापिस बाहर आया ही नहीं, अन्दर में ही अन्दर में स्थिर हो गया। आहाहा! उसे सिद्धपद और केवलज्ञान होता है। **फिर कभी बाहर आया ही नहीं।** आहाहा!

चैतन्यपदार्थ को जैसा... चैतन्यपदार्थ को-वस्तु जो चैतन्यवस्तु ध्रुवतत्त्व है, एक समय की पर्याय की क्रीड़ा में अनादि से लगा है परन्तु उसका अन्दर चैतन्यतत्त्व जो पूर्ण वस्तु है, उसे वर्तमान पर्याय के अतिरिक्त अन्तर में पूर्ण चीज़ क्या है, उसके सन्मुख इसने देखा नहीं। यह एक समय की वर्तमान दशा जानने आदि की, बस! उसमें रमा रहा और आगे गया तो राग में रमा। आहाहा! परन्तु इस पर्याय की एक समय की दशा, आहाहा! उसके समीप में रहा हुआ आत्मद्रव्य तत्त्व। **चैतन्यपदार्थ को जैसा ज्ञान में जाना था,...** सम्यग्दृष्टि ने ज्ञान में जाना था, आहाहा! **वैसा ही उसको पर्याय में प्रसिद्ध कर लिया।** पैराग्राफ एकदम बहुत ऊँचा है। ऐसा बताकर यह कहते हैं, वहाँ उसे आत्मज्ञान हुआ, वह कहीं राग की क्रिया से नहीं हुआ तथा आगे बढ़ने की जो दशा हुई, वह भी कोई दया, दान, व्रत और उपवास किये, तो उनसे हुई—ऐसा नहीं है। समझ में आया?

चैतन्यपदार्थ को जैसा ज्ञान में जाना था,... धर्मी ने चैतन्य पदार्थ को-ज्ञान को

ज्ञान में पदार्थ को, वर्तमान ज्ञान की पर्याय में त्रिकाली चैतन्य पदार्थ को जाना था, आहाहा! **वैसा ही उसको पर्याय में प्रसिद्ध कर लिया।** पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता। आहाहा! जैसा पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य भरा है, भगवान में अभी पूर्ण भरा है। आहाहा! ऐसा जिसने ध्यान वहाँ लगाने पर। पहले जाना है कि वह परिपूर्ण वस्तु यह है। ऐसा उसे वर्तमान पर्याय में प्रसिद्ध कर लिया। आत्मख्याति हो गयी। आहाहा! उसका नाम केवलज्ञान और मोक्ष है। आहाहा! मनुष्यपना है, इसलिए केवलज्ञान होता है, व्रजनाराचसंहन है, इसलिए केवलज्ञान होता है, इन सबको उड़ा देने की यह बात है। आहाहा!

जहाँ भगवान परिपूर्ण पड़ा है, उसमें ध्यान की धारा लगाने से, उसकी पर्याय में जैसा उसका पूर्णरूप है, वैसी पूर्ण पर्याय प्रगट हो जाती है। यह उत्कृष्ट प्रकार की बात है। उत्तम प्रतिक्रमण, आता है न? नियमसार में (आता है)। उस समय की यह बात है, नियमसार में। आहाहा! वैसे तो मिथ्यात्व, अव्रत, राग से विमुख होकर अन्दर सम्यग्दर्शन, स्थिरता-अकषायभाव प्रगट किया, परन्तु वह साधारण प्रतिक्रमण है। आहाहा! परन्तु उत्कृष्ट प्रतिक्रमण, उत्तम प्रतिक्रमण; अन्दर ज्ञायक की पूर्ण सम्पदा जो पड़ी है, उसे ध्यान में लेकर और उग्र स्थिर हुआ, वैसी ही पर्याय में पूर्णता प्रगट हो गयी। वह हुई कहाँ से? यहाँ से। आहाहा!

जैसे पूर्णमासी के पूर्ण चन्द्र के योग से समुद्र में ज्वार आता है, उसी प्रकार मुनिराज को पूर्ण चैतन्यचन्द्र के एकाग्र अवलोकन से आत्मसमुद्र में ज्वार आता है;—वैराग्य का ज्वार आता है, आनन्द का ज्वार आता है, सर्व गुण-पर्याय का यथासम्भव ज्वार आता है। यह ज्वार बाहर से नहीं, भीतर से आता है। पूर्ण चैतन्य चन्द्र को स्थिरतापूर्वक निहारने पर अन्दर से चेतना उछलती है, चारित्र उछलता है, सुख उछलता है, वीर्य उछलता है—सब कुछ उछलता है। धन्य मुनिदशा!॥४०३॥

४०३, **जैसे पूर्णमासी के पूर्ण चन्द्र के योग से...** समुद्र का ऐसा स्वभाव है, सागर

का, समुद्र का कि चन्द्र की पूर्ण दशा पूर्णिमा होवे (तो) समुद्र में ज्वार आता है। इस समुद्र में ज्वार आवे न, उस पूर्णिमा के दिन पूरा-ठेठ ज्वार आता है। आहाहा! वहाँ पूर्ण चन्द्र हो यहाँ समुद्र में पूर्ण ज्वार आता है, ऐसा सम्बन्ध है। चौदश, तेरस, बारस और ग्यारस आदि ज्वार पीछे-पीछे होते हैं परन्तु जब पूर्णिमा होती है, तब वह पूर्ण समुद्र उछलकर पूर्ण ज्वार आता है। **जैसे पूर्णमासी के पूर्ण चन्द्र के योग से, पूर्णमासी के पूर्ण चन्द्र के योग से समुद्र में ज्वार आता है,...** आहाहा!

उसी प्रकार मुनिराज को... मुनि.. बापू! यह तो अभी मुनि तो किसे कहना! जहाँ अभी समकित का ठिकाना नहीं, वहाँ मुनि होकर बैठे हैं। आहाहा! मुनि तो अन्दर आनन्द के नाथ को जागृत करके जहाँ प्रचुर अन्तर आनन्द का वेदन बढ़ गया है। आहाहा! यह नग्नपना हुआ, इसलिए मुनि हुआ, ऐसा नहीं है। वस्त्रवाले हैं, वे तो मुनि हैं ही नहीं, वे तो द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि हैं। द्रव्यलिंगी द्रव्यमिथ्यादृष्टि ऐसा कि कुलिंगी मिथ्यादृष्टि। अब ऐसी बातें। जितने वस्त्रवाले हैं और मुनि मानते हैं, वे सब कुलिंगी मिथ्यादृष्टि हैं। ऐई!

अब जो नग्नदशा हों परन्तु अन्दर में सम्यग्दर्शन आदि की खबर नहीं, वे द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! यह वस्त्रवाले हैं, वे तो कुलिंगी हैं, द्रव्यलिंगी भी नहीं। स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी साधु, वे सब मिथ्यादृष्टि कुलिंगी हैं। कठिन बातें, बापू! बहुत कठिन पड़ता है, भाई! ऐ... कान्तिभाई! आहाहा! लोग कहते हैं न भाई! छाछ लेने जाए वहाँ दोना कहाँ छुपाये? हमारी मामी थी। गृहस्थ सब पैसेवाले थे। घर में भैंसें और यह घर साधारण। मेहमान घर में आवे तो हमेशा छाछ तो दे परन्तु बड़े दस सेर छाछ चाहिए हो तो घड़ा सामने (कहकर कहे) लो, मामी भर दो। छाछ लेने जाए और दोना छिपाये? ऐसा नहीं कहते? पीछे रखते हैं। इसी प्रकार जिसे मार्ग चाहिए हो, उसके सामने यह बात रखी जाती है। आहाहा! क्या दृष्टान्त, देखो न!

मुनिराज को पूर्ण चैतन्यचन्द्र के एकाग्र अवलोकन से... क्या कहा? पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के सम्बन्ध से, योग अर्थात् सम्बन्ध से। समुद्र में ज्वार आता है, वह स्वतन्त्र (आता है)। पूर्णिमा तो निमित्तमात्र है, पूनम-चन्द्र। इसी प्रकार मुनिराज को... आहाहा! मुनिराज—अतीन्द्रिय आनन्द का जिन्हें ज्वार आया है, इससे वह राज अर्थात् शोभता है।

आहाहा! **उसी प्रकार मुनिराज को पूर्ण चैतन्यचन्द्र के एकाग्र अवलोकन से...** पूर्ण चैतन्यचन्द्र भगवान आत्मा में एकाग्र अवलोकन से। आहाहा! **आत्मसमुद्र में ज्वार आता है;...** समुद्र में चन्द्र की पूर्ण चन्द्रमा के योग से, यहाँ समुद्र में पूरा ज्वार आता है। इसी प्रकार भगवान चैतन्य चन्द्रमा। आहाहा! **चैतन्यचन्द्र के एकाग्र अवलोकन से...** आहाहा! उग्ररूप से अवलोकन से, **आत्मसमुद्र में ज्वार आता है;...** उसकी वर्तमान पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति... आहाहा! उसके किनारे अर्थात् पर्याय में आता है। आहाहा! जैसे समुद्र के किनारे, वैसे इस आत्मा के किनारे अर्थात् पर्याय (में)। अरे! ऐसी सब बातें हैं। भाषा... वीतरागमार्ग, भाई! अलग प्रकार है, बापू! आहाहा!

चैतन्य पूर्ण चैतन्य चन्द्र के एकाग्र अवलोकन से आत्मसमुद्र में पर्याय में पूर्णता का ज्वार आता है। आहाहा! **वैराग्य का ज्वार आता है,...** आहाहा! वीतरागता—रागरहित वीतरागता का ज्वार आता है। आहाहा! वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा। वीतरागस्वभाव से, पूर्ण वीतरागस्वभाव से भरपूर चैतन्य। पूर्ण वीतरागस्वभाव से भरपूर चैतन्यचन्द्र के एकाग्रता के अवलोकन से पर्याय में पूर्ण वीतरागता का ज्वार पर्याय में आता है। आहाहा! अभी ऐसी चीज़ है, उसे समझने का भी-निर्णय का ठिकाना नहीं होता। आहाहा! अरे! इसका क्या योगफल? बापू! ज्ञान में उसका इस प्रकार से स्वभाव है और इस प्रकार से स्वभावसन्मुख होने से वह पर्याय में आता है। वह राग की क्रिया से नहीं, निमित्त से नहीं, संयोग से नहीं। आहाहा!

पूर्ण चैतन्यचन्द्र। जैसे चन्द्र के पूर्णिमा का योग, चन्द्र के पूर्णिमा का योग और समुद्र में ज्वार आना स्वतन्त्र है; इसी प्रकार पूर्ण चन्द्रमा ऐसा भगवान चैतन्यचन्द्र में एकाग्रता का ध्यान, एकाग्रता से अवलोकन करने से पर्याय में; जैसे समुद्र के किनारे ज्वार आवे; वैसे इस पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है। अरे.. अरे..! ऐसी बातें! कहीं सुना नहीं हो। आहाहा! ऐसा मार्ग है। इसे सुनने को मिले नहीं, वह कब विचार करे? कब करे? जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

पहले क्या कहा? कि चैतन्यचन्द्र को, पूर्ण चैतन्यचन्द्र। भगवान अन्दर पूर्ण चैतन्यचन्द्र है। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता—

ऐसे अनन्त गुण वहाँ पूर्ण हैं। ऐसे के ऐसे और वह के वही ऐसे के ऐसे हैं। आहाहा! उस पर लक्ष्य अर्थात् ध्यान करने से, उसमें एकाग्रता से, अवलोकन से, आहाहा! ज्ञानसमुद्र में ज्वार आता है। अनन्त गुण की पर्याय का ज्वार आता है। इसका स्पष्टीकरण किया। यहाँ जो सामान्य बात की है, अर्थात् क्या? आत्मसमुद्र में ज्वार आता है अर्थात् क्या? लाईन की है न? आत्मसमुद्र में ज्वार आता है अर्थात् क्या? ऐसा? इसलिए लाईन की है। आहाहा! है न? इसमें नहीं?

भगवान आत्मा पूर्ण चैतन्यचन्द्र प्रभु, आहाहा! उसके अवलोकन से एकाग्र के अवलोकन से। अवलोकन, वह पर्याय है परन्तु उस पर्याय से उसके अवलोकन से उसकी पर्याय में आत्मसमुद्र का ज्वार आता है। अर्थात् क्या? कि वैराग्य का ज्वार आता है। वीतराग परिणति की धारा आती है। आहाहा! आनन्द का ज्वार आता है। आत्मसमुद्र का ज्वार आता है, उसका यह अर्थ है। सामान्य लोग पकड़ नहीं सकते, इसलिए कहे यह क्या है? आहाहा! वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान पूर्ण, उसमें एकाग्रता के अवलोकन से पर्याय में वीतरागता की पर्याय आती है। आहाहा! यह वैराग्य है। आहाहा!

आनन्द का ज्वार आता है,... प्रभु आत्मा में परिपूर्ण आनन्द है। परिपूर्ण आनन्द है, आहाहा! अभी, हों! आत्मा में-भगवान में सदा पूर्ण-पूर्ण (आनन्द है)। आहाहा! उस पूर्ण आनन्द में-स्वभाव में एकाग्रता के अवलोकन से, पर्याय में पूर्ण आनन्द का ज्वार आता है। यह किस प्रकार का धर्म? बेचारे जैन में जन्मे हुए को खबर नहीं होती। आहाहा! इसलिए वे कहते हैं, सोनगढ़वालों ने नया धर्म निकाला है। यह सब चलता है, उससे अलग (प्रकार का)। बापू! ...नहीं, भाई! यह सनातन वस्तु जो आयी है, वीतरागता का पन्थ है। है, वह निकला है। तूने सुना नहीं था, इसलिए तुझे नहीं था, ऐसा कैसे कहना? आहाहा! देखो न, कैसी बात है! एक-एक पैराग्राफ! आहाहा!

आनन्द का ज्वार आता है,... आहाहा! पहले वीतरागता कही। वीतरागस्वभाव से परिपूर्ण भरपूर भगवान। एक (बात)। उसकी एकाग्रता के अवलोकन से पर्याय में वीतरागता की परिपूर्णता, ज्वार आता है। आहाहा! ऐसा कहकर (यह कहा), जो पूर्ण वीतरागस्वरूप है, उसकी एकाग्रता से आता है, कोई राग की क्रिया, जो दया, दान, व्रत

करे और उसके लिये आता है, उसका यहाँ निषेध है। यहाँ तो अस्ति से बात है। समझ में आया? आहाहा! राग से नहीं, ऐसा न कहकर; अस्ति जैसा परमात्मा पूर्ण वस्तु, वीतरागता का जैसे मक्खन का पिण्ड हो, वैसे वीतरागस्वभाव का पिण्ड प्रभु है। तीनों काल में, हों! परन्तु उसमें उसका उग्र अवलोकन, एकाग्रता से,... वह वीतरागपना परिपूर्ण है, उसमें एकाग्रता से पर्याय में वीतरागता का ज्वार आता है। आनन्द से परिपूर्ण प्रभु है। आहाहा! अतीन्द्रिय सुख का सागर भगवान पूर्ण है, उसकी पूर्ण एकाग्रता से... आहाहा! एकाग्रता से देखने पर पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार, हिन्दी में बाढ़ कहते हैं, बाढ़ आती है। आहाहा!

सर्व गुण-पर्याय का... लो! फिर दो मुख्य कहे, वीतरागता और आनन्द। आहाहा! दो लेकर, **सर्व गुण-पर्याय का यथासम्भव ज्वार आता है।** यथासम्भव जिसकी जितनी अवलोकन की एकाग्रता, उसके प्रमाण में उसे सब गुण की पर्यायें निर्मल प्रगट होती हैं। यथासम्भव-जिसकी जितनी एकाग्रता, उतनी वहाँ अनन्त गुणों की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! शान्ति और आनन्द दो लिये हैं। चारित्र की शान्ति जो पूर्ण वीतरागता भरी है, उसमें से वीतरागता आती है। परिपूर्ण आनन्द है, उसमें से आनन्द आता है। इस प्रकार परिपूर्ण ज्ञानस्वरूप है, उसकी एकाग्रता अवलोकन से ज्ञान की पर्याय में ज्वार आता है। जो ज्ञान थोड़ा हो, वह बहुत हो जाता है। आहाहा! ऐसे वीर्य जो अन्दर पूर्ण-पूर्ण है, अन्दर आत्मा में परिपूर्ण पुरुषार्थ भरा है। वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ। उसकी एकाग्रता के अवलोकन से उस वीर्य की धारा पर्याय में आती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ज्ञान, सुख, चारित्र, वीर्य—चार लिये।

इस प्रकार अन्तर भगवान आत्मा में एक कर्ता नाम का गुण परिपूर्ण पड़ा है। आहाहा! उस परिपूर्ण चैतन्यचन्द्र के एकाग्रता के अवलोकन से उस कर्ता गुण की पर्याय में कर्तापने की पूर्णता प्रगट होती है। आहाहा! अनन्त गुण की कर्तारूप पर्याय परिणमे। ऐसे अनन्त की बात सब बहुत लम्बी है। आहाहा! **सर्व गुण-पर्याय का यथासम्भव ज्वार आता है। यह ज्वार बाहर से नहीं, भीतर से आता है।** विशेष कहा जाएगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण -१३, मंगलवार, दिनाङ्क २८-११-१९७८
वचनामृत-४०४ से ४०६ प्रवचन-१६४

पर से भिन्न ज्ञायकस्वभाव का निर्णय करके, बारम्बार भेदज्ञान का अभ्यास करते-करते मतिश्रुत के विकल्प टूट जाते हैं, उपयोग गहराई में चला जाता है और भोंयरे में भगवान के दर्शन प्राप्त हों, तदनुसार गहराई में आत्मभगवान दर्शन देते हैं। इस प्रकार स्वानुभूति की कला हाथ में आने पर, किस प्रकार पूर्णता प्राप्त हो, वह सब कला हाथ में आ जाती है, केवलज्ञान के साथ केलि प्रारम्भ होती है॥४०४॥

(वचनामृत) ४०४, यह है न? एक बोल चला था। फिर से, जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो तो कैसे होता है? धर्म की पहली शुरुआत। आहाहा! तो उसे पर से भिन्न, निमित्त से भिन्न, शुभ-अशुभराग से भिन्न, एक पर्याय से भी भिन्न... आहाहा! यह तो आया था न? रंग, राग, भेद से भिन्न। २९ बोलों में आया था। आहाहा! आत्मा अन्दर राग से भिन्न; रंग अर्थात् जड़ आदि पर्याय। राग से भिन्न, भेद से भिन्न। आहाहा! ऐसा **पर से भिन्न...** इसकी व्याख्या इतनी। **ज्ञायकस्वभाव का निर्णय करके,...** ज्ञायकस्वरूप है, पूर्ण आनन्दस्वरूप द्रव्यस्वभाव, ऐसा भले विकल्पसहित भी निर्णय करके, **बारम्बार भेदज्ञान का अभ्यास करते-करते...** पश्चात् उनसे ऐसे भिन्न है। भेद-अभ्यास करते-करते। **मतिश्रुत के विकल्प टूट जाते हैं,...** यह यहाँ लेना है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की जो पर्याय है, उसमें जो विकल्प-रागादि का अंश है, वह प्रथम पर से भिन्न और ज्ञायकस्वभाव का निर्णय करके। आहाहा! **बारम्बार भेदज्ञान का अभ्यास करते-करते मतिश्रुत के विकल्प टूट जाते हैं,...** ऐसी बात है। आहाहा! मार्ग बहुत अपूर्व है। आहाहा! भगवान अन्दर जैसे... यहाँ दृष्टान्त आयेगा अभी।

उपयोग गहराई में चला जाता है... अर्थात्? मति और श्रुतज्ञान का जो वर्तमान उपयोग है, वह अन्दर में ध्रुवसन्मुख ढल जाता है। ऐसी बात है। उपयोग, वर्तमान पर्याय का जो उपयोग, वह गहराई में अर्थात् उसकी ध्रुव चीज़ है, पर्याय के अन्दर में गहरे ध्रुव है। आहाहा! वहाँ उपयोग गहरा चला जाता है। अरे! ऐसी बात है।

और भोंयरे में भगवान के दर्शन प्राप्त हों... जैसे मनुष्य ऊपर से भोंयरा में जावे और उसमें भगवान के दर्शन हों, उसी प्रकार यह ऊपर मतिज्ञान की पर्याय को अन्तर में भोंयरा अर्थात् ध्रुव की ओर झुकाने से, भोंयरा में जैसे भगवान के दर्शन होते हैं, वैसे ही आत्मा के दर्शन होते हैं। अरे! ऐसी बातें हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि ज्ञायकभाव जो स्व पूर्ण है, उसका पर्याय ने अन्दर आश्रय किया अर्थात् वहाँ लक्ष्य किया, तब उसे भगवान पूर्ण है, ऐसा भासित हुआ। आहाहा! यह कितने ही ऐसा कहते हैं न कि निश्चय तो सिद्ध को होता है। यह अभी समयसार प्रकाशित हुआ है न विद्यानन्दजी की ओर से? ....नीचे तो व्यवहार ही होता है, साधक को व्यवहार होता है, सिद्ध को निश्चय होता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जो पर्याय अन्तर में स्व आश्रय में झुकी, वह निश्चय है। पश्चात् भले वह निश्चय स्व आश्रय से धर्मध्यान हो, वह भी निश्चय स्व का आश्रय, वह धर्मध्यान है। आहाहा! और उग्र आश्रय लेकर चाहे तो शुक्लध्यान हो परन्तु वह सब निश्चय-स्व के आश्रय से होता है। वह स्व के आश्रय से होता है, वह निश्चय है। वे अब कहते हैं पूरे समयसार का विपरीत अर्थ किया है। क्या करे? यह सब जगत में ऐसा चलता है।

यहाँ तो प्रभु जो ज्ञायकभाव अनन्त-अनन्त गुण का एकरूप ऐसा जो द्रव्यस्वरूप, उसे वर्तमान ज्ञान की मतिश्रुत की पर्याय को अन्तर में झुकाने से, जैसे भोंयरा में जाने से भगवान दिखते हैं, उसी प्रकार यह पर्याय अन्तर में जाने से उसे ध्रुव ज्ञात होता है। अब ऐसी बातें! कहाँ मेल करना?

नियमसार में कहा है न? भाई! निश्चय स्व-आश्रय वह धर्मध्यान। दो, तीन जगह (आता है)। यह लोग कहते हैं, धर्मध्यान अर्थात् शुभभाव। आहाहा! अरे रे! प्रभु! प्रभु! तू क्या करता है? भाई! आहा! धर्म अर्थात् धर्मी जो ज्ञायकस्वरूप, उसका जो धर्म अर्थात्

स्वभाव, उसमें एकाग्र होने पर उसे निश्चय धर्मध्यान कहा जाता है। आहाहा! ऐसा है... विद्यानन्दजी की ओर से, शान्तिभाई! समयसार प्रकाशित हुआ है, उसमें ऐसा अर्थ किया है बलभद्र पण्डित है, उसने ऐसा अर्थ किया है। अर..र..र! यह सब विद्यानन्दजी ने मान्य रखा है। स्थानकवासी, श्वेताम्बर, ढूंढ़िया... तेरापंथी ने मान्य रखा है।

अरे... भगवान! बापू! यहाँ तो सीधी बात है कि स्वचैतन्यमूर्ति द्रव्यस्वभाव है, उसका आश्रय लेना वह निश्चय है। आहाहा! और जितना पर का आश्रय लिया जाए, देव-गुरु-शास्त्र का आश्रय लिया जाए, वह भी व्यवहार है, राग है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! अरे! ऐसा अवसर कब मिले इसे? उसमें मिला तब ऐसा करे, बापू! आहाहा! इसका परिणाम, बापू! क्या आयेगा? भाई!

यहाँ कहते हैं, यह बात इस प्रकार से है, ऐसा ज्ञान में निर्धार तो करे, भले विकल्प से। पहले विकल्प से निर्णय तो करे। आहाहा! कि यह पर्याय जो वर्तमान प्रगट है, वह अनादि से परलक्ष्य में गयी है। आहाहा! उस पर्याय को, भले उस पर्याय को अर्थात् भले वह पर्याय नहीं परन्तु (नयी पर्याय होती है), उस पर्याय को अन्तर्मुख झुकाने से भगवान आत्मा पूर्णानन्द के उसे दर्शन होते हैं, उसका उसे भान होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : परमसत्य बात बाहर आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है, प्रभु! क्या हो? अरे रे! ऐसा अर्थ पूरे समयसार का करे। नियमसार में तो ठेठ ठिकाने निश्चय प्रतिक्रमण, निश्चय प्रत्याख्यान, निश्चय भक्ति, निश्चय आवश्यक। आहाहा! यह सब स्व आश्रय से निश्चय... निश्चय... निश्चय... पुकार किया है, कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं (ऐसा कहा है) और वह शास्त्र कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये यह बनाया है। आहाहा! अरे प्रभु! ऐसा समय मिला और यदि इस प्रकार विपरीतता करेगा तो, भाई! जन्म अफल जाएगा और कहाँ अवतार होगा? आहाहा! कहीं मेल नहीं रहेगा।

यहाँ तो कहते हैं **भोंयरे में भगवान के दर्शन प्राप्त हों, तदनुसार गहराई में...** इस पर्याय के अन्तर जो समीप गहरे अन्तर आत्मा है... आहाहा! वहाँ झुकाने से, आहाहा!

आत्मभगवान दर्शन देते हैं। आहाहा! अर्थात् जितना आत्मा स्वभाव से परिपूर्ण है, उसका अन्तर्मुख होने पर उसे उसका ज्ञान हो जाता है। आहाहा! ऐसा ज्ञान होने पर उसके दर्शन हुए। आहाहा! अब ऐसी बातें। मार्ग तो यह है, भाई! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' आहाहा! परमार्थ कहो या निश्चय कहो। अहा! गहराई में अर्थात् वर्तमान जो प्रगट पर्याय है, उस पर्याय के समीप में ध्रुव है। वह पर्याय ऊपर है और ध्रुव उसके अन्दर है। उस पर्याय को अन्दर में गहराई में ले जाने से उसे आत्मा कितना और कैसा स्वरूप है, उसका उसे दर्शन होता है अर्थात् कि उसकी उसे श्रद्धा होती है, उसका उसे ज्ञान होता है और उसकी उसमें थोड़ी रमणता भी होती है। आहाहा!

इस प्रकार स्वानुभूति की कला हाथ में आने पर,... आहाहा! ऐसी स्व-अनुभूति। स्वज्ञायकभाव पूर्णानन्द प्रभु के अनुभव की कला पर्याय को अन्दर में झुकाने से जो भान हुआ, वह कला हाथ में आ गयी। आहाहा! वह स्वानुभूति की कला हाथ में आने पर अर्थात् उसके ज्ञान के ख्याल में आने पर। आहाहा! **किस प्रकार पूर्णता प्राप्त हो...** अब पूर्ण केवलज्ञान आदि कैसे प्राप्त हो, **वह सब कला हाथ में आ जाती है,...** आहाहा! बाहर के विकल्प दया, व्रतादि के तो कहीं रह गये। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वासना, यह वृत्तियाँ तो पाप और दुःखरूप तो कहीं रह गयी परन्तु अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प भी कहीं भिन्न रह गये और उसके समीप में जो ज्ञान की पर्याय है, उस ज्ञान की पर्याय के समीप में जो भगवान ध्रुव है... आहाहा! उसका जहाँ पता लगाया, वह स्वानुभूति की कला हाथ लगी। स्व का अनुभव कैसे करना, वह कला हाथ आयी। ऐसा है। समझ में आया? मक्खन है न! अरे! बहुत संक्षिप्त शब्द, गुजराती शब्द, सरल शब्द। आहाहा! इसे बहुत शास्त्र पढ़ना नहीं पढ़ेंगे। आहाहा!

आत्मा में पर्याय और द्रव्य दो चीज है। पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। अब यह पर्याय जो है-मति-श्रुत की जो पर्याय है, वह पहले विकल्पवाली होने से, वह ज्ञायक है—ऐसा विकल्पसहित निर्णय होता है परन्तु वहाँ अनुभव नहीं है। आहाहा! यही, यहाँ जाना है, यह वस्तु है और वह परिपूर्ण भगवान है, ऐसा विकल्पसहित निर्णय होता है और पश्चात् जब वह विकल्प टूट जाता है, तब अन्दर जाता है, तब स्वाश्रित धर्मध्यान दशा प्रगट होती है। उससे अन्दर में जाने से ऐसा अनुभव होता है, ऐसी कला हाथ आ गयी। आहाहा! और

इससे **किस प्रकार पूर्णता प्राप्त हो, वह सब कला हाथ में आ जाती है,...** यह गहरे-गहरे जो पर्याय गयी, ध्रुव में मिल गयी, उसमें विशेषरूप से अन्दर एकाग्र होऊँ तो पूर्ण प्राप्त होता है, वह (कला) हाथ आ गयी, उसमें जाऊँ तो पूर्ण प्राप्त होता है। कोई रागादि की बहुत क्रिया करूँ तो प्राप्त होता—ऐसा उड़ जाता है, ऐसी नास्ति से यहाँ बात नहीं की। समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार स्वानुभूति की कला... स्व भगवान आत्मा आनन्द ज्ञायकमूर्ति प्रभु के अनुभव की कला। अन्तर में जाने पर भगवान को देखा, जाना तो यह कला अन्दर में जाने से वह पूर्णता प्राप्त की जा सकती है, ऐसा अनुभूति में हाथ में आ गया। आहाहा! समझ में आया? ऐसा तो एक बार कहा कि मुक्ति का उपाय सम्यग्ज्ञान है-सुबोध है। नियमसार (में कहा है)। सुबोध की उत्पत्ति शास्त्रज्ञान से होती है; शास्त्रज्ञान की उत्पत्ति आप्त परमात्मपुरुष से होती है; इसलिए धर्मात्मा, वह जिससे प्राप्त हुआ, उसका उपचार नहीं भूलते। यह निमित्त से कथन है। आहाहा!

निमित्त ऐसे आप्तपुरुष थे। आहाहा! उनके श्रीमुख से श्रुत निकला। आहाहा! उससे सम्यग्ज्ञान हुआ, उससे-सम्यग्ज्ञान से आत्मा में अन्दर जाया जाता है। आहाहा! ऐसा जानकर, उपकारी पुरुष का उपकार वह भूलता नहीं है, इतनी बात है। यह विकल्प की बात है। आहाहा! परन्तु यह विकल्प आवे कब? पहले निर्विकल्प स्वभाव की अनुभूति हो, तब ऐसा विकल्प उसे आता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसा उपदेश कैसा? भाई! परमसत्य मार्ग तो यह है।

परमसत्य प्रभु आत्मतत्त्व एक समय की पर्यायरहित चैतन्य चमत्कारी प्रभु भगवान आत्मा साक्षात् जिनस्वरूप, साक्षात् परमात्मशक्ति स्वभावस्वरूप। आहाहा! वर्तमान ज्ञान की पर्याय को अन्दर में झुकाने से, गहराई में ले जाने से यह इतना और ऐसा आत्मा है, वैसी उसे श्रद्धा और ज्ञान होते हैं, अनुभूति (होती है)। आहाहा! उस अनुभूति से, **किस प्रकार पूर्णता प्राप्त हो वह सब कला हाथ में आ जाती है,...** उसमें गहराई में जाकर देखूँ, ऐसे अधिक आगे जाकर स्थिर होऊँ तो पूर्णता को प्राप्त करूँ, दूसरा कोई उपाय नहीं है। ऐसी बातें। यह पंचम काल, ये पंचम काल के साधु, पंचम काल के श्रावक को तो ऐसा कहते हैं, यहाँ अप्रतिबुद्ध को ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे काल कहीं बाधक नहीं है। आहाहा!

भगवान तो ऐसा का ऐसा वस्तु से और गुण से ऐसा का ऐसा, वह का वही अनादि-अनन्त रहा हुआ है। उसे कोई काल बाधक नहीं है। आहाहा!

ऐसा भगवान (आत्मा) जो पूर्णानन्द का अस्तित्व है, पूर्ण सत्ता अस्तित्व प्रभु है, उसे वर्तमान पर्याय से उसे वहाँ ले जाने से जहाँ पूर्णता है, ध्रुव है, जहाँ पर्याय का तल है, वह पर्याय का भोंयरा है। आहाहा! व्यवहारवाले को कठिन लगे, परन्तु वह यह होवे, तब उसे विकल्प व्यवहार होता है। भगवान परमात्मा, गुरु, शास्त्र का बहुमान विकल्प आवे परन्तु यह वस्तु हुए बिना बहुमान अकेला विकल्प तो परद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

केवलज्ञान के साथ केलि प्रारम्भ होती है। आहाहा! दूज उगी, वह पूर्णिमा की ओर ढल जाती है। इसी प्रकार अन्तरवस्तु, ज्ञान की पर्याय ने अन्तर ध्रुव को देखा, अर्थात् जाना, अर्थात् श्रद्धा की अर्थात् इतना आत्मा है, ऐसा सब पूर्ण स्वरूप की प्रतीति उसे ज्ञान में आ गयी। इसलिए उसे देखा और माना - श्रद्धा की। उसे केवलज्ञान लेने की कला अब हाथ में आ गयी। आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान के साथ केलि करे, केलि करे। केवली के साथ क्रीड़ा की है। आहाहा! मति-श्रुतज्ञान सम्यक् होकर जो अन्तर में ढला, उस मति-श्रुतज्ञान ने (क्रीड़ा शुरु की है)। केवलज्ञान का वह मति-श्रुत अवयव है और केवलज्ञान, अवयवी है।

वह मति-श्रुतज्ञान अन्तर में झुका है, वह मति-श्रुतज्ञान, केवलज्ञान को बुलाता है। आहाहा! अन्तर में से पूर्ण केवलज्ञान आओ... आओ... आओ... जैसा पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, उसे हमने जो अनुभूति से जाना, वह अनुभूति ऐसा पुकार करती है कि केवलज्ञान की पर्याय मेरा जो अवयवी है, वह आओ। वह केवलज्ञान के साथ केलि करता है, केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा की है। आहाहा! अनादि काल का राग और पुण्य-पाप के भाव के साथ क्रीड़ा की थी, उसके फल में तो संसार फला और भटका। आहाहा! यह केवलज्ञान के साथ केलि करता है। यह भाषा तो देखो! आहाहा!

केवलज्ञान के साथ केलि प्रारम्भ होती है। केलि अर्थात् क्रीड़ा। आहाहा! अन्तर में उतरने की दशा हाथ आयी। उसमें आता है न? धवल में। 'दीठ मग्गे' ऐसा शब्द आता

है, भाई! आहाहा! अब मार्ग दिखा है। आहाहा! अन्तर में कैसे जाया जाए, वह देखा है। धवल में आता है। मार्ग दिखा था कि इस पर्याय से अन्दर में जाने पर वस्तु ज्ञात हुई, यह मार्ग दिखा था, वहाँ अब बारम्बार जाता है। आहाहा! **केवलज्ञान के साथ केलि प्रारम्भ होती है।** प्रारम्भ होती है। अन्तर में ज्ञानानन्दस्वभाव परिपूर्ण प्रभु को वर्तमान ज्ञान की पर्याय ने देखा, श्रद्धान किया। वह वस्तु भले पर्याय में नहीं आयी परन्तु वस्तु की परिपूर्णता दर्शन-श्रद्धा में और पर्याय में आ गयी। आहाहा! समझ में आया? उस परिपूर्ण की ओर झुकने से, जो मार्ग अन्दर जाने में दिखायी दिया, वहाँ जाने पर उसने केवलज्ञान के साथ कला लगायी। अब अल्प काल में केवलज्ञान होगा। आहाहा! अब ऐसा मार्ग है, उसे दूसरे प्रकार से कर डाला। आहाहा! जहाँ भव का अन्त लाना है और मोक्ष की पर्याय-केवल (ज्ञान) की प्रगट करनी है, वह पन्थ कोई निराला है। आहाहा!

स्व-आश्रय भगवान परिपूर्ण है न? उसका आश्रय लेकर वह मोक्ष में जाता है, केवलज्ञान प्राप्त करता है। आहाहा! पराश्रय से केवलज्ञान नहीं मिलता। आहाहा! मूल तो ऐसा कहते हैं। कहो, सुजानमलजी! वहाँ सुना था, वहाँ सादणी में? यह तो बात बापू! आहाहा! तू अन्दर बड़ा प्रभु है न! तेरी महिमा का क्या बात कहना? वह महिमा जिसे ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हुई... आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय में अथवा श्रद्धा की पर्याय में उसकी जो श्रद्धा हुई, वह श्रद्धा है, वह श्रद्धा करती है। वह जानती नहीं कि यह पूर्ण है। यह ज्ञान जानता है। आहाहा! यह जाननेवाली पर्याय है, वह यह जानती है कि यह पूर्ण है। श्रद्धा को जानना नहीं है परन्तु जानी हुई दशावाले की उसे श्रद्धा होती है कि यह पूर्ण है, ऐसा वह ज्ञान जानता है, उसे पूर्ण है, ऐसा प्रतीति में आता है। यह पूर्ण है, यह जानता तो ज्ञान है परन्तु सम्यग्दर्शन निर्विकल्प है, इसलिए उसका विषय परिपूर्ण है, निर्विकल्प है- ऐसा आ गया। यह, यह है—ऐसा भले नहीं। समझ में आया? अब ऐसा मार्ग, अरे! तीन लोक के नाथ वीतराग जिनेश्वरदेव को अकषाय करुणा से वाणी आयी। 'रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे।' आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। ओहो! थोड़े शब्दों में, सादी भाषा में मूल तत्त्व को प्रगट किया है। यह ४०४ (बोल पूरा हुआ)।

अज्ञानी जीव ऐसे भाव से वैराग्य करता है कि—'यह सब क्षणिक है, सांसारिक उपाधि दुःखरूप है', परन्तु उसे 'मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है' ऐसे अनुभवपूर्वक सहज वैराग्य नहीं होने के कारण सहज शान्ति परिणमित नहीं होती। वह घोर तप करता है, परन्तु कषाय के साथ एकत्वबुद्धि नहीं टूटी होने से आत्मप्रतपन प्रगट नहीं होता॥४०५॥

४०५, **अज्ञानी जीव ऐसे भाव से वैराग्य करता है कि—'यह सब क्षणिक है, सांसारिक उपाधि दुःखरूप है',...** परन्तु वह कहीं सच्चा वैराग्य नहीं है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह सब क्षणिक है, देहादि क्षणिक है, कहता है। आहाहा! भाई आये थे, गये लगते हैं। नहीं? चोटिलावाले आये थे। उनका बाईस वर्ष का लड़का रेल में कुचल कर मर गया। आये थे। अपने मणिभाई है न, खेमचन्दभाई के, उनके छोटे लड़के का। दशाश्रीमाली है न? दशाश्रीमाली थे। मुकुन्दभाई के रिश्तेदार हैं। बेचारे आये थे। (पूछा), महाराज! अकाल मृत्यु होती है या नहीं? बहू ने प्रश्न किया था। अकाल मृत्यु कही जाती है, बाकी तो जिस समय में जिस क्षेत्र में जिस प्रकार से भगवान ने देखा है और आयुष्य की स्थिति इतनी ऐसी ही है। ऐसा बेचारे पूछते थे। छोटी उम्र में लड़का बाईस वर्ष का रेल में कुचला गया।

मुमुक्षु : बहुत शान्ति लेकर गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ से तो शान्ति लेकर गये। फिर यहाँ बैठे थे। १५-२० मिनिट (बैठे थे)। बहुत कहा, बापू! इसमें क्या करे? आहाहा! अरे रे! ऐसे प्रसंग तो अनन्त बार बने हैं, बापू! और ऐसा पूछते थे, उसकी-लड़के की माँ (ने पूछा) अकाल मृत्यु का पूछा और कुछ पीछे अपन दान करें तो उसे फल मिलेगा या नहीं? कहा, कुछ नहीं मिलेगा, बापू! वह तो उसके भाव लेकर गया। भाई! कहीं अवतरित हुआ होगा। तुम्हारे यहाँ पाँच-पच्चीस हजार का दान दे, इसलिए कुछ उसे मिलेगा या नहीं? उसको कुछ नहीं मिलेगा। आहाहा! क्या हो! जैन जन्में हैं, उन्हें भी जैन की वास्तविक स्थिति का पता नहीं होता। आहाहा!

अज्ञानी जीव—'यह सब क्षणिक है,...' नाशवान है, ऐसा जाने परन्तु वह कोई सच्चा वैराग्य नहीं है। **'सांसारिक उपाधि दुःखरूप है',...** यह सब स्त्री, पुत्र, कमाना, धन्धा दुःखरूप है। **ऐसे भाव से वैराग्य करता है कि परन्तु उसे 'मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है'...** इसकी उसे खबर नहीं है; इसलिए वैराग्य सच्चा नहीं है। यह क्षणिक है और उपाधि है। तो (आत्मा) नित्य और निरुपाधि तत्त्व है, ऐसी जिसे खबर नहीं, उसका वैराग्य क्षणिक है। श्मशान वैराग्य जैसा वैराग्य है। आहाहा! यह क्षणिक है तो त्रिकाली नित्य आनन्द है, ऐसा उसकी दृष्टि में आना चाहिए। यह उपाधिरूप है, तब अन्दर भगवान निरुपाधि आनन्दस्वरूप है, ऐसा आना चाहिए। आहाहा! समझ में आया?

'मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है'... उसमें सब आ गया। नित्य हूँ और आनन्दस्वरूप हूँ। बाहर का क्षणिक वैराग्य, वह नहीं परन्तु त्रिकाली आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ, उसे पर से वैराग्य आ गया। पर से हट गया। निर्जरा अधिकार में आया है न? ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति। आहाहा! भगवान आत्मा मेरा स्वरूप ही आनन्दस्वरूप है। ऐसा जिसे अन्तर में भान न हो और यह सब उपाधि है, ऐसा माने, वह तो सब क्षणिक वैराग्य है। श्मशान वैराग्य, वह कोई वास्तविक वैराग्य नहीं है।

वास्तविक वैराग्य का अधिकार पुण्य-पाप में है कि जो पुण्य-पाप के विकल्प हैं, उनसे हट जाए और त्रिकाली आनन्दस्वरूप में जिसकी दृष्टि पड़े, उसे वैराग्य कहा जाता है। आहाहा! ऐसी व्याख्या! भर्तृहरि का वैराग्य शतक आता है न? परन्तु वह वस्तु बिना का, भान बिना का। वैसे तो भर्तृहरि ने राज्य छोड़ा था। बानवें लाख का मालवापति, परन्तु वह वैराग्य वास्तविक नहीं है। आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान पूर्ण आनन्द नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि हुए बिना, उस महाअस्तित्व को समझे और स्वीकार किये बिना बाहर की नास्ति का वैराग्य उसे सच्चा नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

भर्तृहरि। पिंगला को देखा कि पिंगला तू मेरी स्त्री थी और यह... अरे! मैंने इसे कितना रखा। वह यह अश्वपाल के साथ गति करे? अर..र..र! यह संसार? अमरफल आया था न? नाटक देखा है। मैंने पूरा सब (नाटक देखा है)। वेश्या के पास अमरफल आया था, वह वेश्या भर्तृहरि को देने आयी। भर्तृहरि ने पिंगला को दिया, पिंगला ने अश्वपाल को दिया, अश्वपाल ने वापस वेश्या को (दिया), वेश्या ने वापस आकर वह देने आयी।

अरे ! यह क्या ? यह क्या ? मैंने तो मेरी रानी को दिया था और यह ऐसे कैसे आया । आहाहा ! अरे रे ! संसार !! 'देखा नहीं कुछ सार...' आता है, गायन आता है । सब सुना है न !

देखा नहीं कुछ सार जगत में देखा नहीं कुछ सार
प्यारी मेरी पिंगला अश्वपाल की यार ।

अरे रे ! मेरी प्यारी स्त्री, अश्वपाल—घोड़ों का (रखवाला) । आहाहा ! 'देखा नहीं कुछ सार ।' आहाहा ! परन्तु वह सब क्षणिक (वैराग्य है) । अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान नित्यानन्द के भान बिना वह वैराग्य, यथार्थ वैराग्य नहीं है । भले बाबा हो गया । आहाहा ! परन्तु उसे वह वैराग्य नहीं कहलाता । आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ तक उसके गुरु ने कहा, पिंगला के यहाँ आहार लेने जा । अरे ! जाति चली जाती है । पिंगला का आहार ले, घर में जा । घर में जाता है, पिंगला उदास है, कुछ पकाया नहीं था, कुछ किया नहीं था, उदास है । अरे रे ! मेरा अपमान हो गया... प्रभु ! माता ! आहार दो, ऐसा बोलता है ।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसे कहाँ, वह कहाँ मुनि था । यह तो वह बातें कहने के लिये । वह वैराग्य क्षणिक वैराग्य है, वह तात्त्विक नहीं, उसे मुनि को आहार और मुनि को... वह तो बाबा जोगी की शैली ऐसी थी परन्तु वह सब मिथ्यादृष्टिसहित की । आहाहा ! ऐसे चला जाता है, हों ! अरे ! प्रभु ! मैं तो आज उदास हूँ, कुछ पकाया नहीं है । मैं एक क्षण में (लाती हूँ), प्रभु ! खड़े रहो तो एक क्षण में रे बनाऊँ खीर.... खीर बनाऊँ क्षण एक में, रमते जोगी जीम जाओ योगीराज । आहाहा ! मैं खड़ा नहीं रहूँगा, मेरी जमात चली जा रही है, मेरे गुरु ने आज्ञा की है, इसलिए आया हूँ, चला जाता हूँ । परन्तु वह सब वैराग्य क्षणिक है ।

जिसे यह नित्यानन्द का नाथ अन्दर प्रभु, क्षणिक के साथ नित्य देखा नहीं, उपाधि के साथ निरुपाधि तत्त्व जाना नहीं, उसे यह उपाधि और वैराग्य, यह सब क्षणिक कहने में आते हैं । कान्तिभाई ! आहाहा ! बहुत नाटक देखे हैं मैंने तो वहाँ दुकान में । भर्तृहरि का, नरसिंह मेहता के बड़े-बड़े नाटक देखे हैं । गाँव पालेज रहा न, गाँव में बहुत आते हैं, इसलिए पिताजी कहते थे कि जाओ, जाओ देखने । पैसे ले जाओ ।

मुमुक्षु : सब वैराग्य के ।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वैराग्य के थे। अभी तो तुम्हारे सब सिनेमा और... अर..र..र..!

यहाँ यह कहते हैं कि क्षणिक वैराग्य और क्षणिक उपाधि, ऐसा देखकर जो वैराग्य है, परन्तु उसका वह वैराग्य सच्चा नहीं है। आहाहा! '**मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है**'... मुझमें उपाधि नहीं है और मैं नित्य हूँ, क्षणिक नहीं। आहाहा! अरे! यह भाषा कहाँ, बापू! यह भाव.. आहाहा! मेरा प्रभु आनन्दमय है, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, ऐसी दृष्टि होने पर उसे बाहर का क्षणिक वैराग्य उसे सच्चा कहा जाता है। परन्तु जिसे नित्यानन्दनाथ प्रभु की जिसे खबर नहीं, उसका वैराग्य, वैराग्य है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे अनुभवपूर्वक सहज वैराग्य नहीं होने के कारण... आहाहा! भले स्त्री, परिवार छोड़ दे, राज्य छोड़ा, भर्तृहरि ने तो पूरा राज्य ९२ लाख मालवा का (राज छोड़ा था)। लंगोटी पहनकर निकल गया। आहाहा! परन्तु वह अनुभवपूर्वक का वैराग्य नहीं है। आनन्द का नाथ मेरा प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द के सागर से भरपूर मेरा प्रभु, ऐसा जिसे अन्तर में दृष्टि का अनुभव नहीं, उसके वैराग्य को वैराग्य नहीं कहते। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं। आहाहा! **ऐसे अनुभवपूर्वक सहज वैराग्य...** भाषा देखी? स्वाभाविक वैराग्य (अर्थात्) पुण्य और पाप के भाव से भी विरक्त और स्वभाव में अनुभव, अनुभव आनन्द में रक्त, उसे वैराग्य कहा जाता है। आहाहा!

भगवान आत्मा शरीर से तो भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प, दया, दान, व्रत आदि के, काम-क्रोध के ऐसे भाव से भी प्रभु तो भिन्न है। भगवान आत्मा उनसे तो भिन्न है परन्तु एक समय की पर्याय जो राग को जानती है, उस पर्याय से भी वह भिन्न स्वरूप है। आहाहा! वह तो पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति, पूर्ण वीतराग की मूर्ति प्रभु आत्मा है। आहाहा! उसका अनुभव न हो, उसे वैराग्य, वैराग्य नहीं कहा जाता। ऐसे तो अनन्त बार दिगम्बर आदि मुनिपना लिया। आहाहा! जिससे भव का अन्त आवे... आहाहा! और भव के अभाव स्वभाव की पूर्ण की प्राप्ति हो। (मैं तो) आनन्दमय प्रभु हूँ—ऐसा ज्ञान हुआ है, उसे पुण्य-पाप के राग से भी विरक्त वैराग्य होता है। आहाहा! निर्जरा अधिकार में (आ गया है)। अब ऐसी बातें कहीं सुनने को मिलती नहीं। पूरे दिन पाप के प्रपंच में पड़े हैं, उसमें पुण्य की बातें भी सुनने को नहीं मिलती, धर्म तो कहीं रह गया। अरे रे!

यहाँ तो कहते हैं, बाहर से वैराग्य किया, राग की मन्दता करके (कि) यह सब क्षणिक है और उपाधि है, परन्तु उसे शान्ति नहीं आयी। शान्ति तो तब आती है... शान्ति अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान की शान्ति। आहाहा! यह त्रिकाली आनन्द का नाथ अन्दर है, (उस पर) दृष्टि पड़ने से उसे वर्तमान पर्याय में भी अनन्तानुबन्धी आदि जाने से शान्ति होती है। आहाहा! उसे शान्तरस का अनुभव होता है, उसे शान्ति कहते हैं। यह स्त्री, पुत्र छोड़े और कुटुम्ब छोड़ा और वैराग्य (हुआ), इसलिए शान्ति है? नहीं, नहीं, भाई! आहाहा!

शान्ति तो तब होती है कि अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर आत्मा का अनुभव हो, पर्याय में उसका अनुभव हो... आहाहा! तब उसे पर्याय में सहज शान्ति का परिणमन होता है। अरे! अब ऐसी बातें। नहीं तो कहते हैं कि हजारों रानियाँ छोड़े, कुटुम्ब कबीला, अरबों की आमदनी (की) दुकानें छोड़े, बाबा हो जाए परन्तु उसे शान्ति नहीं मिलती। आहाहा! शान्ति और धर्म तो तब मिलते हैं... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान आत्मा... परन्तु कैसे जँचे? आहाहा! उसके स्वभावसन्मुख होने से अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, तब उसे ख्याल आता है कि यह तो अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा है। आहाहा! अरे! इसके बिना मर-मरकर चौरासी के अनन्त अवतार किये। आहाहा! यहाँ बड़ा राजा हो और मरकर... आहाहा! नरक में जाए। माँस और शराब नहीं खाया (पीया) होवे तो कुतिया के गर्भ में और बकरी के गर्भ में अवतरित हो, ऐसे अवतार किये हैं, भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आनन्द का सागर के अनुभवपूर्वक सहज वैराग्य उसे-अज्ञानी को नहीं हैं। इसलिए **सहज शान्ति परिणमित नहीं होती। वह घोर तप करता है,...** आहाहा! भले महीने-महीने के अपवास करे, दो-दो महीने के अपवास करे और पारणे में भी रूखा आहार खाये, तथापि उसे धर्म नहीं है, शान्ति नहीं है। आहाहा! क्योंकि धर्म और शान्ति तो त्रिकाली ज्ञानस्वरूप प्रभु को पकड़ने से, उसका आश्रय करने से जो शान्ति होती है, वह शान्ति बाहर के क्षणिक वैराग्य में नहीं है। आहाहा! यह ऐसा मार्ग होगा? आहाहा!

यहाँ तो बालब्रह्मचारी हो और महीने के कुछ उपवास करे और फिर... ओहोहो! गजब किया यह। दीक्षा ली और मुंडाया। क्या भला हुआ? आहाहा! जो वर—प्रभु आत्मा आनन्द का नाथ अन्दर अतीन्द्रिय सुख का सागर भगवान अन्दर विराजता है, उसे जिसने

पकड़ा नहीं, अनुभव नहीं किया... आहाहा! उसके सब त्याग, वे अत्याग हैं; उसके सब वैराग्य, वह अवैराग्य है। आहाहा! ऐसा कठिन पड़ता है। परमसत्य तो यह है, भाई!

वह घोर तप करता है, परन्तु कषाय के साथ एकत्वबुद्धि नहीं टूटी... आहाहा! यह क्या कहा? कि महीने-महीने के अपवास करे, बाल ब्रह्मचारी रहे परन्तु उसे राग का विकल्प जो है, उसकी एकता नहीं टूटी, क्योंकि अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप के भान बिना वह एकता नहीं टूटती। आहाहा! वह सब राग की क्रीड़ायें थीं। आहाहा! 'निज पद रमे सो राम कहिये।' अतीन्द्रिय आनन्द का सागर अपने पद में रमे, उसे राम कहते हैं, उसे आत्माराम कहते हैं। उसे भूलकर राग में रमे, उसे हरामी कहते हैं। आहाहा!

एकत्वबुद्धि नहीं टूटी होने से आत्मप्रतपन प्रगट नहीं होता। यह तपस्या। आत्मा प्रतपन—भगवान की विशेष शोभा अन्दर आनन्द की—जैसे सोना को गेरु लगाने से सोना ओपता है (शोभता है)। इसी प्रकार अतीन्द्रिय आनन्द के भान में एकाग्र होने से अतीन्द्रिय आनन्द की शोभा बढ़ती है। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द प्रतपन-तपे उसे तप कहते हैं। इसके भान बिना महीने, महीने के उपवास सब लंघन कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। शब्द है न? प्रतपन है न? 'प्र' विशेष शोभा आत्मा के आनन्द की हो। आहाहा! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द उछले, उसे तप कहते हैं। आहाहा! तप की व्याख्या पढ़ी नहीं थी अपने पुस्तक में? यह ४०५ (बोल पूरा हुआ)।

तू अनादि-अनन्त पदार्थ है। 'जानना' तेरा स्वभाव है। शरीरादि जड़ पदार्थ कुछ जानते नहीं है। जाननेवाला कभी नहीं-जाननेवाला नहीं होता; नहीं-जाननेवाला कभी जाननेवाला नहीं होता; सदा सर्वदा भिन्न रहते हैं। जड़ के साथ एकत्व मानकर तू दुःखी हो रहा है। वह एकत्व की मान्यता भी तेरे मूल स्वरूप में नहीं है। शुभाशुभभाव भी तेरा असली स्वरूप नहीं है।—यह ज्ञानी अनुभवी पुरुषों का निर्णय है। तू इस निर्णय की दिशा में प्रयत्न कर। मति व्यवस्थित किये बिना चाहे जैसे तर्क ही उठाता रहेगा तो पार नहीं आयेगा॥४०६॥

४०६, **तू अनादि-अनन्त पदार्थ है।** प्रभु! तू अन्दर कौन है?—कि आदिरहित काल का तू तो है, अनादि है। आहाहा! और अनादि-अनन्त, अनन्त भविष्य में-काल में रहनेवाला वह तो तू है। आहाहा! **'जानना' तेरा स्वभाव है।** अब पदार्थ कहा। अब उसका स्वभाव कहते हैं। तू अनादि-अनन्त पदार्थ तत्त्व आत्मा है। आदि नहीं, अन्त नहीं, वर्तमान में अभाव नहीं, ऐसी भावशक्ति का तत्त्व भगवान आत्मा। आहाहा! उसका जानना स्वभाव है। राग करना या पुण्य करना और पाप करना अथवा शरीर की क्रिया करना, यह उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! जानना उसका स्वभाव है। अर्थात्? वस्तु जो आत्मा अनादि-अनन्त, वह ज्ञान जिसका स्वभाव। वस्तु स्वभाववान, उसका ज्ञानस्वभाव। जानना, वह उसका स्वभाव है। आहाहा!

शरीरादि जड़ पदार्थ कुछ जानते नहीं है। यह शरीर, वाणी, मन यह सब जड़, धूल है, ये कुछ नहीं जानते। इन्हें खबर भी नहीं है कि हम कौन हैं? आहाहा! शरीर, वाणी, मन, आहाहा! पैसा, लक्ष्मी, इज्जत सब जड़ पदार्थ कुछ नहीं जानते। लो! जानते हैं इसे? शरीर को खबर है कि मैं शरीर हूँ? यह मिट्टी है, इसे खबर है कि मैं मिट्टी हूँ? जाननेवाला है, वह जानता है। यह जानना, वह जड़ में नहीं है। आहाहा! जड़ पदार्थ कुछ नहीं जानते।

अरे! अन्दर राग होता है न, दया, दान, विकल्प का (राग होता है), वह भी नहीं जानता, उसे खबर नहीं है कि हम कौन हैं? आहाहा! यह राग होता है दया, दान का, वह भी जड़ है, वह जाननेवाला नहीं। जाननेवाले को जानता नहीं और अपने को भी जानता नहीं। आहाहा! जाननेवाला भगवान आत्मा, वह अपने को जानता है और रागादि पर हैं, ऐसा जानता है, यह जानने का उसका स्वभाव है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण -१४, बुधवार, दिनाङ्क २९-११-१९७८
वचनामृत-४०६ से ४०७ प्रवचन-१६५

४०६, बोल है न? फिर से। **तू अनादि-अनन्त पदार्थ है।** यह आत्मा है, वस्तु है, वह तो अनादि-अनन्त है। कभी उत्पन्न नहीं हुई और कभी उसका नाश हो, ऐसा नहीं है। ऐसा अनादि-अनन्त वह पदार्थ है। जानना उसका स्वभाव है। वस्तु-पदार्थ कहा, अब उसका स्वभाव (कहते हैं)। जानना उसका त्रिकाल स्वभाव है। आहाहा! **शरीरादि जड़ पदार्थ...** शरीर, वाणी, मन... अरे! पुण्य और पाप के भाव, वे सब जड़ कुछ जानते नहीं हैं। आहाहा!

जाननेवाला कभी नहीं-जाननेवाला नहीं होता;... क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात, भाई! द्रव्यस्वभाव जो जाननहार.. जाननहार... जाननहार... वह कभी, जाननहार वह कभी नहीं जाननेवाला नहीं होता। अर्थात्? जाननेवाला जो आत्मा अनादि-अनन्त, वह जाननेवाला कभी नहीं जाननेवाला अर्थात् राग और शरीरादि अज्ञान (रूप) नहीं होता। आहाहा! ऐसी बातें हैं। जाननेवाला कभी नहीं जाननेवाला नहीं होता। वह नहीं जाननेवाला ऐसे जो रागादि, उनरूप कभी नहीं होता। आहाहा! यह शरीर तो जड़, मिट्टी, धूल है। इसलिए जाननेवाला, नहीं जाननेवाले शरीररूप नहीं होता। जाननेवाला, कर्मरूप नहीं होता; जाननेवाला, राग के दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के परिणाम विकार वे अनजान हैं, उनरूप नहीं होता। आहाहा!

सदा सर्वदा... आहाहा! **जाननेवाला कभी नहीं-जाननेवाला नहीं होता;...** आहाहा! जाननेवाला ज्ञायक चैतन्यसूर्य, वह नहीं जाननेवाले रागादिरूप नहीं होता। आहाहा! और नहीं जाननेवाले राग दया, दान, विकल्प, शरीर आदि वह नहीं जाननेवाला, जाननेवाला नहीं होता। आहाहा! **सदा सर्वदा...** जाननेवाला और नहीं जाननेवाला, वह **सदा सर्वदा भिन्न रहते हैं।** आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। अन्दर में नजर करने का समय भी कब (लिया है) और मजदूरी कर-करके मर गया है। यह धन्धे की मजदूरी,

स्त्री, पुत्र सम्हालने की मजदूरी और उसमें आगे जाए (तो) कदाचित् दया, दान, व्रत के परिणाम (करे), वह भी राग की मजदूरी है। आहाहा! क्योंकि वह तत्त्व अज्ञान तत्त्व है। भगवान ज्ञानतत्त्व है। वह अज्ञान तत्त्व हुआ नहीं और अज्ञानतत्त्व, वह जाननेवाले तत्त्व में आता नहीं और होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। **सदा सर्वदा...** तीनों काल और सर्व प्रकार से राग, शरीर से **सदा सर्वदा भिन्न रहते हैं**। आहाहा!

जड़ के साथ एकत्व मानकर... यह राग और शरीर, ये सब जड़ हैं। उन्हें जाननेवाला चैतन्य, उस जड़ को एकत्व मानकर यह राग मेरा है... आहाहा! मैं रागरूप हूँ, ऐसे जड़ मानकर **जड़ के साथ एकत्व मानकर तू दुःखी हो रहा है**। आहाहा! भगवान आत्मा जाननेवाला और आनन्दस्वरूप है। वह नहीं जाननेवाले ऐसे राग और दुःखरूप वह हुआ नहीं तथा राग और दुःखदशा उस जाननेवाले रूप कभी हुई नहीं। आहाहा! अरे! कभी देखा नहीं। दुनिया के पाप और पुण्य के धन्धे के समक्ष, जो सब जड़ के धन्धे हैं, उनमें रुककर जो चैतन्यस्वभाव ज्ञान और आनन्द है, वह रागस्वभाव जो अचेतन और दुःख है, उसमें एकत्व मानकर चार गति में दुःखी हो रहा है। आहाहा! है?

एकत्व मानकर तू दुःखी हो रहा है। भगवान आत्मा चैतन्यरस जाननस्वभाव प्रभु है, वह राग और शरीर से त्रिकाल भिन्न रहा है, तथापि अज्ञानरूप से राग मेरा है, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो, परन्तु वह राग अचेतन है, अनजान है, जड़ है, उसमें ज्ञानस्वरूप का अंश नहीं है। उस राग को अपना मानकर दुःखी हो रहा है। शरीर को अपना मानता है, वह तो महादुःखी है। स्त्री, पुत्र, परिवार, व्यापार, धन्धा मेरा है—ऐसा मानता है, वह तो महापापी, दुःखी है। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई!

मुमुक्षु : परम सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो भगवान अन्दर चैतन्यप्रकाश का पूर; वह राग जो अनजान और अज्ञानभाव है, उससे एकत्व मानकर दुःखी (होकर) संसार में भटक रहा है। **वह एकत्व की मान्यता भी...** क्या कहा? भगवान आत्मा अन्दर चैतन्यस्वरूप प्रभु, जाननस्वभाव का सागर, वह राग की एकता मानकर दुःखी हो रहा है, तथापि राग (के साथ) एकत्व की मान्यता, वह स्वरूप में नहीं है। आहाहा! ऐसा काम भारी कठिन। ओहोहो!

मुनि तो कहते हैं, मुनि सच्चे सन्त जिन्हें जैनदर्शन स्वीकार करता है, वे मुनि कहते हैं कि अरे रे! हमारा विषय तो आत्मा परमानन्दस्वरूप, वह हमारा विषय है। हम उसे पूर्ण रीति से सेवन नहीं करते। आहाहा! हमारा जो विषय है, ज्ञान की पर्याय का, श्रद्धा का (विषय) जो पूर्णानन्द प्रभु, उसे हम पूर्ण रीति से सेवन नहीं करते, यह हमारा अपराध है। आहाहा! नियमसार में आता है। यह बातें पूरी अलग है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग कोई अलौकिक-अलग है। आहाहा! अभी तो लौकिक और सम्प्रदाय के साथ मेल खाये, ऐसा नहीं है। लोगों ने सब गड़बड़ कर डाली है। आहाहा! और बनियों को धन्धे के पाप के कारण सत्य और असत्य की तुलना करने की निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान पूर्ण आनन्द ज्ञानस्वरूप ज्ञान के स्वभाव से भरचक भरपूर प्रभु है, वह राग की एकता से दुःखी हो रहा है। राग जो विकल्प चाहे तो दया, दान, व्रत का हो, उस राग के साथ एकता मानी है कि जो अज्ञानस्वभाव है। यह ज्ञानस्वभावी प्रभु अज्ञानस्वभाव के साथ एकता मानकर दुःखी हो रहा है, तथापि उस राग की एकता की मान्यता वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! यह क्या कहते हैं? चैतन्यस्वभावी आत्मतत्त्व जो वस्तु, वस्तु अनादि-अनन्त आत्मतत्त्व, वह राग को अपना मानकर दुःखी हो रहा है। जो उसके ज्ञानानन्द आदि स्वभाव हैं, उन्हें एकत्वरूप नहीं मानता। आहाहा!

ये राग का छोटे में छोटा कण हो, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का (राग हो), उसे अपना मानकर दुःखी हो रहा है, तथापि उस राग की एकता की मान्यता, वह मिथ्यात्व है, वह मिथ्यादृष्टि जीव है। आहाहा! वह जैन नहीं। आहाहा! वह अन्यमति है। आहाहा! तथापि, राग के कण को अपना मानकर दुःखी हो रहा है, तथापि उस राग की एकता का जो मिथ्यात्वभाव... आहाहा! वह स्वस्वभाव में नहीं है, वह पर्याय में है। आहाहा! यह क्या कहते हैं? वह तो पर्याय में नया उत्पन्न करता है परन्तु वस्तु में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू! अरे रे!

चैतन्य भगवान आत्मा आत्मतत्त्व जो वस्तु है, वह अनादि-अनन्त है और जाननेवाला है, जानना उसका स्वभाव है। वह जाननेवाला रागादि नहीं जाननेरूप कभी नहीं हुआ। आहाहा! शरीररूप और स्त्री, पुत्र, परिवार, पैसा, धूल, उसरूप तो हुआ ही नहीं। आहाहा! परन्तु वह रागरूप जो दया, दान, व्रत का विकल्प उठता है, वह राग है। यह कमाना,

विषय-वासना, ब्याज पैदा करना, यह तो सब अकेला पाप है। आहाहा! इन पाप के परिणामरूप तो भगवान आत्मा हुआ नहीं, क्योंकि ये पाप के परिणाम अज्ञान हैं। यह जाननेवाला नहीं जाननेरूप हुआ नहीं। आहाहा! और अजानपने का भाव, वह जानपने में आया नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। दुनिया से अलग प्रकार लगे। क्या हो? भाई! है ऐसी, बापू! क्या हो? आहाहा! अरे रे!

नियमसार में एक शब्द पड़ा है—सततं सुलभ, आहाहा! यह तो कहते हैं, प्रभु! भगवान अन्दर सततं सुलभ वस्तु पड़ी है न। आहाहा! ज्ञानानन्द का सागर भगवान सतत् निरन्तर है न! है, उसे प्राप्त करना तो सुलभ है, कहते हैं। आहाहा! रागादि तो अपना करना, वह तो दुर्लभ है, क्योंकि राग कभी अपना होगा नहीं। आहाहा!

अन्दर चैतन्यचन्द्र प्रभु भगवान आत्मा, यह राग उसका नहीं होता, तथापि राग को एकत्व मानकर दु:खी हो रहा है। यह नरक और निगोद के भव कर रहा है। आहाहा! तथापि उस राग को एकत्व अजान तत्त्व को जाननेवाले तत्त्व के साथ एकत्व मानने पर भी, वह मिथ्यात्वभाव वस्तुस्वरूप में नहीं है, द्रव्यस्वभाव में नहीं है। आहाहा! आहाहा! क्या वीतराग जिनेश्वरदेव... अरे! बेचारे जैन में जन्मे, उन्हें पता नहीं होता। सब अन्यमति होकर पड़े हैं। आहाहा! उसमें फिर पाँच-पच्चीस लाख, करोड़, दो करोड़ रुपये आवे तो 'मैं चौड़ा और गली सकड़ी' हो जाता है उसे। आहाहा!

मुमुक्षु : सबको हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तो बहुतों को होता है। आहाहा! यह महाजन लोग अभी अफ्रीका में हैं, तो कितने ही करोड़पति हैं। बीस, पच्चीस लाख, चालीस लाख वाले तो कितने ही हैं। ये बैठे हैं। नैरोबी। नैरोबी न? क्या कहा? भूल जाते हैं, भाई! तुम्हारा नाम भी भूल जाते हैं। इनके पास सत्तर लाख हैं, परन्तु उसमें—धूल में क्या है? वे मेरे मानकर जड़ हैं, उसमें जानपने का अभाव है, तथापि उस अनजान को जानपने में-मुझमें वह है, वह मेरे हैं, ऐसा मानकर दु:खी चार गति में मिथ्यात्व से दु:खी हो रहा है। आहाहा! शान्तिभाई!

अरे! प्रभु! वह तो कहीं दूर रहा, पैसा-बैसा धूल तो कहीं दूर रही, शरीर भी कहीं

दूर रहा। वह तो जड़, मिट्टी, धूल है। आहाहा! परन्तु अन्दर में शुभ और अशुभराग होता है, वह भी जड़ है, अचेतन है, जाननेवाले के स्वभाव से अभाववाला है। आहाहा! जाननस्वभाव के भाव का उसमें अभाव है। आहाहा! तथापि वह जाननस्वभावभाव वस्तु, वह राग के अनजानपने (रूप) वह हुई नहीं, माना है। आहाहा! अब ऐसी बातें हैं। क्या कहा? समझ में आया?

चैतन्यप्रभु अन्दर अकेला जानने-देखने के स्वभाव का पिण्ड प्रभु अनादि-अनन्त सदा सर्वदा प्रभु विद्यमान है। वह राग को अपना मानता है, इससे मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं है, उसे जैन की (खबर नहीं है)। जैन अर्थात् राग से रहित मेरी चीज़ है, ऐसा अनुभव करना चाहिए, वह (अनुभव नहीं करता, इसलिए) जैन नहीं है। वह राग को अपना मानता है, वह अजैन और अन्यमति है। आहाहा!

मुमुक्षु : पाँच महाव्रत तो जैन में ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच महाव्रत राग है, वह जैन ही नहीं। महाव्रत तो उसे कहते हैं... नियमसार में आता है, भाई! कि आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें ध्यान में एकाग्र हो जाए, वह महाव्रत है। महाव्रत और समिति सब आता है, एक पद में आता है, भाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ ध्यान में, बस वह। आहाहा! ...वह महाव्रत खताया है। यह जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य जो महाव्रत है, वह तो राग है, विकार है, दु:ख है, आस्रव है। उसरूप प्रभु आत्मा अन्दर चैतन्यतत्त्व उसरूप तो हुआ नहीं तथा वह आस्रवतत्त्व उस आत्मा के जानपने के स्वभावरूप भी आया नहीं। आहाहा!

अब निश्चय महाव्रत उसे कहते हैं... आहाहा! कि भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु में अन्तर एकाग्र होकर ध्यान में लीन हो जाए, उसे महाव्रत कहा जाता है। नियमसार में है, भाई! महाव्रत, समिति, गुप्ति। आहाहा! ऐसे जो महाव्रत हैं, वह तो अभव्य भी करता है, जिसकी कभी मुक्ति नहीं होगी, ऐसे अभव्य भी पंच महाव्रत पालन करते हैं। वह कोई नयी चीज़ नहीं है। वह तो राग की चीज़ अनादि से करता है, वह करता है। आहाहा! वह परलक्ष्यवाली वृत्ति है, वह स्वलक्ष्यवाली परिणति नहीं है। आहाहा! ऐसा उपदेश।

यहाँ कहते हैं **एकत्व की मान्यता भी तेरे मूल स्वरूप में नहीं है**। आहाहा! तू भले मान। यह राग का स्वभाव मेरा है, मुझे लाभ करता है, (ऐसा भले तू) मिथ्यात्व में मान, तथापि वह मिथ्यात्वभाव, वस्तु जो चैतन्यमूर्ति द्रव्यवस्तु है, उसमें वह नहीं आता। वह ऊपर-ऊपर रह जाता है। आहाहा! जिनेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा का ऐसा हुकम है। अरे रे! यह सत्य बात सुनने को मिले नहीं, वह बेचारा कहाँ जाएगा। आहाहा! निगोद और तिर्यंच में अवतार करके भटक मरेगा। आहाहा! शब्द तो सरल हैं, सादे हैं, भाव गम्भीर है।

शुभाशुभभाव भी तेरा असली स्वरूप नहीं है। लो! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग-वासना, काम-धन्धा आदि पैसे में दुकान की गद्दी में बैठना और जो अशुभभाव (होते हैं) वह पापभाव है; वह कहीं तेरा स्वभाव नहीं है, तेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! तथा दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा... आहाहा! वह कहीं तेरा स्वभाव नहीं है। **शुभाशुभभाव भी तेरा असली स्वरूप नहीं है**। वह तो पर्याय में विकृत स्वरूप हो गया है। आहाहा! लाखों-करोड़ों के दान दे, उसमें कदाचित् राग की मन्दता हुई हो, शुभभाव (होओ), वह भी कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! आत्मा उसरूप नहीं हुआ और वह शुभभाव आत्मारूप नहीं हुआ। आहाहा! अरे! अभी भाई नहीं आये। नहीं ? सवेरे आते हैं। आहाहा! ऐसा है। जिनके एक पुत्र के पास पाँच करोड़ और एक के पास चार करोड़। यह मलूकचन्दभाई। कहाँ गये हिम्मतभाई नहीं आये ? यह तुम्हारे भाई की बात चलती है। उनके दो पुत्र हैं। एक के पास पाँच करोड़, छह करोड़, मुम्बई, पूनमचन्द। और एक बड़ा निहाल, स्विटजरलैण्ड (रहता है)। लड़का नहीं है, एक लड़की है। चार करोड़ हैं। मरकर भटककर मरनेवाले हैं। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि अन्दर राग की वृत्ति उठना (कि) इसकी दया पालन करूँ और सत्य बोलूँ, शरीर से ब्रह्मचर्य (अर्थात्) स्त्री का त्याग पालन करूँ, ऐसी जो वृत्ति उठती है, वह राग है, शुभ है। वह शुभराग इस आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! अरे रे! इसे कहाँ जाना ? आहाहा! सदा सर्वदा प्रभु! राग के कण से भिन्न पड़ा है, उसे देखता नहीं, उसे मानता नहीं, उसके सन्मुख होकर स्थिरता नहीं करता, आहाहा! और उन्धाई करके राग में आकर राग को अपना मानकर... आहाहा! उसे जानकर और उसमें-राग में एकाग्र होता है। आहाहा! वह दुःख के पन्थ में दौड़ गया है। वह दुःख का, जहर का

प्याला पीता है... आहाहा! दु:ख के पन्थ में दौड़ गया है, बापू! उसे खबर नहीं है। आहाहा!

शुभाशुभभाव भी तेरा असली स्वरूप नहीं है। वह तो कृत्रिम विकृत अवस्था उत्पन्न की है। आहाहा! यहाँ तो जरा थोड़ा दान करे पाँच-पच्चीस लाख का, दो-चार मन्दिर बनावे या दया पालन करे, जरा गौशाला सम्हालने, दे और फिर वहाँ मानों कि हमने कुछ किया। क्या किया! राग किया है, प्रभु! और राग वह दु:खरूप की दशा है। आहाहा! दु:ख की दशा से दु:खी हो रहा है। अरे! इन वीतराग के अतिरिक्त कौन यह कहे। आहाहा! ऐसी बातें हैं। **शुभाशुभभाव भी...** भी क्यों कहा ?—कि जो आत्मा ज्ञायक चैतन्यस्वरूप है, उसे राग की एकताबुद्धि जो मिथ्यात्व है, वह उसमें तो नहीं, परन्तु शुभाशुभभाव भी उसके असली स्वरूप में नहीं है, ऐसा कहते हैं। 'भी' शब्द पड़ा है न ? आहाहा!

एकत्व की मान्यता भी तेरे मूल स्वरूप में नहीं है। क्योंकि दूसरा कहना है न, इसलिए 'भी' कहा है तथा **शुभाशुभभाव भी तेरा असली स्वरूप नहीं है।** आहाहा! होली के दाडा में जैसे कोयले और सब ऊपर चौपड़ते हैं, कीचड़ और... वह कहीं मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है ? आहाहा! कहाँ थे ? हैदराबाद थे न ? हैदराबाद, होली के दिन हैदराबाद थे। सब लोग ऐसे काला मुँह और... हम निकलते हैं परन्तु कुछ बोलते नहीं। चौपड़ते हैं। वह कहीं मूल वस्तु नहीं है। इसी प्रकार शुभाशुभभाव वह असली स्वरूप नहीं है। होली की होली है, सुलगी है, कीचड़ चौपड़ा है। आहाहा! हैदराबाद में थे। हैदराबाद में गये थे न इस वर्ष ? अभी गये थे न पर साल बहुत लोग आते थे और यहाँ का नाम प्रसिद्ध हो गया, इसलिए चारों ही सम्प्रदाय ने स्वागत किया था। स्थानकवासी, तेरापंथी स्थानकवासी के, श्वेताम्बर और दिगम्बर। चारों के प्रमुख आये। हम जहाँ गये, आये और स्वागत भाषण चारों ने किया। बापू! मार्ग यह है, भाई! यह कोई पक्ष नहीं। चारों ही, हों! चारों के प्रमुख हैदराबाद में (आये थे)। भाई! यह तो मार्ग है, बापू! यह कोई कृत्रिम और पक्ष है, ऐसा नहीं। आहाहा! इस मार्ग की पद्धति इसे जानना पड़ेगी, भाई! आहाहा!

कहते हैं कि आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रभु, ज्ञानस्वरूप, चैतन्यस्वरूप, त्रिकाली चैतन्यस्वरूप है। यह राग अज्ञानस्वरूपरूप तो हुआ नहीं परन्तु उसकी एकताबुद्धि जो मानी है, उसरूप भी नहीं हुआ। आहाहा! तथा **शुभाशुभभाव भी तेरा असली स्वरूप नहीं है।** यह तो होली के ऊपर जैसे कीचड़ चौपड़ा हुआ हो, ऐसी चीज़ है। आहाहा!

यह ज्ञानी अनुभवी पुरुषों का निर्णय है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग में हुए ज्ञानी। आहाहा! उन ज्ञानी, अनुभवी... आहाहा! आत्मा का आनन्दस्वरूप का अनुभव करनेवाले वे ज्ञानी समकिती। आहाहा! ऐसे **पुरुषों का निर्णय है।** आहाहा! **तू इस निर्णय की दिशा में प्रयत्न कर।** आहाहा! प्रभु! तू यह कर, नहीं तो मर जाएगा, हों! चौरासी के अवतार। आहाहा! समकिती ज्ञानी पुरुषों का यह निर्णय है कि राग वह उसका (आत्मा का) असली स्वरूप नहीं है, रागरूप द्रव्यस्वभाव हुआ नहीं है। द्रव्यस्वभाव में राग आया नहीं है। आहाहा! ऐसा ज्ञानी पुरुषों का सच्चा निर्णय है। आहाहा! तू इस निर्णय की दिशा में प्रयत्न कर न, प्रभु! आहाहा! जो पूर्ण आनन्द और ज्ञानस्वरूपी तत्त्व है... आहाहा! उसके सन्मुख का निर्णय कर न! आहाहा! रागादि, निमित्तादि की विमुखता करके... आहाहा! जो तुझमें नहीं है। आहाहा! ऐसा एकदम रूखा लगे। संसार के रसिया बड़े... आहाहा! और क्रियाकाण्ड के रसिया हों, लो न, व्रत, तप और भक्ति। सब एक प्रकार के रसिया मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा!

इस निर्णय की दिशा में प्रयत्न कर। अर्थात् क्या कहते हैं? कि राग से भिन्न भगवान है, उसकी दिशा की ओर का प्रयत्न कर। राग की दिशा की ओर का प्रयत्न तो (है ही), राग है, वह मेरा है। आहाहा! **तू इस निर्णय की दिशा में प्रयत्न कर। मति व्यवस्थित किये बिना चाहे जैसे तर्क ही उठाता रहेगा...** आहाहा! मति को व्यवस्थित किये बिना, स्वसन्मुख किये बिना चाहे जितने तर्क उठाया करेगा कि ऐसा तो होता है न, ऐसा तो होगा न! कुछ दया, दान, व्रत, परिणाम करें तो कुछ कल्याण होगा न, ऐसे तर्क उठाया करेगा। आहाहा! मर जाएगा। कान्तिभाई! ऐसा सुनने को कठिन पड़ता है। पूरी दुनिया जानी है और कहाँ नहीं जानते। आहाहा! अरे रे!

तत्त्व है न वस्तु? वस्तु है न आत्मा या अवस्तु है? वस्तु है न? वह पर्यायमात्र है? रागमात्र तो नहीं, परन्तु पर्यायमात्र है? पर्याय अर्थात् एक समय की अवस्थामात्र वस्तु है? वस्तु है न? भगवान आत्मा तत्त्व है न? आहाहा!

वह तो अनादि-अनन्त तत्त्व है और वह जानने के स्वभाववाला तत्त्व है। उस तत्त्व को अन्दर राग की एकताबुद्धि तूने अनादि से मानी है। अनन्त बार साधु हुआ, दिगम्बर मुनि हुआ। आहाहा! वस्त्रवाले मुनि को तो यहाँ मुनि कहा नहीं जाता, वे तो कुलिंगी हैं।

आहाहा ! परन्तु द्रव्यलिंग नग्न, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, पंच महाव्रत लिये, शरीर के खण्ड-खण्ड करे तो (भी) क्रोध न करे, ऐसी क्रियाएँ अनन्त बार की हैं। आहाहा ! परन्तु वह तो राग की क्रिया है, भाई ! तुझे खबर नहीं। भगवान अन्दर ज्ञानस्वरूपी है, उसकी यह क्रिया नहीं है। आहाहा ! अब ऐसी बातें।

मति व्यवस्थित किये बिना... अर्थात् कि ज्ञान की पर्याय अन्दर झुकानेयोग्य है, ऐसी (मति) व्यवस्थित किये बिना तर्क किया करेगा (कि) ऐसा होता है और ऐसा होता है न, पहले ऐसा करें और फिर ऐसा होगा और कुछ व्यवहार सुधारे तो होगा। ऐसे तर्क किया करेगा तो कुछ पता नहीं चलेगा। आहाहा ! बहुत सरस ! बाद के पैराग्राफ बहुत सरस आये हैं। आहाहा ! **तो पार नहीं आयेगा**। आहाहा ! मति को द्रव्य सन्मुख झुकाने का निर्णय किये बिना... आहाहा ! दूसरे तर्क किया करेगा कि ऐसा होता है, अमुक होता है, अमुक होता है, ऐसा होता है। मर जाएगा, उसमें तेरा (भवभ्रमण का) अन्त नहीं आयेगा। ऐसी बातें हैं। है ? आहाहा ! यह ४०६ (बोल पूरा) हुआ।

ऐसे ४३२ हैं। अब २६ रहे, २६। यहाँ तो अब चार दिन हैं, इसलिए यह चले इतने ठीक। आहाहा ! बहुत सरस ! आहाहा ! बहुत सादी भाषा, सरल भाषा। गुजराती भाषा। चार कक्षा पढ़ा हुआ भी (समझ सकता है)। हमारे हीराचन्द मास्टर कहते हैं न ? मास्टर, नहीं ? वे कहते हैं चार कक्षा पढ़ा हुआ भी समझ सकता है। इसमें कोई संस्कृत, व्याकरण और बहुत पढ़ा हो तो समझ में आये, ऐसा यह नहीं है। आहाहा ! नियमसार में तो कहा है सतत् सुलभ—ऐसा एक शब्द है। कहीं है अवश्य। समाधि में या प्रतिक्रमण में या सामायिक में कहीं है। भगवान अन्दर सतत् निरन्तर चैतन्यबिम्ब पड़ा है न। आहाहा ! है, उसे प्राप्त करना वह तो सुलभ है। नहीं, उसे तू पकड़े, राग उसमें नहीं, उस राग को अपना करना हो तो दुर्लभ है। आहाहा ! अब ऐसी बातें। अब तो लोग सुनते हैं। मुम्बई में पन्द्रह-पन्द्रह हजार, बीस-बीस हजार लोग सुनते हैं। अरे ! भोपाल में चालीस हजार लोग थे। पंच कल्याणक था न ? चालीस हजार लोग ! सुने तो सही, बापू ! यह तुम सब सुने हुए और की हुई है, वह सब बातें अलग है। आहाहा ! यह ४०६। एक में कितना भरा है, देखो, इतने में।

यहाँ (श्री प्रवचनसार प्रारम्भ करते हुए) कुन्दकुन्दाचार्य भगवान को पंच परमेष्ठी के प्रति कैसी भक्ति उल्लसित हुई है! पाँचों परमेष्ठी भगवन्तों का स्मरण करके भक्तिभावपूर्वक कैसा नमस्कार किया है! तीनों काल के तीर्थंकर भगवन्तों को—साथ ही साथ मनुष्य-क्षेत्र में वर्तते विद्यमान तीर्थंकर भगवन्तों को अलग स्मरण करके—'सबको एकसाथ तथा प्रत्येक-प्रत्येक को मैं वन्दन करता हूँ' ऐसा कहकर अति, भक्तिभीने चित्त से आचार्य भगवान नम गये हैं। ऐसे भक्ति के भाव मुनि को—साधक को—आये बिना नहीं रहते। चित्त में भगवान के प्रति भक्तिभाव उछले तब, मुनि आदि साधक को भगवान का नाम आने पर भी रोम-रोम उल्लसित हो जाता है। ऐसे भक्ति आदि के शुभभाव आयें, तब भी मुनिराज को ध्रुव ज्ञायकतत्त्व ही मुख्य रहता है; इसलिए शुद्धात्माश्रित उग्र समाधिरूप परिणमन वर्तता ही रहता है और शुभभाव तो ऊपर-ऊपर ही तरते हैं तथा स्वभाव से विपरीतरूप वेदन में आते हैं।॥४०७॥

४०७, अब भक्ति की बात आती है। **यहाँ (श्री प्रवचनसार प्रारम्भ करते हुए)...** भगवान की-त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि का प्रवचनसार बनाते हुए, **कुन्दकुन्दाचार्य भगवान को...** आहाहा! संवत् ४९ में दिगम्बर सन्त कुन्दकुन्दाचार्य हुए। वे भगवान के पास गये थे। प्रभु विराजते हैं, पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है, समवसरण में प्रभु महाविदेह में वर्तमान में विराजते हैं। दो हजार वर्ष पहले भी वे थे और अभी भी भगवान वहाँ हैं। यहाँ आगामी (चौबीसी के) तेरहवें तीर्थंकर होंगे, तब तक विराजेंगे। पश्चात् देह छूटकर सिद्ध होंगे। अभी णमो अरिहंताणं में हैं। आहाहा!

महावीर भगवान आदि चौबीस तीर्थंकर तो णमो सिद्धाणं में हो गये हैं। णमो सिद्धाणं, यह तो सिद्धपद हो गया। वे भगवान-बीस तीर्थंकर विराजते हैं, वे णमो अरिहंताणं में हैं, सिद्धाणं को-सिद्ध को अभी देरी है। आहाहा! उन अरिहन्त के निकट यह कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, आठ दिन रहे थे। आकर यह शास्त्र रचा है। आहाहा! समझ में आया ? उसमें से यह सार है।

(श्री प्रवचनसार प्रारम्भ करते हुए) कुन्दकुन्दाचार्य... नग्न-दिगम्बर। जैन के साधु तो नग्न-दिगम्बर थे। आहाहा! दो हजार वर्ष पहले उसमें से भ्रष्ट होकर वस्त्रसहित मुनिपना स्थापन करनेवाले निकले। आहाहा! कठिन बात, बापू! श्वेताम्बर पन्थ दो हजार वर्ष पहले सनातन जैनदर्शन में से (निकला है)। बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा, उसमें से भ्रष्ट होकर पन्थ निकाला है। उसमें से स्थानकवासी अभी पाँच सौ वर्ष पहले भ्रष्ट होकर निकले हैं, उसमें से श्वेताम्बर से भ्रष्ट होकर (निकले हैं)। उसमें से भ्रष्ट होकर यह तेरापंथी निकले हैं। तुसली तेरापंथी है न? आहाहा! भारी कठिन काम, बापू!

वह यहाँ कहते हैं, इन **कुन्दकुन्दाचार्य भगवान को पंच परमेष्ठी के प्रति कैसी भक्ति उल्लसित हुई है!** आहाहा! सन्त आत्मा के अनुभवी और आत्मा ही जिनका विषय है, ऐसा होने पर भी छद्मस्थ हैं, इसलिए पंच परमेष्ठी की भक्ति का विकल्प उठता है। है वह शुभराग, परन्तु ऐसी भक्ति उल्लसित होती है, तथापि जानते हैं कि यह राग बन्ध का कारण है, परन्तु मेरी कमजोरी के कारण आता है। आहाहा! ऐसा भाव कुन्दकुन्दाचार्य, आहाहा! पंच परमेष्ठी के प्रति—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु—ये जैन के वास्तविक पंच परमेष्ठी हैं। इनके प्रति कैसी भक्ति उल्लसित हुई है! प्रवचनसार बनाते हुए उनके प्रति ऐसी भक्ति उल्लसित हुई है।

पाँचों परमेष्ठी भगवन्तों का स्मरण करके... आहाहा! अनन्त तीर्थंकर हो गये, अनन्त अरिहन्त हो गये, उन्हें याद करके। आहाहा! पंच परमेष्ठी भगवन्तों को (याद करके)। देखो! ये भगवन्त पाँचों ही भगवान हैं। साधु भी जो आत्मध्यानी और आत्मा में मस्त हैं, अतीन्द्रिय आनन्द के रसिक हैं, वे भी भगवान कहने में आते हैं। आहाहा! पंच परमेष्ठी में हैं। आहाहा! उन्हें **स्मरण करके भक्तिभावपूर्वक...** भक्तिभावपूर्वक। आहाहा! **कैसा नमस्कार किया है! तीनों काल के तीर्थंकर भगवन्तों को**—आहाहा!

यह शास्त्र है न? क्या कहा? धवल, धवल शास्त्र में तो ऐसा पाठ है, वह तो अभी तो यह संक्षिप्त कर डाला। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व साहूणं कर डाला न? परन्तु है वह सब पहले में—णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं। वह अन्त पद है। णमो लोए सव्व अईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। तदुपरान्त धवल में तो लिया है (कि) णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं,

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। सव्व साहूणं अर्थात् दूसरे साधु-फाधु इसमें नहीं आते।

यहाँ तो आत्मा के आनन्द के रसिक, जिसकी नग्न दशा है, जिनकी अन्दर में विकल्प रहित दशा है, आहाहा! ऐसे जो जैन के सन्त हैं, वे इस पंच परमेष्ठी में आते हैं। एक शुशीलकुमार स्थानकवासी साधु है, वह अमेरिका गया था और वह ऐसा कहता है कि णमो लोए सव्व साहूणं में तो सब साधु आते हैं। धूल भी नहीं आते, सुन न! वह ऐसा कहता है। उसे कहाँ लोगों को कहाँ पड़ी है बेचारों को। अमेरिका में मुँहपत्ती सहित प्लेन में (जाता है)। हिन्दी में भाषण करता है, लोग अंग्रेजी करके समझाते हैं। वापस देश में आया है। आहाहा! वह कहता है कि इसमें सब साधु आते हैं। जैन के, अन्य के, बाबा-सन्त। ऐसा नहीं होता। जैन में वे भी वीतरागी सन्त अन्दर हो, जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन हो, जिनकी बाह्य में नग्नदशा हो, बाह्य में अभ्यन्तररूप से बाह्य में पंच महाव्रत के विकल्प हों, तथापि वे वन्दनीय (नहीं हैं), वन्दनीय तो वह चीज़ है। आहाहा! विकल्प वन्दनीय नहीं, नग्नदशा वन्दनीय नहीं। आहाहा! बहुत फेरफार।

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय का सागर है, उसमें से जैसे समुद्र में से ज्वार उछलता है, समुद्र में जैसे पानी ऐसे ज्वार उछले किनारे, वैसे अतीन्द्रिय आनन्द का सागर वह भगवान (आत्मा है।) उसमें एकाग्र होने से उसकी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द की लहरें उठते हैं। समझ में आया? आहाहा! उसे जैन का मुनि कहा जाता है। समझ में आया? जैन कोई पक्ष नहीं। जैन, वह वस्तु का स्वरूप है। उसका स्वरूप है, वैसा यह वर्णन किया है। आहाहा!

पाँचों परमेष्ठी भगवन्त (और) **तीनों काल के तीर्थंकर...** देखा? आहाहा! अनन्त तीर्थंकर हो गये, अभी तीर्थंकर विराजते हैं, भविष्य में अनन्त तीर्थंकर होंगे। भले उनका आत्मा अभी नरक में या निगोद में हो, परन्तु भविष्य में तीर्थंकर होंगे। उन सबको नमस्कार किया है। ऐसा भक्तिभाव आता है, तथापि उसे हेयरूप से जानते हैं। आहाहा! ऐसी बातें! बात-बात में अन्तर है। अभी दुनिया की लाईन (बदल गयी है)। आहाहा! **तीनों काल के तीर्थंकर भगवन्तों को—साथ ही साथ...** क्या कहा?

तीनों काल के तीर्थंकर भगवन्तों को—साथ ही साथ मनुष्य-क्षेत्र में वर्तते विद्यमान तीर्थंकर भगवन्तों को... आहाहा! बीस तीर्थंकर भगवान वर्तमान में विराजते हैं, समवसरण में विराजते हैं, मनुष्यरूप से हैं, केवलीरूप से हैं, अरिहन्त पद में हैं। आहाहा! शरीर है, वाणी है। आहाहा! महाविदेह में वर्तमान है? मनुष्यक्षेत्र में वर्तते। क्योंकि फिर ऐसा कहा वे तीर्थंकर होते हैं, वे मनुष्यक्षेत्र में वर्तते हैं। ऐसे विद्यमान तीर्थंकर, विराजमान तीर्थंकर प्रभु हैं। आहाहा!

ऐसे **भगवन्तों को अलग स्मरण करके...** आहाहा! समुच्चय करके और पश्चात् एक-एक को अलग याद करके। आहाहा! '**सबको एकसाथ तथा प्रत्येक-प्रत्येक को मैं वन्दन करता हूँ'...** आहाहा! तीनों काल के तीर्थंकरों और मनुष्य क्षेत्र में वर्तते विद्यमान, इन प्रत्येक को सामूहिक और प्रत्येक-प्रत्येक को अलग-अलग। आहाहा! '**मैं वन्दन करता हूँ' ऐसा कहकर अति, भक्तिभीने चित्त से.. अति, भक्तिभीने चित्त से आचार्य भगवान नम गये हैं।** आहाहा!

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी,
मंगल कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्॥

तीसरे नम्बर में (जो आते हैं) वे आचार्य नम्रीभूत हो गये हैं। आहाहा! अनन्त अनन्त हो गये, अनन्त-अनन्त होंगे और वर्तमान में विराजते हैं, उन सब तीर्थंकरों को एकसाथ और एक-एक को प्रत्येक को भिन्न-भिन्न करके, आहाहा! **भक्तिभीने चित्त से आचार्य भगवान नम गये हैं। ऐसे भक्ति के भाव मुनि को—साधक को—आये बिना नहीं रहते।** आहाहा! अभी साधक हैं न? सर्वज्ञ वीतराग केवली हो, उन्हें किसी को वन्दन करना नहीं होता। समझ में आया? केवली, केवली को वन्दन नहीं करते। वे तो सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा हैं। आहाहा! केवली गुरु को छद्मस्थ को भी विनय नहीं करते, ऐसा है। ऐसे मुनि को अर्थात् साधक को। साधक है, अभी कहीं पूर्ण सिद्धदशा नहीं हुई, ऐसे भाव आये बिना रहते नहीं हैं।

चित्त में भगवान के प्रति भक्तिभाव उछले तब,.... भगवान के प्रति भक्तिभाव उछले तब, मुनि आदि साधक को... मुनि आदि साधक को... मुनि आदि साधक सब लिये हैं। समकिती, श्रावक, सच्चे श्रावक, हों! यह बाड़ा के श्रावक वे कहीं श्रावक नहीं

हैं। आहाहा! जिन्हें आत्मज्ञान हुआ है, आनन्द का अनुभव हुआ है और जिन्हें राग से आत्मा की भिन्नता भासित हुई है, ऐसे सन्त अथवा श्रावक या समकिती, ऐसे साधक को भगवान का नाम आने पर **भगवान का नाम आने पर भी रोम-रोम उल्लसित हो जाता है।** आहाहा! उसमें आता है न? रहस्यपूर्ण चिट्ठी में। अन्दर मैं ऐसा हूँ, वहाँ रोमांच हो जाता है। पहले ऐसा होता है। यह तो ऐसा कहते हैं कि वह तो अन्दर ध्यान में आने पर तो रोम-रोम उल्लसित हो जाता है परन्तु ऐसे पंच परमेष्ठी को वन्दन करते हुए भी रोमांच हो जाता है, ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है।

ऐसे भक्ति आदि के शुभभाव आयें, तब भी मुनिराज को ध्रुव ज्ञायकतत्त्व ही मुख्य रहता है... आहाहा! ज्ञायक परमात्मास्वरूप जो अपना पूर्ण (स्वरूप) उसकी मुख्यता रहती है। ऐसे भाव होते हैं, वे उन्हें गौण हो जाते हैं। आहाहा! दृष्टि का विषय जो पूर्ण परमात्मस्वरूप है, उसकी मुख्यता तो हमेशा रहती है। ऐसी भक्ति उछली, इसलिए भक्ति का भाव मुख्य हो जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

इसलिए शुद्धात्माश्रित... इसलिए शुद्ध आत्मा के अवलम्बन से। आश्रित है न? **उग्र समाधिरूप परिणमन वर्तता ही रहता है...** आनन्द की दशा समाधि, शान्ति, आधि, व्याधि, उपाधिरहित अन्दर आनन्द की समाधि, शान्ति, अतीन्द्रिय आनन्द की समाधि तो वर्तती ही रहती है। आहाहा! **और शुभभाव तो ऊपर-ऊपर ही तरते हैं...** ऊर्ध्व रहते हैं। नियमसार में है, ऊर्ध्व रहते हैं। शब्द है, नियमसार में आचार्य का शब्द है। ऐसा राग आवे, वह ऊर्ध्व रहता है। ऊर्ध्व अर्थात् दूर रहता है, अन्दर में एकत्व नहीं हो जाता। **तथा स्वभाव से विपरीतरूप वेदन में आते हैं।** तथापि वह राग स्वभाव से विपरीतरूप से दुःखरूप से वेदन में आता है। आहाहा! विशेष कहा जाएगा....

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण -१५, गुरुवार, दिनाङ्क ३१-११-१९७८
वचनामृत-४०८ से ४०९ प्रवचन-१६६

अहो! सिद्धभगवान की अनन्त शान्ति! अहो! उनका अपरिमित आनन्द! साधक के अल्प निवृत्त परिणाम में भी अपूर्व शीतलता लगती है तो जो सर्व विभावपरिणाम से सर्वथा निवृत्त हुए हैं, ऐसे सिद्धभगवान को प्रगट हुई शान्ति का तो क्या कहना! उनके तो मानों शान्ति का सागर उछल रहा हो, ऐसी अमाप शान्ति होती है; मानों आनन्द का समुद्र हिलोरें ले रहा हो, ऐसा अपार आनन्द होता है। तेरे आत्मा में भी ऐसा सुख भरा है परन्तु विभ्रम की चादर आड़ी आ जाने से तुझे वह दिखता नहीं है॥४०८॥

४०८ बोल है। **अहो! सिद्धभगवान की अनन्त शान्ति!** यह क्या कहते हैं? कि यह आत्मा है, वह तो शान्ति का भण्डार-सागर है। अकषाय स्वभाव वीतराग शान्तस्वभाव का पिण्ड है, उसकी जहाँ सम्यक् दृष्टि होती है, वहाँ शान्ति का अंश वेदन में आता है। आहाहा! धर्म की शुरुआत होने पर शुभ-अशुभभाव है, वह अशान्ति है। आत्मा शान्त अविकारी वीतरागी शान्तरस की मूर्ति प्रभु है। उसका स्वीकार होने पर (अर्थात्) उस पर अहंपना—यह मैं हूँ—ऐसी प्रतीति आने पर भी शान्ति का वेदन होता है, तो सिद्ध की शान्ति का क्या कहना! ऐसा कहते हैं। आहाहा!

धर्म, वह वीतरागी पर्याय है। धर्म, वह वीतरागी पर्याय है। शुभाशुभभाव हैं, वह राग की पर्याय है, वह धर्म नहीं है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव चाहे तो दया, दान, व्रत, तप, भक्ति भगवान की देव-गुरु, शास्त्र की (भक्ति हो) परन्तु वह सब भाव राग और अशान्ति है। आहाहा! शान्त वीतरागमूर्ति प्रभु वीतराग पर्याय, वह धर्म, उस वीतरागमूर्ति प्रभु के आश्रय से होता है। आहाहा! इसलिए यहाँ कहते हैं कि वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा

अकेला शान्त, शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. का सागर प्रभु है, उसकी जहाँ दृष्टि अनुभव सम्यक् हुआ, वहाँ जो जहाँ शान्ति वेदन में आती है तो सिद्ध की शान्ति का क्या कहना! ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अहो! सिद्धभगवान की अनन्त शान्ति! पूर्ण वीतरागता और पूर्ण शान्ति, आनन्द का रस और चारित्र की शान्ति की पूर्णता। अहो! भगवान सिद्ध भगवान की शान्ति! **अहो! उनका अपरिमित आनन्द!** जहाँ आत्मा पूर्णानन्द प्रभु का अवलम्बन लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए, वहाँ भी जहाँ आनन्द की वेदनदशा आती है तो सिद्ध के अपरिमित आनन्द का क्या कहना! ऐसा कहते हैं। आहाहा! **उनका अपरिमित आनन्द!** अपरिमित अर्थात् मर्यादारहित (अमर्यादित) आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द।

साधक के अल्प निवृत्त परिणाम में भी... अब यहाँ कहते हैं। आहाहा! धर्मी जीव साधक (अर्थात्) पुण्य-पाप के परिणाम का आश्रय-रुचि छोड़कर, भगवान पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु का आश्रय-अवलम्बन लेकर जो साधक को शान्ति की दशा प्रगट होती है... आहाहा! **साधक के अल्प निवृत्त परिणाम में भी...** शुभाशुभभाव से निवृत्त और त्रिकाली भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु की प्रवृत्ति में परिणति की प्रवृत्ति, शुभभाव से निवृत्ति। आहाहा! ऐसी बातें! **साधकदशा के सहज... निवृत्त परिणाम में...** शुभ और अशुभ राग से निवृत्त परिणाम में और स्वभाव शुद्ध, उसकी परिणति की प्रवृत्ति में। आहाहा! **अपूर्व शीतलता लगती है...** अपूर्व शीतलता लगती है। आहाहा!

धर्मी के पहली श्रेणी में, सम्यग्दर्शन में। आहाहा! वह साधक है। उसे प्रथम श्रेणी में... आहाहा! **सहज निवृत्त परिणाम में भी अपूर्व शीतलता लगती है...** 'भी' क्यों कहा? —कि जब यह भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसका नजदीक में साधकरूप से शुरुआत जहाँ की, उसे भी जहाँ शान्ति आती है, तो सिद्ध की शान्ति का क्या कहना! आहाहा! ऐसी बातें हैं। यहाँ अस्ति से बात की है। शुभभाव से धर्म नहीं होता, ऐसा न लेकर, उनसे निवृत्ति करके... आहाहा! प्रभु आत्मा पूर्ण शान्त और वीतरागमूर्ति है। वीतरागपर्याय, वह धर्म है। राग पर्याय, वह अधर्म है। जब राग पर्याय से—अधर्म से निवृत्ति की और वीतरागपर्याय, वीतरागस्वभाव भगवान के अवलम्बन से जो हुई, उसमें जहाँ शीतलता और शान्ति दिखती है... ऐसी बातें हैं। आहाहा! है?

साधक के सहज निवृत्त परिणाम में... पर्याय... पर्याय में, परिणाम में। द्रव्य-गुण तो त्रिकाली शुद्ध है। वे तो शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... शीतल चन्द्रस्वरूप भगवान आत्मा, परन्तु उसकी ओर का आश्रय होने से शीतलता का अनुभव लगता है, अपूर्व शीतलता, ऐसे वापस। अनन्त काल में कभी शीतलता अनुभव नहीं की थी, अनन्त-अनन्त बार शुभभाव (करके) नौवें ग्रैवेयक गया, ऐसा जैन साधु दिगम्बर मिथ्यादृष्टि, उसका शुभभाव बहुत ऊँचा, शुक्ललेश्या (हुई) परन्तु उसमें शान्ति नहीं थी। आहाहा! हजारों रानियों का त्याग और अन्दर पंच महाव्रत के शुभभाव, शुक्ललेश्या के भाव (थे), परन्तु वह शान्ति नहीं थी। आहाहा! अर्थात् वह धर्म नहीं था। आहाहा!

जब इस **साधक के सहज निवृत्त परिणाम में भी अपूर्व शीतलता लगती है तो जो सर्व विभावपरिणाम से सर्वथा निवृत्त हुए हैं...** देखा? पहले कहा कि शुभाशुभभाव से थोड़ा निवृत्त हुआ और स्वभाव का आश्रय लिया, वहाँ अपूर्व शान्ति वेदन में आती है तो सर्व विभाव से रहित हुए परमात्मा। आहाहा! ऐसी बातें जरा जगत को (कठिन लगती है)। धर्म के बहाने कुछ राग की क्रियाओं में धर्म मनवा दिया है। आहाहा! वीतराग धर्म तो वीतराग पर्याय से होता है और वह वीतराग पर्याय, उस वीतरागी त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से होती है। आहाहा! ऐसा उसका स्वरूप है, प्रभु! जैनधर्म कोई पन्थ और पक्ष नहीं है, वह वस्तु का स्वभाव है। आहाहा!

जिनस्वरूपी भगवान आत्मा अर्थात् वीतरागस्वरूपी आत्मा अर्थात् पूर्ण शीतल शान्तस्वभावरूपी आत्मा। उसे पुण्य और पाप के भाव से थोड़ी निवृत्ति लेकर सहज स्वभाव की शान्ति जहाँ प्रगट होती है, वह अपूर्व शीतलता है। आहाहा! तो जिसने सर्व विभाव... देखा! यह तो अभी थोड़ा विभाव हटकर स्वभाव प्रगट हुआ। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव, वह विभाव-दु:खरूप भाव है। उनसे थोड़ा निवृत्त हुआ, दृष्टि जितना (दृष्टि अपेक्षा निवृत्त हुआ)। उनकी दृष्टि छोड़कर उनकी रुचि छोड़कर भगवान पूर्ण शीतल आनन्द वीतरागस्वरूप है, उसकी रुचि और दृष्टि हुई, वहाँ अपूर्व शान्ति जहाँ वेदन में आवे, तो सर्व विभाव से रहित परमात्मा की शान्ति का क्या कहना! आहाहा! लोगों को ऐसा मार्ग कठिन पड़ता है, सब चिल्लाहट मचाते हैं, ऐई! सोनगढ़ का धर्म एकान्त है,

एकान्त है – ऐसा बेचारे शोर मचाते हैं। बात सत्य है, सम्यक् एकान्त है। उनका माना हुआ मिथ्या अनेकान्त है, उससे यह अलग चीज़ है, भाई! आहाहा!

जिसकी एक समय की पर्याय में... द्रव्य-गुण तो त्रिकाली एक समय की पर्याय में पुण्य के परिणाम वर्तते हैं, वे अशान्त हैं, दु:ख हैं। उनसे हटकर, सर्वथा पूर्ण हटकर नहीं परन्तु उनकी दृष्टि है, उससे हटकर शीतलस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि में पुण्य और पाप की थोड़ी निवृत्ति हुई है, वहाँ उसे अन्तर में अपूर्व शान्ति ज्ञात हुई है। आहाहा! तो जिसे सर्व पुण्य-पाप के विभावभाव से निवृत्ति हो गयी- भगवान सिद्धभगवान। आहाहा! ऐसी बातें हैं। बाहर में धमाल.. धमाल.. धमाल.. यह किया और यह किया और यह किया। अर..र..! क्या करे? प्रभु! पर का तो कुछ कर नहीं सकता, शरीर को हिला नहीं सकता। आहाहा!

शरीर की जो यह पर्याय होती है, उसे वह (आत्मा) कर नहीं सकता। यह शरीर की पर्याय होती है, इसे उसके परमाणु कर नहीं सकते। यह बात कैसे जँचे? शरीर, यह मिट्टी है, जड़ अजीवतत्त्व है, उसकी यह पर्याय होती है। उस पर्याय को आत्मा करता नहीं है। आत्मा को राग होवे कि मैं इसे करूँ, वह राग कर नहीं सकता। उसकी पर्याय को वह द्रव्य-परमाणु कर नहीं सकता। आहाहा! वह पर्याय, पर्याय से होती है। उसे अज्ञानी मानता है कि यह पर्याय मुझसे हुई है, वह तो मिथ्यात्व की, अनाकुलस्वभाव से विरुद्ध आकुलता के भाव का वेदन है। आहाहा! ऐसा कहाँ से निकाला? भाई! भगवान का मार्ग ही यह है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' वीतराग जिनेश्वरदेव, परमेश्वर परमात्मा का यह एक ही मार्ग अनादि से है। लोग इसे भूले और हाथ न आवे, इसलिए कहीं मार्ग बदल जाएगा? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप शुद्ध शान्त शीतल है, उसे पुण्य-पाप की आकुलता और अशीतलता से दृष्टि हटाकर। अभी दृष्टि हटाकर-श्रद्धा से उन्हें छोड़ा, अस्थिरता से बाद में छोड़ेगा। समझ में आया? आहाहा! पहले दृष्टि-श्रद्धा से छोड़कर इस ओर झुका। जहाँ अनन्त आनन्द का सरोवर सागर प्रभु अनन्त... अनन्त... अनन्त... शीतलता का सागर, निधान भगवान, उसमें जहाँ ढला तो धर्मी को-जघन्य धर्मी को पर्याय में अपूर्व शान्ति ज्ञात होती है, वेदन में आती है। आहाहा! तो कहते हैं कि सिद्ध

भगवान तो पूर्ण विभाव से निवृत्त हो गये। आहाहा! यह तो श्रद्धा से निवृत्त हुआ है। भगवान तो श्रद्धा और अस्थिरता से निवृत्त हो गये हैं। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! पूरा जन्म-मरण का अन्त लाना, भाई! वह चीज़ अलौकिक है, भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, शुभभाव की रुचि छोड़कर, दृष्टि में उनका त्याग करके स्वभाव को ग्रहण किया। आहाहा! वहाँ जब शीतलता का अपूर्व वेदन आता है तो जिन्होंने अस्थिरता भी पूर्ण छोड़कर स्थिरता में आया है। आहाहा! ऐसी बात है। है? **सर्व विभावपरिणाम से...** परिणाम है, अस्थिरता की विभावपर्याय है। ज्ञानी को भी अभी अस्थिरता की पर्याय है। वह दृष्टि की पर्याय में उसकी निवृत्ति करके दृष्टि वहाँ जमी परन्तु अभी अस्थिरता के परिणाम हैं। आहाहा! भगवान सिद्धपरमात्मा **सर्व विभावपरिणाम से सर्वथा निवृत्त,.. सर्व विभावपरिणाम से सर्वथा निवृत्त...** आहाहा! **हुए हैं, ऐसे सिद्धभगवान को प्रगट हुई,... ऐसे सिद्धभगवान को प्रगट हुई शान्ति का तो क्या कहना!** आहाहा! यह सिद्धभगवान। आहाहा!

उनके तो मानों शान्ति का सागर उछल रहा हो... आहाहा! साधक सम्यग्दृष्टि को तो अभी शान्ति की पतली धारा थी। आहाहा! यह आ गया है न? मुनि होते हैं न? सच्चे मुनि, सच्चे मुनि। उन्हें तो जैसे घड़े में रस भरा हो, रस गन्ने का और उसमें से थोड़ी धारा से ऐसे ले और पतली धारा से पीवे, इस प्रकार मुनि अन्तर में आनन्द की धारा और शान्ति का सागर प्रभु पड़ा है, उसकी पतली धारा से शान्ति और आनन्द का वेदन मुनि को होता है। आहाहा! समझ में आया? बापू! मुनिपना वह कोई चीज़ है। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन क्या है, इसकी खबर नहीं होती, वहाँ मुनिपना कहाँ से आवे? भाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को धर्म की पहली सीढ़ी वाले को शुभभाव की अशान्ति से जरा श्रद्धा से हटा है, रुचि से हटा है और स्वभाव की दृष्टि की रुचि हुई, वहाँ अपूर्व शान्ति का वेदन होता है तो जिसे पूर्ण विभाव की अशान्ति का, अस्थिरता का भी त्याग होकर जहाँ पूर्ण शान्ति का वेदन होता है, उस शान्ति का क्या कहना! आहाहा! अब ऐसा उपदेश। इसमें क्या करना।—करना क्या आया? इसमें तो कुछ आता नहीं। यह व्रत करना और अपवास करना और शरीर से ब्रह्मचर्य पालना... बापू! ये सब बातें हैं। यह जड़

की क्रिया होती है और अन्दर भाव हों तो कदाचित् शुभभाव हो, वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा! वह कोई धर्म का कारण भी नहीं है। आहाहा!

धर्म ऐसा जो वीतरागभाव, उसे रागभाव की निवृत्ति और रुचि से, दृष्टि से आश्रय से, दृष्टि के आश्रय से निवृत्ति और आनन्द के नाथ का आश्रय लिया, वहाँ जब अपूर्व शान्ति आती है। आहाहा! उसे धर्म कहते हैं, तो जिसे सर्वविभाव से सर्वथा निवृत्त हुए हैं। आहाहा! यह तो श्रद्धा (अपेक्षा) से निवृत्त हुए थे, वे तो-भगवान तो अस्थिरता से निवृत्त हो गये। आहाहा! समझ में आया? चौथे गुणस्थान में तो श्रद्धा (अपेक्षा) से निवृत्त हुए हैं, उससे आगे पाँचवें-छठवें में अस्थिरता के अंश से निवृत्त होकर आनन्द की-शान्ति की शीतलता प्रगट हुई थी, जिसे समकिती कहते हैं, जिसे श्रावक कहते हैं, वह यह है। ये बाड़ा के श्रावक, ये कहीं श्रावक नहीं हैं। आहाहा! और जिससे छठे गुणस्थान में मुनि को बहुत ही शुभभाव से निवृत्ति है और शान्ति की धारा, शान्ति की धारा-वीतरागधारा उग्र बहती है परन्तु जरा उन्हें अभी अशान्ति का रागभाव है, परन्तु जिसने विभाव सर्वथा छोड़ा है। आहाहा! सर्वविभाव और सर्वथा। आहाहा! उसकी तो क्या बात!

सिद्धभगवान को प्रगट हुई शान्ति का तो क्या कहना! उनके तो मानों शान्ति का सागर उछल रहा हो... आहाहा! जैसे समुद्र वेग से किनारे उछल रहा हो। आहाहा! उसी प्रकार भगवान आनन्द का सागर समुद्र प्रभु, पूर्ण विभाव में से निवृत्त होकर पूर्ण आनन्द का सागर जिन्हें उछल रहा है। आहाहा! पर्याय में (उछल रहा है)। ऐसी बातें, लो! ऐसा उपदेश! अब यह ऐसा जैन का उपदेश होगा? अरे रे! वीतरागमार्ग परमेश्वर का (मार्ग) सुनने को मिलता नहीं। वह कहाँ जाए? वहाँ क्या करेगा? भाई! कोई उसका शरण दूसरा नहीं है। आहाहा!

ऐसी अमाप शान्ति होती है;... आहाहा! **मानों शान्ति का सागर उछल रहा हो ऐसी अमाप शान्ति होती है; मानों आनन्द का समुद्र हिलोरें ले रहा हो...** उसमें शान्ति का सागर उछल रहा हो, आहाहा! यहाँ कहा कि सर्वथा विभाव से अस्थिरता से निवृत्त हो गये, ऐसे सिद्धभगवान को शान्ति का सागर उछल रहा है, मानों आनन्द का सागर हिलोरें ले रहा हो। आहाहा! जिनकी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द की ऐसी हिलोरें आती हों। आहाहा! अरे! उनकी बात सुनना, बापू! भले दुनिया चाहे जो कहे, एकान्त कहे। आहाहा! वस्तु तो

यह है, प्रभु! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ' तो यह है। अरे! जिसे सुनने को मिलता नहीं, उसे विचार में कब रखे और उसे रुचि में कब लगावे। आहाहा!

मानों आनन्द का समुद्र हिलोरें... हिलोरे, आनन्द का समुद्र ऐसा। आहाहा! सिद्ध की पर्याय में (आनन्द की हिलोरें हैं)। सिद्ध पर्याय है, सिद्ध कोई द्रव्य-गुण नहीं है। सिद्ध एक पर्याय है। मुक्तदशा एक पर्याय है, वह द्रव्य-गुण नहीं है; द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। अरे... अरे..! ऐसी बातें हैं। आहाहा! द्रव्य अर्थात् जो अनन्त गुण का आधार और गुण अर्थात् कि जिसमें उसके आधार से रहे गुण। वे तो त्रिकाली हैं। अब जब इस त्रिकाली का उग्र आश्रय लेकर राग से पूर्ण निवृत्ति की तो पर्याय में आनन्द हिलोरे खाता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन की उग्र दशा होती है। ऐसी बातें हैं। आहाहा!

पूरे दिन धन्धा-पानी, स्त्री, पुत्र सम्हालने में रुकता है। अब उसे यह बात? सुनने जाए तो दूसरी बातें मिलती है। आहाहा! उपाश्रय जाए तो (वहाँ) कहते हैं सामायिक करो, प्रौषध करो, व्रत करो, उपवास करो, नवकार गिनो। वह क्या कहलाता है? आनुपूर्वी। आनुपूर्वी नहीं? णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं... णमो सिद्धाणं, अरिहन्ताणं... वह तो प्रभु! सब विकल्प है, भाई! वह तो शुभराग है, भाई! वह तो अशान्ति और आकुलता है, भाई! तुझे खबर नहीं है। आहाहा! उन श्वेताम्बर में जाए तो कहे, मूर्ति पूजो, भगवान करो, उपधान करो। आहाहा! सिद्धचक्र की पूजा धूमधाम से करो, दो-पाँच-दस लाख खर्च करो। भगवान! उसमें कदाचित् शुभभाव हो, तो वह शुभभाव तो आकुलता है, अशान्ति है। आहाहा! जिसमें—भगवान में शान्ति पड़ी है... यहाँ तो सवेरे भगवानरूप से नहीं कहा था? भगवान आत्मा, तीन बार आया था। आहाहा! निर्विकल्पोऽहं, उदासीनोऽहं। आहाहा!

(संवत्) १९६४ का वर्ष होगा। ६४ का वर्ष। कितने वर्ष हुए? ७१ वर्ष पहले पालेज में दुकान थी और वहाँ से मैं माल लेने बड़ोदरा गया। माल लेने बड़ोदरा (गया)। माल लेने सब जगह जाते थे मुम्बई, अहमदाबाद। छोटी उम्र की-१७-१८ वर्ष की उम्र (की बात है)। अभी तो ८९ हुए। उस समय बड़ोदरा माल लेने गये थे। रात्रि को फुरसत थी इसलिए (नाटक) देखने गये। वह अनुसूईया का नाटक था। आहाहा! परन्तु उस समय वैराग्य के नाटक थे। वह अनुसूईया महिला है, नर्मदा नहीं? भरूच के किनारे। वह

और यह अनुसूईया दो बहिनें थी। यह तो बाद में नदी का नाम पड़ा। मूल में तो दो बहिनें थीं – अनुसूईया और नर्मदा।

अनुसूईया वहाँ हमारे साथ में गाँव है। कौन सा? भूल गये। मात्रा। उसके किनारे नदी है और अनुसूईया है। वह अनुसूईया महिला स्वर्ग में जाती थी। तो उन लोगों में ऐसा है न कि 'अपुत्रस्य गति नास्ति।' पुत्र न हो, उसे गति नहीं मिलती, बाद में श्राद्ध करनेवाला चाहिए। नहीं तो वह कौआ होकर वापस वहाँ जाए। सब गप्प है। ऐसा कहते हैं–पुत्र न हो उसकी गति नहीं होती। आहाहा! तब क्या करना? नीचे जा, जिसे हो उसे वरण कर, जो बैठा हो उसे वरण कर। वहाँ अन्धा ब्राह्मण था, उसे वर लिया। उसके पुत्र हुआ। वह लड़का भाई लाया था। यह तो बड़ोदरा की ७१ वर्ष पहले की बात है। उस नाटक में वह महिला बोलती थी—बेटा! तू निर्विकल्प है, तू निर्विकल्प है। आहाहा! राग के विकल्प से रहित तेरा स्वरूप निर्विकल्प है, ऐसा नाटक में आता था। आहाहा! और वहाँ तो वापस नाटक देखते थे, मेरी ऐसी आदत थी कि वहाँ तुम क्या बोलते हो, वह पुस्तक यहाँ लाओ। बारह आने की टिकिट और बारह आने की पुस्तक (लेते थे)। तुम क्या बोलते हो, वह मुझे समझ में आये बिना तो मेरा चलता नहीं। वह पुस्तक बारह आने की ली थी। आहाहा! बेटा! तू निर्विकल्पोऽहं। अपने समयसार में बन्ध अधिकार में अन्त में और सर्वविशुद्ध अधिकार के अन्त में और परमात्मप्रकाश के अन्त में ये शब्द हैं। परन्तु मुझे तीन–चार याद रहे हैं। वह महिला गाती थी और (अपने पुत्र को) ऐसे सुलाती थी। हजारों लोग नाटक में (थे)। बेटा! निर्विकल्प है। शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निर्विकल्पोऽसि, उदासीनोऽसि। आहाहा!

प्रभु! तू निर्विकल्प अभेद चीज़ है। आहाहा! शुद्ध है... शुद्ध है... शुद्ध है। यह पुण्य–पाप तेरा स्वरूप नहीं हैं। शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि–तू ज्ञान का पिण्ड है। उदासीनोऽसि... प्रभु! पुण्य और पाप के भाव से अन्दर तेरा आसन भिन्न है। आहाहा! ऐसा तो उस समय (नाटक में आता था)। अभी तो कुकर्म (किये हैं)। फिल्म के नाम से स्त्री ऐसे खड़ी हो और ऊपर नहीं करते? चौक में रखकर ऐसे–ऐसे... अर..र..र! अनीति.. अनीति। किसी स्त्री को ऐसे बाहर में पूरी ऐसे लगावे। उस समय तो वैराग्य के नाटक थे। आहाहा! उसमें ऐसा कहा जाता था, वह अभी सम्प्रदाय में नहीं कहा जाता। आहाहा! अरे! ऐसा होगा? यह तो सब राग करे, यह करे, वह करे, करते–करते फिर (होगा)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान जब पूर्ण विभाव के भाव से, विभाव अर्थात् शुभभाव आदि। उनसे निवृत्त होकर पूर्ण शान्ति जहाँ प्रगट हुई, वहाँ तो इस शान्ति का सागर उछल रहा और आनन्द का सागर हिलोरें मार रहा है। आहाहा! **ऐसा अपार आनन्द होता है।** आहाहा! सम्यग्दर्शन होने पर शुभ की रुचि छूटने से, आश्रय छूटने से, त्रिकाली भगवान आनन्द के आश्रय की दृष्टि होने पर भी आनन्द का आंशिक स्वाद जहाँ आता है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो, भले चक्रवर्ती के पद में हो। आहाहा! तो जिसे पूर्ण विभावस्वभाव का सर्वथा अभाव हो गया, उसकी उस पर्याय में आनन्द के हिलोरे की क्या बात करना! आहाहा! उसे तो अपार आनन्द होता है।

तेरे आत्मा में भी ऐसा सुख भरा है... इतना कहकर अब वापस (कहते हैं)... जब सिद्ध भगवान को इतना आनन्द और इतनी शान्ति आयी। णमो सिद्धाणं। आहाहा! तो प्रभु! तेरे आत्मा में वह पूर्ण सुख और पूर्ण आनन्द भरा हुआ है। आहाहा! वहाँ नजर कर न! आहाहा! **तेरे आत्मा में भी...** ऐसा कहते हैं, सिद्ध में ऐसा होता है परन्तु वह तेरे आत्मा में भी इतना ही आनन्द अन्दर भरा है। आहाहा! वह अन्तर में आनन्द था, वह उछलकर सिद्ध को पर्याय में आया है। कोई बाहर से नहीं आये आनन्द और शान्ति। आहाहा! **तेरे आत्मा में भी ऐसा सुख भरा है परन्तु...** आहाहा!

परन्तु विभ्रम की चादर आड़ी आ जाने से... आहाहा! राग, वह मैं और पुण्य, वह मैं और शुभभाव, वह मैं—ऐसी विभ्रम अर्थात् मिथ्यात्व की आड़ी चादर आ गयी। तेरे सुख के सागर को तूने नहीं देखा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा परमात्मा जिनेश्वर का यह मार्ग है, भाई! आहाहा! विभ्रम। जैसे बड़ा समुद्र हो, पानी से भरा हुआ हिलोरें खा रहा हो, परन्तु उसके किनारे यदि चार हाथ का कपड़ा-पर्दा आड़े रखा हो और मनुष्य चार हाथ का ऊँचा, तो उसकी नजर कपड़े पर रहती है, पानी तो कहीं रह गया। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान त्रिलोक का नाथ आनन्द का सागर अन्दर भरा है, परन्तु उसे भ्रमणा हुई कि राग, वह मैं हूँ और पुण्य, वह मैं हूँ और यह पुण्य के-धूल के फल यह पाँच-पचास लाख मिले, वह मैं हूँ, (इस प्रकार) विभ्रम में मर गया, आत्मा को मार डाला। आहाहा! कलश-टीका में आता है, इस प्रकार आत्मा को इसने मरणतुल्य कर

डाला। आहाहा! कलश-टीका में आता है। २८वें कलश में। आहाहा! जो इसके त्रिकाली स्वभाव में नहीं है, ऐसा जो विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव, वह मैं हूँ—ऐसा मानकर वह विभ्रम के मिथ्यात्वभाव में—मिथ्याश्रद्धा की आड़ में, सम्यक् चीज़ त्रिकाली है, वह उसे नहीं देखता। आहाहा! समझ में आया?

विभ्रम की चादर आड़ी आ जाने से... भ्रम की चादर आड़ी आयी है, भगवान दिखता नहीं। आहाहा! और यह राग और पुण्य तथा पुण्य के फल यह बाहर में धूल, स्त्री, पुत्र, परिवार और मकान और सब होली सुलग रही है। यह मेरे हैं और मैं इनका, ऐसी विभ्रम की चादर आड़े आ गयी है। आहाहा! इसलिए इसे भगवान अन्दर पूर्ण सागर, आनन्द का सागर भरा है, वह विभ्रम की आड़ी चादर में दिखता नहीं। आहाहा! भारी कठिन।

है न? दृष्टान्त है। जीव-अजीव (अधिकार) में आता है न? आड़ी चादर है, पर्दा है। समुद्र उछल रहा है ऐसा, परन्तु चार हाथ का कपड़ा किनारे ऊँचा करके रखा है और देखने जाए तो नजर कपड़े पर रही है, कपड़ा दिखता है और वस्तु नहीं दिखती। आहाहा! परन्तु उस कपड़े को तोड़-फोड़ डाले (तो) पूरा समुद्र उछलता हुआ दिखायी दे। आहाहा!

इसी प्रकार विभ्रमरूपी चादर इसे त्रिकाली आनन्द के नाथ को देखने नहीं देती परन्तु जिसने विभ्रम की चादर को तोड़कर फाड़ डाला। आहाहा! राग की एकतारूपी विभ्रम को जिसने तोड़ दिया, उसे स्वभाव का सागर नजर में दिखता है। आहाहा! अब ऐसी बातें। अरे! वीतरागमार्ग कहीं रह गया और लोगों ने वीतरागमार्ग को कहीं चढ़ा दिया। राग और क्रिया और भ्रमणा में चढ़ा दिया। आहाहा! अरे रे! अवतार चला जाता है और वापस मरकर कहाँ जाएगा? आहाहा!

तुझे वह दिखता नहीं है। आहाहा! वे कहते हैं न? दरवाजा बन्द हो, सूर्य उदित हुआ हो, नलिया सोने का अर्थात् सफेद दिखते हों, वह तीन कपड़े ओढ़कर सो रहा हो और आँखें बन्द हो, उसे कहे कि यह सोने का नलिया (धूप) हुआ, उठ, उठ। परन्तु वह कहाँ से देखे? सोने का अर्थात् उस सूर्य की धूप। आहाहा! इसीप्रकार जिसने राग की

एकता की मान्यता की है, उसे भगवान जागती ज्योत चैतन्यस्वरूप प्रभु... आहाहा! जिसका अस्तित्व, जिसकी मौजूदगी पूर्णानन्द से भरपूर जिसकी अस्ति है... जिसकी मौजूदगी अनन्त वीतरागी गुणों से भरपूर मौजूद है। आहाहा! उसकी दृष्टि-रुचि न करके, राग की रुचि के प्रेम में उसे देख नहीं सकता। आहाहा! ऐसी बात है। अरे रे! इसे कहाँ जाना? यह ४०८ (बोल पूरा हुआ)।

जिस प्रकार वटवृक्ष की जटा पकड़कर लटकता हुआ मनुष्य मधुबिन्दु की तीव्र लालसा में पड़कर, विद्याधर की सहायता की उपेक्षा करके विमान में नहीं बैठा, उसी प्रकार अज्ञानी जीव विषयों के कल्पित सुख की तीव्र लालसा में पड़कर गुरु के उपदेश की उपेक्षा करके शुद्धात्मरुचि नहीं करता, अथवा 'इतना काम कर लूँ, इतना काम कर लूँ' इस प्रकार प्रवृत्ति के रस में लीन रहकर शुद्धात्मप्रतीति के उद्यम का समय नहीं पाता, इतने में तो मृत्यु का समय आ पहुँचता है। फिर 'मैंने कुछ किया नहीं, अरेरे! मनुष्यभव व्यर्थ गया' इस प्रकार वह पछताये तथापि किस काम का? मृत्यु के समय उसे किसकी शरण है? वह रोग की, वेदना की, मृत्यु की, एकत्वबुद्धि की और आर्तध्यान की चपेट में आकर देह छोड़ता है। मनुष्यभव हारकर चला जाता है।

धर्मी जीव रोग की, वेदना की या मृत्यु की चपेट में नहीं आता, क्योंकि उसने शुद्धात्मा की शरण प्राप्त की है। विपत्ति के समय वह आत्मा में से शान्ति प्राप्त कर लेता है। विकट प्रसंग में वह निज शुद्धात्मा की शरण विशेष लेता है। मरणादि के समय धर्मी जीव शाश्वत ऐसे निज सुख सरोवर में विशेष-विशेष डुबकी लगा जाता है—जहाँ रोग नहीं है, वेदना नहीं है, मरण नहीं है, शान्ति की अखूट निधि है। वह शान्तिपूर्वक देह छोड़ता है, उसका जीवन सफल है।

तू मरण का समय आने से पहले चेत जा, सावधान हो, सदा शरणभूत—विपत्ति के समय विशेष शरणभूत होनेवाले—ऐसे शुद्धात्मद्रव्य को अनुभवने का उद्यम कर॥४०९॥

४०९ **अज्ञानी जीव...** आहाहा! **जिस प्रकार वटवृक्ष की जटा पकड़कर लटकता हुआ मनुष्य...** वटवृक्ष, वट होता है न? उसकी जटा होती है न अन्दर? उसे **पकड़कर लटकता हुआ मनुष्य मधुबिन्दु की तीव्र लालसा में...** ऊपर मधु का छत्ता हो, उसमें से एक-एक बूँद झरती हो। धारा नहीं, हों! ऐसे वटवृक्ष की जटा को पकड़कर खड़ा (हो), यह मधुबिन्दु, बिन्दु है न? ऐसा है न? पूरा मधु नहीं। आहाहा! **मधुबिन्दु की तीव्र लालसा में पड़कर, विद्याधर की सहायता की उपेक्षा करके...** विद्याधर विमान लेकर आया। अरे भाई! आ जा और बैठ जा, बापू! यह वटवृक्ष की जटा अभी टूट जाएगी, गिरकर नीचे कुँए में गिरेगा। नीचे कुँआ, नीचे कुँआ, ऊपर जटा ऐसे। उसे दो चूहे खाते हैं, उस डाली को चूहा—रात और दिन का चूहा खाता है। आहाहा!

विद्याधर की सहायता की उपेक्षा करके विमान में नहीं बैठा,... उस मधुबिन्दु की एक बूँद गिरे, ऐसे ले लूँ, ले लूँ, ले लूँ। आहाहा! इसी प्रकार... यह तो दृष्टान्त हुआ। **उसी प्रकार विषयों के कल्पित सुख की तीव्र लालसा में पड़कर...** आहाहा! या तो कहे इज्जत का सुनना, शरीर के स्पर्श में विषय की वासना का सुख, उसकी कुछ खाने-पीने में मैसूरपाक में अन्दर लक्ष्य जाए और सुख, रूप को देखने का सुख। आहाहा! शरीर की सुन्दरता की संरचना अच्छी देखकर उसकी सुन्दरता का सुख, उस लालच में वहाँ ललचाकर... आहाहा! खड़ा रहा है। आहाहा! **लालसा में पड़कर...** है? कल्पित सुख की तीव्र लालसा। कल्पित सुख, प्रभु! यह खाना-पीना, मैसूर को मानता... उस मैसूर को कुछ खाता नहीं, मैसूर का लक्ष्य होने पर इसे राग होता है, उस राग को खाता है। आहाहा! ऐसा कल्पित सुख। इसी प्रकार स्त्री का शरीर या पुरुष का शरीर तो हड्डियाँ, माँस और जड़ है। उसे कहीं आत्मा भोगता नहीं है, मात्र उसे देखकर यह ठीक है, ऐसा राग करके राग को भोगता है। आहाहा! मधु के बिन्दु के राग को भोगकर वहाँ चिपट रहा है। आहाहा! लड़का कुछ अच्छा हुआ हो, पाँच हजार, दस हजार का कमाऊँ दिन का, हों! पाँच, दस हजार। इसलिए इसे ऐसा हो जाता है कि आहाहा! क्या कर्मी लड़का पका है न! कर्मी अर्थात् पापी। स्त्री अनुकूल से बोलती हो, ऐसे पतिदेव... पतिदेव... पतिदेव बोलती हो, एकान्त में अन्दर बोले। पतिदेव! तुम ऐसे उदास क्यों दिखते हो? पतिदेव! तुम कमाने में क्यों वहीं के वहीं रुक जाते हो? पतिदेव कहे वहाँ तो उसे... आहाहा! और यह करोड़पति

है, ऐसा कहने में तो इसे अन्दर में से मानो... आहाहा! मैं कितना धनपति हूँ, ऐसा मुझे लोग मानते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : एक वर्ष में करोड़ों रुपये कमाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं एक वर्ष में करोड़ क्या, साढ़े तीन करोड़। तुम्हारे सुमनभाई का सेठ है वह साढ़े तीन करोड़ कमाता है। रामजीभाई का लड़का है न? महीने का वेतन आठ हजार है, छह हजार है और मकान का मिलकर आठ हजार। जामनगर का सेठ है, मन्दिरमार्गी। वर्ष की साढ़े तीन करोड़ की आमदनी है। बनिया है। परन्तु उसमें-धूल में क्या है? आहाहा! घिर जाता है। आहाहा! और अभी भी अधिक आमदनी करनी है, ऐसा सुना है। धन्धा ऐसा बढ़ाना है कि पाँच करोड़ की आमदनी हो। अरे रे! परन्तु यह क्या है?

जटा को पकड़कर और सुख की-कल्पना के सुख की बूँद में चिपट रहा है। आहाहा! गुरु का उपदेश मिला, उसका विमान आया। उपदेश मिला, तू छोड़ दे प्रभु! यह राग की लालसा छोड़ दे, नाथ! तू मर जाएगा, बिगड़ जाएगा। कुछ न कुछ स्त्री का सुख, परिवार का सुख, महिला का सुख। अरे! लड़का आवे, उसकी बहू अच्छी आवे और ऐसी भाषा (बोले) बापूजी, बापूजी, बापूजी करे, वहाँ भाईसाहब को ऐसा लगता है कि आहाहा! क्योंकि अभी तो बहुत लज्जा का कुछ नहीं है, इसलिए ससुर को बापूजी कहती है। यह तो ऐसा देखा है न! आहाहा! अरे रे! प्रभु! तू कहाँ अटक गया? आहाहा!

वीतराग की वाणी तुझे कान में पड़ी कि तू भिन्न है, प्रभु! इस स्वाद में रुक गया तो तेरा मिथ्यात्व है। आहाहा! परन्तु उस स्वाद की मिठास में, आहाहा! छोड़ा नहीं। रात और दिन (रूपी) चूहे उसे खाते हैं, उस डाली को। तोड़कर फिर नीचे कुँए में गिरेगा। इस प्रकार रात और दिन चूहा (रूपी) काल को अवगणना करता है, काल जाता है, वह पूरा होगा, प्रभु! चौरासी के अवतार के गहरे कुँए में कहा जाएगा? भाई! आहाहा! ऐसी बात है।

शरीर कुछ सुन्दर रूपवान मिला, आहाहा! सवेरे उठकर दो रुपये का-डेढ़ रुपये का साबुन लावे। अभी बढ़िया साबुन होता है न! पहले तो दो पैसे का साबुन था। गोल। देखो, यह तो तुम सवेरे पागल और उसमें वह नहाकर उस दर्पण में देखता है, बड़ा दर्पण हो तो ठीक, परन्तु इतना छोटा हो तो (ऐसे-ऐसे करता है) अरे रे! प्रभु! तू कहाँ गया?

आहाहा! ऐसे क्षणिक सुख की कल्पना में, प्रभु! तू भव को हार जाएगा। आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

तीव्र लालसा में पड़कर गुरु के उपदेश की उपेक्षा करके... आहाहा! गुरु ने उससे कहा, प्रभु! तू राग के सुख से भिन्न है, प्रभु! राग में सुख नहीं है, वह दु:ख है। आहाहा! उस भोग में तुझे राग का सुख लगता है। यह शरीर का सुख, शरीर का भोग नहीं। शरीर तो माँस और हड्डियाँ हैं; प्रभु तो अरूपी आत्मा है, वह इसे-शरीर को स्पर्श कहाँ करता है? आहाहा! परन्तु इसे स्पर्श करता हूँ, ऐसा मानकर और मुझे आनन्द आता है, ऐसा राग करके और राग में राग को भोगता है, दु:ख को भोगता है। आहाहा! मानता है मूर्ख। आहाहा!

शराब पिये हुए, आहाहा! उसे श्रीखण्ड खिलाओ तो उसे दूध जैसा लगता है। शराब पिये हुए को श्रीखण्ड खिलाने पर गाय के दूध जैसा लगता है; इसी प्रकार जिसे भ्रम चढ़ गया है... आहाहा! उसे राग में सुख दिखायी देता है। भगवान आत्मा में आनन्द और सुख भरे हैं, आहाहा! वहाँ अपनी नजर नहीं करता। मरकर कहाँ चला जाएगा? आहाहा! चौरासी के गहरे कुँए में (चला जाएगा)। जैसे वह जटा पकड़कर मरता है, नीचे कुँआ और बड़े सर्प नीचे बैठे थे, कुँए में गिरे तो सर्प। इसी प्रकार चौरासी के अवतार। आहाहा! यह चींटी के, कौवे के, कुत्ते के अवतार। आहाहा! भाई! तू वहाँ जाएगा। तूने गुरु का उपदेश नहीं सुना। आहाहा!

एक बार हर्ष और उत्साह टूट जाए, यह तो ऐसी (बात) है। आहाहा! हर्ष और उत्साह तो प्रभु! अन्दर तेरे आनन्द में है। आहाहा! उसमें बीस वर्ष के लड़के का विवाह होता हो, दो-पाँच करोड़ रुपये हों, दो, पाँच, दस लाख खर्च करना हो, देखो तुम्हारा पागल, वह तो तुम्हारे पागल। आहाहा! क्या करता है तू यह? अरे! लड़के का विवाह है, दो लाख खर्च करना है। कलश का उपहार जाति में देना है, हजार घर हैं, एक-एक कलश पचास-सौ रुपये का। मुम्बई में हुआ था, सब मुम्बई में हुआ था।

जेठालाल संघवी कहते थे कि एक व्यक्ति का विवाह हुआ, उसके विवाह में जाति में कलश का उपहार दिया। उसे जब बहू का गर्भ रहा, (तब) पैसा कुछ नहीं था। सब

उड़ गया, समाप्त हुआ। माँगने आया। भाई! हॉस्पीटल में स्त्री को रखना है, कोई साधन नहीं है। जिसके विवाह में उसकी जाति में कलश बाँटे, आहाहा! यह (संयोग तो) धूप-छाया है, बापू! छाया मिटकर धूप हो, इसी प्रकार पुण्य मिटकर पाप जहाँ आया। आहाहा! जिसके विवाह में कलश बाँटे, उसे सीमन्त (डिलीवरी के लिये) आया, उसे पैसा नहीं था, माँगने आया जेठालाल संघवी बोटाद वाला। यह तो जगत की चीज़ ऐसी है। आहाहा!

एक बार नहीं कहा था? जयपुर दीवान में ऊपर उतरे थे। नीचे उतरकर जहाँ व्याख्यान पढ़ने जाना था, वहाँ एक वृद्ध मनुष्य निकला, वृद्ध। ऐसे सिर पर टाल, वस्त्र, हाथ में.... मेरी नजर गयी। कहा, यह व्यक्ति कोई गरीब नहीं लगता, बापू! यह कोई चाहे जो हो, कौन है? तब उसका ड्राईवर था, उसने कहा कि यह बांकानेर का, क्या कहा? 'मावजी त्रिक्रम' का पुत्र है। मावजी त्रिक्रम की जवाहरात की दुकान गाँव में थी, उनका पुत्र है। कुछ नहीं रहा। हम थोड़ा देते थे। अब यह तो भिखारी होकर माँगता है। ७५-८० वर्ष पहले की बात है। आहाहा! ऐसे भिखारीपने में अवतार किया तूने, प्रभु! परन्तु आत्मा क्या चीज़ है, उसे तूने सुना नहीं और देखा नहीं। ऐसा कहते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल -०१, शुक्रवार, दिनाङ्क ०१-१२-१९७८
वचनामृत-४०९ प्रवचन-१६७

४०९, बोल है, थोड़ा चला है। फिर से **अज्ञानी जीव जिस प्रकार वटवृक्ष की जटा पकड़कर लटकता हुआ मनुष्य मधुबिन्दु की तीव्र लालसा में पड़कर, विद्याधर की सहायता की उपेक्षा करके विमान में नहीं बैठा,...** दृष्टान्त आता है न? जटा को पकड़कर खड़ा है, ऊपर से मधु की बूँद आती है। आहाहा! विमान आया है, (देव कहता है), यहाँ बैठ जा। अभी बूँद ले लूँ, बूँद ले लूँ। आहाहा! वहाँ तो डाली टूटती है और कुँए में गिरता है। आहाहा!

उसी प्रकार विषयों के कल्पित सुख की तीव्र लालसा में पड़कर... पाँचों इन्द्रियों के विषय-शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श की लालसा में रहकर। **गुरु के उपदेश की उपेक्षा करके...** गुरु-ज्ञानी धर्मात्मा का उपदेश शुद्धात्मवस्तु जो त्रिकाल ज्ञायकभाव, उसकी रुचि-दृष्टि करना यह उनका उपदेश था। जिसमें क्षायिकभाव भी नहीं, जिसमें उदयभाव-रागादि तो नहीं। इसलिए राग के आश्रय से लाभ होता है, यह तो नहीं परन्तु जिसमें क्षायिकभाव की पर्याय भी शुद्धात्म वस्तु में नहीं। इसलिए उसके आश्रय से लाभ होता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! एक समय में पूर्ण शुद्धस्वरूप द्रव्यस्वभाव शुद्धात्मा—जिसमें राग, परवस्तु का तो अभाव है, जिसमें राग का अभाव है परन्तु जिसमें वर्तमान पर्याय जो क्षायिक आदि होती है, उसका भी उसमें अभाव है। आहाहा! ऐसी जो शुद्धात्मवस्तु, उसकी रुचि करके, प्रतीति करनेयोग्य पहली चीज़ तो वह है। आहाहा!

उसकी उपेक्षा करके-शुद्धात्मरुचि (की) उपेक्षा करके अर्थात्... अपने अभी पहले यह तो करो, अमुक तो करो। आहाहा! **शुद्धात्मरुचि नहीं करता,...** करना तो यह है। लाख बात की बात और करोड़ बात की बात-एक समय में शुद्धात्मा ध्रुव परिपूर्ण सहजात्मस्वरूप है, जिसमें पर्याय का भी भाव नहीं, ऐसे शुद्धात्मा की दृष्टि-रुचि-पोषण में उसे लेना चाहिए, वह नहीं करता। आहाहा!

अथवा 'इतना काम कर लूँ,...' आहाहा! पुत्र को बड़ा करूँ, पढ़ाऊँ-लिखाऊँ, लड़कियों को विवाह करूँ, इतना पढ़ लूँ, इतना वाँचन कर लूँ। आहाहा! **'इतना काम कर लूँ, इतना काम कर लूँ' इस प्रकार...** आहाहा! **इस प्रकार प्रवृत्ति के रस में लीन रहकर...** वह चाहे तो शुभभाव हो, या अशुभ, उस प्रवृत्ति के रस में... आहाहा! लीन रहकर। प्रवृत्ति अर्थात् पुण्य और पाप के भाव। आहाहा! उनमें **लीन रहकर शुद्धात्मप्रतीति के उद्यम का...** आहाहा! जो कुछ मुख्य करनेयोग्य है, उसे वह नहीं करता और बाहर में अनेक प्रसंग खड़े करके वहाँ रुक जाता है। आहाहा!

शुद्धात्मप्रतीति के उद्यम का समय नहीं पाता,... आहाहा! बाहर की प्रवृत्ति के प्रसंग में लीन रहकर मिठास वेदन करता हुआ (समय नहीं पाता)। आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव में, हर्ष और शोक, प्रतिकूल होवे तो शोक, अनुकूल (होवे तो) हर्ष में रुक गया है। आहाहा! भगवान आत्मा परमस्वभावभाव...

नियमसार में तो ऐसा कहा न! आहाहा! मैंने मेरी भावना के लिये नियमसार बनाया है। आया है न? उसका अर्थ टीकाकार ने किया, मैंने का (अर्थ) कि सैंकड़ों अध्यात्म शास्त्र में कुशल ऐसा मैं, मैंने मेरे आत्मा के लिये यह नियमसार बनाया है। टीका में यह कहा है। आहाहा! संसार की बातें तो एक ओर रहो, परन्तु सैंकड़ों अध्यात्म शास्त्र में मैं कुशल हूँ, ऐसा टीकाकार (कहते हैं)। मैंने बनाया है, मैंने का अर्थ मैं कहता हूँ। आहाहा! यह मेरी भावना के लिये (बनाया है)। मेरी भावना यह कि जो त्रिकाली शुद्ध ध्रुव, ध्रुव शुद्धात्मा में दृष्टि करके स्थिर होना, वह मेरी भावना है। आहाहा!

भव सागर से उभरने का यह अवसर। आहाहा! इसलिए यहाँ उन्हें-चार भाव को भी विभावभाव कहा है। उदय, उपशम, क्षयोपशम क्षायिक, यह विशेष भाव कहे हैं, विभाव कहे हैं। टीका में तो एक जगह उन चारों को विकारी भी कहा है। एक जगह फिर चार भाव को आवरणवाला कहा है। आहाहा! एक निरावरण भगवान अखण्ड प्रभु अविनाशी—नहीं बदलता, नहीं परिणमता—ऐसी जो एकरूप शुद्धात्मवस्तु, उसकी रुचि करने का समय नहीं पाता। आहाहा! कहीं न कहीं इसे रुककर अभी अवसर है जवान हूँ, अभी देरी है, बाद में करूँगा, बाद में करूँगा। आहाहा! (ऐसे) **शुद्धात्मप्रतीति के उद्यम**

का समय... हों! आहाहा! जो द्रव्यस्वभाव वस्तु जो तत्त्व पूरा आत्मतत्त्व, परमपदार्थ सहजात्मस्वरूप, उसके प्रति उद्यम का समय नहीं पाता। आहाहा!

इतने में तो मृत्यु का समय आ पहुँचता है। आहाहा! अकस्मात्। इसे कहीं पूछता नहीं है कि मैं मरण आता हूँ। आहाहा! किस स्थिति में देह छूटने का काल इसे आ जाता है। बाद में करूँगा, बाद में करूँगा, इतना तो करूँ, इतना तो करूँ। आहाहा! लोगों को समझाता तो जाऊँ, समझाऊँ तो सही। आहाहा! ऐसे बाहर में रुकने से अन्दर की चीज़ की प्रतीति करने में समय नहीं पाता। आहाहा! वहाँ तो आयुष्य पूरा होने का-मरण का समय आ गया। है ?

मरण का काल आ पहुँचा। **फिर 'मैंने कुछ किया नहीं,...** अरे रे... ! ऐसा हो जाता है। अरे रे! ऐसा मनुष्यभव (मिला), मुझे सुनने को मिला था कि तू भगवान परिपूर्ण वस्तु है, उसकी दृष्टि-प्रतीति कर—ऐसा सुनने को मिला, परन्तु मैंने कुछ किया नहीं। अरे रे! आहाहा! ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। **'मैंने कुछ किया नहीं,...** आहाहा! **अरेरे! मनुष्यभव व्यर्थ गया'...** आहाहा! यह तो मनुष्यभव समाप्त हो गया। आहाहा! एक तो संसार के काम के कारण निवृत्त नहीं होता, फिर धर्म के नाम से प्रवृत्ति पूजा, भक्ति, वांचन और श्रवण, कहना और करना... आहाहा! उसमें से निवृत्त नहीं होता। आहाहा! वहाँ मरण आ पहुँचता है। आहाहा!

दामनगर में एक व्यक्ति था खुशालभाई। यहाँ एक जबुबहिन है, उसका पिता वृद्ध था। गाँव में बहुत काम करे, गाँव में बहुतों के काम करे, स्वयं इज्जतदार व्यक्ति है और मरण के समय दबाव पड़ा न उसमें, आहाहा! सेठ देखने आवे। दामोदर सेठ जैसे वहाँ देखने आवे और आँख में से उसे आँसू बहते जाएँ। अरे रे! मैंने इसका किया, उसका किया, इसका किया। मेरी जिन्दगी समाप्त हो गयी, मैंने मेरा कुछ नहीं किया। दामनगर में था। यहाँ पहले जबुबहिन नहीं थी ? गढडावाली, उसके पिता थे। आहाहा! सेठ देखने जाए वहाँ अन्दर धमण चले, और रोवे, आँख में से (आँसू बहे)। अरे रे! मैंने मेरा कुछ नहीं किया, मैंने स्त्री, पुत्र, परिवार और यह गाँव, इसके काम आ पड़े, वहाँ मैं पहुँच गया। आहाहा! अरे रे! मैंने मेरा काम नहीं किया, देह छूट गयी। हो गया, जाओ तिर्यंच और पशु के-पशु-पक्षी में।

कहते हैं कि यह शुद्धात्म भगवान आत्मा, यह रागरहित, शरीररहित और एक समय की पर्यायरहित है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा-शुद्धात्मा, उसकी जो प्रतीति, ज्ञान करके रुचि करना चाहिए, वह किया नहीं। उसका समय पाया नहीं। आहाहा! बाहर के काम के समय में मैं रुक गया, वहाँ तो मरण आया, चले जाओ भटकने चौरासी के (अवतार में) अरे रे! कुछ दुनिया की महत्ता मिले, महिमा मिले, सेठाई मिले, पैसा-बैसा हो, वहाँ बड़ी इज्जत मिले और ओ हो..हो.. महा उद्यमी। वह क्या कहलाता है? उद्योगपति। बहुत उद्योगपति किये और करोड़ों रुपये, पच्चीस-पचास करोड़ इकट्ठे किये परन्तु इसमें क्या हुआ? तब मरकर कहाँ जाना है? आहाहा!

इस बाहर की महिमा की उलझन में तू रुक गया है, अन्दर प्रभु की महिमा, चैतन्य आनन्द का नाथ भगवान... आहाहा! जिसकी महिमा के समक्ष सिद्ध की पर्याय भी महिमा नहीं ले सकती। आहाहा! ऐसा जो भगवान शुद्धात्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर ने कहा, वह आत्मा अन्दर, वह पूर्ण आनन्द का सागर है। अरे रे! उसकी रुचि का काल / समय लिया नहीं। आहाहा! और यह बाहर से कदाचित् छोड़ा तो व्रत, नियम, तप, भक्ति, पूजा, और उस भाव में रुक गया। वह भी राग है, वह कहीं आत्मा नहीं है। आहाहा! और फिर ऐसी तपस्यायें महीने-दो महीने की करी हो। लोग महिमा करे, बड़ी शोभायात्रा निकाले। आहाहा! उसमें तेरा क्या भला हुआ? वह तो राग की क्रिया है, भाई! तुझे खबर नहीं है। अन्दर आत्मा शुद्धात्म प्रभु, एक समय में पूर्णानन्द का नाथ, जिसमें संसार का राग तो नहीं, परन्तु जिसमें धर्म की पर्याय जो क्षायिक और क्षयोपशम की होती है, वह भी जिसमें नहीं। आहाहा! ऐसा जो यह भगवान आत्मा, इसकी प्रतीति का, श्रद्धा का समय नहीं लिया और ऐसा का ऐसा संसार के काम करके या धर्म के नाम से दया, दान, व्रत, भक्ति, तप (करके) उसमें समय गँवा दिया। आहाहा! कठिन बात है, भाई! सम्यग्दर्शन अलौकिक चीज़ है। आहाहा!

अन्दर चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु, अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। उसमें वर्तमान पर्याय है, उसका भी अभाव है। ऐसी चीज़ की रुचि-दृष्टि करने का समय नहीं लिया और जगत ने ऐसी की ऐसी जिन्दगी गँवायी। आहाहा! या सेठाई में और

पैसे दो–पाँच करोड़ रुपये हुए और लड़की का अच्छी जगह विवाह किया और लड़के का अच्छी जगह विवाह किया... तेरा क्या भला हुआ ? सब पाप है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! जगत के काम ऐसे करूँ और ऐसे करूँ और ऐसे करूँ... करते–करते, गुरु अर्थात् ज्ञानी परमात्मा ने जिनेश्वरदेव ने ऐसा कहा, प्रभु ! तू अन्दर पूर्णानन्द का नाथ है। तुझमें पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता का सागर प्रभु तू है, तुझे खबर नहीं। आहाहा ! उस ओर जा तथा उसकी प्रतीति और श्रद्धा कर तो तेरे जन्म–मरण मिटेंगे, वरना मिटेंगे नहीं। आहाहा ! कठिन बातें, बापू ! दुनिया कहाँ निवृत्त है ? आहाहा ! है ?

'मैंने कुछ किया नहीं, अरेरे! मनुष्यभव व्यर्थ गया'... अन्त में मरण (के समय) पछताता है। बाद में करूँगा, बाद में करूँगा और बाद में करूँगा, वहीं आ गया मरण, हो गया, धूल, बाद में बाद में ही रह गया। आहाहा ! ऐसा मनुष्यदेह अनन्त काल में महा महँगे मनुष्यभव में आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु पूर्ण आनन्दस्वरूप है, उसकी रुचि और उसकी श्रद्धा करने का समय लिया नहीं और बाहर के परिणाम में, पुण्य और पाप के परिणाम में रुककर तूने समय बिताया, भाई ! यह तेरा मनुष्य का भव व्यर्थ गया। आहाहा ! ऐसी बात है, प्रभु ! आहाहा ! है ?

इस प्रकार वह पछताये, तथापि किस काम का ? बाद में फिर मरण के समय हाय.. हाय... यह तो देह छूटने का अवसर आ गया, मैं मानो कि अभी तो चलेगा, अभी तीस वर्ष हुए हैं, चालीस वर्ष हुए हैं, फिर ५०–६०–७० होंगे, वहाँ तो अकस्मात् देह छूटने का अवसर आ जाएगा। आहाहा ! पश्चात् क्या ? **पछताये, तथापि किस काम का ? मृत्यु के समय उसे किसकी शरण है ?** आहाहा ! देह छूटने के समय में किसकी शरण ? यह लक्ष्मी के करोड़ों रुपये इकट्ठे हुए, इसकी शरण ? पुकार कर कि मैंने तेरे लिये यह समय गँवाया, अब मुझे मदद कर, धूल में भी नहीं। आहाहा ! स्त्री, पुत्र, परिवार को बड़ा किया, पालन–पोषण किया। अब मेरा मरण आया, मुझे कुछ शरण दो। धूल भी दे, ऐसा नहीं है, सुन ! पागल होकर जिन्दगी गँवायी, फिर मरण के समय अरमान (इच्छा) हो। आहाहा ! **किसकी शरण है ?**

वह रोग की,... अन्त में रोग आवे, आहाहा ! डबल निमोनिया (हो गया हो)।

आहाहा! **वह रोग की, वेदना की,...** और वेदना... वेदना... वेदना...। श्वास ऐसे लेना-छोड़ना—वहाँ चिल्लाहट मचावे। अन्दर इतना दवाब पड़ता हो, खून का दल जम गया हो। यह हार्टफेल कहते हैं न? हार्ट, हार्ट में तो यह अर्थ है। खून है, वह ऐसे जम जाता है, दल जम जाता है। ऐसे श्वास लेने में भी उसे चिल्लाहट हो जाती है। अरे, ऐसे समय में, बापू! तेरा मरण। आहाहा! वहाँ तेरा कोई शरण नहीं है। आहाहा!

रोग की, वेदना की, मृत्यु की, एकत्वबुद्धि की... आहाहा! अरे रे! मेरी देह छूटती है, अरे रे! मेरी देह (छूटती है)। देह कब तेरी थी? धूल। वह तो मिट्टी है। आहाहा! एकत्वबुद्धि से। किसमें? **रोग की, वेदना की, मृत्यु की, एकत्वबुद्धि की और आर्तध्यान की चपेट में...** आर्तध्यान। आहाहा! मुझे कुछ सहन नहीं होता ऐसा कहे। मरकर की चपेट में आकर चला गया। फिर नरक में और पशु में जाकर भव करे। आहाहा! अरे! अवसर आया तब किया नहीं, करने के अवसर में किया नहीं और फिर अरमान करे, पश्चात्ताप (करे) उसका क्या हो? आहाहा!

चपेट में आकर देह छोड़ता है। मनुष्यभव हारकर चला जाता है। आहाहा! वह मनुष्यभव हारकर चला गया। भले करोड़ों रुपये इकट्ठे हुए और बड़े महल बनाये चालीस-पचास लाख के। आहाहा! गोवा में नहीं? शान्तिलाल खुशाल, गोवा में। दो अरब चालीस करोड़ रुपये। मरने के समय, भाई! मुम्बई आया, उसकी बहू को हेमरेज हो गया था। मुम्बई दवा करने आया था, गोवा में चालीस लाख का एक बँगला, दो दस-दस लाख के बँगले और दो अरब चालीस करोड़ रुपये। धूल भी नहीं है, सुन न! आहाहा! भिखारी है। यह दो, यह दो। भगवान होकर भिखारी! आहाहा! पैसा दो, इज्जत दो, मुझे कोई बड़ा करो (मानो) बड़ा भिखारी है। आहाहा! वह मरते समय, भाई! पाँच मिनिट में जरा दुःख लगा, यहाँ जरा। डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर आवे, वहाँ जाओ परलोक में भटककर मरने। अर..र..र!

भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का दल निधान अन्दर पड़ा है। उस निधान की तो नजर नहीं होती और पामर की पर्याय और राग में नजर, उस नजर में वहाँ इसकी नजरबन्दी हो गयी है। आहाहा! या राग और या पुण्य या स्त्री और या पुत्र या पर्याय में नजरबन्दी हो गयी है। मर गया उसमें नजरबन्दी करके। अन्दर भगवान

आत्मा की नजरबन्दी करना चाहिए। आहाहा! वह की नहीं। आहाहा! यह दया, दान, व्रत और भक्ति आदि के परिणाम किये, वे भी राग हैं; वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! अरे! कैसे जँचे? उसमें कोई शरण नहीं है। वह तो विकार है, वह तो भव का कारण है, संसार है। भगवान आत्मा उन पुण्य और पाप के भाव से भिन्न भगवान की इसने शरण नहीं ली, उसे पहिचाना नहीं, उसकी कीमत नहीं की.. आहाहा! तथा राग और पुण्य की कीमत करके मर गया। आहाहा! है? **मनुष्यभव हारकर चला जाता है।**

धर्मी जीव... परन्तु धर्मी जीव हो वह... धर्मी अर्थात् आनन्द सागर भगवान आत्मा की जिसे अन्तर्दृष्टि है, रुचि हुई है। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन तो नहीं, कुटुम्ब-कबीला तो नहीं परन्तु अन्दर में पुण्य और पाप के भाव हों, वह भी मैं नहीं हूँ। आहाहा! इस प्रकार जिसे अन्दर आत्मा 'सिद्ध समान सदा पद मेरो', ऐसा जो स्वरूप अन्दर भगवान आत्मा विराजता है। परन्तु कैसे जँचे? आहाहा! वह अन्दर भगवान स्वरूप ही तेरा है, प्रभु! यदि भगवान स्वरूप न हो तो पर्याय में-दशा में भगवानपना कहाँ से आयेगा? कहीं बाहर से आये, ऐसा है? आहाहा! ऐसी बातें हैं। प्रवृत्ति के रसियों को तो कठिन लगे ऐसा है। आहाहा!

धर्मी जीव उसे कहते हैं कि जिसे राग की रुचि छूट गयी है, पर्याय की रुचि छूट गयी है और त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द के नाथ की जिसे दृष्टि और अनुभव हुआ है, उसे धर्मी कहा जाता है। आहाहा! ऐसा कहाँ से निकाला? हम तो व्रत करो और उपवास करो, तपस्या करो और यह यात्रा करो, भक्ति करो, दान करो, दो-पाँच-दस लाख का। वहाँ धूल में भी नहीं है, सुन न! यह सब तो राग की क्रियाएँ हैं। आहाहा! भगवान तो इस राग की क्रिया से भिन्न अन्दर विद्यमान है। उसका यदि भान नहीं करे तो यह राग की एकता में चपेट में आ जाएगा।

धर्मी जीव रोग की, वेदना की या मृत्यु की चपेट में नहीं आता,... आहाहा! जैसे नारियल में गोला भिन्न होता है; उसी प्रकार जीव को राग से, शरीर से आत्मगोला भिन्न दिखायी देता है। आहाहा! उसका जिसे भान, रुचि और दृष्टि हुई है, वह रोग, मरण और वेदना की चपेट में नहीं आता। आहाहा! मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु हूँ—ऐसा परमेश्वर कहते हैं, जिनेश्वर ऐसा कहते हैं। प्रभु! तू अन्दर ऐसा है। आहाहा! जैसे उस नारियल का

गोला ऊपर की छाल से भिन्न, काँचली से भिन्न और काँचली की ओर की लाल छाल, ऐसे खोपरापाक बनावे, (तब) घिस डालते हैं न लाल छाल? उससे गोला अन्दर भिन्न है। आहाहा!

इसी प्रकार यह शरीर छाल है, इससे भगवान आत्मा अन्दर भिन्न है। कर्म जड़ है, काँचली—आठ कर्म, उनसे भगवान अन्दर भिन्न है; काँचली के ओर की लाल छाल जो है, इसी प्रकार उसकी ओर का शुभ-अशुभ, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव, उस लाल छाल से भी अन्दर भगवान भिन्न है। अरे रे! कब जँचे और कब करे? आहाहा! यह निवृत्त कहाँ है? आहाहा! अन्दर ऐसा भगवान आत्मा, जिसे अन्तरंग में ज्ञात हुआ, वह चपेट में नहीं आता। वह वेदना में, मरण में, चपेट में नहीं आता। आहाहा!

क्योंकि उसने शुद्धात्मा की शरण प्राप्त की है। शुद्धात्मा पवित्र प्रभु अन्दर भगवान है, उसे धर्मी ने प्राप्त किया है, दृष्टि में उसे ले लिया है। निज दौलत, उसे नजर में पड़ गयी है। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसा कैसा उपदेश? भाई! मार्ग तो ऐसा है, बापू! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग कोई अलौकिक है। अभी तो सब बिखर गया है। आहाहा! **क्योंकि उसने शुद्धात्मा की शरण प्राप्त की है।** धर्मी जीव ने अन्दर पूर्णानन्द का नाथ प्रभु आत्मा भिन्न गोला है। राग से भिन्न है, कर्म से भिन्न है, शरीर से भिन्न है—ऐसी चीज़ को धर्मी जीव ने प्राप्त किया है। आहाहा! उसकी दृष्टि में उसकी दौलत दिख गयी है। आहाहा! समझ में आया?

'अजाची लक्षपति है।'—आता है न? अन्तर की लक्ष्मी अन्दर में दिखायी दी। धर्मी जीव उसे कहते हैं कि जिसे अन्तर में, आत्मा में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की लक्ष्मी दिखायी दी। 'अन्तर की लक्ष्मी सौं अजाची लक्षपति है।' वह पर में नहीं जाता कि मुझे पैसा मिले और पैसा मिले और धूल मिले। लक्षपति-जो स्वरूप त्रिकाल है, उसका वह स्वामी है। आहाहा!

दास भगवन्त के उदास रहे जगत सौं
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं।

—समयसार नाटक

आहाहा! अरे रे! कुन्दकुन्दाचार्य ने अपनी भावना के लिये नियमसार बनाया है। आहाहा! उसमें तो उन्होंने कहा, मेरा प्रभु क्षायिक की पर्याय से भिन्न है। आहाहा! देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त! शरीर से भिन्न, राग से भिन्न परन्तु धर्म की पर्याय जो प्रगट हुई—स्वरूप की दृष्टि—ऐसी जो पर्याय है, उससे भिन्न। आहाहा! ऐसा क्या होगा यह? यह ऐसा मार्ग होगा? जहाँ-तहाँ सुनने को मिले तो यह सुने—सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, रात्रिभोजन छोड़ो, रात्रि को आहार न करो, यह तो यहाँ श्वेताम्बर मन्दिर बनाकर कोई भक्ति करो, सिद्धचक्र की करो और यह करो, वह करो। यह तो सब राग की क्रियाओं में रुक गया, प्रभु! आहाहा! उसे रागरहित स्वभाव, सिन्धु—चैतन्य सिन्धु (लक्ष्य में नहीं आया)।

कहे विचक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ,
अपने रस सौं भर्‍यो अनादि टेक हूँ।
मोहकर्म मम नाहिं, नाहिं भ्रमकूप है
शुद्ध चेतना सिन्धु हमारौ रूप है।

आहाहा! अब यह कहाँ मानना?

पर्याय में दिखता नहीं। पर्याय में राग और वह (जड़) दिखता है। नजरें वहाँ हैं। आहाहा! जिस पर्याय में देखना चाहिए, उसमें दिखता नहीं। दिखता है राग और दया, दान, व्रत किये वे। वह तो सब विकार है। पर्याय में दिखना चाहिए पर्यायवान। पूर्ण आनन्दकन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का छलाछल भरा हुआ भगवान, यह पर्याय में उसे भास-भान होना चाहिए। तब उसकी प्रतीति और अनुभव होगा। उस धर्मी को मरण के समय उसकी शरण है। आहाहा! भगवान... भगवान... करो, णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं (बोलो), वह णमो अरिहंताणं तो विकल्प-राग है। भगवान का नाम लो, पंच परमेष्ठी का नाम (लो) परन्तु पंच परमेष्ठी का नाम है, वह तो विकल्प / राग है; वह कहीं शरण-वस्तु नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें, भाई!

शुद्धात्मा की शरण प्राप्त की है। विपत्ति के समय... जब प्रतिकूलता, रोग और मरण आवे तब **वह आत्मा में से शान्ति प्राप्त कर लेता है।** धर्मी तो उसे कहते हैं। आहाहा!

विपत्ति के घेराव में, बाहर में प्रतिकूलता के ढेर पड़ें परन्तु अन्दर में से शान्ति प्राप्त कर लेता है। आहाहा! शान्ति का सागर भगवान आत्मा जिसे दृष्टि में, अनुभव में आया है, वह प्रतिकूलता के घेराव में भी अन्तर में से शान्ति प्राप्त कर लेता है। आहाहा! ऐसी बातें अब लोगों को कठिन पड़ती है। कभी सुना न हो। यात्रा करो–सम्मेदशिखर की, गिरनार की, पालीताणा की (यात्रा करो तो) कुछ समझ में भी आवे। अज्ञान है, वह तो राग है। आहाहा! वह राग है। वह राग है, वह तो आत्मा का स्वभाव नहीं है। अरे.. अरे..! प्रभु! भगवान! गजब बातें हैं।

विपत्ति के समय धर्मी जीव को आत्मा का ज्ञान और भान होने से वह आत्मा में से शान्ति प्राप्त कर लेता है। **विकट प्रसंग में... विकट प्रसंग में वह निज शुद्धात्मा की शरण विशेष लेता है।** अर्थात् क्या कहा? कि धर्मी जीव को सम्यग्दर्शन में आत्मा ज्ञात हुआ है, इससे थोड़ी शान्ति तो हमेशा है परन्तु जब प्रतिकूल और विकट समय हो, आहाहा! तब शुद्धात्मा का शरण विशेष ग्रहण करता है। वहाँ अन्तर का विशेष आश्रय लेता है। आहाहा! बाहर से हटकर अन्दर में विशेष (आश्रय) लेता है। आहाहा! **विकट प्रसंग में वह निज शुद्धात्मा की...** भगवान की, पंच परमेष्ठी की नहीं। पंच परमेष्ठी तो परद्रव्य हैं। उनका स्मरण करेगा तो उसे राग होगा, पुण्य होगा; उसमें धर्म नहीं होगा। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़ती है, बापू! क्या हो? परमात्मा जिनेश्वरदेव का तो यह हुकम है। उसे अज्ञानी कुछ का कुछ कल्पना करके मान बैठता है। आहाहा!

जिसे वीतरागी पर्याय की शरण प्रगट हुई है, उसे वीतरागी स्वभाव का आश्रय लेकर प्रगट हुआ है। वीतराग का धर्म वीतरागी पर्याय है। वीतरागी पर्याय है, वह धर्म है परन्तु वह धर्म किस प्रकार प्रगट हुआ? वीतरागस्वरूप द्रव्य है, उसके आश्रय से प्रगट हुआ है। आहाहा! कोई राग की क्रिया की है, दया, दान (किये हैं), इसलिए वीतरागपर्याय हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो सब व्यवहार लोप हो जाएगा, (ऐसा) कोई कहता है। (बापू)! व्यवहार अर्थात् राग। राग की रुचि छोड़े तो अरागी वीतरागस्वरूप की रुचि हो और वीतरागस्वरूप ही भगवान आत्मा है। आहाहा!

घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन
मत मदिरा के पान सौं, मतवाला समझे न।

मत के मतवाले पागल-पागल, आहाहा! अन्दर जिनप्रभु बसता है, उसकी उन्हें खबर नहीं है। आहाहा! '**घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन**' अन्तर जैन। उस स्वरूप की दृष्टि करके वीतरागपर्याय प्रगट करे, उसे जैन कहा जाता है। अन्तर में यह जैनपना होता है, किसी क्रियाकाण्ड में और बाहर में जैनपना नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अजैन है, सब अजैन ही है। जैन कब थे? नाम भले कहे, हम जैन हैं। आहाहा! थैली में भरा हो चिरायता और ऊपर नाम दे (लिखे) शक्कर, इससे चिरायता मीठा हो जाएगा? आहाहा!

इसी प्रकार भगवान अमृत का सागर आत्मा मीठा समुद्र, अतीन्द्रिय आनन्द के सागर का समुद्र अन्दर झूलता है। अरे रे! उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! ऐसे आत्मा को जिसने अन्दर में, सम्यग्दर्शन में पकड़ा है। आहाहा! उसे शान्ति की पर्याय प्रगट होती है। प्रतिकूलता के-विपत्ति के विशेष काल के समय में द्रव्यस्वभाव का विशेष आश्रय लेता है। आहाहा! भगवान की शरण में जाता है। भगवान स्वयं आनन्द का नाथ प्रभु, (उसकी शरण में जाता है)। आहाहा! ऐसी बात क्या होगी यह? यह जैनदर्शन ऐसा होगा? आहाहा! यहाँ तो भाई! जहाँ हो वहाँ सुनते हैं कि सामायिक करो और प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, भक्ति करो, सिद्धयन्त्र करो और कर्मदहन की पूजा करो... आहाहा! अरे! भाई! यह बाहर की क्रिया तो जड़ की है और अन्दर में कदाचित् तेरा शुभभाव होवे तो वह पुण्य है, वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा!

विकट प्रसंग में वह निज शुद्धात्मा की शरण विशेष लेता है। मरणादि के समय धर्मी जीव... मरण, रोग, वेदना के काल में **धर्मी जीव शाश्वत ऐसे निज सुख सरोवर में विशेष-विशेष डुबकी लगा जाता है...** आहाहा! क्या होगा यह? अतीन्द्रिय सुख का सागर प्रभु, मरण और वेदना के प्रसंग में... आहाहा! उस अतीन्द्रिय सागर के सरोवर में अन्दर डुबकी मारता है। आहाहा! यह ऐसी सब क्रियायें। वह अभी एक व्यक्ति आया था न? लड़का मर गया तो पच्चीस हजार खर्च किये। फिर उसकी माँ पूछती थी कि महाराज! हम पच्चीस हजार या पचास हजार उस लड़के के लिये खर्च करें तो उसे कुछ मिलेगा या

नहीं ? मर गया उसे। परन्तु वह तो कहीं मरकर उत्पन्न हुआ, उसमें तुझे क्या ? आहाहा! और तूने भी पच्चीस-पचास हजार मान के लिये खर्च किये हों तो पाप है। राग की मन्दता की-शुभभाव किया हो तो वह पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। ऐसा सुनेगा तो कोई दान नहीं देगा। परन्तु दे कौन ? सुन न! पैसा दे कौन और ले कौन ? वह तो जड़ की चीज़ है। जड़ की (चीज़) जहाँ जानेवाली है, वह जाएगी और जहाँ रहनेवाली है, वहाँ रहेगी। बापू! तुझे खबर नहीं है। जड़ पदार्थ जगत का तत्त्व है। उस तत्त्व की दशा उस तत्त्व कारण से होती है, तेरे कारण से वे पैसे जाते हैं और आते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह सब ऐसी उथल-पुथल की बातें हैं। आहाहा!

सिद्धान्त में पाठ है (कि) दुनिया पागल है, वह सत्य बात को सुनकर सत्य बात के कहनेवाले को पागल मानती है। अरे! यह क्या पागल जैसी बातें करता है! आहाहा! दुनिया पागल है। राग, शरीर, वाणी और मन मेरा। पागल हो गया है। वह उन्मत्त / पागल-पागल है। आहाहा!

यह राग और शरीर की क्रिया तथा पैसे की क्रिया से भी प्रभु भिन्न है, ऐसा जब अन्तरभान होता है, तब उसे अन्तर में सम्यग्दर्शन की शान्ति होती है, तब उसे प्रतिकूलता के विकट समय में वह द्रव्य का विशेष आग्रह ले तो विशेष शान्ति होती है। आहाहा! है ? निज सुख सरोवर, निज सुख सरोवर। आहाहा! **मरणादि के समय धर्मी जीव शाश्वत ऐसे निज...** अन्दर शाश्वत् प्रभु है। अनादि है, उसकी कोई उत्पत्ति नहीं, किसी ने किया नहीं, वह प्रभु तो अनन्त काल रहनेवाला है। वह तो शाश्वत् वस्तु जो है, उसमें सुख-आनन्द भरा है। ऐसे निज सुख सरोवर में धर्मी जीव विपत्ति के काल में, मरण और रोग के काल में विशेष-विशेष डुबकी लगा जाता है। आहाहा!

जहाँ अन्दर भगवान आत्मा है, **जहाँ रोग नहीं है, वेदना नहीं है, मरण नहीं है, शान्ति की अखूट निधि है।** कैसे जँचे ? आहाहा! शान्ति का अखूट / कम न हो - ऐसी निधि है। आहाहा! शान्ति अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश, वह शान्ति है, वह शान्ति का तो अखूट खजाना है। वह शान्ति चाहे जितनी निकालो तो भी वहाँ शान्ति कम हो, ऐसा नहीं है। अखूट खजाना है। आहाहा! अरे! इसे कैसे विश्वास आवे ? आहाहा!

ऐसा आत्मा सुख का अखूट खजाना, यह विश्वास इसे कैसे आवे ? भाई ! यह उस ओर देखे और जानने में आवे कि यह तो आनन्द का सागर है, तो पर्याय में आनन्द आने पर यह पूर्ण आत्मा अखूट आनन्द का सागर है, ऐसा प्रतीति में आता है। ऐसी बातें हैं। **शान्ति की अखूट निधि है।**

वह शान्तिपूर्वक देह छोड़ता है,... आहाहा! देह छूटने के अवसर में शान्ति.. शान्ति.. शान्ति..। अन्तर आनन्द के नाथ की शरण लेकर, आहाहा! शान्ति से देह छूट जाती है। श्रीमद् ने देह छूटने के अवसर पर कहा था न ? ज्ञानी थे, शान्ति थी। देह छूटने का प्रसंग दिखायी दिया। भाई को कहते हैं, मनसुख! छोटी ३३ वर्ष की उम्र (भाई से कहते हैं) मनसुख! माँ को खेद मत होने देना, मैं मेरे स्वरूप में जाता हूँ। आहाहा! मेरा लक्ष्य अब फिर कर मेरा स्वरूप है, वहाँ जाता हूँ, यथार्थ है। आहाहा! शान्ति में देह छूट गयी। आहाहा!

यह कोई अपूर्व चीज़ है। पूर्व में कभी नहीं किया, पूर्व में कभी रुचि से नहीं सुना, आहाहा! बेगाररूप से सुना और बेगाररूप से निकाल डाला। आहाहा! यह तो मेरी बात चलती है आनन्द के सागर की (बात चलती है) और उसमें मैं जाऊँ तो मुझे शान्ति प्राप्त हो, यह बात चलती है यह तो। आहाहा! बाहर भटकने में पुण्य-पाप के विकल्प में पर्यटन कर रहा है, प्रभु! वह तो दु:ख में तेरा पर्यटन है। उसके पीछे आनन्द का सागर भगवान (विद्यमान है, वहाँ जा)। आहाहा! अरे!

निज सुख सरोवर में विशेष-विशेष डुबकी लगा जाता है... वह शान्तिपूर्वक देह छोड़ता है, उसका जीवन सफल है। आहाहा! जिसने आनन्द के नाथ का अनुभव किया और मरते समय जिसे आनन्द के नाथ में जाकर शान्ति से देह छूटे, (वह) जीवन सफल है। उसे एक या दो भव में केवल(ज्ञान) होकर मोक्ष जानेवाला है। आहाहा!

तू मरण का समय आने से पहले चेत जा,... आहाहा! **मरण का समय आने से पहले चेत जा, सावधान हो,...** आहाहा! **सदा शरणभूत...** सदा शरणभूत प्रभु। जो तत्त्व है, जो वस्तु-आत्मा है, आहाहा! मौजूदगी, अस्ति चीज़ है। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा की शरण ले, चेत जा, देह छूटने से पहले (चेत जा)। आहाहा! **सावधान हो, सदा**

शरणभूत... सदा शरणभूत। अरिहन्ता शरणं-सिद्धा शरणं, यह तो विकल्प है। केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणम् - पर्याय, यह भी पर्याय की बात है। आहाहा! यह तो त्रिकाली भगवान की शरण। आहाहा!

सदा शरणभूत—विपत्ति के समय विशेष शरणभूत होनेवाले... आहाहा! विपत्ति के काल में तो, आहाहा! डबल निमोनिया हो, ऐसे श्वास लेने छोड़ने में चिल्लाहट मचाये, आँख में से आँसुओं की धारा बहती जाती हो, आहाहा! ऐसे अवसर में विशेष शरणभूत होनेवाले। ऐसे अवसर में **विशेष शरणभूत होनेवाले—ऐसे शुद्धात्मद्रव्य को...** ऐसी शुद्धात्मद्रव्य वस्तु को। **अनुभवने का उद्यम कर।** आहाहा! बहुत सरस अधिकार! ४०९ है, देखा? वीतरागभाव का अधिकार है। आहाहा! अन्दर निराला भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति की सदा शरण है। विपत्ति के समय तो विशेष-विशेष (शरणभूत है)। आहाहा!

वह डॉक्टर आया नहीं था? लड़के का। लड़का अन्थो हो, माँ का एक छोर पकड़ा हो, उसमें कुत्ता आया हो तो एकदम छोर अधिक पकड़ता है। इसी प्रकार धर्मी जीव, आहाहा! (धर्मी जीव) ने अन्दर शुद्ध चैतन्य का छोर पकड़ा। विपत्ति के काल में उग्ररूप से पकड़ता है। यह दृष्टान्त पहले आ गया है। आहाहा! **अनुभवने का उद्यम कर।** ४०९ (बोल पूरा) हुआ। लो, विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल -२, शनिवार, दिनाङ्क ०२-१२-१९७८
वचनामृत-४१० प्रवचन-१६८

जिसने आत्मा के मूल अस्तित्व को नहीं पकड़ा, 'स्वयं शाश्वत तत्त्व है, अनन्त सुख से भरपूर है' ऐसा अनुभव करके शुद्ध परिणति की धारा प्रगट नहीं की, उसने भले सांसारिक इन्द्रियसुखों को नाशवन्त और भविष्य में दुःखदाता जानकर छोड़ दिया हो और बाह्य मुनिपना ग्रहण किया हो, भले ही वह दुर्धर तप करता हो और उपसर्ग-परीषह में अडिग रहता हो, तथापि उसे वह सब निर्वाण का कारण नहीं होता, स्वर्ग का कारण होता है; क्योंकि उसे शुद्ध परिणमन बिल्कुल नहीं वर्तता, मात्र शुभ परिणाम ही—और वह भी उपादेयबुद्धि से—वर्तता है। वह भले नौ पूर्व पढ़ गया हो, तथापि उसने आत्मा का मूल द्रव्य सामान्यस्वरूप अनुभवपूर्वक नहीं जाना होने से वह सब अज्ञान है।

सच्चे भावमुनि को तो शुद्धात्मद्रव्याश्रित मुनियोग्य उग्र शुद्धपरिणति चलती रहती है, कर्तापना तो सम्यग्दर्शन होने पर ही छूट गया होता है, उग्र ज्ञातृत्वधारा अटूट वर्तती रहती है, परम समाधि परिणमित होती है। वे शीघ्र-शीघ्र निजात्मा में लीन होकर आनन्द का वेदन करते रहते हैं; उनके प्रचुर स्वसंवेदन होता है। वह दशा अद्‌भुत है, जगत से न्यारी है। पूर्ण वीतरागता न होने से उनके व्रत-तप-शास्त्ररचना आदि के शुभभाव आते हैं अवश्य, परन्तु वे हेयबुद्धि से आते हैं। ऐसी पवित्र मुनिदशा मुक्ति का कारण है॥४१०॥

४१०, बोल है। ४०९ चल गया है। **जिसने आत्मा के मूल अस्तित्व को नहीं पकड़ा,...** सूक्ष्म बात है, भाई! यह आत्मा है न? आत्मा। उसकी मूल अस्ति-अस्तित्व। ज्ञानानन्द सहजानन्दस्वरूप प्रभु ऐसा जो आत्मा, उसका मूल अस्तित्व। राग, द्वेषरहित,

शरीर, वाणी, मन तो जड़ हैं, वह तो इनके बिना का है। पुण्य और पाप के भाव होते हैं, इनसे भी उसका अस्तित्व भिन्न है और उसकी एक समय की पर्याय है, वह कहीं मूल अस्तित्व नहीं है। आहाहा! मूल अस्तित्व, भगवान आत्मा, सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ने जो मूल अस्तित्व की अस्ति आत्मा की कही है, वह पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानादि एकरूप स्वभावरूपी सामान्य द्रव्य है। आहाहा! उसे जिसने पकड़ा नहीं। मूल आत्मा की अस्ति पूर्णानन्द प्रभु, वह जिसे अन्दर दृष्टि में नहीं आया, पकड़ा नहीं, उस पूर्ण अस्तित्व में अहंपना स्थापित नहीं किया। आहाहा! बहुत कठिन बात।

'**स्वयं शाश्वत तत्त्व है,...**' यह अस्तित्व कहकर भगवान आत्मा शावश्त् है। अनादि है, अनन्त काल रहनेवाला है। शाश्वत् वस्तु है। आहाहा! एक बात। एक अस्तित्व कहा। वह कैसा अस्तित्व है ? कि शाश्वत् है। दो (बात)। तीसरा, '**अनन्त सुख से भरपूर है**'... भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु की मूल अस्ति शाश्वत् है और वह अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर प्रभु है। ऐसी बात कैसे जँचे ?

मुमुक्षु : मूल अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल अर्थात् मूल अस्तित्व / मौजूदगी। पर्याय नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं ऐसी नहीं है, मूल त्रिकाली अस्ति। आहाहा! चिद्घन आनन्दकन्द प्रभु, सर्वज्ञ परमेश्वर ने उसे पर्याय में प्रगट किया, परन्तु वह प्रगट हुआ जो अनन्त ज्ञान आदि, वह वस्तु अन्दर थी। आहाहा! मूल अस्तित्व अर्थात् पर्याय भी नहीं, राग नहीं परन्तु मूल त्रिकाल अस्ति। आहाहा! जिसकी अस्ति शाश्वत् है और वह शाश्वत् अनन्त अतीन्द्रिय सुख से भरपूर है। ऐसी बात है। कहाँ खोजे ?

ऐसा अनुभव करके... तीन बोल कहे। आहाहा! पूर्ण शुद्ध अस्तित्ववाला तत्त्व शाश्वत और अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर है। **ऐसा अनुभव करके शुद्ध परिणति की धारा...** आहाहा! अर्थात् ? द्रव्य और गुण तो शाश्वत् है। आहाहा! अब उसे अनुसरकर, अनुभव करके; जो पर्याय में अनादि से पुण्य और पाप, राग और द्वेष का अनुभव है, वह मिथ्यात्व है, अज्ञान है। आहाहा! अनादि से अनन्त भरपूर ज्ञान, सुख से भरपूर भगवान, उसे अनादि से है परन्तु उसका अनुभव नहीं है। अर्थात् जो चीज़ है, उसे

अनुसरकर वीतरागी परिणति प्रगट करना, वह जिसे नहीं है, यह अनादि से पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव करके, वेदन करके, दु:खी होकर भटकता है। आहाहा! ऐसी बात है।

जिसे अब द्रव्य और गुण शाश्वत् कहे, परन्तु उसे अनुसरकर अनुभव करना। आहाहा! उसकी श्रद्धा-सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसमें रमणता, ऐसी जो अनुभव धारा करके शुद्ध परिणति—पवित्र दशा प्रगट नहीं की। आहाहा! वस्तु है। सर्वज्ञ जिनेश्वर देव ने कहा हुआ (आत्मा), वह (वस्तु है)। दूसरे अज्ञानी कहे आत्मा... आत्मा... वह नहीं। आहाहा! परमेश्वर ने जो आत्मा द्रव्य वस्तु जो है मूल और वह शाश्वत् है और उसके गुण भी शाश्वत् हैं। ऐसी शाश्वत् चीज़ का अनुभव नहीं किया। आहाहा! यह ध्रुव जो वस्तु है, उसमें अहंपना स्थापित करके 'यह मैं हूँ' ऐसा स्थापित करके अनुभव नहीं किया। आहाहा! ऐसी बात है। वह शुद्धपरिणति-पर्याय (हुई) क्योंकि वस्तु स्वयं आत्मा वीतराग -स्वरूप विराजमान है। आहाहा! उसकी एक-एक शक्ति वीतरागस्वरूप है। जीवत्वशक्ति, ज्ञानशक्ति, आनन्दशक्ति, वह सब वीतरागस्वरूप शक्तियाँ विराजमान हैं। उसे वीतरागी पर्याय प्रगट करके अनुभव नहीं करे... आहाहा! यह ऐसा किस प्रकार का विषय?

उसने भले सांसारिक इन्द्रियसुखों को नाशवन्त... ऐसे जीव ये इन्द्रियसुख नाशवान हैं, नाशवान हैं। **और भविष्य में दु:खदाता जानकर छोड़ दिया हो...** आहाहा! इन्द्रियों के, पाँच इन्द्रियों के विषय वर्तमान दु:ख है, ऐसा तो नहीं जाना परन्तु भविष्य में दु:ख देनेवाले हैं, इसलिए मुझे इन्हें छोड़ना चाहिए। आहाहा! इस प्रकार जो छोड़ता है **और बाह्य मुनिपना ग्रहण किया हो,...** आहाहा! बाह्य में हजारों रानियाँ छोड़कर राजपाट छोड़कर नग्न मुनिपना अंगीकार किया। आहाहा! तथापि...

भले ही वह दुर्धर तप करता हो... महीने-महीने के अपवास करता हो। अपवास के पारणे में रूखा आहार करता हो परन्तु वह मिथ्यादृष्टि संसार में भटकनेवाला है। आहाहा! क्योंकि जो मूल चैतन्य भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त आनन्द और ज्ञानादि जिनस्वरूप उसका है। भगवान आत्मा का जिनस्वरूप है, उस जिनस्वरूप को निज परिणति द्वारा अनुभव नहीं किया, आहाहा! वह भले हजारों रानियाँ छोड़े, विषय को दु:खरूप जानकर छोड़े और परीषह सहन करे, दुर्धर तप करे। दुर्धर-कठोर। धर सके नहीं

ऐसे महीने-महीने के, दो-दो महीने के उपवास करे, तो भी उसके जन्म-मरण नहीं मिटते। आहाहा! क्योंकि जन्म-मरण और जन्म-मरण के भावरहित भगवान आत्मा अन्दर है... आहाहा! ऐसे आत्मा की अनुभूति और उसके सन्मुख होकर उसकी दशा-धारावाही परिणति प्रगट नहीं की। आहाहा! उसने उन इन्द्रियों के विषयसुखों को छोड़ा हो, दुर्धर तप करता हो, मुनिपना लिया हो। आहाहा! मुनिपना अर्थात् नग्न-दिगम्बर दशा। आहाहा!

और उपसर्ग-परीषह में... प्रतिकूल उपसर्ग आवे। बाघ के-सिंह के, मार के, प्रहार के, ऐसे बाहर के परीषह और उपसर्ग आवे, (उनमें) **अडिग रहता हो, तथापि उसे वह सब निर्वाण का कारण नहीं होता,...** अर..र..र! वह उसे मोक्ष का कारण नहीं होता। समझ में आया? स्वर्ग मिले। धूल यह धूल, देव-बेव (होय परन्तु) उसका जन्म-मरण नहीं मिटता। देव होवे, पश्चात् उसमें से यह मरकर यह धूल का सेठ कहलावे, करोड़ोंपति और अरबोंपति ऐसे धूल का सेठ हो, परन्तु वह भटक मरता है। आहाहा!

भगवान अन्दर पूर्णानन्द प्रभु, उसकी जिसे एक समय की पर्याय है—उत्पाद; उस उत्पाद के काल में उत्पाद होता है, उसका जन्मक्षण है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। यह निर्मल जो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, उस काल में होती है, वह पर्याय द्रव्य का लक्ष्य करके द्रव्य को जानती है। वह पर्याय उसकी अनन्त पर्यायें हैं, उन्हें जानती है। वह पर्याय अनन्त द्रव्य-गुण-पर्यायवाले परद्रव्य हैं, उन्हें जानती है और उस जाननेवाली पर्याय का लक्ष्य द्रव्य के ऊपर होता है। आहाहा! तो उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! इतनी सब शर्तें। कब निवृत्त? बनिया निवृत्त नहीं होता। पूरे दिन पाप का धन्धा, कमाना और स्त्री-पुत्र को सम्हालना और बाईस घण्टे मर गया ऐसा का ऐसा। भले करोड़ों, अरबों रुपये हों। आहाहा!

यहाँ तो उनसे निवृत्त हुआ हो, कहा। मुनि हुआ, इन्द्रिय के विषय छोड़े, परन्तु अतीन्द्रिय भगवान आत्मा की दृष्टि और अनुभव नहीं तो वे सब दशाएँ, (उनके फल में) स्वर्ग में जाए, वहाँ से मरकर पशु होता है, मरकर नरक में, निगोद में जाता है। आहाहा! क्योंकि उसने मूल अस्तित्व जो चिदानन्द शुद्ध है, उसे तो पकड़ा नहीं और उसे पकड़े बिना यह सब दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा और दान के भाव करे, वह सब तो राग है, शुभ है। उससे कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! ऐसी बहुत कठिन बात है, बापू! उसे ऐसे कठोर

परीषह और उपसर्ग आवे और सहन करे, अडिग रहे तो उसे शुक्ललेश्या या ऐसा शुभभाव आवे, उससे उसे स्वर्ग आदि मिले, परन्तु मुक्ति / निर्वाण / मोक्ष नहीं होता। आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें!

निर्वाण का कारण नहीं होता, स्वर्ग का कारण होता है;... ऐसा कोई शुभभाव हो, शुक्ललेश्या (हो), आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना तो उससे स्वर्ग आदि में देव (होता है)। यह तो अनन्त बार देव हुआ।

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥

आहाहा! यह पंच महाव्रत पालन करे, इन्द्रियों का दमन करे, तथापि वह तो स्वर्ग का कारण है, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा! **क्योंकि उसे शुद्ध परिणमन बिल्कुल नहीं वर्तता,...** वह तो क्रियाकाण्ड का शुभराग है। अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया, ऐसा शुभभाव तो अभी है नहीं। ऐसा शुभभाव किया, परन्तु **उसे शुद्ध परिणमन बिल्कुल नहीं वर्तता,...** वह तो शुभभाव-राग की मन्दता का पुण्यभाव है। उसे शुद्धस्वभाव भगवान आत्मा की शुद्धता वर्तमान में जरा भी नहीं है। आहाहा! ऐसा है। जगत से अलग प्रकार है, भाई! वीतराग.. वीतराग.. परमात्मा।

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी को भूल पकड़ में नहीं आती कि....

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ नहीं सकता, पकड़ने का प्रयत्न नहीं करता। आहाहा!

अन्तर परमात्मस्वरूप अनन्त सुख का सागर भरा है। भगवान अरहन्त को जो अनन्त आनन्द आता है, वह कहाँ से आता है? कहीं बाहर से आता है? आहाहा! अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ही प्रभु है, परन्तु उसकी रुचि और उसके झुकाव में नहीं आता। उसका झुकाव सब चूकता है पुण्यभाव में। इससे उसका झुकाव वहाँ है। यहाँ ऐसे (स्वभावसन्मुख) नहीं है। आहाहा!

उसे शुद्ध परिणमन बिल्कुल नहीं वर्तता,... वह सब तो शुभभाव है। आहाहा! वह तो पुण्यभाव है, रागभाव है। वह आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध भाव है। उससे कदाचित् स्वर्ग मिले और स्वर्ग में से (नीचे) गिरता है।

'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो, फिर पीछो पटक्यो।' आहाहा! सज्झाय में आता है। यह तो पिचहत्तर वर्ष पहले दुकान पर पढ़ा था। चार सज्झायमाला है न? यहाँ तो छोटी उम्र से यह धन्धा है। दुकान घर की पिताजी की थी, इसलिए यहाँ तो निवृत्ति बहुत थी। पालेज, भरूच और बड़ोदरा के बीच पालेज है न? वहाँ अभी जाना है न! चार सज्झायमाला में तब यह आया था 'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो फिर पीछो पटक्यो।' कहा, यह क्या होगा? इससे आत्मा का अनुभव और आत्मा के आनन्द का सम्यग्दर्शन-ज्ञान को प्रगट किये बिना ऐसे क्रियाकाण्ड में आया। द्रव्य संयम, जिसके कारण नौवें ग्रैवेयक गया। ग्रैवेयक है। यहाँ ग्रीवा के स्थान में नौ पासड़ा है। भगवान वीतराग ने देखे हैं। वहाँ ऐसी क्रिया करके अनन्त बार जा आया परन्तु भव नहीं घटा। आहाहा! वह 'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो, फिर पीछो पटक्यो।' अब छोटी उम्र में अपने तो बाहर में कुछ सुना हुआ नहीं और पढ़ा, तब कहा—यह क्या होगा? पश्चात् तो... ओहोहो!

आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसके अनुभव बिना, उसके सम्यग्दर्शन, अन्तर अनुभव-दृष्टि बिना ऐसी क्रिया से स्वर्ग में गया। वहाँ से नीचे गिरा, मनुष्य हुआ, वहाँ से मरकर पशु होकर, वहाँ से मरकर नरक-निगोद में जाएगा। आहाहा! ऐसी बात है। दो बातें थीं। तब की थी न, भाई? द्रव्यसंयम, यह एक बात और 'केवली आगल रह गयो कोरो'। यह तब आया था। यह तो पिचहत्तर वर्ष पहले की बात है, हों! अभी तो शरीर को ८९ हुए हैं, शरीर को, हों! आत्मा तो अनादि-अनन्त है। यह तो ८९-९० (हुए हैं)।

तब ऐसा आया था कि ओहो! 'केवली आगल रह गयो कोरो'। केवलज्ञानी परमात्मा के पास अनन्त बार गया। महाविदेह में तो भगवान सदा विराजमान हैं। सीमन्धर भगवान अभी विराजमान हैं, बीस तीर्थंकर हैं। वे जाएँ तो दूसरे अनन्त-अनन्त काल कभी महाविदेह में तीर्थंकररहित खाली नहीं होता। महाविदेह में तो प्रभु तीर्थंकर सदा विराजते हैं। वहाँ अनन्त बार जन्म लिया है और अनन्त बार समवसरण में गया है, परन्तु 'केवली आगल रह गयो कोरो'। इसने छूने नहीं दिया। इस क्रियाकाण्ड में लवलीन (रहा) परन्तु राग से भिन्न भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसे स्पर्श नहीं किया, छुआ नहीं, अनुभव नहीं किया। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा है, यह शान्तिभाई साधु दिगम्बर मुनि होनेवाले थे। गृहस्थ हैं। फिर यहाँ का सुना, पढ़ा। (फिर ऐसा लगा कि) मार्ग कुछ दूसरे प्रकार का है, बापू! मार्ग दूसरा है, भाई! आहाहा!

अन्तर में अखण्डानन्द प्रभु (जो) केवली सर्वज्ञ ने देखा और कहा वह, हों! अन्यमति कहें, इस आत्मा की उन्हें खबर नहीं। आहाहा! परमेश्वर वीतराग जिसे आत्मा कहते हैं, वह आत्मा तो पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति का सागर है। उसकी दृष्टि नहीं की, सन्मुखता नहीं की, सन्मुख नहीं हुआ। आहाहा! उससे विमुख जो पुण्य और पाप के भाव ऐसे किये। पाप किया तो नरक, पशु में गया; पुण्य किया तो स्वर्ग (गया)। यह धूल का सेठ कहलाता है, वह हुआ। मरकर फिर चार गति में भटकता है। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं।

उसे शुद्ध परिणमन बिल्कुल नहीं वर्तता, मात्र शुभ परिणाम ही... शुभभाव। आहाहा! बारह व्रत का, पंच महाव्रत का यह सब शुभभाव है। यह कोई धर्म नहीं है। आाहाहा! मात्र; मात्र अर्थात् शुद्धपरिणमन बिल्कुल नहीं। **मात्र शुभ परिणाम ही—और वह भी उपादेयबुद्धि से—वर्तता है।** अर्थात् वह शुभभाव आदरणीय है; भगवान आनन्दस्वरूप है, उसका ख्याल नहीं है; इसलिए शुभभाव आदरणीय है—ऐसा मिथ्यात्वरूप से मानकर अन्दर में शुभभाव का आदर किया। जो हेय है, उसका आदर किया और जो त्रिकाली प्रभु, शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उपादेय है, उसे हेय किया। अरे... अरे...! ऐसी बातें! आहाहा!

उपादेयबुद्धि से—वर्तता है। यह शुभभाव-वृत्ति है, वृत्ति का उत्थान है, राग है। यह पंच महाव्रत, अपवास आदि, भक्ति आदि, भगवान का स्मरण आदि, पंच परमेष्ठी का स्मरण आदि, यह शुभराग है। शुभराग है, वह धर्म नहीं है। आहाहा! यह शुभराग उपादेयबुद्धि से वर्तता है क्योंकि ज्ञानानन्द प्रभु है, उसकी तो खबर नहीं। आहाहा! वह भले नौ पूर्व पढ़ गया हो, पहले क्रिया की थी। ग्यारह अंग, करोड़ों श्लोक। एक आचारांग में भगवान ने अठारह हजार पद और एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक (कहे हैं)। ऐसे ग्यारह अंग भी अनन्त बार पढ़ा। ऐसी क्रिया भी अनन्त बार की और ग्यारह अंग पढ़ा। आहाहा! परन्तु जो पढ़ने का था, उसे नहीं पढ़ा। आहाहा!

वह भले नौ पूर्व पढ़ गया हो... पूर्व की बात जरा सूक्ष्म है। पूर्व का ज्ञान बहुत। ग्यारह अंग से भी अधिक है, वह भले पढ़ा हो, **तथापि उसने आत्मा का मूल द्रव्य...** पहले से लिया था न, मूल अस्तित्व। आत्मा की मूल वस्तु। **सामान्यस्वरूप...** यह क्या कहते हैं? राग-द्वेष तो नहीं परन्तु वर्तमान पर्याय जो है न? अवस्था, वह विशेष है। वह नहीं।

त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप शुद्ध घन आनन्दकन्द प्रभु ऐसा जो सामान्य स्वरूप है अर्थात् विशेषरहित सामान्य स्वरूप है अर्थात् पर्याय के भेदरहित सामान्य स्वरूप है। आहाहा! ऐसी भाषा और यह सब। वह तो... मिच्छामि दुक्कडम् जाओ, हो गयी सामायिक। धूल भी नहीं, सुन न! आहाहा! अरे रे! क्या हो? भाई! मूलवस्तु, पहले से कहा न? मूलवस्तु पड़ी रही और मूलवस्तु के बिना बाहर में झपट्टे मारे हैं। आहाहा! जन्म-मरण का अन्त नहीं आया।

तथापि उसने आत्मा का मूल द्रव्य सामान्यस्वरूप अनुभवपूर्वक नहीं जाना होने से... आहाहा! यह क्या कहा? कि आत्मा सामान्य है, वस्तु है—ऐसा ग्यारह अंग पठन में आया था, भाई! धारणा में (आया था) आहाहा! कहो... रतिभाई! ऐसी बातें हैं। इसके ग्यारह अंग पढ़ा, उसमें यह आया था कि आत्मा सामान्य यह है, विशेष यह है—यह धारणा में (आया था) परन्तु **सामान्यस्वरूप अनुभवपूर्वक नहीं जाना होने से...** आहाहा! इस भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु को अनुभव करके अनुभवपूर्वक जाना नहीं। धारणा में जाना। आहाहा!

यह अभी एक प्रोफेसर आया था। यहाँ भावनगर का प्रोफेसर ब्राह्मण है, अर्धमागधी का बड़ा प्रोफेसर है। भावनगर (में है)। यहाँ आया था और फिर रामजीभाई से कहा (इसलिए) एक पुस्तक दी। उसे तो पढ़कर ऐसा (लगा)... आहाहा! यह तो इसमें निधान भरे हैं। अर्धमागधी का (प्रोफेसर) अर्थात् यह आचार्य, पढ़ाता है विद्यार्थियों को विद्यार्थीरूप से परन्तु यह चीज़ उसे वहाँ नहीं मिलती, वह इतना प्रसन्न हुआ, यह तो इसमें निधान भरे हैं। आहाहा! अरे! मैं यह समझने के लिये मेहनत करूँगा, ऐसा कहा। बड़ा प्रोफेसर है। अरे! प्रोफेसर होवे या (चाहे जो हो), यह आत्मा कोई चीज़ ऐसी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं सामान्यस्वरूप अर्थात् इसकी एक समय की पर्याय है न? अवस्था... अरे! अभी पर्याय क्या और द्रव्य क्या, यह खबर नहीं होती। एक समय की जो अवस्था-पर्याय है, वह विशेष है और त्रिकाली वस्तु है, वह सामान्य है। तब यहाँ कहा है कि सामान्यस्वरूप को अनुभवपूर्वक नहीं जाना। यह सामान्य जो त्रिकाली है, उसे शास्त्र के पठन से जाना कि यह सामान्य है और यह विशेष है, परन्तु उसे अनुभवपूर्वक जानना चाहिए, वह नहीं जाना। चन्दुभाई! आहाहा! बनिये को एक तो धन्धे के कारण फुरसत नहीं

मिलती। फुरसत होवे और घण्टे भर सुनने जाए, वहाँ कुगुरु उसे लूट लेता है। व्रत करो, तप करो, इसमें (तुम्हारा कल्याण हो जाएगा)। मार डाला जगत को। आहाहा!

मुमुक्षु : कुगुरु को...

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी विपरीतता है और तब इसने सच्चा माना न! परन्तु श्रीमद् ने ऐसा कहा है। श्रीमद् में है। एक तो संसार के काम में पड़ा है। बाईस-तेईस घण्टे (पाप में पड़ा है)। स्त्री, पुत्र, कमाना और यह कमाया और धूल में धूल और धूल। उसमें फिर दो-पाँच करोड़ रुपये हो जाए तो हो गया, 'मैं चौड़ा और गली सकड़ी' हो जाती है इसे। मर गया, आत्मा को मार डाला। आहाहा! मरणतुल्य किया है, भाई! आया है न? २८ कलश में। आहाहा!

चैतन्यज्योति-जलहल ज्योति प्रभु ध्रुव का आदर न करके राग का आदर और व्यापार के परिणाम का आदर (करके) आत्मा को मार डाला। तू नहीं, मैं यह हूँ। आहाहा! अरे रे! ऐसा करने की अपेक्षा यहाँ तो निवृत्ति लेकर साधु होवे, कहते हैं। उसमें भी यह पाँच महाव्रत की क्रिया करे और ग्यारह अंग के पठन की, यह सब बन्ध का कारण है। आहाहा!

शुद्ध स्वरूप प्रभु... यदि शुद्ध न हो तो भगवान को-तीर्थंकर को-अरिहन्त को पर्याय में पूर्ण पवित्रता प्रगट होती है, वह कहाँ से आवे? कहीं बाहर से आती है? आहाहा! ऐसा पूर्ण पवित्र स्वरूप भगवान आत्मा, उसे इसने अनुभवपूर्वक जाना नहीं। ऐसी बातें हैं, प्रभु! आहाहा! अरे रे! दुनिया कहाँ है और कहाँ भटक मरती है, इसे कुछ खबर नहीं। आहाहा! **नहीं जाना होने से वह सब अज्ञान है**। यह शास्त्र का पठन, पंच महाव्रत के परिणाम, यह सब अज्ञान है। आहाहा! अब जरा मुनि की बात करते हैं।

सच्चे भावमुनि को... जो वीतराग परमात्मा के पन्थ में सच्चे भावमुनि हैं, अन्यत्र तो कहीं मुनि हो नहीं सकते। **सच्चे भावमुनि को तो शुद्धात्मद्रव्याश्रित मुनियोग्य उग्र शुद्धपरिणति चलती रहती है,...** आहाहा! क्या कहा? सच्चे सन्त, जिन्हें जैनदर्शन के मुनि कहते हैं, हों! दूसरे में तो कोई मुनि-बुनि है नहीं। सब बाबा-बाबा सब जोगी सब मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : सब साधु में आ जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आते। यह कहता है एक स्थानकवासी साधु है, वह कहता है—णमो लोए सव्व साहूणं, इसमें सब साधु—बाबा-बाबा आ जाते हैं, मिथ्या बात है। जैन के, जिसे आत्मा का अनुभव है, जिसे उग्र... देखो। **सच्चे भावमुनि को तो शुद्धात्मद्रव्य...** शुद्ध आत्मद्रव्य के आश्रित **मुनियोग्य उग्र शुद्धपरिणति...** ऐसा क्यों कहा? सम्यग्दृष्टि जो प्रथम धर्मी है, उसे शुद्धपरिणति होती है, परन्तु मुनियोग्य उग्र परिणति उसे नहीं होती। आहाहा! यह और अन्तर है। सम्यग्दृष्टि जीव श्रेणिक राजा भगवान के समय में समकिती-क्षायिक समकिती थे। उनके योग्य शुद्धपरिणति तो उन्हें होती है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो **शुद्धात्मद्रव्याश्रित मुनियोग्य उग्र शुद्धपरिणति...** इसलिए यह शब्द प्रयोग किया है। मुनि को तो... आहाहा! उन्हें तो-सच्चे सन्त को तो शुद्ध वीतरागी दशा अन्दर प्रगटी हुई होती है। शुद्ध चैतन्य के आश्रय से (प्रगट हुई होती है)। भगवान आत्मा जिनस्वरूपी वीतरागमूर्ति आत्मा—द्रव्य है। उसके आश्रय से वीतराग परिणति उग्र दशा जिन्हें वीतरागी अतीन्द्रिय आनन्द ऐसी दशा जिन्हें प्रगट हुई है, उन्हें जैन के मुनि कहते हैं। आहाहा!

सच्चे भावमुनि को तो शुद्धात्मद्रव्य... शुद्ध आत्मद्रव्य, त्रिकाली शुद्ध पवित्र प्रभु के आश्रित मुनियोग्य-साधु के योग्य उग्र शुद्धपरिणति चालू होती है। आहाहा! उन्हें तो वीतराग धारा मुनि को तो सदा ही चालू ही होती है। पूर्ण वीतराग-सर्वज्ञ को (होती है), उतनी वीतरागता नहीं। आहाहा! तथा सम्यक्त्वी को जो शुद्ध धारा है, उतनी नहीं। पूर्ण नहीं (तथा) इतनी कम नहीं। आहाहा! देह से भिन्न, राग से भिन्न, दया, दान के विकल्प से भी भिन्न ऐसा शुद्ध भगवान आत्मा, उसके अवलम्बन से मुनि के योग्य उग्र शुद्ध परिणति... आहाहा! चालू ही होती है। यह और ऐसा तो मुनिपना, बापू!

कर्तापना तो सम्यग्दर्शन होने पर ही छूट गया होता है,... क्या कहा? पर की क्रिया कर सकता हूँ, यह तो कर्तापना तो सम्यग्दर्शन होते ही यह छूट गया है। इस हाथ को हिलाऊँ या आँख की क्रिया फिरे, उस क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं है। आहाहा! इतना तो नहीं परन्तु राग का भाव आवे, उसका कर्ता आत्मा नहीं है। ऐसा तो सम्यग्दर्शन होने पर कर्ताबुद्धि छूट गयी होती है। अरे.. अरे..! अब ऐसी बातें। आहाहा! अरे..! भगवान का विरह पड़ा। तीन लोक के नाथ परमात्मा वीर प्रभु मोक्ष पधारे। सीमन्धर भगवान अरिहन्त पद में विराजते हैं। चौबीस तीर्थंकर तो सिद्धपद में 'णमो सिद्धाणं' में आ गये।

ये भगवान विराजते हैं, वे अरिहन्त में आये। भरत में विरह पड़ा। आहाहा! उनका कहा हुआ मार्ग बहुत बिखर गया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं मुनि-सच्चे सन्त, जिन्हें जैनदर्शन में वीतराग परमात्मा जिसे मुनि कहते हैं, उन्हें तो आत्मा शुद्धवस्तु है, पूर्ण आनन्द (स्वरूप है), उसके आश्रय से उग्र शुद्ध -परिणति चालू ही होती है। शुद्धपरिणति को उग्र विशेषण दिया है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जो धर्म की पहली शुरुआतवाला होता है, उसे वह शुद्धपरिणति तो होती है। नहीं तो वह धर्मी ही नहीं है। आहाहा! यहाँ तो मुनि के योग्य उग्र शुद्धपरिणति चालू ही होती है। आहाहा! वीतरागमूर्ति आत्मा के आश्रय से वीतराग परिणति उनके योग्य है, वह तो सदा रहती ही है, चालू ही है। भले उसे पंच महाव्रत का विकल्प आया, परन्तु वह तो राग है। राग से भिन्न वीतराग परिणति तो मुनि को सदा (होती ही है) । केवली को वीतरागदशा है, उतनी नहीं है। सम्यक्त्वी को जो वीतरागपरिणति है, उससे विशेष है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। बात-बात में अन्तर पड़ता है। क्या हो ? भाई! यह क्या कहा ?

कर्तापना तो सम्यग्दर्शन होने पर ही छूट गया होता है,... यह क्या कहा ? सच्चे सन्त जिन्हें णमो लोए साहूणं, णमो लोए सव्व साहूणं (कहते हैं), उन सन्त को तो अन्तर में वीतरागीदशा उग्ररूप से दशा हो रही है। वह धारा चालू ही है। आहाहा! और कर्तापना तो—इस देह की क्रिया मैं कर सकता हूँ और हिल सकता हूँ, बोल सकता हूँ, ऐसा कर्तापना तो—सम्यग्दर्शन होते ही छूट गया होता है। मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है कि मैं इस शरीर को हिलाता हूँ और शरीर की क्रिया करता हूँ। आहाहा! खाने की क्रिया मेरी है और पीने की क्रिया मेरी है। वह तो जड़ की है, वह तो मिट्टी-धूल की है। उस क्रिया का कर्ता मिथ्यादृष्टि अज्ञानी (होता है), वह जैन नहीं है, उसे जैन की खबर नहीं है। वह उसका कर्ता होकर मिथ्यात्व का सेवन करता है। सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु है, उसका जहाँ भान हुआ, वहाँ पर की क्रिया का कर्ता तो छूट जाता है परन्तु राग की क्रिया के परिणाम आवें, उनका कर्तापना भी छूट जाता है। आहाहा! अब ऐसी बातें। समझ में आया ?

सच्चे भावमुनि को तो शुद्धात्मद्रव्याश्रित... द्रव्य / वस्तु जो त्रिकाली आनन्द (स्वरूप है), उसके अवलम्बन से **मुनियोग्य उग्र शुद्धपरिणति चलती रहती है, कर्तापना**

तो सम्यग्दर्शन होने पर ही छूट गया होता है,... आहाहा! अकेली ज्ञातादृष्टा की धारा सन्त को-सच्चे मुनि को वर्तती है। आहाहा! जो पंच महाव्रत के परिणाम हैं, उनका भी कर्ता वह नहीं होता। अरे रे! आहाहा! क्योंकि वे विकार और राग है। यह तो सम्यग्दर्शन होने पर ही कर्तापने की बुद्धि... ज्ञान होने पर-सम्यग्दर्शन होने पर वह बुद्धि छूट जाती है और यदि कर्तापने की बुद्धि रहे तो वह धर्मी नहीं है, सम्यग्दृष्टि नहीं है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह जैन को-जैनपने को समझा नहीं है। आहाहा!

उग्र ज्ञातृत्वधारा अटूट वर्तती रहती है,... भाषा देखो! सच्चे सन्त हैं। आहाहा! उन्हें तो वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता। वे जंगल में बसते हैं। जैन परमेश्वर जिन्हें सच्चे सन्त कहते हैं, वे जंगल में बसते हैं और उन्हें अन्दर में... है? **उग्र ज्ञातृत्वधारा...** जानन-देखन दृष्टि हुई है, वह उग्र ज्ञानधारा—ज्ञातादृष्टा की उग्र ज्ञानधारा अटूट वर्तती है, टूट पड़े बिना वर्तती है। अरे! यह क्या है? आहाहा! अरे! ऐसे मुनि अभी मिलना मुश्किल है, बापू! आहाहा! जिसे ज्ञातृत्वधारा, जानना-देखना ऐसी धारा, उग्र धारा, अटूट धारा,... उग्र धारा और अटूट धारा। चौथे में से अधिक लेना है न? आहाहा!

मुमुक्षु : उग्र में क्या अर्थ लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे में है, उससे उग्र-अधिक है, ऐसा।

मुमुक्षु : ज्ञान में उग्रता क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने-देखने की अर्थात् वीतरागी धारा। राग होता है, उसे जाने; ज्ञान होता है, उसे जाने, वह वीतरागभाव से जानता है, उसे उग्र ज्ञातृत्वधारा कहने में आता है। सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग-परमेश्वर का मार्ग, बापू! अलौकिक है। आहाहा!

उग्र ज्ञातृत्वधारा... अर्थात् शुद्धपरिणति, वीतराग परिणति। तीन कषाय के अभाव (सहित की परिणति) **अटूट वर्तती रहती है, परम समाधि परिणमित होती है।** आहाहा! परम आनन्द शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... समाधि अर्थात् वे बाबा समाधि करते हैं, वह नहीं, हों! आधि-व्याधि-उपाधि रहित, वह समाधि है। उपाधि अर्थात् बाहर के संयोग से रहित; व्याधि अर्थात् शरीर की दशा से रहित; आधि अर्थात् पुण्य-पाप के संकल्प-विकल्प की आधि-व्याधि-उपाधिरहित अतीन्द्रिय आनन्द की समाधि। आहाहा! मुनि

को **परम समाधि परिणमित होती है।** देखा ? समकिती को भी एक अंश समाधि तो होती है। सम्यग्दृष्टि धर्मी होने पर थोड़ी तो शान्ति और समाधि होती है परन्तु मुनि को तो परम समाधि परिणमित होती है। आहाहा! ऐसा मुनिपना। वीतरागमार्ग में ऐसी दशा है, बापू! आहाहा!

परम समाधि परिणमित होती है। शान्ति का सागर प्रभु, अकषायस्वभाव का समुद्र प्रभु आत्मा, उसके अवलम्बन से उग्र शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... आहाहा! अर्थात् अकषायभाव। आहाहा! ऐसी अकषाय परिणति, दशा उग्र परिणमित होती है, परम परिणमित होती है। आहाहा! **वे शीघ्र-शीघ्र निजात्मा में लीन होकर...** मुनि तो,... आहाहा! शीघ्र-शीघ्र निजात्मा-परमात्मस्वरूप में लीन होकर। **आनन्द का वेदन करते रहते हैं;...** वे तो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करते रहते हैं। आहाहा! वीतराग के मार्ग में उन्हें मुनि कहने में आता है। अन्यत्र तो कहीं होता नहीं। णमो लोए सव्वसाहूणं, अर्थात् दूसरे साधू अन्यमति के बाबा को डाले, ऐसा है नहीं, भाई! आहाहा!

शीघ्र-शीघ्र निजात्मा में लीन होकर... अर्थात् ? छठवें गुणस्थान में आनन्द है, शान्ति है परन्तु उन्हें प्रमाद का विकल्प उठता है, पंच महाव्रत आदि का (विकल्प उठता है), उसे छोड़कर शीघ्र अन्दर सातवें गुणस्थान में जाते हैं। आहाहा! सच्चे सन्त को छठवाँ और सातवाँ अन्तर्मुहूर्त में अनेक बार आता है। आहाहा! सूक्ष्मदशा, बापू! आहाहा! यह आचार्य, उपाध्याय, साधु ऐसे होते हैं। अरिहन्त और सिद्ध तो पूर्णानन्द (को प्राप्त हुए)। सिद्ध तो अशरीरी पूर्ण (दशा को) प्राप्त हो गये। अरिहन्त को चार कर्मों का नाश होकर अनन्त ज्ञानादि प्राप्त हुए परन्तु आचार्य, उपाध्याय, साधु को अन्तर में... आहाहा! तीन कषायरूपी भाव का नाश होकर आनन्द की दशा की उग्र परिणति में परिणमित हो जाते हैं। क्षण-क्षण में अन्दर आनन्द में चले जाते हैं। फिर क्षण में विकल्प वृत्ति उठती है। समझाना या सुनना या यह सब वृत्ति राग है, परन्तु तुरन्त ही वे दूसरे क्षण में अन्दर में उतर जाते हैं। आहाहा! ऐसी दशा है।

यह अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादिया, मुनि अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादिया होते हैं। अज्ञानी पुण्य और पाप-राग के स्वादिया हैं। उसका स्वाद लेकर मानते हैं कि हम ठीक करते हैं। आहाहा! ऐसी बातें कौन सी होगी ? यह जैनधर्म की ऐसी बात होगी ? भाई! हम

तो ऐसा सुनते हैं कि सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, चतुर्विध रात्रि आहार छोड़ो और छह परबी पालो और छह परबी ब्रह्मचर्य पालन करो और कन्दमूल नहीं खाना रात्रि भोजन (नहीं करना), बापू! भाई! यह तुझे खबर नहीं, बापू! यह सब क्रियाओं का तो रागभाग है। आहाहा! यह तो-धर्म तो राग से रहित अन्दर शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु के आश्रय से निजानन्द में मुनि शीघ्र-शीघ्ररूप से जाते हैं। अन्तर घर में... आहाहा! अन्तर घर में तो अतीन्द्रिय आनन्द है। बाहर निकलते हैं। आहाहा! यह पहले आ गया है। ४०१ (में। आया है।) आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

मुनि धर्मात्मा अन्दर में होते हैं, उन्हें जब यह विकल्प आता है जरा व्रत आदि का (विकल्प) आता है तो उन्हें ऐसा लगता है कि अरे रे! हम कहाँ परदेश में आ गये? ४०१, ४०१ में है। आहाहा! अरे! दया का भाव आवे, भक्ति का भाव आवे, वह राग है। धर्मी ऐसा जानता है। अरे रे! हम स्वदेश छोड़कर परदेश में कहाँ चले गये? यह राग है, वह हमारा परिवार नहीं है। आहाहा! हमारा परिवार तो अन्दर ज्ञान, दर्शन आनन्द से भरपूर भगवान, वह हमारा परिवार है। आहाहा! कहो, भगवान की भक्ति का भाव आवे, परन्तु वह परदेश जैसा दुःख लगता है। हम स्वदेश छोड़कर परदेश में आ पड़े। अरे.. अरे! अब ऐसी बातें! सुनना कठिन पड़ती है। समझे तो कब? आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' प्रभु वीतराग सर्वज्ञदेव का यह पन्थ है, उनका यह मार्ग है। इस प्रकार से मार्ग है। आहाहा!

उनके प्रचुर स्वसंवेदन होता है। पाँचवें का लिया, पाँचवीं गाथा (समयसार) में आता है न? मुनि कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, हमें प्रचुर स्वसंवेदन है। समकिती को स्वसंवेदन-आनन्द है परन्तु थोड़ा है और मुनि को तो प्रचुर स्वसंवेदन है। आहाहा! उन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का ऐसा उफान आता है। आहाहा! दूध का उफान तो पोला होता है, पाँच सेर दूध हो और अग्नि पर रखे ऐसे ऊँचा हो, वह पोला होता है। वह कहीं वजन वाला नहीं होता, पोला (होता है)। यह तो वजनवाला आनन्द होता है। आहाहा! क्या होगा यह? यह कहते हैं। शीघ्र-शीघ्र उस प्रचुर स्वसंवेदन का वेदन करते हैं। लो! **वह दशा अद्भुत है, जगत से न्यारी है।** आहाहा! अब थोड़ी विशेष बात है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसर शुक्ल -४, रविवार, दिनाङ्क ०३-१२-१९७८
वचनामृत-४१० से ४११ प्रवचन-१६९

४१०, मुनि की दशा की बात चलती है। **उनके प्रचुर स्वसंवेदन होता है।** सम्यग्दृष्टि जीव को प्रचुर स्वसंवेदन नहीं होता। ज्ञायक पूर्ण स्वभाव... रात्रि में प्रश्न हुआ था, पूर्ण क्यों है ? वस्तु है, वह पूर्ण स्वरूप ही है। उसका ज्ञानगुण, आनन्दगुण, शान्तिगुण... शान्ति अर्थात् चारित्र-वीतरागता, वे सब गुण हैं, वे पूर्ण हैं और पूर्ण का एकरूप, वह द्रव्य है। यह बात अपने पहले इसमें आ गयी है। आत्मा अजायब घर है। उसमें आश्चर्यकारी गुण भरपूर बसे हुए हैं। पहले आ गया है। आहाहा! कठिन बात, भाई! एक-एक गुण पूर्ण है। आकाश में भले अस्तित्व गुण है, बड़ा इतना लम्बा, तो भी पूर्ण है और एक परमाणु में अस्तित्व गुण है, (वह भी) पूर्ण है। पूर्ण न हो तो, कम अस्तित्व है—इसका अर्थ क्या ? आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा में अस्तित्व-सत्ता नाम का गुण है, वह पूर्ण है। उसके साथ अनन्त गुण हैं, पूर्ण है। एक-एक गुण में अनन्त का रूप है। सर्व गुण का रूप है। समझ में आया ? यह जरा अन्दर बैठना कुछ भाव ख्याल में नहीं आता। है, बात बराबर है। इसमें जीवत्वशक्ति है, उसमें तो सर्वदर्शीपना... क्योंकि जीवत्वशक्ति में तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्ता (रहे हुए हैं), इसलिए उसमें ज्ञान में सर्वदर्शिपना शक्ति रूप, हों! सर्व रूप। आहाहा!

इसी प्रकार चितिशक्ति ज्ञान-दर्शनस्वरूप एक दूसरी (शक्ति है)। उसमें भी सर्वदर्शी, सर्वज्ञ का रूप हो। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग को पूर्ण स्वसंवेदन पूर्ण स्वसंवेदन है। मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन है। सम्यग्दृष्टि में अल्प स्वसंवेदन है परन्तु स्वरूप तो पूर्ण है। आहाहा! ऐसी दृष्टि होने पर जितने गुण हैं, उनका अंश प्रगट होता है, उसमें यह सर्वदर्शीगुण है, उसका अंश प्रगट होता है। सर्वगुणांश, वह समकित। अथवा रहस्यपूर्ण चिट्ठी में ऐसा

कहा कि चौथे गुणस्थान में ज्ञानादि एकदेश गुण व्यक्त (होते) हैं। सर्वज्ञ परमात्मा को सर्व देश पूर्ण हैं। अब यहाँ सर्वदर्शी और सर्वज्ञ गुण है... आहाहा! उसका भी वह ज्ञान की और दर्शन की पर्याय प्रगट हुई न? उसका एक अंश व्यक्त हुआ, इतना कहलाता है। क्योंकि सर्वज्ञ जो पर्याय है, सर्वज्ञ दर्शन, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी के अवलम्बन से जो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी पर्याय होती है, वह अवयवी है। और नीचे मतिश्रुतज्ञान का अंश है, वह उसका अवयव है। अंश है। अर्थात् इस सर्वदर्शी सर्व गुण का अंश बाहर आया। ऐसी बात है। आहाहा! परन्तु उसमें जो दूसरे अनन्त गुण हैं, कर्तृत्व और भोक्तृत्व, अकर्तृत्व और अभोक्तृत्व, अमूर्त, उन प्रत्येक में सर्वदर्शी सर्वज्ञ का रूप है। अगम प्याला है, बापू!

ऐसा जो भगवान आत्मा, जिसे वर्तमान ज्ञान की पर्याय में... यद्यपि वर्तमान ज्ञान में द्रव्य ज्ञात होता है। चन्दुभाई! १७ (गाथा समयसार)। आहाहा! इस वर्तमान ज्ञान की पर्याय में इसका स्व-परप्रकाशक स्वभाव होने से, अल्पज्ञान में भी... आहाहा! पूरा द्रव्य ज्ञात होता है। अज्ञानी के ज्ञान में भी, हों! परन्तु उसका लक्ष्य वहाँ नहीं है, इसलिए ज्ञात (होने) पर भी जानता नहीं है। आहाहा! ऐसा प्रभु है। उस पर्याय में स्वद्रव्य और पर, सब जानने का स्व-परप्रकाशक स्वतः स्वयं से स्वभाव है। आहाहा! ऐसा जिसे अन्तर में पूर्ण अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु, उसकी प्रभुता की पर्याय में भान हुआ, उस पर्याय में भले प्रभुत्व अनन्त नहीं आवे, परन्तु जितना जैसा वह प्रभुत्व है, उसका ज्ञान यहाँ होता है। समझ में आया? परन्तु नीचे चौथे-पाँचवें में है, वह ज्ञान का, आनन्द का, शान्ति का स्व-अपना वेदन अल्प है। आहाहा! मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन है। सर्वज्ञ परमेश्वर को पूर्ण स्वसंवेदन है। आहाहा! है?

प्रचुर स्वसंवेदन होता है। वह दशा अद्‌भुत है,... कोई। आहाहा! मुनिदशा अर्थात् आहाहा! परमेश्वरदशा। अरे रे! यहाँ तो एक-दूसरे... भाई ने कल कहा था न? चन्दुभाई! परस्पर आचार्यपना करते हैं। आचार्यपद देते हैं न? अरे भगवान! प्रभु! क्या करता है? भाई! आहाहा! अभी दृष्टि का विषय क्या है—दृष्टि क्या है, इसकी खबर नहीं, वहाँ समकित नहीं, वहाँ साधु तो नहीं, वहाँ आचार्यपद कहाँ से आया? भाई! दुनिया से अलग प्रकार है, प्रभु! दुःख लगे, विरोध करे, करो। बापू! किसका विरोध है? भाई! यह तो तेरे स्वरूप का विरोध है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि मुनि उसे कहते हैं कि जितने गुण हैं पूर्ण

अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... उन अनन्त के अनन्त-अनन्त करो तो भी उसमें अन्तिम अनन्त नहीं आता, इतने अनन्त हैं। इन सब गुणों का सम्यग्दर्शन में और मुनि को प्रचुर वेदन होता है। पर्याय में (वेदन होता है)। शक्तिरूप से तो पूर्ण अनन्त है। आहाहा! ऐसा अपूर्व वेदन होने पर भी **वह दशा अद्भुत है, जगत से न्यारी है**। आहाहा!

पूर्ण वीतरागता न होने से... अब यहाँ कहते हैं कि उन्हें कुछ शुभराग आता है न? मुनि को अशुभ तो नहीं होता। भले उन्हें आर्तध्यान आदि होता है परन्तु उसकी गिनती नहीं गिनी है। समझ में आया? वहाँ आगे शुभभाव, शुद्ध और शुभ दो गिनने में आये हैं। नहीं तो छठवें (तक) आर्तध्यान है परन्तु उसे गौण गिनकर शुद्ध की परिणति है और वहाँ शुभभाव की गौणता है। अशुभ तो है नहीं, ऐसा गिना है। आहाहा! उन्हें **पूर्ण वीतरागता न होने से...** अर्थात् पूर्ण स्वसंवेदन वीतरागभाव का, सर्वज्ञपना आदि नहीं होने से **उनके व्रत-तप-शास्त्ररचना...** यह भाव लिया है। आर्तध्यान को नहीं लिया है। समझ में आया? **व्रत-तप-शास्त्ररचना आदि के शुभभाव आते हैं अवश्य,...** अवश्य अर्थात् आते हैं, ऐसा। नहीं आते, ऐसा नहीं है, आते हैं। शुद्धता का प्रचुर वेदन होने पर भी, पूर्ण वीतरागता नहीं है, इसलिए शुभभाव आते अवश्य हैं। आहाहा! **परन्तु वे हेयबुद्धि से आते हैं।** आहाहा! अभी तो यह शुभभाव, वही धर्म और वही चारित्र (है, ऐसा) मानते हैं। आहाहा! प्रभु... प्रभु! क्या करता है? एक श्रुतसागर हैं, बड़े, वे शान्तिसागर के मार्गानुसारी। वे पढ़े हुए हैं, उन्होंने अखबार में बाहर ऐसा प्रसिद्ध किया है कि अभी पंचम काल में शुभयोग ही होता है। अर..र..र! तो ये मुनि कुन्दकुन्दाचार्य हुए, वे सब पंचम काल में हुए हैं। बहुत गड़बड़ कर डाली है। शुभयोग है, वह तो आस्रव है, बन्ध है, दुःख है, आकुलता है। बस, पंचम काल में वही होता है? आहाहा!

भगवान अनाकुल आनन्द का नाथ प्रभु है। उसके अवलम्बन में जो दशा हुई, वह तो शुद्ध है, पवित्र है, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादवाली दशा है। आहाहा! ऐसी दशा में पूर्ण वीतरागता और पूर्ण गुण की व्यक्तता नहीं होने से तप का... व्रत और तप, यह सब शुभ विकल्प है। आहाहा! यहाँ व्रत को संवर कहते हैं, तप को निर्जरा कहते हैं। आहाहा! हमारे हीराजी महाराज ऐसा कहते थे—व्रत है, वह संवर है और अपवास तपस्या आदि है, वह

निर्जरा है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि यह जो व्रत और तप का विकल्प उठता है, वह शुभभाव है, तथापि वह हेयबुद्धि से आता है।

ऐसी पवित्र मुनिदशा मुक्ति का कारण है। आहाहा! ऐसी पवित्र मुनिदशा। शुभराग हेयबुद्धि से (आता है) और अन्दर में आनन्दस्वरूप को अनन्त गुण की शक्ति की पर्याय में व्यक्तता की परिणति (हुई), वह मुक्ति का कारण है। आहाहा! यह ४१० (बोल पूरा) हुआ।

अनन्त काल से जीव भ्रान्ति के कारण पर के कार्य करने का मिथ्या श्रम करता है, परन्तु परपदार्थ के कार्य वह बिल्कुल नहीं कर सकता। प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्ररूप से परिणमित होता है। जीव के कर्ता-क्रिया-कर्म जीव में है, पुद्गल के पुद्गल में हैं। वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शादिरूप से पुद्गल परिणमित होता है, जीव उन्हें नहीं बदल सकता। चेतन के भावरूप से चेतन परिणमित होता है, जड़ पदार्थ उसमें कुछ नहीं कर सकते।

तू ज्ञायकस्वभावी है। पौद्गलिक शरीर-वाणी-मन से तो तू भिन्न ही है, परन्तु शुभाशुभभाव भी तेरा स्वभाव नहीं है। अज्ञान के कारण तूने पर में तथा विभाव में एकत्वबुद्धि की है, वह एकत्वबुद्धि छोड़कर तू ज्ञाता हो जा। शुद्ध आत्मद्रव्य की यथार्थ प्रतीति करके—शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके, तू ज्ञायकपरिणति प्रगट कर कि जिससे मुक्ति का प्रयाण प्रारम्भ होगा॥४११॥

अनन्त काल से जीव भ्रान्ति के कारण पर के कार्य करने का मिथ्या श्रम करता है,... आहाहा! देश के, शरीर के, वाणी के, पर की दया के और पर को मारने के। आहाहा! ऐसा कार्य करने का मिथ्याश्रम करता है, भाव (करता है) परन्तु पर का कुछ कर नहीं सकता। यहाँ तो वहाँ तक कहा था कि पर यह शरीर है, वाणी है, उसे आत्मा कर नहीं सकता परन्तु उसकी जो पर्याय होती है, उसे उसका द्रव्य नहीं करता। आहाहा! यह जो अंगुली चलती है, वह अवस्था है। वह अवस्था आत्मा स्वयं नहीं कर सकता। वह तो नहीं कर सकता परन्तु उस अवस्था का कर्ता उसका परमाणु भी नहीं है। उस पर्याय का कर्ता

पर्याय है। एक समय की पर्याय षट्कारकरूप से परिणमती हुई प्रगट होती है। आहाहा! परमाणुओं में इस शरीर में दाढ़ इत्यादि हिलती है, उसमें उसके जो रजकण हैं, उनकी पर्याय जो ऐसे-ऐसे होती है, उसका वह रजकण कर्ता नहीं है तो आत्मा उसका कर्ता हो, यह भ्रमणा है, भ्रान्ति है। कठिन काम है। यह राजकीय व्यक्ति, व्यापार के उद्योगपति सब, आहाहा! पूरे दिन यह करते हैं... यह करते हैं... यह करते हैं। वह कर नहीं सकता। यह वस्त्र है, यह ऐसा था ऐसा, और ऐसे-ऐसे हुआ, उसकी इस क्रिया का आत्मा कर्ता नहीं है। विकल्प भले आवे, वह विकल्प उसका कर्ता नहीं है। वह तो कर्ता नहीं परन्तु उसके परमाणु जो ध्रुव सदृश हैं, वे पलटने की क्रिया के कर्ता नहीं है। चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! अज्ञानी को भ्रान्ति से... है ?

अनन्त काल से जीव भ्रान्ति के कारण... आहाहा! **पर के कार्य करने का मिथ्या श्रम करता है,...** आहाहा! शरीर को हिलाऊँ, आहाहा! शरीर जो ऐसा जमीन पर चलता है न शरीर ? तो उस शरीर की पर्याय जमीन को स्पर्श नहीं करती। जमीन के आधार से शरीर की पर्याय नहीं चलती। उसकी पर्याय द्रव्य के आधार से नहीं चलती। अरे.. अरे.. ! ऐसी पर्याय में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, साधन छह पर्यायरूप षट्कारकरूप से परिणमती है। पर्याय के आधार से पर्याय ऐसी (होती है)। ऐसी बात है। भ्रान्ति से इसे लगता है, मैं यह ऐसा करता हूँ। आहाहा! पर की दया पालूँ और पर की हिंसा करूँ, सत्य बोलूँ, यह सब क्रियाएँ...।

पर के कार्य करने का मिथ्या श्रम करता है, परन्तु परपदार्थ के कार्य वह बिल्कुल नहीं कर सकता। आहाहा! क्योंकि परपदार्थ और स्व-पदार्थ के बीच अभाव है। ऐसे तो गुण-गुण के बीच अभाव है, पर्याय-पर्याय के बीच अभाव है, परन्तु वह पृथक्पने का अभाव नहीं है, अन्यपने का अभाव है और यह परमाणु आदि की पर्याय (होती है, उसमें) तो पृथक्पने का अभाव है। आहाहा! समझ में आया ? बोलने का मिथ्या श्रम करे परन्तु बोलने की क्रिया आत्मा से नहीं होती। कहो, ये डॉक्टर इंजैक्शन देते हैं न, इंजैक्शन ? नस-नस जहाँ पकड़े न अन्दर, खून लेने को। कल लिया था, कल न ? देखो भाई! तुमने ? आहाहा! यह इंजैक्शन शरीर को स्पर्श नहीं करता।

मुमुक्षु : डॉक्टर खून लेने का मिथ्या प्रयास करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव करता है परन्तु (क्रिया) कर नहीं सकता। ऐसी बातें दुनिया को तो... आहाहा! अब वे पण्डित वहाँ इन्दौर में ऐसा कहते थे कि परद्रव्य का न कर सके, वह दिगम्बर जैन नहीं है। यहाँ का विरोध करने के लिये (ऐसा कहते थे)। अरे! प्रभु! यह यहाँ का (विरोध) नहीं है, भाई! भगवान! तुझे यह क्या सूझ पड़ी? ऐसा कि परद्रव्य का किया जा सकता है। निश्चय से नहीं परन्तु व्यवहार से किया जा सकता है। आहाहा! यहाँ तो किसी प्रकार से सदा, सर्वदा पर का नहीं कर सकता। व्यवहार से नहीं, निश्चय से नहीं। बोला जाता है ऐसा। आहाहा! क्यों? अनन्त पदार्थ हैं तो अनन्तरूप से अपने अस्तित्व में कब रहेंगे?—कि अपनी-अपनी पर्याय का कर्ता (हो), पर का नहीं और पर की पर्याय नहीं, वह अनन्तपना ऐसा का ऐसा टिक रहा है। क्या कहा?

यदि तुम अनन्त मानते हो कि अनन्त पदार्थ हैं तो अनन्त पदार्थ अपने अस्तित्व से-द्रव्य-गुण का अस्तित्व तो है परन्तु पर्याय के अस्तित्व से वह टिक रहे हैं। किसी के कारण से वहाँ पर्याय होती है, तब तो अनन्तपना पृथक् नहीं रहता। समझ में आया? ऐसी कठिन बात है। यहाँ तो कहे पर की दया पालो, यत्न से चलो, ऐसा शास्त्र में आता है। प्रेमचन्दभाई की काकी, शिवकुँवर बहिन। लो! जहाँ जीव देखे, वहाँ पैर ऊँचा रखना। ऐई! ये सब बातें... कर कुछ नहीं सकता।

यह बड़ा प्रश्न सम्प्रदाय में उठा था। बीछिया में उठा था। एक अर्जिका थी, उसने प्रश्न उठाया, बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९९० के पहले की बात है। ऐसा कि यह सब ऐसा किया जा सकता है न? आहाहा! कुछ करता नहीं, कहते हैं, भाई! उसे करने का मिथ्या प्रयास करता है अर्थात् भाव करता है। भाव करता है, उसका कर्ता वह अज्ञानी होता है। भाव करता है उसका कर्ता होता है वह अज्ञानी है। आहाहा! सत्य तो यह है। एकान्त लगता है, लोगों को एकान्त लगता है। कथंचित् कर्ता, कथंचित् अकर्ता - ऐसा लो तो अनेकान्त होगा। यहाँ कहते हैं अकिंचित्कर है। जरा भी (कुछ नहीं करता)। अकिंचित्कर शब्द समयसार बन्ध अधिकार में (आता है)। अकिंचित्कर—जरा भी पर को नहीं करता। आहाहा! भाई! इसका अन्दर में विश्वास आना, यह कोई बात है। आहाहा!

अब यहाँ चले तो कहते हैं पैर जमीन को स्पर्श नहीं करता। अरे! पैर तो जमीन को

स्पर्श नहीं करता, उसके परमाणु हैं, वे पर्याय को स्पर्श नहीं करते। दोनों एक नहीं होते। आहाहा! (एक होने की) यह उसे भ्रान्ति होती है, कहते हैं। आहाहा!

प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्ररूप से परिणमित होता है। रात्रि में यह बात बहुत हुई थी। उत्पाद, उत्पाद के कारण होता है। आहाहा! यह तो कोई बात! पर के कारण तो उत्पाद नहीं, परन्तु उसका जो उत्पाद इस पर्याय में ऐसे होता है, वह ध्रुव के कारण नहीं। ऐसी स्वतन्त्रता का ढिंढोरा है। उत्पाद, उत्पाद के कारण है। उत्पाद, ध्रुव के कारण नहीं और वह उत्पाद छहों द्रव्यों का उस क्षण में जन्म का-उत्पत्ति का काल है, वह उत्पाद होता है। आहाहा! आगे-पीछे नहीं, द्रव्य के कारण नहीं। आहाहा! तो आत्मा के कारण पर के कार्य हों... (-ऐसा नहीं हो सकता) कठिन काम है, बापू! आहाहा! ऐसे आटे की लोई है, बेलन उसे स्पर्श नहीं करता और आटे का पिण्ड ऐसे चौड़ा होता है, रोटी। यह क्या कहते हैं? वह ऐसे चौड़ी होती है और उसकी पर्याय ऐसे होती है, उसके वे रजकण-द्रव्य हैं, वे भी कर्ता नहीं हैं। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : बेलन में रहे हुए परमाणु एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमाणु तो स्पर्श नहीं करते परन्तु उनकी पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। यह अपने आत्मा में नहीं आया? अव्यक्त, छह बोल। व्यक्त-अव्यक्त को एक साथ जानने पर भी, व्यक्त को द्रव्य स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं। अर..र..र! धीर का काम है, भाई! व्यक्त अर्थात् पर्याय और अव्यक्त अर्थात् द्रव्य। व्यक्त-अव्यक्त का एक साथ मिश्रित ज्ञान होने पर भी वह अव्यक्त उस व्यक्त को छूता-स्पर्श नहीं करता। आहाहा! वह व्यक्त है, उस अव्यक्त को स्पर्श नहीं करता, ऐसा ही तत्त्व का स्वरूप है। यह भगवान ने किया है, ऐसा नहीं है। भगवान ने तो जैसा है, वैसा जाना है, तथा कहा है। कहा है, वह भी वाणी का स्वभाव है। स्व-पर कहने का वाणी का स्वभाव है। आत्मा का स्व-पर जानने का स्वभाव है। आहाहा! ऐसे तत्त्व को पर का कर्ता मानना, (वह भ्रान्ति है)। आहाहा!

जीव के कर्ता-क्रिया-कर्म जीव में है,... वास्तव में तो जीव की पर्याय के कर्ता, क्रिया-कर्म पर्याय में है। छहों द्रव्यों की एक समय की पर्याय उस क्षण में होती है, वह, फिर विकारी हो या अविकारी। वह पर्याय कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण; उस पर्याय में षट्कारकरूप से द्रव्य स्पर्श किये बिना परिणमन होता है। ऐसी बातें!

मुमुक्षु : द्रव्य और पर्याय पृथक् है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पृथक् है।

मुमुक्षु : सर्वथा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पृथक् है।

मुमुक्षु : प्रदेश भेद ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश भेद है। 'अगम्य प्याला पियो मतवाला चिह्नही अध्यात्मवासा।' आहाहा!

मुमुक्षु : गुरुदेव! इससे क्या सिद्धि होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इससे भेद हुआ, उसे सम्यग्दर्शन ज्ञान यथार्थ हुआ। जिस प्रकार से है, उस प्रकार से इसने माना। दूसरे प्रकार से माने तो कि द्रव्य पर्याय को करता है तो यह वस्तुस्थिति नहीं है।

मुमुक्षु : द्रव्य पर्याय को स्पर्श नहीं करता...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्श नहीं करता, ऐसा वस्तु का स्वरूप है।

मुमुक्षु : सर्वथा माने तो मिथ्या एकान्त नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्यक् एकान्त ही है। आहाहा! यह द्रव्य की...

मुमुक्षु : कथंचित्

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित्-फथंचित् नहीं यहाँ। आहाहा! ३२० में कथंचित् लिया है। (समयसार गाथा) ३२० में कथंचित् (लिया है) परन्तु वह तो अपेक्षा से है। बाकी वास्तव में तो पर्याय सर्वथा द्रव्य से भिन्न है और द्रव्य भी पर्याय से सर्वथा नित्य, वह भिन्न है।

मुमुक्षु : साहेब! दो द्रव्य हो जाएँगे। द्रव्य का द्रव्य और पर्याय का द्रव्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य का द्रव्य नहीं, यह तो पर्याय और द्रव्य दो अत्यन्त भिन्न है। ये दो वस्तु ही भिन्न है। यहाँ तो है परन्तु न्याय के ग्रन्थ में ऐसा कहा है कि धर्म और धर्मी

दोनों स्वतन्त्र स्वयं से है। धर्मी ऐसा द्रव्य, उससे धर्म अर्थात् पर्याय, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....अभेद है, ऐसा नहीं कहा जाता?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह बाद में अपेक्षा से कहा जाता है। बाकी दोनों स्वतन्त्र सिद्ध होने के बाद, यह पर्याय द्रव्य की और इस द्रव्य की यह पर्याय, यह अपेक्षा से कथन होता है।

मुमुक्षु : यह खोटा कथन बाद में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार का कथन है। असद्भूत का है। आहाहा! मात्र पर से भिन्न बतलाने के लिये (कि) इस द्रव्य की यह पर्याय और यह पर्याय इस द्रव्य की हुई, ऐसा कहा जाता है। क्या हो? '**दवियं जं उप्पज्जइ**' सर्वविशुद्ध (अधिकार) में नहीं आया? क्रमबद्ध में अकर्तापना '**दवियं जं उप्पज्जइ**' द्रव्य परिणमित होता है, ऐसा कहा। अर्थात् कि पर्याय है, वह उससे-पर से नहीं है, इससे हुई, इतना वहाँ कहना है। बाकी पर्याय, पर्याय से होती है। आहाहा!

यह तो कहा नहीं? ६२ गाथा (पंचास्तिकाय)। यह बड़ी चर्चा हुई थी न वर्णीजी के साथ। (संवत्) २०१३, २०१३ का वर्ष। ६२ गाथा, पंचास्तिकाय। राग होता है, राग वह भी राग की पर्याय कर्ता, राग कर्म, राग साधन-स्वयं साधन, स्वयं अपादान, स्वयं स्वयं से हुई, स्वयं के आधार से होकर स्वयं होकर रखी। यह विकार का षट्कारक परिणमन (होने में) भी द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं, पर की अपेक्षा नहीं। आहाहा! पंचास्तिकाय है न? ज्ञेय जो अस्ति है, उसे सिद्ध करना है। जो अस्तिकाय है, वह स्वतन्त्र है, ऐसा सिद्ध करना है। अस्तिकाय में। आहाहा! तब उसकी विकृत अवस्था हो, अरे! सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की भी पर्याय हो, और उस समय उसका क्षण है, वह उत्पन्न हुई और वह भी वह परिणति षट्कारक से हुई। आहाहा! द्रव्य के आश्रय से हुई, यह तो लक्ष्य वहाँ था, इतना कहना है। बाकी लक्ष्य किया है स्वयं ने, स्वयं से। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू!

मुमुक्षु : परम सत्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम सत्य है। आहाहा! रात्रि को मलूकचन्दभाई ने नहीं कहा? कि यह तो स्वतन्त्रता का ढिंढ़ोरा है। ऐसा है, बापू! उसके बदले अभी आत्मा पर का करे, (ऐसा कहते हैं)। कौन सा द्रव्य पर्यायरहित है कि दूसरा द्रव्य उसे करे? किस समय, कौन सा द्रव्य उसकी पर्यायरहित है कि दूसरा द्रव्य उसकी पर्याय को करे? आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार से तो पर का किया जा सकता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा बोलने में है। कर क्या सके? धूल। बोलने का कथन है, कौन निमित्त था वह। व्यवहार से नहीं और निश्चय से नहीं, किसी प्रकार से नहीं। आहाहा! लड़के आये नहीं। गये होंगे वहाँ। आज तो रविवार है, अवकाश है, गये होंगे वहाँ। देखने जाते हैं न अभी...

मुमुक्षु : हेलीकॉप्टर देखने जायें न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा लगता है। परन्तु अभी तो चार बजे। चार-दस आनेवाले हैं। अभी तो चार-दस आनेवाले हैं। वह तो... लोग देखने जाये। दिल्ली में से आवे, वहाँ कहाँ देखने जाये। आहाहा! कितने हुए? तीन और दस। यहाँ तो चार-दस आनेवाले हैं। भाई सवेरे ऐसा कहता था। आहाहा!

वे परमाणु ऐसे गति करते हैं, वह एक-एक परमाणु की पर्याय ऐसे-ऐसे होती है, वह दूसरा परमाणु करता नहीं है। उसके अन्दर बैठा हुआ आत्मा ऐसा करता नहीं है। अरे रे! उस पर्याय का कर्ता उसका परमाणु भी नहीं है। दो अस्तित्व कब सिद्ध होंगे? किसी की अपेक्षा से कोई होवे तो दो स्वतन्त्र सिद्ध नहीं होते। आहाहा! ऐसी बातें हैं। दुनिया से अलग लगती है, बापू! क्या हो? और इससे एकान्त कहकर विरोध करते हैं, प्रभु! करो। आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी में तो ऐसा आया है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को करने का मिथ्या प्रयास करता है परन्तु कर नहीं सकता, राग को करे और राग को करे, वह भी ज्ञाता द्रव्यस्वभाव निर्विकारी ज्ञानस्वरूपी राग को करे, यह भी मिथ्या भ्रम है। आहाहा!

जीव के कर्ता-क्रिया-कर्म जीव में है,... ऐसी ही कही जाए न भाषा! उसकी पर्याय है न? कर्ता वह पर्याय, कार्य वह पर्याय, करण अर्थात् साधन पर्याय, पर्याय से पर्याय हुई, पर्याय से हुई और पर्याय में रही, पर्याय के आधार से पर्याय हुई। ऐसी बातें! यह बात

हुई थी न ? फिर वहाँ विरोध हुआ था न... वर्णीजी कहें नहीं, ऐसा नहीं है, विकार पर से होता है, नहीं तो विकार स्वभाव हो जाएगा, यह तो अभिन्न की बातें हैं परन्तु अभिन्न का अर्थ क्या ? वहाँ अभिन्न शब्द है। ६२ (गाथा)।....अभिन्न का अर्थ क्या ? वह पर्याय स्वयं से होती है, इसका नाम अभिन्न, पर से नहीं होती, इसका नाम अभिन्न। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अभी... पर्याय पर्याय से होती है। पर्याय स्वयं से होती है अर्थात् द्रव्य से-ऐसा नहीं। कहा न वहाँ ? विकार द्रव्य-गुण में तो है नहीं। अब द्रव्य-गुण और पर्याय विकार को करे ? अविकार की पर्याय अभी एक ओर रखो, क्योंकि अविकारी तो स्वभाव है, तथापि अविकारी पर्याय है, वह अविकारी स्वभाव उसका कर्ता नहीं है। वह अविकारी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय भी कर्ता, कर्म, क्रिया, षट्कारक से पर्याय स्वयं अपने को करती है। चन्दुभाई ! ऐसा है। कठिन काम है। आहाहा ! सत् ही ऐसा है वहाँ... क्योंकि उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तीनों ही सत् है और तीन सत् में एक सत् दूसरे का आधार रखे तो सत्पना ही नहीं रहता। आहाहा!

मुमुक्षु : तीन सत् हैं तो एक सत् का...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ये तीन सत् हैं। फिर उसे कहे, द्रव्य सत्, गुण सत् और पर्याय सत्, यह सत् का विस्तार है। १०७ गाथा (प्रवचनसार) में। आता है। है न, खबर है, परन्तु वह द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्। आहाहा! ऐसा काम है, भाई! आहाहा! अकेला वीतरागस्वभाव। पर्याय में वीतरागस्वभाव, उस वीतरागस्वभाव की पर्याय परन्तु उसका कर्ता वीतरागपर्याय, कर्म पर्याय। आहाहा! सम्यग्दर्शन को ऐसा कहो कि '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ त्रिकाल के अवलम्बन से है, वह तो लक्ष्य वहाँ था, इस अपेक्षा से (कहा)। बाकी तो सम्यग्दर्शन की पर्याय षट्कारकरूप से परिणमित होती हुई उत्पन्न होती है। अरे! प्रभु! आहाहा!

अभिमान उतर जाए ऐसा है। हमने ऐसा किया और हमने ऐसा किया और हमने शास्त्र रचना की। यह तो आया था, शास्त्र रचना। कथन क्या हो ? उसे शुभभाव सिद्ध करना है कि शुभभाव उसे आवे अवश्य, बस इतना। परन्तु वह शास्त्ररचना कर सके, ऐसा नहीं है। आहाहा! सत् परद्रव्य सत्, उसके उत्पाद की पर्याय का सत्, उस काल में उस पर्याय

का सत्, द्रव्य की अपेक्षा रखे बिना, ध्रुव की अपेक्षा रखे बिना उत्पाद, उत्पाद से होता है। यह १०१ गाथा में आया है, प्रवचनसार। आहाहा! ऐसा होने से ज्ञाता, ज्ञानरूप परिणमता है, वह ज्ञान गुण है और द्रव्य ज्ञायक है। आहाहा! उसकी जो सम्यग्ज्ञान की पर्याय परिणमती है, उस पर्याय का षट्कारकपना पर्याय में पर्याय के कारण से है। भले उसका लक्ष्य द्रव्य के ऊपर हो, परन्तु लक्ष्य भी स्वतन्त्ररूप से वहाँ ऐसा लक्ष्य करता है। ऐसी बातें हैं, भाई! सूक्ष्म हैं। जगत को कठिन पड़ती है, क्या हो? सत् ही ऐसा पुकार रहा है।

मुमुक्षु : लक्ष्य किया तो पर्याय ने द्रव्य का अवलम्बन लिया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय ऐसे लक्ष्य करती है, इतना, परन्तु लक्ष्य स्वतन्त्ररूप से करती है, वह कर्ता होकर स्वयं पर्याय कर्ता होकर करती है। ऐसा है। कहो, रसिकभाई! कहाँ है इसमें तुम्हारे वहाँ कलकत्ता-फलकत्ता में कहीं। कहाँ गये भाई, गये? चम्पकभाई! आहाहा!

जीव के कर्ता-क्रिया-कर्म जीव में है,... अर्थात् उसकी पर्याय में है। भाषा तो क्या समझावे तब? जीव में, परन्तु वह जीव की पर्याय है, वह जीव की है न? व्यवहार से उसकी पर्याय है न, आहाहा! वह पर की नहीं है, इतनी अपेक्षा लेकर (ऐसा कहा है)। कथन का क्या हो? बापू! उपदेश की शैली ऐसी आती है। आहाहा!

पुद्गल के पुद्गल में हैं। वे यह तीन लेकर लेना—कर्ता-क्रिया और कर्म। परमाणुओं में, अरे! छहों द्रव्यों में—धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल की पर्याय का कर्ता-क्रियापना उसमें है, पर के कारण से नहीं है। गजब बात है न? आहाहा! **वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शादिरूप से पुद्गल परिणमित होता है,...** वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श है, वह तो गुण है। समझ में आया? वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श, वे तो परमाणु के गुण हैं, परन्तु वे परिणमते हैं पुद्गल, ऐसा कहने में आता है। वह पुद्गल, पुद्गल की पर्याय है; वह जीव की नहीं, इतना बतलाना है। समझ में आया? इसे संक्षिप्त भाषा किस प्रकार करना? स्पष्ट ही है। पर्याय, पर्याय के षट्कारक से होती है तो बात समाप्त हो गयी। यह सब बात इसमें आ गयी। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य पर्याय को न करे तो कर्ताशक्ति, करणशक्ति...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शक्ति ध्रुव है। पर्याय में कर्ता-कर्म की क्रिया वह पर्याय की पर्याय में है। वे तो गुण हैं, पर्याय में वह गुण नहीं आता। षट्कारक गुण है न? पर्याय में नहीं आता परन्तु ऐसा कहा जाता है कि गुण का परिणमन है, ऐसा कहा जाता है। परिणमन है परिणमन का, परन्तु वह गुण ध्रुव रहकर पर्याय हुई है, इसलिए ऐसा कहा जाता है। भाषा क्या होगी? आहाहा! गजब है।

मुमुक्षु : गुण का स्वभाव अपरिणामी और परिणामी है। दोनों स्वभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपरिणामी है द्रव्य-गुण। परिणामी स्वभाव पर्याय का।

मुमुक्षु : एक गुण में दो धर्म...

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण में दो नहीं। गुण अपरिणामी ही है।

मुमुक्षु : परिणामी स्वभाव कहाँ जाएगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह गुण तो अपरिणामी ध्रुव सदृश एकरूप है।

मुमुक्षु : परिणामी स्वभाव जो त्रिकाल है...

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणामी स्वभाव पर्याय का है, ऐसा परिणामी कहना है।

मुमुक्षु : पर्याय का त्रिकाल स्वभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल स्वभाव नहीं। एक समय की पर्याय... परमपारिणामिक भाव, वह परमपारिणामिक अर्थात् परिणमे, ऐसा वहाँ कहना नहीं है। वह परमपारिणामिक अर्थात् सहज स्वभावभाव, परमस्वभाव, वह पारिणामिक। यह नियमसार में आया है न? चेतना परिणाम और त्रिकाली, चेतना परिणाम, वह त्रिकाली गुण है और वर्तमान परिणाम चेतना है। दो लिये हैं। नियमसार में (लिये हैं)। आहाहा! चेतना जो त्रिकाली गुण है, वह तो ध्रुव है। वह परिणमती है, ऐसा कहना वह उसे समझाना है, इसलिए (ऐसा कहा है)। बाकी परिणमते हैं, वह गुण ध्रुव परिणमता नहीं, पर्याय परिणमती है, इसलिए परिणमन और अपरिणामी-ये दोनों वस्तुरूप से गिनने में आयी है। अपरिणामी द्रव्य और गुण तथा परिणामी पर्याय, इसलिए भाषा ऐसी बोली जाती है, पूरे प्रमाण का विषय करे, तब (ऐसी भाषा होती है) कि अपरिणामी परिणामरूप है। नित्य है, वह अपरिणामी है और अनित्य है, वह परिणाम है। इसलिए नित्यानित्य स्वरूप है, ऐसा कहने में आता है। ऐसी बातें हैं।

कहो, घीयाजी! यह ऐसा है। आहाहा! इसी प्रकार से है, उसमें इसमें फिर प्रश्न क्या? आहाहा!

पुद्गल के पुद्गल में हैं। वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शादिरूप से पुद्गल परिणमित होता है,... आहाहा! ये परमाणु वर्ण-गन्ध-रस तो त्रिकाली है और काली-हरी ऐसी जो दशा है, वह पर्याय है, वह पुद्गल परिणमता है, ऐसा कहा जाता है। चैतन्य परिणमता नहीं, ऐसा कहकर पुद्गल परिणमता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें अब। मार्ग तो यह है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। भगवान ने कहा है, किया नहीं है कुछ इस चीज़ को। कहो, सूरजमलजी! आहाहा! ऐसी बात है। न्याय के ग्रन्थ में ऐसा कहा है, आप्तमीमांसा में है न? धर्मी और धर्म दोनों भिन्न हैं। न्याय के ग्रन्थ में है। धर्मी द्रव्य और धर्म जो पर्याय (दोनों भिन्न हैं)। अरे! गुण लो तो भी द्रव्य से गुण भिन्न है, क्योंकि द्रव्य एकरूप है, गुण अनेकरूप है।

एक-अनेक गुण है न इसमें? सैंतालीस (शक्तियों में)। वस्तु एकरूप है, ऐसा एक गुण है और वस्तु द्रव्य-गुण-पर्याय तीन रूप है, ऐसा भी अनेक नाम का एक गुण है। आहाहा! अथवा उत्पादव्ययध्रुवत्व नाम का आत्मा में एक गुण है। आहाहा! वह गुण ध्रुव, ध्रुवरूप से रहकर पर्यायरूप से उत्पाद-व्यय हो, ऐसा उसका गुण है, तथापि वह गुण उत्पादरूप हो—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। चेतनजी! ऐसा है। जगत तो विरोध करे, एकान्त है ऐसा लगे। इसमें उसका कुछ दोष नहीं है। उसकी दृष्टि में यह जँचा है, उस प्रकार से ऐसा ही मानता है। आहाहा!

जीव उन्हें नहीं बदल सकता। जो परमाणुओं के पुद्गल में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श पर्यायरूप परिणमते हैं, उस समय की जो दशा है, उसे जीव बदल नहीं सकता। **चेतन के भावरूप से चेतन परिणमित होता है, जड़ पदार्थ उसमें कुछ नहीं कर सकते।** आहाहा! कर्म का अभाव होता है, इसलिए आत्मा अभावरूप परिणमता है, ऐसा नहीं है। आत्मा में ही एक ऐसा अभाव नाम का गुण है कि कर्म के अभावरूप होकर दशा कर्म में और यहाँ अपने ही कारण से अभावरूप परिणमती है। आहाहा! और अभाव नाम का जो गुण है, उसकी पर्याय में भी पर के अभावरूप पर्याय का स्वभाव है कि पर के अभावरूप अपने से होना। आहाहा! विशेष आयेगा... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसर कृष्ण -१२, मंगलवार, दिनाङ्क २६-१२-१९७८
वचनामृत- ४११ प्रवचन-१७०

वचनामृत ४११। उस दिन आधा पैराग्राफ चला है, फिर से।

अनन्त काल से जीव भ्रान्ति के कारण पर के कार्य करने का मिथ्या श्रम करता है,... कहा था न सवेरे? आत्मा की सत्ता द्वारा पर प्रवर्ते। वहाँ ऐसा कि आत्मा की सत्ता के कारण यह शरीर, वाणी, मन के कार्य होते हैं, ऐसा नहीं है। वे जड़ के कार्य भी उस समय में वह पर्याय उत्पन्न होने का उसका जन्मक्षण होता है। उस प्रकार से उसे शरीर को ऐसे हिलना-चलना आदि जो पर्याय होती है, उसकी उत्पत्ति के क्षण में-काल में वह उत्पन्न होती है। वास्तव में तो उस पर्याय की, उस परमाणु को काललब्धि है। जन्मक्षण कहो, काललब्धि कहो। भगवान के ज्ञान में दिखा है कि इस समय यह पर्याय इसे होगी—वह कहो, सब एक ही है। अर्थात् पर पदार्थ एक परमाणु या शरीर या वाणी, जड़, उसका आत्मा कुछ नहीं कर सकता। खाने की क्रिया के समय यह दाढ़ भी हिला नहीं सकता। आहाहा! वह क्रिया... वह परमाणु की पर्याय है। पहले कहा न? दाढ़ रोटी के वहाँ टुकड़े करती है, इससे दाढ़ हिलती है, वह आत्मा हिलाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह दाढ़ के परमाणु, उनका उस समय जन्मक्षण है, उसे ऐसे-ऐसे होने का (जन्मक्षण है); इसलिए वह पर्याय उसमें उससे होती है; आत्मा से नहीं। आहाहा! इतना समेटना।

मुमुक्षु : उसमें कुछ निमित्त नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ ही (यह है कि) वह कुछ करता नहीं, उसका अर्थ ही यह है, निमित्त का अर्थ ही यह है। निमित्त उसे कहते हैं कि पर का कुछ कर नहीं सकता, हों! पर का। तब उसे निमित्त कहा जाता है। आहाहा! वह तो यह प्रश्न हुआ था कि आत्मा की सत्ता द्वारा ये पर प्रवर्ते हैं। आत्मा ज्ञानस्वभावी वस्तु है, उसका स्व-पर प्रकाशक स्वभाव का जन्मक्षण है, उस काल में वह पर को जानता है, ऐसा कहने में आता

है। वास्तव में तो वह स्वयं अपनी पर्याय को जानता है। आहाहा! ऐसे दृष्टि को समेट लेना। कठिन बात है, परन्तु इसकी वस्तु का स्वरूप ही यह है। **अनन्त काल से जीव भ्रान्ति के कारण पर के कार्य...** अर्थात् शरीर के, वाणी के, आहार-पानी के (कार्य)। ऐसा कि मैं पानी पीता हूँ, उस पर्याय को मैं कर सकता हूँ। आहाहा! **परन्तु परपदार्थ के कार्य वह बिल्कुल नहीं कर सकता।** बिल्कुल नहीं कर सकता। निमित्त कहलाता है, इसका अर्थ वह कहीं पर निमित्त उसे नहीं करता, तब तो वह निमित्त कहलाता है।

प्रत्येक द्रव्य... यह महासिद्धान्त है। **प्रत्येक द्रव्य...** क्योंकि प्रवचनसार गाथा १०२ में कहा है कि छह द्रव्य जो ज्ञेय हैं, उनकी जिस समय-क्षण उत्पन्न होने का काल है, तब होता है। यह छहों द्रव्यों की बात है। ज्ञेय अधिकार है न? उस ज्ञेय में जीव, परमाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल—छह द्रव्य ज्ञेय हैं, उन्हें उस समय में वह अवस्था होती है, वह उसकी उत्पत्ति के काल से होती है। निमित्त से नहीं, पूर्व की पर्याय से नहीं, द्रव्य-गुण से नहीं। ऐसी कठिन बातें हैं।

प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्ररूप से परिणमित होता है। उसकी अवस्था स्वयं पर की अपेक्षा रखे बिना। आहाहा! उस-उस समय में, वह-वह पर्याय स्वतन्त्ररूप से (होती है)। वास्तव में तो वह द्रव्य और गुण की भी जिसे अपेक्षा नहीं है। इस प्रकार वह छह द्रव्य की पर्याय उस-उस काल में होती है। आहाहा! **जीव के कर्ता-क्रिया-कर्म जीव में है,...** जीव के कर्ता-कर्म-क्रिया... शब्द समझाना है न? बाकी वास्तव में तो कर्ता-कर्म-क्रिया पर्याय के पर्याय में है, परन्तु जीव की पर्याय में, ऐसा है न, इसलिए ऐसा कहा जाता है। आहाहा! **जीव के कर्ता-क्रिया-कर्म जीव में है,...** अर्थात् जीव की जो पर्याय है, वह पर्याय कर्ता-क्रिया और कर्म, उसकी एक समय की पर्याय में है। जीवद्रव्य जो है, उसकी जिस समय में जो पर्याय होती है, वह पर्याय कर्ता, कर्म, क्रिया षट्कारकरूप से परिणमती पर्याय होती है। आहाहा! इसमें पर की दया पाल सकूँ और पर को बचा सकूँ, यह बात नहीं रहती। आहाहा!

जीव के अर्थात् जीव की पर्याय के कर्ता-क्रिया-कर्म तीन बोल लिये परन्तु छहों बोल लेना। पर्याय कर्ता है, पर्याय कार्य है, पर्याय करण अर्थात् साधन है, पर्याय सम्प्रदान पर्याय हुई, होकर रखी है, पर्याय से पर्याय हुई है, पर्याय के आधार से पर्याय होती है। यह

पर्याय के कर्ता–क्रिया–कर्म परिणति पर्याय में है, पर के कारण नहीं। ऐसी गजब बातें! आहाहा! यह डॉक्टर का सब काम करते हैं, कहते हैं, यह सब जीव नहीं करता। शरीर को नहीं हिलाता। आहाहा!

पुद्गल के पुद्गल में हैं। अर्थात् ? परमाणु जो अनन्त हैं, जो ज्ञेय हैं, वह उनकी एक समय की पर्याय में उसमें षट्कारकरूप से परिणमन पर्याय का पर्याय में है। वह पुद्गल की पर्याय के पर्याय में हैं। आहाहा! जगत को ऐसी बात कठिन पड़ती है। क्या हो ? वस्तुस्थिति यह है। पुद्गल के कर्ता–क्रिया–कर्म पुद्गल में है।

रंग, वर्ण अर्थात् रंग। **वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शादिरूप से पुद्गल परिणमित होता है,...** यह पुद्गल पर्यायरूप से, रंगरूप से, गन्धरूप से, रसरूप से या स्पर्शरूप से उसकी पर्याय में जो काली, सफेद, लाल आदि पर्याय होती है, वह पर्याय वास्तव में तो उसके गुण और द्रव्य से भी नहीं। वह पर्याय उसके कर्ता, कर्म, षट्कारक से पर्याय होती है। आहाहा! ऐसा लोगों को एकान्त लगता है कि यह है। बापू! क्या हो ?

भगवान ज्ञायकस्वरूप भिन्न है। उसकी पर्याय भी स्वयं की स्वयं से होती है। जानने की पर्याय, पर को जानने की पर्याय (होती है), वह पर के कारण नहीं, अपने–द्रव्य–गुण के कारण से नहीं। आहाहा! ज्ञायक की पर्याय की परिणति उस षट्कारकरूप से परिणति, वह परिणति में होती है। उसे पर की कोई अपेक्षा नहीं है। आहाहा! केवली भगवान लोक (को) जानते हैं, यह भी व्यवहार है। वास्तव में तो उनकी पर्याय में षट्कारकरूप से केवलज्ञान की पर्याय परिणमती है, उसे जानते हैं। पर को जानते हैं—ऐसा कहना असद्भूत व्यवहारनय है। आहाहा!

जीव उन्हें नहीं बदल सकता। इस शरीर के वर्ण–गन्ध–रस–स्पर्श जो पर्यायरूप से परिणमते हैं, उस समय की उस पर्याय को जीव बदल नहीं सकता। आहाहा! **चेतन के भावरूप से चेतन परिणमित होता है,...** है ? ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा ज्ञान की पर्यायरूप होता है। चेतन के भावरूप चेतन परिणमता है। भाव अर्थात् पर्याय। भाव अर्थात् त्रिकाली है, वह तो शक्ति है परन्तु द्रव्य को भी भाव कहा जाता है, गुण को भी भाव कहा जाता है, पर्याय को भी भाव कहा जाता है। चेतन के भावरूप अर्थात् कि उसकी वर्तमान पर्याय / अवस्थारूप चेतन पर्याय स्वयं परिणमित होती है। आहाहा! **जड़ पदार्थ उसमें**

कुछ नहीं कर सकते। भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभावभाव की वर्तमान पर्याय स्व-पर प्रकाशकरूप पर्याय परिणमती है, वह अपने षट्कारक से परिणमती है। उसमें दूसरे तत्त्व कुछ नहीं कर सकते। आहाहा! यहाँ तक तो उस दिन आया था।* पहला पैराग्राफ आया था। चौथ, मागसर शुक्ल चौथ। यहाँ तक आया था।

तू ज्ञायकस्वभावी है। आहाहा! तू तो जाननस्वभावी... जाननस्वभावी... जाननस्वभावी... है। आहाहा! ज्ञायकस्वभावी है। **पौद्‌गलिक शरीर-वाणी-मन से तो तू भिन्न ही है,...** वे तो जड़-मिट्टी हैं, उनसे तो भिन्न है—ऐसा कहते हैं। परिणाम की बात बाद में लेंगे। शरीर से तो, वाणी से, मन से तो भिन्न है परन्तु, 'परन्तु' क्यों कहा? कि दूसरा बोल लेना है इसलिए। **परन्तु शुभाशुभभाव भी तेरा स्वभाव नहीं है।** हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना, काम-क्रोध के भाव होना, वह भी कहीं तेरा त्रिकाली स्वभाव वस्तु नहीं है। आहाहा! तथा दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का विकल्प उठता है, वह कहीं तेरा स्वभाव नहीं है। आहाहा!

अज्ञान के कारण तूने पर में तथा विभाव में एकत्वबुद्धि की है,... अज्ञान के कारण; कर्म के कारण नहीं। स्वभाव ज्ञायक है, जाननहार... जाननहार... परम ब्रह्म भगवान है। उसके अज्ञान के कारण, उसके जानपने के अभाव के कारण। आहाहा! तूने पर में-पर अर्थात् शरीर, वाणी, मन, आदि पर में तथा विभाव में अर्थात् शुभाशुभ में—दो बोल आये न ऊपर? पर में और शुभाशुभभाव में। आहाहा! **पर में तथा विभाव में एकत्वबुद्धि की है...** एकत्वबुद्धि की है, एकत्व है नहीं। भगवान तो निराला है। आहाहा! राग से तो निराला है, पर से तो निराला है परन्तु राग के विकल्प से भी निराला ही है। कभी एकत्व हुआ ही नहीं, परन्तु इसने एकत्वपना माना है। यह माना है, वह स्वरूप में नहीं है। आहाहा! है?

अज्ञान के कारण तूने पर में तथा विभाव में एकत्वबुद्धि की है, वह एकत्वबुद्धि छोड़कर... तूने एकत्वबुद्धि की है; एकत्व है नहीं। ज्ञायकस्वभाव जो भगवान चैतन्यदल, वह तो निराला, राग से त्रिकाल निराला है। पर्याय में, हों! परन्तु इसने माना है कि यह राग

* दिनांक .... से .... तक प्रवचन नहीं हुए थे।

(वह मैं)। यह अन्तर में, यह स्वरूप है, उसका ज्ञान नहीं है; इस कारण राग हूँ, वहाँ अस्तित्व माना है, इसलिए इसने वहाँ एकत्वबुद्धि की है। आहाहा! ज्ञायकस्वरूप हूँ, पूर्णानन्द ज्ञान रसकन्द जाननस्वभाव का सूर्य, उसके अज्ञान के कारण राग में एकत्वबुद्धि तूने स्वयं खड़ी की है। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा तो विकार करने को समर्थ नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसने कहा? पर्याय करती है, ऐसा कहा न, पर्याय में ही करता है, ऐसा कहा न! वस्तु में नहीं है। वस्तु तो निराली है, परन्तु पर्याय में एकत्वबुद्धि करता है किन्तु वह एकत्वबुद्धि करता है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव है, वह भी वस्तु में नहीं है। आहाहा! ऐसा है।

तूने पर में एकत्वबुद्धि की है। **वह एकत्वबुद्धि छोड़कर...** तूने की है तो उसे छोड़कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञायक, जाननतत्त्व स्वयंसिद्ध वस्तु ध्रुव है, सत् है, उसमें उसका तुझे अज्ञान के कारण उसमें नहीं है, ऐसे राग में एकत्वबुद्धि है। नहीं है, उसमें की है। उसमें है नहीं तथा उस पर्याय में एकत्वबुद्धि की है। आहाहा! वह एकत्वबुद्धि छोड़। तूने की है तो छोड़। आहाहा! पर्यायदृष्टि में; द्रव्यदृष्टि को लक्ष्य में लिये बिना पर्यायदृष्टि से राग के विकल्प को एकत्वबुद्धि मानी है, उस पर्यायबुद्धि को छोड़। आहाहा! ऐसा कठिन काम है। है तो इसकी जाति की काम की वस्तु। आहाहा! अभ्यास नहीं और अभी तो पूरा प्रवर्तन बदल गया है। आहाहा! पूरा संघ निकला है... मार्ग में। लोग हाथी को... हाथी तो पीछे रह गया और भी कितने साधु... एकदम जल्दी-जल्दी उठकर चलते थे। पालीताणा जाने के लिये। यहाँ आयेंगे। लोग ऐसा मानते हैं यह सब चलते हैं, वह अपनी क्रिया है, हम करते हैं। अपनी यात्रा पालीताणा में होती है। बहुत कठिन काम, बापू!

मुमुक्षु : पालीताणा की यात्रा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पालीताणा की अर्थात् क्या? वहाँ शुभ पर्याय हो कदाचित् स्वयं, तो उस शुभ की क्रिया को करे। आहाहा! पर की वाणी को, स्तुति को तो कुछ कर नहीं सकता, पैर को शत्रुंजय के कारण ऐसे हिला नहीं सकता, ले नहीं सकता। आहाहा!

मुमुक्षु : .....बहुत कठिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी है न, बापू! आहाहा! इस प्रकार से न हो तो किसी प्रकार से वस्तु सिद्ध नहीं होगी। द्रव्य सिद्ध, गुण सिद्ध, पर्याय सिद्ध। तीनों सत् है न? तीनों सत् है न? द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् और सत् होवे उसे हेतु नहीं होता। बन्ध में आता है, बन्ध अधिकार। द्रव्य, गुण, पर्याय तीन बोल वहाँ आते हैं। द्रव्य को, सत् है इसलिए कोई हेतु नहीं होता; गुण सत् है, इसलिए कोई हेतु नहीं होता और पर्याय-अवस्था भी सत् है, इसलिए कोई हेतु नहीं होता। उसे द्रव्य-गुण का भी हेतु नहीं है। आहाहा! अरे रे! यह बात इसे जँचे कब?

आत्मा में जो राग होता है, कहते हैं, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का (राग होता है), वह आत्मा में नहीं, पर्याय में होता है और वह पर्याय में भी षट्कारक के कर्ता, कर्म, परिणति से तुझमें होता है। वह तुझे क्यों होता है? कि जो ज्ञायकस्वरूप जो वस्तु है, चैतन्यमूर्ति भगवान (है), उसके अज्ञान के कारण, उसके अभान के कारण, उसके बेभान के कारण (होता है)। बेभान कहो, या अज्ञान कहो। बेभान अर्थात् दो का भान, ऐसा नहीं। आत्मा का भान और पर्याय का भान, ऐसा बेभान, ऐसा नहीं है। बेभान अर्थात् अभान। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप परमात्मा के अज्ञान के कारण वह राग की क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति की क्रिया भी मेरी है और मैं करता हूँ, यह अज्ञान है। ऐसी बात है। है?

वह एकत्वबुद्धि छोड़कर तू ज्ञाता हो जा। तेरा स्वरूप ही जानना-देखना स्वरूप है। तू ज्ञातादृष्टा है। जगत ज्ञेय और दृश्य, यह भी व्यवहार है। आहाहा! तू जानने-देखनेवाला और दृश्य तथा ज्ञेय पर, यह भी व्यवहार है। तू ज्ञातादृष्टा और तेरी द्रव्य-गुण-पर्याय का जानने-देखनेवाला तू (है)। आता है न अन्तिम? ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय तू है। ज्ञाता आत्मा और ज्ञेय परद्रव्य, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा है। ज्ञाता जाननेवाला तू; ज्ञात हो, वह भी तू; जानने की परिणति होती है, वह भी तू। उसे तू जान, परिणति गुण और द्रव्य को (जानने की)। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : अपने भी तीन भेद हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद है, इतना व्यवहार-सद्भूतव्यवहार है न! वह सद्भूत - व्यवहार कहा। ज्ञान, वह आत्मा-यह सद्भूतव्यवहार अनुपचार। (समयसार) ११वीं

गाथा में। यह जानूँ वह ज्ञान, वह आत्मा इतना जो भेद है, वह सद्भूत पर्याय अपने में है। इसलिए सद्भूत, परन्तु ज्ञान, वह आत्मा ऐसा भेद पड़ता है, वह व्यवहार है और वह अनुपचार है। आहाहा! परन्तु है व्यवहार, है निषेध्य। आहाहा! और यह ज्ञान अपना होने पर भी, राग को जानता है-ऐसा कहना, वह भी सद्भूत उपचार है, वह भी निषेध्य है। आहाहा! ऐसी बात जगत को कठिन पड़ती है। लोगों को अभ्यास नहीं है। वास्तविक तत्त्व की यह स्थिति है। आहाहा!

चार बोल आते हैं। (समयसार) ११वीं गाथा में (आते हैं)। सद्भूत अनुपचारव्यवहार, सद्भूत उपचारव्यवहार, असद्भूत अनुपचारव्यवहार, असद्भूत उपचारव्यवहार। चारों ही निषेध्य है। अर्थात्? कि ज्ञान, वह आत्मा—ऐसा भेद पड़ता है परन्तु है अपना ज्ञान; इसलिए सद्भूत है परन्तु भेद पड़ा, वह व्यवहार है और इसलिए वह अनुपचार है। ज्ञान आत्मा है, वह अनुपचार है और ज्ञान है; वह राग को जानता है, ऐसा कहना, वह सद्भूत ज्ञान अपना अपने में है, उसे जानता है, ऐसा कहना वह उपचार है, सद्भूत उपचार है। अब राग असद्भूत है। यह दो तो सद्भूत में डाले। अब राग जो है, वह असद्भूत, द्रव्य-गुण-पर्याय नहीं। निश्चय में स्व में; इसलिए उस राग को असद्भूत कहकर और जानने में आता है, इतने राग को असद्भूत उपचार कहते हैं। आहाहा! और उस समय में राग जानने में नहीं आता, वह है—ऐसा जानना, उस असद्भूत अनुपचारव्यवहार कहते हैं। ये चारों ही अभूतार्थ हैं, सत्य को सिद्ध-साबित नहीं करते, क्योंकि ये पर्याय के भेद में इस प्रकार पड़ते हैं, वे वस्तु में नहीं हैं। आहाहा!

चारों ही नयों को अविद्यमान असत्यार्थ कहने में आया है। क्यों?—कि भगवान आत्मा अपने अभेदस्वरूप को जहाँ अनुभव करता है और देखता है, उसमें यह ज्ञान, वह आत्मा—ऐसा भेद उसमें दिखायी नहीं देता। आहाहा! अभेद में भेद दिखायी नहीं देता, इसलिए भेद को 'नहीं-अविद्यमान है' ऐसा कहने में आया है। आहाहा! ऐसी वस्तु है। अनजाने व्यक्ति को तो यह लगे कि यह क्या कहते हैं यह? बापू! प्रभु! मार्ग कोई ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : वस्तु का ही भेद होने पर भी अवस्तु क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद का भेद है न! भेद है, वह व्यवहार हो गया। अभेद है, वह

निश्चय है। एक समय की पर्याय है, ऐसा द्रव्य में भेद पड़ा। आहाहा! वस्तु अभेद को जानने पर... जानती है, वह वापस पर्याय; परन्तु वह पर्याय अभेद को जानती है, वहाँ उसमें भेद दिखायी नहीं देता। वह पर्याय, भेद को जानती है, तथा वह पर्याय भी अलग है, ऐसा उसमें दिखायी नहीं देता।

मुमुक्षु : अभिन्न हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिन्न हुई नहीं, इस ओर ढल गयी है। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य को अपने से भिन्न है, ऐसा पर्याय जानती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भेद भी कुछ नहीं है। वह तो पर्याय यह अन्दर जानती है, बस। पर्याय, पर्याय में रहकर अभेद को जानती है परन्तु ऐसे रहकर जानती है, ऐसा भी वहाँ भेद नहीं है। वह तो... आहाहा! ऐसा है। मार्ग की पद्धति ऐसी है। सुनने में मिले नहीं, इसलिए कहीं वस्तु दूसरी हो जाएगी? वस्तु तो जो है, वह है। आहाहा! **वह एकत्वबुद्धि छोड़कर तू ज्ञाता हो जा।** जाननेवाला हो जा। पश्चात् पर्याय में जाननेवाला हो जा, ऐसा हुआ न! ज्ञाता तो है परन्तु पर्याय में जाननेवाला हो जा। जाननेवाला ज्ञाता है, वह कोई... आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय को भिन्न करना, यह पोषावे ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञाता हो जा, इतनी बात है। जाननेवाला हो जा, बस ऐसा। जाननेवाला हो जा, बस इतना। जाननेवाली पर्याय और जाननेवाला भिन्न, ऐसे दो उसमें कुछ नहीं है। हैं तो दो, परन्तु दो लक्ष्य में नहीं, ऐसा कहना है। हैं तो दो, तो भी दो लक्ष्य में नहीं हैं। लक्ष्य में एक अभेद है। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : आत्मा और राग हैं तो दो, परन्तु लक्ष्य में एक करता है, ऐसे आत्मा और पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है। राग तो विभाव है, परवस्तु है और यह जानने की पर्याय तो इसकी स्वयं की पर्याय है। पर्यायरूप से, हों! राग तो इसकी पर्यायरूप से भी नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! यह राग की एकत्वबुद्धि मिथ्याभ्रान्ति है। चाहे तो वह दया, दान, व्रत, भक्ति का हो। आहाहा! तब वह आया था न रामविजय

की ओर से कि ऐसा सब तुम कहोगे तो यह सब उड़ जाएगा और कुछ करने का रहेगा नहीं। उसके लोग आये थे। आहाहा! चाहे जो करो, बापू! चाहे जैसे तुम मानो परन्तु वस्तु तो ऐसी है। बात तो उसे सबको यह सब क्रियाकाण्ड से धर्म मनाना है न, और इससे उन्हें निश्चय होगा, वस्तु होगी, ऐसा मानना है। आहाहा!

यहाँ तो यह राग की एकत्वबुद्धि जो है... क्योंकि द्रव्यस्वभाव जो ज्ञायक है, उसका उसे अन्दर यह महाप्रभु चैतन्य रसकन्द है, ध्रुव है, इसका उसे ज्ञान नहीं होने से, अज्ञान के कारण जो उसमें नहीं है और कृत्रिम खड़ा हुआ विकल्प / राग है, उसे अपने रूप से एकत्व में मानता है, यह भ्रान्ति है, यह मिथ्यात्व है। अनन्त संसार का गर्भ इसमें - मिथ्यात्व में पड़ा है। आहाहा! अरे..रे..! क्या हो?

ज्ञाता हो जा। शुद्ध आत्मद्रव्य की यथार्थ प्रतीति करके... शुद्ध भगवान त्रिकाली भगवान ज्ञायक द्रव्यस्वभाव शुद्ध आत्मद्रव्य, शुद्ध आत्मद्रव्य; पर्याय नहीं। **शुद्ध आत्मद्रव्य की यथार्थ प्रतीति...** धारणा में ले लिया कि यह शुद्ध द्रव्य है, ऐसा नहीं। शुद्ध द्रव्य जो वस्तु-महासत्ता है, चैतन्यसत्ता प्रभु है, उसकी यथार्थ—यथार्थ जैसा पदार्थ है, वैसी ही उसकी प्रतीति अन्तर में सन्मुख होकर, आहाहा! करके... **यथार्थ प्रतीति करके...** प्रतीति की, यह तो हुआ उसमें वापिस। पर्याय में प्रतीति की। वास्तव में तो वह प्रतीति होती है, वह षट्कारक के परिणमन से होती है। यह क्या कहा? 'करके' कहा है न इसमें? करके, करके करने पर... प्रतीति करके अर्थात् प्रतीति भी षट्कारक से, परिणमन से होती है। आहाहा! मात्र ऐसा लक्ष्य बदलता है। आश्रय करता है, इसका अर्थ कि लक्ष्य बदलता है। लक्ष्य बदलता है, इसलिए कहीं द्रव्य उसे लक्ष्य देता है... आहाहा!

मुमुक्षु : शब्द प्रमाण अर्थ तो होना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शब्द प्रमाण अर्थ यह है। पर्याय का जो लक्ष्य पर के ऊपर था, अपने ज्ञायक द्रव्यस्वभाव की दृष्टि नहीं थी, इसलिए उसकी राग के ऊपर दृष्टि थी, उसे-लक्ष्य को बदल डालता है। वहाँ लक्ष्य था पर्यायबुद्धि में। भाषा दूसरी चाहे जैसी करो परन्तु बात पर्यायबुद्धि में लक्ष्य था, वह द्रव्यबुद्धि में लक्ष्य जाता है, बस इतना। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वस्तु तो वस्तु है, वह है परन्तु उसका जो पर्याय में लक्ष्य जो

ऐसा था, राग में अस्तित्वरूप से स्वयं मानता था। क्योंकि पूरा यह अस्तित्व है, वह तो दृष्टि में-ज्ञान में है नहीं। महाप्रभु ज्ञायक का अस्तित्व है, सत्ता है, मौजूदगी-अस्तिरूप परमार्थ पदार्थ है, उसके अस्तित्व की ओर का तो श्रद्धा का अभाव है। इसलिए यहाँ राग के अस्तित्व में श्रद्धा रुक गयी है। आहाहा! वह अब छोड़। तू रुका हुआ है, तू अब छोड़। कोई कर्म के कारण है या ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : छोड़, वह किस प्रकार? छोड़ यह बराबर है, परन्तु किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : पद्धति यह कि उसके ऊपर से लक्ष्य छोड़। छोड़ना इसे है, इसे छोड़ना है, उसे कैसे करना, यह प्रश्न कहाँ आवे। आहाहा! जो ज्ञायकस्वरूप भगवान महाप्रभु तो विराजता है। सच्चिदानन्द ध्रुव नित्यानन्द प्रभु महासत्ता, उस सत्ता के सत्त्व की तो श्रद्धा नहीं, उसका तो अज्ञान है; इसलिए वह वर्तमान के राग में अपना अस्तित्व मानता है। इस अस्तित्व की खबर नहीं, इसलिए यहाँ राग का विकल्प उठता है, उसमें अपने रूप एकत्वबुद्धि से अस्तित्व मानता है। आहाहा! देवीलालजी! ऐसा है।

उसे छोड़कर **आत्मद्रव्य की यथार्थ प्रतीति करके—शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके,...** ऐसा। दो लाईन क्यों की? —कि शुद्ध आत्मद्रव्य की यथार्थ प्रतीति करके अर्थात् ऐसा, अर्थात् क्या ऐसा? शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके तू...! **आत्मद्रव्य की यथार्थ प्रतीति करके...** अर्थात् कि **शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके,...** ऐसा, लाईन की है न। आहाहा! जो वर्तमान पर्यायदृष्टि में, रागदृष्टि में है—ऐसा तूने माना है, उसे द्रव्यदृष्टि में जा। उस द्रव्यदृष्टि को प्रगट कर। आहाहा! शुद्धद्रव्यदृष्टि प्रगट करके त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवान आत्मा की दृष्टि प्रगट करके, यह पर्याय है। द्रव्यदृष्टि, द्रव्यदृष्टि है न? द्रव्यदृष्टि प्रगट करके, द्रव्य प्रगट करके नहीं।

शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके,... अर्थात्? पर्याय उस काल में होती है। आहाहा! शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके; शुद्ध द्रव्य प्रगट करके नहीं। दृष्टि द्रव्य को जानती है, विषय जानती है। दृष्टि में द्रव्य की जितनी सामर्थ्य है, उतनी प्रतीति में आती है। दृष्टि में द्रव्य नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? **शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके, तू ज्ञायकपरिणति प्रगट कर...** देखा? ज्ञायकपरिणति। जो राग की परिणति है... तो ज्ञायकपरिणति। ज्ञायक तो

त्रिकाल है, उसकी वर्तमान शुद्ध परिणति प्रगट कर। आहाहा! ज्ञायक प्रगट नहीं करना है। आहाहा! ज्ञायक तो ज्ञायक है।

(समयसार) ११वीं गाथा में नहीं आया? कि व्यवहार विमोहित मूढ़ जीव आत्मा को–ज्ञायक को तिरोभूत करते हैं। वह ज्ञायक तिरोभूत नहीं होता। ज्ञायक तो जो है, वह अनादि से है परन्तु जिसकी राग में विमोहित बुद्धि हुई है, उसे ज्ञायक लक्ष्य में नहीं आया, इसलिए उसे उसकी दृष्टि में तिरोभूत हुआ। वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! ११वीं गाथा में आता है। और शुद्धनय की दृष्टिवन्त भूतार्थदर्शी शुद्धनय से स्थापित ऐसी चीज़ पर दृष्टि देने से... आहाहा! वह भूतार्थ को देखता है। वह भूतार्थ है, उसे आविर्भाव करता है। भूतार्थ है, उसका आविर्भाव नहीं होता, वह तो है वह है परन्तु उसे जो आविर्भाव नहीं था, पर्याय में लक्ष्य नहीं था, उसे पर्याय में प्रगट किया, उसे ज्ञायक आविर्भाव हुआ, ऐसा कहने में आता है। ज्ञायक आविर्भाव और ज्ञायक तिरोभाव–ऐसा नहीं होता। ज्ञायक तो त्रिकाली एकरूप शुद्ध त्रिकाल है। आहाहा!

मुमुक्षु : दृष्टि ने तो ज्ञायक का कब्जा कर लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कब्जा किया नहीं। उसका सामर्थ्य है, उतना प्रतीति में ले लिया है। कही जाती है भाषा ऐसी, परन्तु वास्तव में तो उसकी सामर्थ्य जितनी है, उतनी प्रतीति में ले लिया है। सामर्थ्य तो सामर्थ्य में रही है। आहाहा! नये लोगों को तो भारी कठिन लगे। ऐसा उपदेश किस प्रकार का? जगत के प्रवाह से अलग प्रकार है, भाई! आहाहा! अब तो लोग सुनते हैं। कल देखो लोग... आहाहा! समाते नहीं लोग। क्या कहलाता है? भाटिया की वाड़ी। कितने लोग! तीन हजार या कितने लोग। रात्रिचर्चा में साढ़े पाँच सौ लोग उसके घर में। बहुत उदार व्यक्ति है। रात्रि में उसने पेड़ा की प्रभावना की थी। साढ़े पाँच सौ देखे, रात्रिचर्चा में साढ़े पाँच सौ पेड़ा। बहुत उदार व्यक्ति। पहले वहाँ गये थे, फिर मणिनगर में दूध पिया। दस हजार रुपये दिये, दस हजार कारखाना की ओर से ज्ञानखाते में। आहाहा! उसकी क्या कीमत है? आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानखाते में प्रयोग करे तो ज्ञान बढ़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब वस्तु समझने जैसी है। व्यवहार से ऐसा कहा जाता है।

बाकी तो ज्ञान में एकाग्र होवे, तब ज्ञान बढ़ता है। आहाहा! ऐसा कहने में आता है न, कुन्दकुन्दाचार्य ने वह पुस्तक दी। वह सब व्यवहार हुआ था। पुस्तक दी न मुनि को? वन में थे। इसलिए ऐसा कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य को ज्ञान का क्षयोपशम हुआ। सब बातें-व्यवहार की बातें सब ऐसी होती है। आहाहा! और जहाँ त्यागधर्म आता है, उसमें अर्थ में आता है। दस प्रकार के दस धर्म है न? पद्मनन्दिपंचविंशति में त्यागधर्म में (आता है)। स्वयं के पास कोई पुस्तक हो या ऐसा हो, वह दूसरे को दे, उसे त्याग गिनना। यह अपेक्षा के वचन हैं। उसमें जरा राग ऐसा उस ओर का-आसक्ति का राग छोड़ा, उसे त्याग कहते हैं। बाकी राग का त्याग भी कहाँ आत्मा में है? राग से रहित अपने स्वरूप में स्थिर होता है, तब उतना राग का जो अंश था, वह पुस्तक उस ओर है, वह ऐसे दिया, उसने राग छोड़ा, ऐसा कहने में आया? इसलिए उससे ज्ञान बढ़ेगा, (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : राग छोड़ा या मुनि को वह...

पूज्य गुरुदेवश्री : दिया-विया कुछ नहीं।

मुमुक्षु : वह राग छोड़ा या राग किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इतना राग छोड़ा है। राग का त्याग किया है, त्यागधर्म है न! परन्तु राग का त्याग भी इस अपेक्षा से है। ज्ञान में एकाग्र विशेष हुआ है और इससे राग का अंश जो था, उस पुस्तक की ओर का लक्ष्य (था), वह छूट गया है। ऐसी बातें हैं। अरे रे!

मुमुक्षु : वास्तव में तो राग उठा ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग उत्पन्न होता ही नहीं। उसे कहने में आता है। (समयसार) ३४ गाथा में नहीं आता? राग का त्याग कर्तापने का नाममात्र है। है? परमार्थ से राग के त्याग का कर्ता प्रभु नहीं है। आहाहा! अरे बापू! यह तो कोई बात है।

शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके, तू ज्ञायकपरिणति प्रगट कर... आहाहा! **कि जिससे मुक्ति का प्रयाण प्रारम्भ होगा।** आहाहा! मुक्ति का प्रयाण-पन्थ। आहाहा! ऐसा तो कहा नहीं? '**स हि मुक्त एव**' सर्वविशुद्ध (अधिकार में) लगभग १९८ कलश है। १९८ कलश। जो १४-१५ गाथा में अबद्धस्पृष्ट कहा है, उसे यहाँ कलश में **स हि मुक्त** कहा है।

१९८ कलश है। सर्वविशुद्ध अधिकार। **स हि मुक्त** प्रभु! **स हि मुक्त** है। उसे यहाँ अबद्धस्पृष्ट कहकर उसे देखता है, उस मुक्त को देखता है, वह जैनशासन को देखता है। आहाहा! १४ और १५ में आता है न? अबद्धस्पृष्ट। वहाँ ऐसा लिया है, संक्षिप्त है नास्ति से। वहाँ ऐसा कहा सर्वविशुद्ध... ऐसा है। गाथा कुछ। समझे न? कोई निर्वेद को प्राप्त हुआ, ऐसा है। गाथा ३१८ या उसमें कहीं है। उसका यह कलश है। '**स हि मुक्त**' आहाहा! भगवान तो मुक्तस्वरूप है। पर्याय में मुक्त होता है, वह प्रयाण शुरु हुआ तब होता है, ऐसा कहते हैं।

ज्ञायकपरिणति प्रगट कर कि जिससे मुक्ति का प्रयाण... पर्याय की मुक्ति। मुक्तस्वरूप तो वह है। आहाहा! ऐसा है, भाई! कथनशैली... **जिससे मुक्ति का प्रयाण प्रारम्भ होगा।** मुक्ति अर्थात् अनन्त-अनन्त आनन्द के लाभ की प्राप्ति, वह मुक्ति है। नियमसार में आता है। आत्मलाभ आता है। अनन्त आनन्द का आत्मलाभ अर्थात् मुक्ति। आहाहा! ऐसी मुक्ति का प्रयाण अर्थात् साधन-पन्थ शुरु होता है। आहाहा! यह तो निर्मानी व्यक्ति हो और अपना काम करना हो, उसके लिये बात है, बापू! आहाहा! बाहर प्रसिद्धि का भाव हो और मानों मैं बाहर प्रसिद्ध होऊँ। बाहर प्रसिद्ध हो, वह बहिर आत्मा का भाव हो। आहाहा! जिसे अन्दर जाने का भाव है, (उसके लिए यह बात है)। आहाहा! कहो, नवलचन्दभाई! समझ में आया या नहीं? यह सब ऐसा सूक्ष्म है। वहाँ तुम्हारी बहियों में नहीं मिलेगा और कहीं बाहर में भी नहीं मिलेगा, लो! आहा! यह पैराग्राफ नहीं पढ़ा था। यह अन्तिम उस दिन, वह पहला पढ़ा था।

तू ज्ञायकपरिणति प्रगट कर... यह जाननस्वभाव भगवान त्रिकाली ज्ञायक की राग की एकत्वबुद्धि छोड़कर ज्ञायक की परिणति प्रगट कर, उसका उत्पाद कर। राग की एकत्वबुद्धि का व्यय, ज्ञायकपरिणति का उत्पाद, ज्ञायकरूप से ध्रुव तो त्रिकाल है। आहाहा! **जिससे मुक्ति का प्रयाण प्रारम्भ होगा।** प्रभु! तेरी प्रभुता भरपूर पूर्ण है, वह पर्याय में प्रभुता पूर्ण होने के पन्थ में तू आया। आहाहा! तेरी प्रभुता का पार नहीं होता, प्रभु! ऐसी प्रभुता के एक-एक गुण में प्रभु गुण है न? प्रभुत्वगुण है न आत्मा में? और एक गुण का रूप अनन्त गुण में है। ज्ञान प्रभु, दर्शन प्रभु, चारित्र प्रभु, आनन्द प्रभु, अस्तित्व प्रभु इत्यादि। ऐसी एक-एक शक्ति में प्रभुत्वशक्ति का रूप पड़ा है। भले प्रभुत्वगुण है, वह

दूसरे गुण में नहीं जाता परन्तु उसका जो अस्तित्व का स्वरूप है, वैसा स्वरूप वहाँ उसका ज्ञान में, आनन्द में प्रभुत्वस्वरूप रूप है। ऐसे अनन्त गुण में प्रभुत्वस्वरूप, ईश्वरस्वरूप पड़ा है, प्रभु! आहाहा! उसके एक-एक गुण में प्रभुता है, ऐसे अनन्त गुण की प्रभुता का प्रभु ज्ञायकभाव है। आहाहा! उस पर नजर पड़ने से तुझे ज्ञायक की परिणति होगी। उससे मुक्ति का प्रयाण तुझे प्रारम्भ होगा। आहाहा! समझ में आया?

जिससे मुक्ति का प्रयाण... आहाहा! **प्रारम्भ होगा**। ४११, दो एक के अंक है न। यह मुक्ति के प्रयाण का अर्थ (यह कि) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति तुझे प्रगट होगी। आहाहा! और वह परिणति मुक्ति का प्रयाण है, पूर्ण दशा की प्राप्ति का कारण है। आहाहा! वह तुझे आरम्भ होगी। आरम्भ होगी, वहाँ तुझे पूर्णता होगी। यह ४११ (बोल पूरा हुआ)। लो! विशेष आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसर कृष्ण -१३, बुधवार, दिनाङ्क २७-१२-१९७८
वचनामृत- ४१२ से ४१३ प्रवचन-१७१

मरण तो आना ही है, जब सब कुछ छूट जाएगा। बाहर की एक वस्तु छोड़ने में तुझे दु:ख होता है, तो बाहर के समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एकसाथ छूटने पर तुझे कितना दु:ख होगा? मरण की वेदना भी कितनी होगी? 'कोई मुझे बचाओ' ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा? तू भले ही धन के ढेर लगा दे, वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें, आसपास खड़े हुए अनेक सगे-सम्बन्धियों की ओर तू भले ही दीनता से टुकुर-टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है? यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की प्रतीति-अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी, आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी। इसलिए अभी से वह प्रयत्न कर। 'सिर पर मौत मंडरा रहा है' ऐसा बारम्बार स्मरण में लाकर भी तू पुरुषार्थ चला कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है॥४१२॥

४१२ वचनामृत। **मरण तो आना ही है...** सब छूटनेवाला है। आहाहा! **बाहर की एक वस्तु छोड़ने में तुझे दु:ख होता है, तो बाहर के समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव...** बाहर के सब द्रव्य, सब क्षेत्र, सब काल की दशाएँ आदि पर की, सबके भाव एकसाथ छूटने पर **तुझे कितना दु:ख होगा?** शरीर मेरा है, जो मानना इसे कठिन पड़ता है मेरा नहीं ऐसा। मेरा मानना इसे ठीक पड़ता है। आहाहा! ऐसे शरीर के सम्बन्धी, वे मेरे सम्बन्धी हैं। आहाहा! छूटने के समय एक चीज़ छूटने पर दु:ख होता है तो सब छूटने पर तुझे कितना दु:ख होगा? आहाहा! भाषा है चार? **समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव तुझे कितना दु:ख होगा?**

मरण की वेदना भी कितनी होगी ? पर के साथ जहाँ एकत्वबुद्धि है... आहाहा! एक जगह ऐसा कहा था न कि तुझे स्थिरता से भले सब न छूटे तो श्रद्धा से तो छोड़। आहाहा! मेरा कोई नहीं है, राग का कण भी मेरा नहीं है। मैं चैतन्य ज्ञानानन्द ज्ञायकस्वरूप हूँ। इसके अतिरिक्त राग का कण या रजकण मेरा नहीं है, मुझमें नहीं है, उनमें मैं नहीं हूँ। यह तो छोड़, ऐसा कहते हैं। स्थिरता होकर अस्थिरता छूटे वह और अलग है परन्तु श्रद्धा में यह आत्मा आनन्द है, ज्ञानस्वरूप है और इसके अतिरिक्त राग का कण और रजकण भी पर है, ऐसा श्रद्धा से तो छोड़। नहीं तो तुझे दु:ख होगा। आहाहा! श्रद्धा में से वह पर है, ऐसा नहीं छूटेगा तो छूटने के काल में... आहाहा! तेरी नजरें वहाँ ही रहेगी। तुझे दु:ख की पीड़ा होगी, एकत्वबुद्धि की (पीड़ा होगी)। आहाहा!

मरण की वेदना भी कितनी होगी ? 'कोई मुझे बचाओ' ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। कौन बचावे ? आहाहा! **ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा।** उनसे छूटना तुझे नहीं रुचेगा क्योंकि एकत्वबुद्धि है इसलिए; और छूटने के सब भनकार बजेंगे, डॉक्टर भी ऐसा कहते हैं कि अब रह नहीं सकेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : डॉक्टर कहते हैं कि आठ दिन चले, इतना खून है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब थोड़ा चलेगा, यह तो ऐसा है और सब बातें करे। आहाहा!

हृदय पुकारता होगा। परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा ? आहाहा! वहाँ से यह उठते थे न जब पालेज से, लड़के हैं न सब वहाँ नटु। नाना ने एक गायन बनाया था उसने। मुझे कोई बचाओ रे, यह ऐसा कि यह समवसरण बिखरता है, यह चले जाएँगे, ऐसा। बहुत करुणाजनक भाषा बोली थी। छोटा है नटु।

यहाँ तो मुझे कोई बचाओ अर्थात् यह देह छूटती है, इसमें से कोई बचाओ। आहाहा! तब देखो न अमोलकभाई का राजकोट में (संवत्) १९९९ में पूरा कुटुम्ब इकट्ठा हुआ था। नानालालभाई, बेचरभाई, मोहनभाई पूरा कमरा भर गया था और स्वयं नयी विवाहित... अन्तिम स्थिति, निमोनिया हुआ। आहाहा! दोनों आँखों में से आँसू बहते जाएँ। सब कुटुम्ब इकट्ठा हुआ था, नानालालभाई, बेचरभाई। आहाहा! क्या हो ? आहाहा! छूटने के प्रसंग में कौन बचावे ? इसमें उसे कौन रखे ? आहाहा!

तू भले ही धन के ढेर लगा दे, वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें,... यह तो डॉक्टर आये। वैद्य और डॉक्टर दोनों आये हैं। आहाहा! **वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें,...** आहाहा! यह पीलिया में मर गये न? यह दो व्यक्ति। बाबूभाई की पुत्री के ननदोई। माणिकचन्द गाँधी है। उनके लड़के की लड़की है न बाबूभाई की। एक ही पुत्री है। पैसेवाले हैं। अब उनकी लड़की वापस उन्हें एक ही है। उसके दामाद को पीलिया हुआ, चार दिन और पाँच दिन हुए, वहाँ उड़ गया। दस हजार रुपये खर्च किये। लड़का गया, पैसा गया। आहाहा! अड़तीस वर्ष की उम्र। देह छोड़कर चला गया। दूसरे एक हरिभाई मोटे हैं, वीछिया के हैं। उनका छोटा भाई, उसे पीलिया हुआ। उसमें पाँच-सात हजार खर्च किये। छोटी उम्र पैंतीस वर्ष की है। देह छूट गयी। कौन रखे? पैसा खर्च करने से रहते होंगे? आहाहा!

आसपास खड़े हुए अनेक सगे-सम्बन्धियों... आसपास खड़े हुए, आहाहा! **सगे-सम्बन्धियों की ओर तू भले ही दीनता से टुकुर-टुकुर देखता रहे,...** ऐसा देखता रहे। वहाँ कौन रखे? आहाहा! **तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है? यदि तूने...** आहाहा! शरणभूत किया होगा तो यह है। **यदि तूने शाश्वत...** यह आत्मा शाश्वत् नित्य प्रभु, **स्वयंरक्षित...** स्वयं से रक्षित। उसे कोई रखे तो रहे, ऐसा नहीं है। आहाहा! **यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित...** अपने से ही रक्षित चीज़ है, उसे कोई रखे तो रहे, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! **ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की...** क्या वह स्वयंरक्षित चीज़? कहते हैं। ज्ञानानन्दस्वरूप, ज्ञान और आनन्दस्वरूप स्वयंरक्षित प्रभु ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। दो वस्तु मुख्य ली है। ऐसे आत्मा की प्रतीति (कि) मैं ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ—ऐसी प्रतीति अर्थात् **अनुभूति करके...** ऐसे उसे विशेष स्पष्ट किया। आहाहा! ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा है, उसकी अनुभूति-उसे अनुसरण कर अनुभव किया होगा तो वहाँ शरण होगी। आहाहा! यहाँ तूने बहुत दया पालन की होगी, व्रत किये होंगे, भक्ति की होगी, भगवान का स्मरण किया होगा... तो यह तो शुभभाव है। इसका तो पुण्य बन्धन होगा, यह तो बन्धन परमाणु का है। यह वहाँ कोई तुझे रखनेवाला रख सके, ऐसा नहीं है। आहाहा! परन्तु ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की अर्थात् यह शुभभाव किया होगा तो शरण देगा, यह नहीं है। बहुत शुभभाव किया होगा तो, वह भी अभी तो विलय हो गया। उसके परमाणु बँधे। आहाहा! परन्तु

वर्तमान में ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा। स्व ज्ञानानन्दस्वरूप, स्व.. रूप। ज्ञान और आनन्द जिसका स्वरूप है, उसकी प्रतीति अर्थात् अनुभूति। प्रतीति श्रद्धा के अर्थ में जाती है, अनुभूति वेदन के अर्थ में जाती है। आहाहा! ऐसी अनुभूति करके **आत्म-आराधना की होगी,...** वह आराधना अर्थात् यह। आहाहा! ज्ञानानन्दस्वरूपी प्रभु की प्रतीति, उसका विश्वास और अनुभव। आहाहा! यदि किया होगा। आत्म-आराधना की होगी, वह आत्म-आराधना। ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मा हूँ, ऐसी प्रतीति और अनुभव, वह आत्म-आराधना। आहाहा! कोई व्यवहार किया होगा, इसलिए अन्दर शरण आयेगी, (ऐसा नहीं कहा)। यह दो लाईनें हैं। आधी यह और आधी नीचे डाली है।

यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित... यह आधी लाईन अन्तिम। पूरी अब **ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की प्रतीति...** आहाहा! ज्ञान और आनन्दस्वरूप, ऐसा भगवान आत्मा, उसके स्वसन्मुख होकर प्रतीति, पर से विमुख होकर अनुभूति। आहाहा! अर्थात् कि आत्म-आराधना की होगी। आहाहा! इतना पढ़ा होगा या इतना जाना होगा, यह प्रश्न अब यहाँ नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वलक्ष्य से वैराग्य पालन किया होवे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : परलक्ष्यी ज्ञान, वह भी परज्ञेय में निमग्न है। यह आ गया है पहले। आहाहा! है न? आ गया है न? कितने में आ गया? इसमें आ गया है कहीं। कितने में? ३८१।

तो वह ज्ञेय निमग्न रहता है,... आहाहा! शास्त्र का ज्ञान किया होगा, वह भी परलक्ष्यी है। आहाहा! वह परज्ञेय है। आहाहा! इससे वह ज्ञेय निमग्न है। ज्ञेय निमग्न अर्थात्? परज्ञेय निमग्न। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान-जानपना किया होगा, वह भी परज्ञेय निमग्न है। जैसे राग में ऐसे पर है, वैसे यह ज्ञेयपना, जानपना पर है, वह शब्द ज्ञान है। बन्ध अधिकार में आता है न? वह आत्मज्ञान नहीं। आहाहा! शब्दज्ञान में भी यदि निमग्न रहेगा तो (देह) छूटने पर तुझे दुःख होगा। आहाहा! ज्ञेय निमग्न, ऐसा है। अकेला मग्न, ऐसा नहीं कहा। ज्ञेय अर्थात् परज्ञेय निमग्न, ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा! स्वज्ञेय ज्ञायक और आनन्दस्वरूप प्रभु में यदि निमग्न (होकर) आराधना नहीं की होगी... आहाहा! तो

फिर वहाँ शान्ति कहाँ से आयेगी ? झपट्टे मारेगा ऐसा करो... ऐसा करो... ऐसा करो... आहाहा!

आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी,... उसका स्पष्टीकरण किया। **स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा...** आहाहा! उसकी प्रतीति और अनुभूति, उसकी अनुभूति की होगी... आहाहा! तो उस आत्मा की आराधना की होगी, तो **आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी,...** आहाहा! शान्ति कहीं बाहर से नहीं मिलती, शुभराग से कहीं शान्ति नहीं मिलती। आहाहा! शास्त्र के ज्ञान से भी कहीं शान्ति नहीं मिलती। पठन ग्यारह अंग का अनन्त बार किया, वह कहीं शान्ति का कारण नहीं है। आहाहा! वह तो पर शब्दज्ञान में निमग्न है। उससे भिन्न आत्मा की शान्ति प्रगट की होगी... आहाहा! अर्थात् भगवान आत्मा शान्ति का सागर प्रभु है। अर्थात् ? अकषायस्वभाव का समुद्र है। अर्थात् ? चारित्रस्वरूप है। जैसे दर्शनस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, वैसे वह चारित्रस्वरूप है। चारित्रस्वरूप है अर्थात् कि वीतरागस्वरूप है। वीतरागस्वरूप है अर्थात् कि अकषाय शान्तस्वरूप है। आहाहा! उस ओर का झुकाव करके शान्ति प्रगट की होगी। शक्तिरूप शान्ति है। प्रगट की होगी – ऐसा है न ? यह शान्तिस्वरूप ही है।

घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन
मत मदिरा के पान सौं, मतवाला समझे न॥

यह प्रभु जिनस्वरूप ही है अर्थात् शान्तस्वरूप ही है अर्थात् अकषायस्वभाव ही है। उसके सन्मुख होकर शान्ति प्रगट की होगी। शक्तिरूप से तो शान्ति का सागर ही है। शान्ति प्रगट की होगी। आहाहा! शान्तस्वरूप प्रभु है, उसके सन्मुख होकर शान्ति... शान्ति... शान्ति... प्रगट की होगी। **तो वह एक ही तुझे शरण देगी।** वे सब सगे-सम्बन्धी, वैद्य-डॉक्टर-वॉक्टर कुछ तूफान सब... आहाहा! यहाँ से शुरु किया है। **मरण तो आना ही है...** देह तो छूटना ही है। यह कहीं इसका दूसरा समय हो ऐसा है और दूसरा भव हो, ऐसा है ? यह तो इस भव में ही देह छूटनेवाला है। आहाहा!

आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही... तो वह एक ही तुझे शरण देगी। अरिहन्ता शरणं, सिद्धा शरणं, यह नहीं। आहाहा! केवलिपण्णत्तो धम्मो शरणं, यह

पर्याय शरण कही, परन्तु यह पर्याय शरण कब होगी ? आत्मा के ओर की शान्तिस्वरूप है, प्रभु ! शान्तिसागर, शान्तिसागर, शान्ति का पर्वत है वह, शान्ति का पर्वत है, प्रभु ! शान्ति का पर्वत है। उस ओर की एकाग्रता से वर्तमान में प्रगट शान्ति की होगी, तो वह एक ही शरण है। उस समय कोई अरिहन्त शरण और सिद्ध शरण और साधु शरण, णमो अरिहंताणं करने जाए, तब तो विकल्प है। आहाहा ! मांगलिक सुनाओ, मांगलिक सुनाओ। सुनने में तो राग है। आहाहा ! यह सुनना भी छोड़ दे। आहाहा ! अन्तर और अन्तर के नाद को देख, शान्ति का सागर, शान्ति के नाद से भरपूर है, उस ओर की शान्ति प्रगट की होगी। आहाहा ! **तो वह एक ही तुझे...** उसमें अरिहन्त भी साथ में शरण देंगे, यह दो नहीं है। आहाहा ! वह फौजदार थे न ? भाई ! राजकोट।

मुमुक्षु : वे मूल जैतपुर के थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैतपुर के, राजकोट में फौजदार थे। (संवत्) १९९० के वर्ष की बात है। गौशाला में रहते थे। क्या नाम ? भूल गये। जयचन्द (जयचन्दभाई) व्यक्ति मस्तिष्कवाला (होशियार) था परन्तु कुछ किया नहीं। अन्त में शरीर का खून सूख गया। क्या कहलाता है वह ? खून कम हो जाता है न ? देह छूटने की स्थिति थी। महाराज को बुलाओ। गये, मांगलिक सुनाया। कहा, यह क्या कहा सुना ? मांगलिक का अर्थ क्या है ? अरिहन्ता शरणं, सिद्धा शरणं, वे कोई शरण दे, ऐसा नहीं है, कहा। तब क्या है ? तुमने क्या कहा ? प्रभु ! १९९० के वर्ष की बात है। सदर में चातुर्मास था न। गौशाला में बैठे थे। फिर रात्रि में तुरन्त गुजर गये। बैठे थे। वह क्या कहलाता है, खून वह हो जाता है ? ऐनीमा कहे। शरीर फीका हो गया, महिलाएँ बैठी थी न सब... पूछा कि महाराज ! यह आपने कहा, उसका क्या स्वरूप, क्या कहा ? यह शरण की बात... १९९० की बात है। कहा, भाई ! शरण का अर्थ यह है कि आत्मा ही आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। उसमें जाना और शरण होना, वही मांगलिक, शरण और वह उत्तम है। आहाहा ! सुनता था, प्रेम से सुनता था। रात्रि में देह छूट गयी। आहाहा ! ऐसा माने कि हमने यह मांगलिक सुना था न, इससे-मांगलिक से शान्ति आयेगी। बापू ! सुनना तो विकल्प है। आहाहा ! मरण समय मुझे सुनाओ, फिर यह भी नहीं रहे, कहते हैं, शान्ति निकालेगा तो। यह नहीं रहे अर्थात् इसकी तुझे जरूरत

नहीं पड़ेगी। आहाहा! और सुनाना चाहेगा तो तुझे अन्तर में एकाग्रता नहीं है, इसका अर्थ (यह है)। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

तो वह एक ही तुझे शरण देगी। एकान्त? एक ही, तो एकान्त हो जाता है। कथंचित् भगवान का स्मरण आदि भी शरण देगा। (ऐसा) अनेकान्त नहीं होगा? यह अनेकान्त है। यह देगा और वे नहीं देंगे, ऐसा। आहाहा! भगवान अन्दर अतीन्द्रिय शान्ति का पिण्ड है न, प्रभु! आहाहा! वह अतीन्द्रिय शान्ति का पिण्ड है, वहाँ देख और उसमें एकाग्रता की होगी... शुभभाव किया होगा तो नहीं, यहाँ तो कहते हैं। वह तो राग है। आहाहा! और वह तो राग गया होगा। उसके तो परमाणु बँधे होंगे, उसमें तुझे शरण क्या आया? शुभभाव होकर तीर्थंकर गोत्र बँधा होगा तो भी वह कहीं शरण नहीं है। जिस भूमिका में बँधा है, वह भूमिका सम्यग्दृष्टि को है। आहाहा! यह दृष्टि का विषय चैतन्य प्रभु है, उसमें एकाग्र होकर शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. आहाहा! प्रगट की होगी; शक्तिरूप से तो है, स्वभावरूप से तो है, भावरूप तो है। आहाहा! उसे अन्तर में, पर्याय में शान्ति प्रगट की होगी **तो वह एक ही तुझे शरण देगी।**

इसलिए अभी से वह प्रयत्न कर। आहाहा! वर्तमान से ही शुरुआत कर। बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... बाद में पहले नहीं आयेगा, बाद में बाद ही रह जाएगा। आहाहा! प्रवचनसार में आता है न? अन्तिम श्लोक अन्तिम। आज ही कर। प्रवचनसार में है। आज। तूने सुना, भगवान आत्मा राग से भिन्न प्रभु है तो आज ही उसकी अनुभूति की शुरुआत कर। आहाहा! और पाँचवीं गाथा (समयसार) में ऐसा कहा न? '**तं एयत्तविहत्तं दोएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज**' यदि मैं कहूँ तो प्रमाण करना। आहाहा! सुनकर हाँ ही करना, ऐसा नहीं। आहाहा! भाषा तो देखो! दिगम्बर सन्तों की भाषा। आहाहा! प्रमाण करना—अनुभूति करके प्रमाण करना। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द का सागर है, प्रभु! आज ही, अभी से ही। आहाहा! अभी से ही वह प्रयत्न कर। आहाहा!

मुमुक्षु : मौत आवे तब नहीं, अभी से।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी से ही। मौत आवे, तब क्या करे? घर सुलगे, तब कुँआ खोदे, पानी कब निकलेगा? आहाहा! घर सुलगे, तब कुँआ खोदे, तब पानी कब निकलेगा?

वहाँ तो जलकर राख हो जाएगा। आहाहा! घर सुलगने से बचाना हो तो पहले से कुँआ खोदकर पानी निकाल ले। आहाहा! यह ऐसी बात है।

इसलिए अभी से वह प्रयत्न कर। सुना, तब से ही प्रयत्न कर, कहते हैं। आहाहा! प्रमाण करना, कहा न? ओहो! दिगम्बर सन्तों की वाणी और वह पंचम काल के श्रोता को –अप्रतिबुद्ध को कहते हैं। आहाहा! अत्यन्त अप्रतिबुद्ध है, उसे कहते हैं कि आज से शुरुआत कर, भाई! आहाहा! वह श्रोता पंचम काल का श्रोता है। आहाहा! (समयसार गाथा) ३८ में ऐसा कहा, जीव (अधिकार) ३८ गाथा में पूर्ण किया न! पंचम काल का श्रोता, जिसे यह सुनकर जिसके अन्दर दर्शन, ज्ञान और चारित्र से परिणमित हुआ है, वह श्रोता ऐसा कहता है कि मैं जो यह दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हुआ हूँ, आगम कौशल्य से स्वभाव की शरण में जाकर (परिणमा), यह अब मैं गिरनेवाला नहीं हूँ। यह तो देखो! अप्रतिबुद्ध को कहा, गुरु ने बारम्बार समझाया अर्थात् कि उसने बारम्बार मन्थन किया और गुरु ने बारम्बार समझाया, दोनों बात है। एक बार समझाकर पंचम काल के प्राणी हैं, उसे बारम्बार (कहा कि) भगवान राग से भिन्न है, प्रभु! आहाहा! अब मुझे उसमें से गिरना नहीं होगा। अप्रतिहतभाव बताया है। आहाहा!

मुमुक्षु : मैंने मोह का क्षय किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो जोड़नी क्षायिक है। आहाहा! भले क्षयोपशम है, परन्तु वह अप्रतिहत है। आहाहा! पंचम काल का अप्रतिबुद्ध जीव जब प्रतिबोध पाता है। आहाहा! कहते हैं कि हमें अब फिर से मिथ्यात्व के अंकुर उत्पन्न होनेवाले नहीं हैं। तू किसके पास जाकर बोलता है ऐसा? भगवान ने कहा है तुझे? भगवान के पास गया था? कुन्दकुन्दाचार्य तो गये थे। भगवान के पास गया था, मेरा नाथ है, वहाँ (गया था)। आहाहा! वहाँ से आया हुआ हूँ, वह मैं कहता हूँ कि मेरी परिणति जो प्रगट हुई है, (वह अब) 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में' सादि अनन्त काल में शामिल हो जाएगी यह बात। आहाहा! क्या शैली है? आहाहा! शिथिल, पतली बातें हैं, वे यहाँ नहीं हैं। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ जहाँ झिंझोड़कर जगाया है न! आहाहा! जागता जीव ध्रुव है न, ऐसा आया है न बहिन में? ज्ञायकभाव ध्रुव है न! ध्रुव का ध्येय कर तो तुझे ध्रुव प्राप्त होगा।

वह टिकता तत्त्व है। बदलता, पलटता वह पर्याय है; वस्तु टिकता तत्त्व है। टिकते तत्त्व में दृष्टि दे तो दृष्टि टिकती-स्थिर हो जाएगी। आहाहा! इससे तुझे शरण देगा, एक ही तुझे शरण देगा। अभी से ही वह प्रयत्न कर। आहाहा! बहुत मीठी / मधुर बात है, बापू! आहाहा! आनन्द के सागर को-भरे हुए को उछाल मार, कहते हैं! पर्याय में बाढ़ ला।

'सिर पर मौत मंडरा रहा है'... अर्थात्? यह काल। देह छूटेगी.. छूटेगी... छूटेगी... ऐसा समय तो आयेगा। आहाहा! तत्पश्चात् यह सब छूट जाएगा। इस मकान में हूँ और इसमें यह हूँ और इस शरीर में हूँ, इस वस्त्र में हूँ- ऐसे मनुष्यों के संयोग के सम्बन्ध में हूँ और इस क्षेत्र में हूँ, यह सब छूट जाएगा। आहाहा! देह की स्थिति पूरी होनेवाली है। (सिर पर) मौत मँडरा रही है। आहाहा! **ऐसा बारम्बार स्मरण में लाकर...** बारम्बार ऐसा याद करके, **भी तू पुरुषार्थ चला...** आहाहा! देह की स्थिति पूरी होने के नगाड़े बजते हैं। वह पूछकर नहीं आयेगी यहाँ कि अब मैं देह छूटनेवाली हूँ। आती हूँ, हों! छूटा हुआ तो है एक क्षेत्रावगाह में, परन्तु इस क्षेत्र से ऐसे आकाश का क्षेत्र इकट्ठा है, उस क्षेत्र से पृथक् पड़ जाएगा। आकाश के क्षेत्र में अर्थात् आकाश है, उसका यह स्व और पर ऐसे दोनों एक क्षेत्रावगाह में है। स्व का क्षेत्र और पर का क्षेत्र एक नहीं है परन्तु आकाश के क्षेत्र में ऐसे एक में है। इस आकाश के क्षेत्र में भी नहीं परन्तु आकाश के क्षेत्र में छह द्रव्य और कर्म तथा शरीरादि ऐसे स्वक्षेत्र में ऐसे हैं। आकाश के स्वक्षेत्र में अर्थात् उस आकाश में एक भाग पर, तथापि आकाश के क्षेत्र में वह नहीं है। आहाहा! तथा वह परक्षेत्र में भी नहीं है। आहाहा!

इस प्रकार बारम्बार विचार करके, **स्मरण में लाकर भी तू पुरुषार्थ चला कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे'...** आया। लो! 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' आहाहा! अमर भये, भगवान तो अमर है। शुद्ध चैतन्य प्रगट हुआ, उसे मरण कैसा? देह की स्थिति पूरी हो, उसे मरण कहो, परन्तु प्रभु की स्थिति पूरी नहीं होती, वह तो अमर है। आहाहा! ऐसी बात है। 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' आहाहा! आनन्दघनजी का शब्द है।

ऐसे भाव में तू... ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। भले उस समय कदाचित् निर्विकल्पता न हो, विकल्प हो परन्तु समाधि-एकाग्रता है तो समाधिपूर्वक

देह छूटेगी। क्या कहा, समझ में आया? निर्विकल्प ही होगा, विकल्प का अंश ही नहीं रहेगा, (ऐसा नहीं है) वस्तु की तो निर्विकल्प दृष्टि हुई है, परन्तु देह छूटने के अवसर में अत्यन्त निर्विकल्प होकर देह छूटेगी, ऐसा कुछ नहीं है। विकल्प हो, परन्तु अन्तर समाधि एकाग्रता है, उस समाधिपूर्वक देह छूटेगी। ख्याल में आ जाएगा कि यह देह छूटने का प्रसंग है। ऐसा विकल्प हो, तथापि अन्दर समाधि है। आहाहा! और किसी को तो यह विकल्प भी नहीं रहता। समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है कि उपसर्ग पड़ता है तो इसका ज्ञानी को ख्याल ही नहीं होता, ऐसा नहीं है। किसी को ख्याल-विकल्प भी रहता है कि यह उपसर्ग है। आता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। बहुत-बहुत भरा हुआ है सब। मोक्षमार्गप्रकाशक में। आहाहा! उपसर्ग का प्रतिकूल कोई सिंह, बाघ काटता है, सर्प काटा है, इत्यादि, उस समय सबकी निर्विकल्प ही दशा होती है, (ऐसा नहीं है) अर्थात् दृष्टि को शुद्धता प्रगट हुई है, उतनी तो निर्विकल्पता है, परन्तु अत्यन्त निर्विकल्प का शुद्ध उपयोग ही एक ही हो, ऐसा कुछ नहीं है। यह ख्याल भी रहता है कि यह है, ऐसा विकल्प वह ख्याल रहता है परन्तु अन्तर में दृष्टि में तो विकल्प से भिन्न है, उसमें रमता है। समझ में आया? अरे.. अरे...! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं।

श्रीमद् ने कहा है न अन्तिम? यथार्थ है। विकल्प आया (कहा) मनसुख! माँ को पीड़ा मत होने देना। छोटी उम्र थी, तैंतीस वर्ष (की उम्र थी)। मैं स्वरूप में लीन होता हूँ। स्वरूप की दृष्टि और अनुभव तो है, परन्तु यह इतना विकल्प आया है। आहाहा! मेरे स्वरूप में मैं लीन होता हूँ। जरा आवाज भी आयी मैं... मैं... मैं... साथ में बैठे थे उनके बहनोई। क्या (नाम) कहा? राजकोटवाले जवेरचन्दभाई। इन लोगों को विश्वास उठ गया। क्योंकि जरा आवाज चली न। ऐसा? मुझसे बात करते थे। कहा, वह तो देह की क्रिया है बापू! वह तो होती है क्योंकि कितनी ऐसी शक्ति थी, बैठे थे और खड़े हुए, इतनी शक्ति थी। अब उस शक्ति को अन्तर में तो लीनता हो गयी है परन्तु वह छूटने की जरा आवाज चली है ऐसे दो, चार घर सुनें वहाँ तक चली थी। इससे क्या कहा? आहाहा!

मुमुक्षु : कोई बेसुध हो, बकवाट हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बकवाट-बकवाट नहीं।

मुमुक्षु : दृष्टि की समाधि हो सकती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समाधि है अन्दर। अपवाद कोई सहज इन्द्रियज्ञान में अन्तर हो, उन्मादपना सहज हो, तथापि अन्दर समाधि होती है। इन्द्रिय की ओर के ज्ञान में जरा... आता है न ? समाधिशतक में आता है। आता है, यह तो सब ख्याल है। आहाहा ! जरा उन्माद जैसा दिखायी दे। श्रीमद् यही कहते हैं, मरते हुए जरा ज्ञानी को उन्माद जैसा भी दिखायी दे। इन्द्रियज्ञान में अन्तर पड़ने से होता है, तथापि अन्दर समाधि है। आहाहा ! ऐसी स्थिति है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। आहाहा ! **जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।** सारांश लिया है। आहाहा ! निमित्त नहीं, राग नहीं, पर्याय भी नहीं। आहाहा ! परन्तु वस्तु, ऐसा कहा न ? आहाहा ! शुद्ध आत्मद्रव्य। **जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही...** एकान्त किया। आहाहा ! दुनिया माने, न माने; मान दे, न दे, इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। बाहर में प्रसिद्धि ऐसी हो या ऐसी न हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध है। आहाहा !

अन्दर में आत्मा का शुद्ध उपादान एक ही आराधना (करनेयोग्य) और उपादेय है। उसमें राग उपादेय नहीं है, पर्याय उपादेय नहीं है। उपादेय करनेवाली पर्याय है, परन्तु उपादेय है, यह शुद्ध आत्मा। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें हैं। **जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।** आदरणीय, स्वीकार करनेयोग्य, सत्कार करनेयोग्य एक ही चीज़ है। तब इसका जीवन सफल होता है। आहाहा ! इसने जीना जाना है। आता है न ? (जीना जाना) नेमनाथ ने जीवन, भजन में आता है। 'जीवि जाण्यो नेमनाथे जीवन' आहाहा !

मुमुक्षु : आनन्दघनजी में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अपने स्तवन में आता है। अपने स्तवन मंजरी कहलाती है न, उसमें आता है।

मुमुक्षु : साहेब ! व्यवहार में तो कहलाता है, जी कर जाना और मरकर जाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मर जाने का अर्थ उस राग को मार डाला, वह मर जाना।

राग को मार डाला और जीव को, जीव को ज्योति को जागृत किया। उसने मरकर भी जाना, ऐसा भी कहा जाता है। आहाहा! बातें बापू बहुत... ओहोहो! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वर का पन्थ कोई अलौकिक है। यह पन्थ आत्मा में है। आहाहा! यह पन्थ कहीं बाहर में नहीं होता। आहाहा!

अब यह स्थिति प्राप्त होने पर भविष्य में वह सर्वज्ञ हो सकेगा। आहाहा! ऐसी समाधिस्थिति में देह छूटने से भले उस भव में कदाचित् सर्वज्ञपना न आवे तो भविष्य में एक-दो भव में भी सर्वज्ञ तो होगा ही। आहाहा!

सर्वज्ञभगवान परिपूर्ण ज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं। वे अपने को पूर्णरूप से—अपने सर्वगुणों के भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित—प्रत्यक्ष जानते हैं। साथ ही साथ वे स्वक्षेत्र में रहकर, पर के समीप गये बिना, परसन्मुख हुए बिना, निराले रहकर लोकालोक के सर्व पदार्थों को अतीन्द्रियरूप से प्रत्यक्ष जानते हैं। पर को जानने के लिये वे परसन्मुख नहीं होते। परसन्मुख होने से ज्ञान दब जाता है—रुक जाता है, विकसित नहीं होता। जो ज्ञान पूर्णरूप से परिणमित हो गया है, वह किसी को जाने बिना नहीं रहता। वह ज्ञान स्वचैतन्यक्षेत्र में रहते हुए, तीनों काल के तथा लोकालोक के सर्व स्व-पर ज्ञेयों मानों वे ज्ञान में उत्कीर्ण हो गये हों, उस प्रकार समस्त स्व-पर को एक समय में सहजरूप से प्रत्यक्ष जानता है; जो बीत गया है, उस सबको भी पूरा जानता है; जो आगे होना है, उस सबको भी पूरा जानता है। ज्ञानशक्ति अद्भुत है॥४१३॥

यह सर्वज्ञभगवान, आहाहा! **सर्वज्ञभगवान परिपूर्ण ज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं।** आहाहा! सर्वज्ञभगवान परमेश्वर परमात्मा आत्मा होगा, तब तो वह सर्वज्ञभगवान परिपूर्ण ज्ञानरूप परिणमित हो गये हैं। आहाहा! परिपूर्ण ज्ञानरूप परिणमित हो गये हैं, पर्याय में। उस परिपूर्ण ज्ञान की परिणति भी पूर्व का मोक्षमार्ग है, उससे परिणति हुई, वह तो व्यवहार है परन्तु वह सर्वज्ञस्वभावी भगवान में अन्दर एकाग्र हुआ है, तो द्रव्य में से

सर्वज्ञ पर्याय आती है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। बाकी तो सर्वज्ञ पर्याय स्वयं षट्कारकरूप से परिणमित होकर प्रगट होती है। स्वयंभू, आहाहा! मोक्षमार्ग है, इसलिए मोक्ष हुआ, यह व्यवहार है। द्रव्य में से द्रव्य की शक्ति थी, वह प्रगट हुई, यह भी अपेक्षित है। बाकी उस समय में केवलज्ञान, सर्वज्ञज्ञान, सर्वदर्शी, अनन्त आनन्द, परिपूर्ण पुरुषार्थ आदि पर्याय का षट्कारकरूप से परिणमन होता हुआ, प्रगट होता है। आहाहा!

सर्वज्ञभगवान परिपूर्ण ज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं। वे अपने को पूर्णरूप से—अपने सर्वगुणों के भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित— अपने को पूर्णपने की व्याख्या की है। **अपने सर्वगुणों के भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित—प्रत्यक्ष जानते हैं।** आहाहा! भविष्य की पर्याय जो अभी—अभी नहीं है, उसे भी प्रत्यक्ष जानते हैं। भूत-वर्तमान और भावी पर्यायें। जो पर्याय वर्तमान में नहीं है, अभी भविष्य में होगी, उसे भी वर्तमानवत् प्रत्यक्ष देखते हैं, जानते हैं। उत्पाद-व्यय की पर्याय वर्तमान की, भूत की और भविष्य की। आहाहा! कोई अचिन्त्य बात है, बापू! और वह पर्याय इतनी प्रगट हुई, तथापि द्रव्य और गुण तो पूरे के पूरे हैं, उतने के उतने ही रहे हैं। आहाहा!

कोई तत्त्व की अचिन्त्यता और अद्भुतता अलौकिक है! वस्तु परिपूर्ण गुण से भरपूर है। उसकी पर्याय में परिपूर्णरूप से परिणम जाती है, तथापि वह परिणमित हुई पर्याय पूर्ण होने पर भी वस्तु तो परिपूर्णरूप से है, वह उतनी की उतनी ही है। आहाहा! परिपूर्णरूप से हुई पर्याय, पूरी हुई, इसलिए उसमें से आयी, इसलिए वहाँ कहीं कम हो गया (—ऐसा नहीं है)। आगे आता है न कहीं? मुनिराज का नहीं आता? तुरन्त ही आता है। ४१५, ४१५ आता है। **अनन्त अमृतरस से भरपूर, अक्षय घट है।** है? **उस घट में से पतली धार से अल्प अमृत पिया जाये।** मुनि को तो...

मुमुक्षु : परन्तु मुनि को सन्तोष नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए न! सन्तोष है परन्तु पूरा चाहिए। आहाहा! **हमारा आत्मा तो अनन्त गुणों से भरपूर, अनन्त अमृतरस से भरपूर, अक्षय घट है।** अक्षय घट है। आहाहा! यह घट नहीं, यह घट-घड़ा। आहाहा! **उस घट में से पतली धार से अल्प**

अमृत पिया जाये, ऐसे स्वसंवेदन से हमें सन्तोष नहीं होता। इतने से हम अटकते नहीं है, कहते हैं। **हमें तो प्रतिसमय पूर्ण अमृत का पान हो, ऐसी पूर्ण दशा चाहिए**। आहाहा! तथापि वह पूर्ण अमृत की धारा आने पर भी घट तो परिपूर्ण ही रहता है। यह इसमें है, देखो! घड़ा भी सदा परिपूर्ण भरा हुआ रहता है। आहाहा! अब यह इसे तर्क से कैसे (जँचे) ? वस्तु का स्वभाव ही कोई द्रव्य और गुण ऐसा ही है कि उसमें से परिपूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी वस्तु तो परिपूर्ण जितनी की जितनी है, उतनी रहती है। आहाहा! ऐसा कोई चैतन्य का अद्भुत स्वरूप है! आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। आहाहा!

अविभाग प्रतिच्छेदों सहित-प्रत्यक्ष जानते हैं। साथ ही साथ वे स्वक्षेत्र में रहकर, पर के समीप गये बिना, स्वक्षेत्र में रहकर, पर के समीप गये बिना, परसन्मुख हुए बिना, परसन्मुख हुए बिना, निराले रहकर लोकालोक के सर्व पदार्थों को अतीन्द्रियरूप से प्रत्यक्ष जानते हैं। आहाहा! विशेष कहा जाएगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसर कृष्ण -१४, गुरुवार, दिनाङ्क २८-१२-१९७८
वचनामृत- ४१४ से ४१५ प्रवचन-१७२

कोई स्वयं चक्रवर्ती राजा होने पर भी, अपने पास ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी, बाहर भीख माँगता हो; वैसे तू स्वयं तीन लोक का नाथ होने पर भी, तेरे पास अनन्त गुणरूप ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी, 'पर पदार्थ मुझे कुछ ज्ञान देना, मुझे सुख देना' इस प्रकार भीख माँगता रहता है! 'मुझे धन में से सुख मिल जाये, मुझे शरीर में से सुख मिल जाये, मुझे शुभ कार्यों में से सुख मिल जाये, मुझे शुभ परिणाम में से सुख मिल जाये' इस प्रकार तू भीख माँगता रहता है! परन्तु बाहर से कुछ नहीं मिलता। गहराई से ज्ञायकपने का अभ्यास किया जाये तो अन्तर में से ही सब कुछ मिलता है। जैसे भोंयरे में जाकर योग्य कुंजी द्वारा तिजोरी का ताला खोला जाये तो निधान प्राप्त हों और दारिद्र दूर हो जाये, उसी प्रकार गहराई में जाकर ज्ञायक के अभ्यासरूप कुंजी से भ्रान्तिरूप ताला खोल दिया जाये तो अनन्त गुणरूप निधान प्राप्त हों और भिक्षुकवृत्ति मिट जाये॥४१४॥

बहिनश्री के वचनामृत ४१४ **कोई स्वयं चक्रवर्ती राजा होने पर भी,...** पहले दृष्टान्त कहा। **कोई स्वयं चक्रवर्ती राजा होने पर भी, अपने पास ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी,....** चक्रवर्ती राजा हो और उसके पास भण्डार भरे हों और **बाहर भीख माँगता हो,...** बाहर भीख माँगता हो, **वैसे तू स्वयं तीन लोक का नाथ...** आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप; सत् अर्थात् शाश्वत्। अन्दर अनन्त-अनन्त गुण का भण्डार भगवान है। तीन लोक का नाथ है। राग से भिन्न भेदज्ञान में अपने आत्मा को देखे तो अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता ऐसे अनन्त गुण का भण्डार भगवान में भरा है।

आहाहा! **स्वयं तीन लोक का नाथ होने पर भी,...** तीन लोक का नाथ। तीन काल, तीन लोक को जानने की शक्ति का धारक। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन काल, तीन लोक को जाने, ऐसी शक्ति उसमें है। जानना-देखना (शक्ति है तो) जानने-देखने में फिर मर्यादा क्या? जानना-देखना ऐसा स्वभाव है, उसकी मर्यादा क्या? तीन काल, तीन लोक एक समय में जाने, ऐसी उसमें शक्ति स्वभाव है। ऐसा गुण भण्डार अन्दर में भरा है। आहाहा!

तेरे पास अनन्त गुणरूप ऋद्धि के भण्डार भरे... हैं। जैसे वह चक्रवर्ती है, इसी प्रकार तीन लोक का नाथ हूँ, उसमें जैसे भण्डार हैं, वैसे तुझमें **अनन्त गुणरूप ऋद्धि...** अनन्त स्वभाव है, वह अपरिमित, बेहद स्वभाव है। आहाहा! अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता ऐसे अनन्त गुण का भण्डार भगवान आत्मा है। आहाहा! ऐसा होने पर भी... आहाहा! **अनन्त गुणरूप ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी,...** अनन्त गुण का भण्डार भरा है। आहाहा! वस्तु है न? वस्तु है तो अनन्त गुण बसे / रहे हुए हैं। उसमें अनन्त गुण भरे हैं। आहाहा! यह अल्पज्ञपना कहीं उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! राग, दया, दान आदि विकल्प जो है, वह भी उसका स्वभाव नहीं है। उसके स्वरूप में वह है ही नहीं। आहाहा! उसके स्वभाव में तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता, प्रभुता—ऐसे-ऐसे अनन्त गुण के भण्डार भरे हैं। आहाहा!

अनन्त गुणरूप ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी,... ऐसा होने पर भी '**परपदार्थ मुझे कुछ ज्ञान देना,...**' आहाहा! मुझे शास्त्र से ज्ञान हो, पर से ज्ञान हो—ऐसी भीख माँगता है। आहाहा! ज्ञान तो अपने में अनन्त भरा है। उसे तो जानता नहीं। आहाहा! और '**परपदार्थ मुझे कुछ ज्ञान देना,...**' आहाहा! मानो वाणी में से मुझमें ज्ञान आ गया, शास्त्र से मुझे ज्ञान होता है, ऐसे अपने में अनन्त ज्ञान होने पर भी, पर (के पास से) ज्ञान की भीख माँगता है। आहाहा! भगवान भिखारी हो गया। आहाहा! ऐसी चीज़ अन्दर है।

सर्वज्ञ परमेश्वर को जो सर्वज्ञपना प्रगट हुआ, वह कहाँ से हुआ? बाहर से आता

है ? वह सर्वज्ञस्वभावी अपने आत्मा में है। भगवान को अतीन्द्रिय आनन्द आया। कहाँ से अतीन्द्रिय आनन्द आया ? बाहर से आता है ? अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द भरा हुआ है, उसमें से आता है। अतीन्द्रिय आनन्द से तो भरचक, लबालब (भरा हुआ है) । आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप पूर्ण पड़ा है। उसमें... बाहर से माँगता है। ऐसा कहते हैं।

'**मुझे सुख देना**'... आहाहा ! शरीर में से सुख मिले, इन्द्रिय के विषय में से सुख मिले, स्त्री में से मिले, इज्जत में से मिले, लक्ष्मी में से मिले, ऐसी भीख माँगता है। आहाहा ! सुख का तो भण्डार भगवान आत्मा है। उस ओर दृष्टि नहीं। उसका तो विश्वास नहीं और पर से मुझे सुख होगा, पर से मुझे ज्ञान होगा और पर से मुझे सुख मिलेगा, (यह) मिथ्याभ्रम है। आहाहा !

इस प्रकार भीख माँगता रहता है! इस प्रकार पर से मुझे ज्ञान होगा। ज्ञान का तो भण्डार निजस्वभाव है। पर से ज्ञान होता है ? सुनने से होता है ? शास्त्र-पठन से ज्ञान होता है ? ज्ञान तो अपने में भरा है। आहाहा ! उसकी प्रतीति और विश्वास नहीं है और मानो बाहर से ज्ञान मिलेगा और बाहर से सुख मिलेगा, ऐसी भीख माँगता है। है ? आहाहा ! **भीख माँगता रहता है!** मिथ्याभ्रम है। आहाहा ! यह मुझे अनुकूलता दे, प्रतिकूलता का निषेध करे, मुझे पर से शान्ति मिले—ऐसा भ्रम अनादि का अज्ञानी का है। अपने में शान्ति और आनन्द भरे हुए हैं, उनका तो विश्वास और प्रतीति नहीं है। आहाहा !

'**मुझे धन में से सुख मिल जाये,...**' पहले सामान्य बात की। लक्ष्मी में से सुख मिले। पाँच-पच्चीस लाख पैसे (रुपये) होवे तो मैं सुखी होऊँ, इस प्रकार पर में से सुख माँगता है। आहाहा ! धन में सुख है ? धन तो जड़ धूल है। धूल में सुख है ? और उससे अपने में सुख आता है ? आहाहा ! लक्ष्मी को प्राप्त करके मुझे पर में से-धन में से सुख मिल जाएगा। आहाहा ! मेरे स्वरूप में आनन्दधन पड़ा है, उसकी दृष्टि का विश्वास नहीं है। आहाहा ! अरे ! मैं दया, दान, व्रत, भक्ति करूँ तो मुझे अन्दर से सुख मिलेगा, यह मूढ़ता है। वह तो राग की क्रिया है। राग की क्रिया से सुख मिलेगा ?

'**मुझे धन में से सुख मिल जाये, मुझे शरीर में से सुख मिल जाये,**'... यह तो मिट्टी धूल है। अपने में आनन्द है, उसमें तो जाता नहीं और शरीर में से सुख मिल जाए, ऐसी

छटपटाहट करता है। आहाहा! है? **मुझे शुभ कार्यों में से सुख मिल जाये,...** आहाहा! मैं शुभकार्य करूँ-दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का, व्रत-तप के कार्य, वे तो शुभभाव हैं। उनसे मुझे सुख मिले, मूढ़ है। आहाहा! है? **शुभ कार्यों में से सुख मिल जाये,...** आहाहा! बाहर के थोड़े शुभ काम करूँ तो मुझे सुख मिले। पर को मदद करूँ, परोपकार करूँ। आहाहा! उससे मुझे सुख मिले, ऐसा अज्ञानी का भ्रम है, भ्रमणा है। सुख तो अपने में है, उसे तो खोजता नहीं है।

'**शुभ परिणाम में से सुख मिल जाये**'... वे शुभकार्य कहे, ये शुभ परिणाम। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम, दया, दान के परिणाम, भगवान की भक्ति के परिणाम, पंच परमेष्ठी के स्मरण के परिणाम, वे तो शुभ हैं, दु:ख हैं। आहाहा! उनमें से मुझे सुख मिले, ऐसी अज्ञानी की भ्रमणा है। यह तो शुभ परिणाम से तो लाभ होता है, ऐसा लोग कहते हैं। शुभ परिणाम करें, राग की मन्दता दया, दान, व्रत, तप, उपवास, भगवान की भक्ति में से पुण्य बँधे; पुण्य बँधे, उसमें से सुख मिलेगा। धूल में, पर में सुख है? वह शुभ परिणाम है, वही दु:ख है। आहाहा! यह सवेरे आ गया है। शुभभाव है, वह आकुलता को उत्पन्न करनेवाला है। आहाहा! कैसे जँचे? व्रत करूँ, तप करूँ, अपवास करूँ, भक्ति करूँ, यह यात्रा करूँ, वह परिणाम तो शुभ है और शुभ है तो आकुलता का कारण है। आहाहा! आकुलता को उत्पन्न करनेवाले हैं, अपने सवेरे आया न? (समयसार) ७२ गाथा। शुभभाव है; अशुभ है, वह तो दु:खरूप ही है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग-वासना, काम-क्रोध के परिणाम तो दु:खरूप है ही परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या का विकल्प जो उत्पन्न होता है, वह भी दु:ख है। अरे रे! ऐसी बातें हैं। उसमें से कुछ मिल जाए। आहाहा!

'**मुझे शुभ परिणाम में से सुख मिल जाये**'... आहाहा! यह तो बड़ा भ्रम है। मैं शुभ परिणाम करूँ, व्रत पालूँ, भक्ति करूँ, उसमें से सुख मिलेगा। वह तो राग है, वह तो दु:ख है। दु:ख में से सुख मिलेगा? आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत दु:ख भोगें, पश्चात् सुख मिलेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं मिलेगा। दु:ख भोगे तो उसके परिणाम में दु:ख है। आहाहा!

'शुभ परिणाम में से सुख मिल जाये'... मैं शुभ परिणाम करूँ तो उससे मुझे सुख मिले। आहाहा! यह तो अपने आ गया है। भगवान आत्मा तो आनन्द का भण्डार है। शुभ परिणाम है, वह तो आकुलता उत्पन्न करनेवाले हैं और आत्मा तो अनाकुलता का भण्डार है। आहाहा! तो मेरे आत्मा का जो आनन्द है, उसका शुभ परिणाम कारण है और आनन्द कार्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का शुभराग है, वह कारण है और उससे निश्चय रत्नत्रय उत्पन्न होगा, ऐसा नहीं है। वह तो दु:ख है। व्यवहाररत्नत्रय का राग तो दु:ख है। ऐसी बात है। लोगों को कठिन लगता है। क्या हो ? ...क्या कहा ? समझ में आया ?

शुभ कार्य और शुभ परिणाम दो बातें ली हैं। दया आदि की क्रिया से कोई शुभक्रिया हो, उससे मुझे सुख मिलेगा। वह तो जड़ की क्रिया है और पश्चात् दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभ परिणाम हुए, वे भी राग हैं, दु:ख है। उसमें से सुख मिलेगा ? आहाहा! शुभभाव कारण है और शुद्ध है, वह कार्य है—ऐसा (लोग) कहते हैं। भ्रम है, अज्ञान है। आहाहा! ऐसी बात जगत को कठिन पड़ती है।

'मुझे शुभ कार्यों में से सुख मिल जाये,'... शरीर का कार्य, पर का करूँ, पर को मदद करूँ, अनुकूलता करूँ, वह कार्य तो पर का-जड़ का है। उसमें से सुख मिले और **'मुझे शुभ परिणाम में से सुख मिल जाये'...** आहाहा! भक्ति, यात्रा, पूजा आदि करूँ, वह तो शुभ परिणाम है।

मुमुक्षु : गुरु की विनय तो करना न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु की विनय करे, तो वह शुभभाव है।

मुमुक्षु : ....धर्म का मूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विनय तो आत्मा की विनय, वह धर्म का मूल है। अपना शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा है, उसका बहुमान करना, वह विनय है। भगवान का बहुमान करना, वह तो विकल्प है, राग है। भगवान तो कहते हैं न कि **'परदव्वादो दुग्गई'** मोक्षपाहुड़ में है। हम परद्रव्य हैं। भगवान कहते हैं, हम तुझसे परद्रव्य हैं। आहाहा! हमारे ऊपर लक्ष्य करेगा तो तुझे शुभराग होगा। शुभराग, वह दुर्गति है; तेरी-चैतन्य की गति नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन काम है। है ?

'मुझे शुभकार्यों में से सुख मिल जाये, मुझे शुभ परिणाम में से सुख मिल जाये'... आहाहा! अभी यह बड़ी भ्रमणा है। गिरनार की यात्रा करें, सम्मेदशिखर की यात्रा करें, शत्रुंजय की यात्रा करें...

मुमुक्षु : भगवान...

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान तो भगवान के पास हैं। वे भगवान तो पर हैं। पर भगवान की यात्रा का भाव, वह शुभराग है, दु:ख है। ऐसी बात कठिन पड़ती है। क्या हो? दुनिया अनादि से भ्रमणा में, भूल में पड़ी है। मोक्ष अधिकार में शुभभाव को तो जहर कहा गया है। विषकुम्भ है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर का घड़ा है। उसमें से आनन्द मिलता है? शुभ परिणाम है, वह जहर का घड़ा है। आहाहा! कठिन मार्ग! अपूर्व मार्ग कोई दूसरी चीज़ है, भाई! अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर आत्मा, उसे शुभ परिणाम में से सुख मिले, ऐसी झनखना है, वह अज्ञान की भ्रमणा है।

इस प्रकार तू भीख माँगता रहता है! आहाहा! दिगम्बर जैन साधु होकर, पंच महाव्रत के परिणाम से मुझे सुख मिलेगा, पंच महाव्रत के परिणाम से मुझे शान्ति मिलेगी, यह तो भ्रमणा अज्ञान है। आहाहा! जगत को ऐसा काम कठिन पड़ता है। क्या हो? भाई! मार्ग तो ऐसा है। **इस प्रकार तू भीख माँगता रहता है! परन्तु बाहर से कुछ नहीं मिलता।** शुभ परिणाम से, शुभ कार्य से तुझे कुछ लाभ नहीं है। **बाहर से कुछ नहीं मिलता।** तेरी चीज़ नहीं मिलती। बाहर के आचरण से राग का, दु:ख का भाव उत्पन्न होता है, परन्तु उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं है। **बाहर से कुछ नहीं मिलता।** इसका अर्थ? कि बाहर का लक्ष्य करे तो दु:ख मिलता है, परन्तु आत्मा की शान्ति और सुख नहीं मिलता।

गहराई से ज्ञायकपने का अभ्यास किया जाये... आहाहा! गम्भीरता से, गहराई से, गहरे-गहरे चैतन्यध्रुव में प्रवेश करके... आहाहा! वर्तमान पर्याय को ध्रुव में लगाकर... आहाहा! गहराई से... पर्याय ऊपर-ऊपर है। अन्दर तल में भगवान ध्रुव विद्यमान है। आहाहा! यह तो सब भक्ति और यात्रा धर्म है, ऐसा मानते हैं। उससे यह विरुद्ध पड़ता है।

गहराई से ज्ञायकपने का... ज्ञायकस्वरूप मैं तो जानन-देखन स्वभावस्वरूप हूँ। मैं मेरी पर्याय से भी भिन्न अन्दर गहराई में ज्ञायकपने से मैं पूर्ण भरा हुआ हूँ। ऐसा **अभ्यास किया जाये तो अन्तर में से ही सब कुछ मिलता है**। ज्ञायकपने का अन्दर अभ्यास करे। अन्तर चैतन्य ज्ञायकभाव, भरपूर स्वभाव की ओर का राग से विमुख होकर सन्मुखता का अभ्यास करे... आहाहा! अन्तर ज्ञायकभाव में भण्डार भरे हैं। पूर्ण आनन्द आदि, शान्ति आदि पूर्ण अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त का अन्त नहीं, ऐसे अनन्त गुण ज्ञायक में भरे हैं। आहाहा!

ऐसा **गहराई से ज्ञायकपने का अभ्यास किया जाये...** राग का अभ्यास करे या पर का, शुभकार्य का अभ्यास किया जाए, ऐसा नहीं। आहाहा! वर्तमान पर्याय में त्रिकाली ज्ञायकपने का अभ्यास किया जाए। आहाहा! ध्रुव वस्तु जो भगवान आत्मा, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। उत्पाद-व्यय की पर्याय को ध्रुव सन्मुख झुकाने से... आहाहा! ज्ञायकपने का अभ्यास... आहाहा! ऐसी बात है। कहो, अब ऐसा कहते हैं विद्यासागर है न? सागर के पन्नालाल है न, सागर के पन्नालालजी पण्डित। सवेरे ऐसा कहते थे। ये लोग अब ऐसा अर्थ करते हैं कि विद्यासागर और कानजीस्वामी (दोनों से) अध्यात्म का प्रचार विशेष होता है। पहले जरा विरुद्ध में थे। सवेरे कौन कहता था? कोई कहता था। अब वे ऐसा बोलते हैं कि अध्यात्म का वास्तविक प्रचार तो वहाँ से हुआ है। यहाँ विद्यासागर करते हैं, ऐसा कहते हैं... है न? आहाहा!

यह तो परमात्मस्वरूप अन्दर पूर्ण पड़ा है। बहिरात्मबुद्धि छोड़कर अन्तरात्म की बुद्धि करके, परमात्मा को प्राप्त करने का अभ्यास करे। आहाहा! बहिरात्म अर्थात् राग, दया, दान, चाहे तो वह व्रतादि हो परन्तु उन्हें मेरा मानना और उनसे लाभ मानना, यह बहिरात्मबुद्धि है। आहाहा! भेदज्ञान करना, उससे भेदज्ञान करना, राग से भी भिन्न करना। भेदज्ञान करने से अन्तर आत्मा की प्राप्ति होती है और अन्तर आत्मा में एकाग्र होकर परमात्मा की प्राप्ति होती है। आहाहा! क्रियाकाण्ड से अन्तर आत्मा मिले, पश्चात् परमात्मा क्रियाकाण्ड से मिल जाए, (ऐसा नहीं है)। बाहर की क्रिया यह नहीं। अन्तरस्वरूप भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान के भण्डार में एकाग्रता की क्रिया, वह

अन्तरात्मा की क्रिया है और वह परमात्मा को प्राप्त करने की क्रिया है। **परन्तु बाहर से कुछ नहीं मिलता।** अन्तर से ही सबकुछ मिलता है। आहाहा! है?

जैसे भोंयरे में जाकर योग्य कुंजी द्वारा तिजोरी का ताला खोला जाये... आहाहा! **तो निधान प्राप्त हों...** अन्दर भोंयरा में निधान भरा है। आनन्द सागर भगवान अन्दर भोंयरा है। पर्याय के अन्दर में ध्रुव भोंयरा है। अन्दर में अनन्त आनन्द सागर भरा है। आहाहा! उस **तिजोरी का ताला खोला जाये तो निधान प्राप्त हों...** राग की एकता का जो ताला है, वह मिथ्यात्व है। राग दया, दान का विकल्प है, वह मेरा है, उससे लाभ होगा, यह मिथ्यात्व का ताला है। निधान बन्द है। आहाहा! उसे खोला जावे। है? चाबी द्वारा।

भोंयरे में जाकर योग्य कुंजी द्वारा... योग्य चाबी द्वारा। आहाहा! राग से भिन्न होकर अन्तर ज्ञानानन्दस्वभाव जो पड़ा है, **जाकर योग्य कुंजी द्वारा...** अर्थात् भेदज्ञान की चाबी द्वारा। आहाहा! **तिजोरी का ताला खोला जाये तो निधान प्राप्त हों...** अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का निधान प्राप्त हो। यह उपाय है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! अभी तो सब गड़बड़ बहुत चली है। उसमें यह बात सामने रखना। अन्तर में निधान भरा है, वह दया, दान, व्रत, भक्ति का जो राग है, उस राग से मुझे लाभ होगा—ऐसी जो बुद्धि है, वह मिथ्यात्व का ताला है। बाहर के निधान में रुक गया है। अन्दर में जाकर मिथ्यात्व का नाश होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करे। आहाहा!

अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उस ओर जाकर भेदज्ञान की योग्य चाबी लगावे... आहाहा! निधान खुल जाए। ऐसी बात है, भाई! अनजाने व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि यह तो सब रूखा है। आहाहा! राग की क्रिया से पार भगवान अन्दर है। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा अनादि का राग है, वह तो राग है। आहाहा! **तिजोरी का ताला खोला जाये तो निधान प्राप्त हों...** अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त हो। **और दारिद्र दूर हो जाये,...** पर्याय में जो भिखारी दरिद्रता माँगे... आहाहा! पर्याय में रागादि की जो दीनता है, वह सब नष्ट हो जाए। ऐसी बात है।

उसी प्रकार गहराई में जाकर... भोंयरा का दृष्टान्त दिया। अन्दर में ध्रुव चैतन्य भगवान है। सहजानन्द नित्यानन्द प्रभु है, ऐसे गहराई में वर्तमान पर्याय को अन्तर में ले

जाने से... आहाहा! वर्तमान पर्याय जो परसन्मुख है, उसे छोड़कर स्वसन्मुख ले जाए तो ताला खुल जाए। आहाहा! ऐसी बात है। सब अनजानी बातें! **गहराई में जाकर...** गहरे-गहरे ध्रुव चैतन्य भगवान। पर्याय के तल में अन्दर ध्रुव पड़ा है। जैसे गहरा भोंयरा हो, उसी प्रकार पर्याय के तल में ध्रुव भोंयरा पड़ा है। आहाहा! वहाँ **गहराई में जाकर ज्ञायक के अभ्यासरूप कुंजी से...** मैं तो ज्ञायक ही हूँ, जानने-देखनेवाला ही मैं हूँ, ऐसी **कुंजी से भ्रान्तिरूप ताला खोल दिया जाये...** डाला। बहुत सरस बात।

भगवान अन्दर अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति, अनन्त अनन्त ईश्वरता का भण्डार अन्दर है, उसे कहते हैं कि **ज्ञायक के अभ्यासरूप कुंजी से...** ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... मैं तो एक त्रिकाली जाननेवाला हूँ, ऐसा अन्तर में अभ्यास करके **अभ्यासरूप कुंजी से भ्रान्तिरूप ताला खोल दिया जाये...** आहाहा! **तो अनन्त गुणरूप निधान प्राप्त हों...** अनन्त गुणरूप निधान भगवान आत्मा प्राप्त होता है। आहाहा! ऐसी बात है। भाषा तो सादी है परन्तु अब भाव तो गम्भीर है। आहाहा! वर्तमान में तो बाह्य क्रिया करो, यात्रा करो, व्रत पालो, अपवास करो, भगवान की भक्ति करो तो कल्याण होगा। यह सब भ्रान्ति है। इस भ्रान्ति को ज्ञायकभाव का अभ्यास करके छोड़ दे। आहाहा! मैं तो चैतन्य—जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। कोई राग की क्रिया करनेवाला मैं नहीं हूँ। आहाहा! यह दया, दान के जो विकल्प उठते हैं, वह क्रिया मेरा कर्तव्य नहीं है, वह मेरा कार्य नहीं है, मैं तो उसका भी जाननेवाला-देखनेवाला ज्ञायक हूँ। आहाहा! भाषा थोड़ी परन्तु भाव बहुत गम्भीर है। आहाहा!

अनन्त गुणरूप निधान प्राप्त हों और भिक्षुकवृत्ति मिट जाये। उसमें जैसे दरिद्रता मिट जाए, शुभपरिणाम में से, शुभकर्म में से सुख मिलेगा, ऐसी जो भ्रान्ति, जो भिक्षावृत्ति की, भीख माँगने की है, वह मिट जाएगी। आहाहा! यह तो सम्यक् दृष्टिपूर्वक बात की है। समझ में आया? अब मुनिराज कैसे होते हैं? आहाहा! सच्चे मुनि कैसे होते हैं?

मुनिराज कहते हैं:—हमारा आत्मा तो अनन्त गुणों से भरपूर, अनन्त अमृतरस से भरपूर, अक्षय घट है। उस घट में से पतली धार से अल्प अमृत पिया जाये ऐसे स्वसंवेदन से हमें सन्तोष नहीं होता। हमें तो प्रतिसमय पूर्ण अमृत का पान हो, ऐसी पूर्ण दशा चाहिए। उस पूर्ण दशा में सादि-अनन्त काल पर्यन्त प्रतिसमय पूर्ण अमृत पिया जाता है और घट भी सदा परिपूर्ण भरा रहता है। चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य और प्रतिसमय ऐसी ही पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन! ऐसी उत्कृष्ट-निर्मल दशा की हम भावना भाते हैं। (ऐसी भावना के समय भी मुनिराज की दृष्टि तो सदाशुद्ध आत्मद्रव्य पर ही है।)॥४१५॥

मुनिराज कहते हैं:—हमारा आत्मा तो अनन्त गुणों से भरपूर,... पहले सम्यग्दृष्टि की बात की। अब आगे बढ़कर अन्तर आनन्द, विशेष प्रचुर स्वसंवेदन आता है। मुनि उन्हें कहते हैं कि जिन्हें भावलिंग में प्रचुर आनन्द का वेदन होता है। आहाहा! पंच महाव्रत की क्रिया आदि तो राग है। वह कहीं मुनिपना नहीं है। नग्नपना, वह कहीं मुनिपना नहीं है। अन्तर में आनन्दस्वरूप प्रभु में प्रचुर स्वसंवेदन (होता है)। सम्यग्दर्शन में स्वसंवेदन अल्प है। मुनिराज को तो प्रचुर स्वसंवेदन हो, तब मुनिपना आता है। भावलिंग का चिह्न यह कि अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन होना। आहाहा!

अनन्त गुणों से भरपूर, अनन्त अमृतरस से भरपूर,... आहाहा! मुनिराज को अनन्त गुण से भरपूर आत्मा और अनन्त अमृत से भरपूर **अक्षय घट है**। आत्मा तो अक्षय घट है। अनन्त अमृत से भरपूर अक्षय घट भरा है। जैसे पानी का घड़ा है, वैसे यह अक्षय अमृत का घट है। आहाहा! घट के आकार है न? देखो न! घड़े के आकार से भिन्न है न? आत्मा, वह आकार से भिन्न है। शरीराकार प्रमाण आत्मा भिन्न है। वह अमृत का घट है। आहाहा!

मुनिराज... ऐसा जानते हैं। **कहते हैं:...** का अर्थ जानते हैं। **हमारा आत्मा तो अनन्त गुणों से भरपूर, अनन्त अमृतरस से भरपूर, अक्षय घट है**। आहाहा! ऐसा हमारा घट है

कि जो अक्षय है। कभी क्षय नहीं होता। अनन्त-अनन्त आनन्द अनुभव हो तो भी अन्दर अक्षय घट है। आहाहा! **उस घट में से पतली धार से...** आहाहा! मुनिराज को उस घट में से पतली धार से, आहाहा! **अल्प अमृत पिया जाये...** अल्प आनन्द की दशारूप अमृत पिया जाये... आहाहा! **ऐसे स्वसंवेदन से हमें सन्तोष नहीं होता।** आहाहा! मुनि किसे कहते हैं? कि जिनके अन्तर आत्मा में अमृत भरा हुआ है, उसकी **पतली धार से (स्वसंवेदन) अल्प अमृत पिया जाये...** आहाहा! छठवें गुणस्थान में, सातवें गुणस्थान में अमृतधारा बहती है। अमृत से भरपूर प्रभु, राग से भिन्न होकर भगवान का अनुभव हुआ, तो वहाँ भेदज्ञान की धारा बहती है। उसमें अमृत के आनन्द की धारा भी साथ में बहती है। आहाहा! वह अतीन्द्रिय अमृत की धारा, मुनिराज कहते हैं कि हमें पतली धारा है। अन्दर पूर्ण घट है, उसमें से पतली धारा आती है। आहाहा! वीतरागी अमृत धारा आयी, परन्तु पतली आयी। आहाहा! यह मुनिपना!

शास्त्र में समकिती को, सच्चे श्रावक को तो अमृत की बहुत पतली धारा है। मुनि को अमृत की पतली धारा, पूर्ण धारा की अपेक्षा से पतली धारा है। बाकी चौथे और पाँचवें (गुणस्थान) की अपेक्षा अमृत धारा की विशेषता है। आहाहा! उस अमृतधारा का वेदन है परन्तु वह हमारे घट में से अभी पूर्णानन्द का वेदन नहीं आया। वह भावना करते हैं। पंच महाव्रत की भावना करते हैं या अतिचार पालन करूँ, ऐसा नहीं - यह कहते हैं। आहाहा! चरणानुयोग में ऐसा आवे कि पंच महाव्रत का भाव, उसका अतिचार (रहित) पालन करने का भाव, परन्तु वह सब व्यवहार की बात है। आहाहा!

परमात्म भगवान आत्मा अमृत का घट है, सागर है। उसमें से हमें तीन कषाय का अभाव होकर, सम्यग्दर्शन होकर जो अमृत की धारा पर्याय में आयी है, द्रव्य में से अमृत धारा जो पर्याय में आयी है... आहाहा! उस पतली धारा से हमको सन्तोष नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। उसे यहाँ मुनिपना कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द की धारा बहती है। 'घट-घट अन्तर जिन बसे...' उसमें से जिनपना प्रगट हुआ। आहाहा! 'घट-घट अन्तर जिन बसे...' जिनप्रभु वीतराग अमृत का सागर तो घट-घट में विराजमान आत्मा है। आहाहा! इस घट से भिन्न घट।

उस घट में से पतली धार से... आहाहा! **स्वसंवेदन से हमें सन्तोष नहीं होता।** आहाहा! हमें अमृत की अतीन्द्रिय आनन्द की धारा अन्दर से बहती है, वेदन में (आती है) परन्तु वह थोड़ी पतली धारा है। आहाहा! यह मुनिपना! यहाँ नग्नपना, पंच महाव्रत का विकल्प आया तो मुनिपना हो गया, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का घड़ा भरा है, उसमें से पर्याय में स्वसंवेदन की धारा बहती है, वह भी पतली है। मुनि कहते हैं हमें पतली धारा बहती है, हमें तो पूर्ण धारा चाहिए। आहाहा! कहो, सन्तोषकुमार! इतने से सन्तोष नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

छठवें गुणस्थान में सच्चे मुनि को, सच्चे सन्त हों, उन्हें अन्दर से अमृत की धारा आती है। जैसे पाताल में पत्थर तोड़कर धारा बहती है, पत्थर टूटकर पाताल में से जैसे पानी बहता है; इसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पाताल भरा है। आहाहा! उसमें एकाग्रता से जो पर्याय में अमृतधारा बहती है, मुनिराज कहते हैं कि उससे इतने से हमें अभी सन्तोष नहीं है। आहाहा! **हमें तो प्रतिसमय...** प्रत्येक समय में और **पूर्ण अमृत का पान हो...** प्रत्येक समय में और पूर्ण अमृत। आहाहा! मुनि के योग्य अमृत की धारा का वेदन तो है, परन्तु कहते हैं, इतने में हमें सन्तोष नहीं है। हमें तो पूर्ण अमृत की धारा... आहाहा! और वह भी प्रतिसमय, प्रत्येक समय में। प्रत्येक समय में अमृत की धारा पूर्ण हो, यह हमारी भावना है। आहाहा! देखो! यह मुनिराज की दशा। सच्चे मुनि उन्हें कहते हैं। बाकी तो सब द्रव्यलिंगी हैं। आहाहा! भावलिंग की अन्दर बात है। आहाहा!

अमृत का पान हो, ऐसी पूर्ण दशा चाहिए। हमें तो अमृत का जो आनन्द है, वह पर्याय में हमें आया है परन्तु वह बहुत पतला है और असंख्य समय में ख्याल में आता है। यह तो प्रतिसमय और पूर्ण। प्रत्येक समय और पूर्ण अमृत। आहाहा! है? **प्रतिसमय पूर्ण अमृत का पान हो, ऐसी पूर्ण दशा चाहिए।** ऐसी पूर्ण दशा-अवस्था हमें चाहिए। आहाहा! राग का भाव चाहिए, महाव्रत का चाहिए या महाव्रत का अतिचार चाहिए, ऐसा नहीं है। आहाहा! महाव्रत तो राग है, वह तो दुःख है। आता है परन्तु वह तो दुःख की धारा है। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनिव्रत धार - बाह्य पंच महाव्रत धारण करके, अट्ठाईस मूल (गुण) पालन करके 'अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,

पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' परन्तु आत्मा के अनुभव बिना आनन्द नहीं आया। यह पंच महाव्रत के परिणाम भी दु:खरूप है। आहाहा! ऐसी बात है। **हमें तो प्रतिसमय पूर्ण अमृत का पान हो, ऐसी पूर्ण दशा चाहिए।** आहाहा! **उस पूर्ण दशा में सादि-अनन्त काल...** हमको पर्याय में पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द आवे, यह हमारी भावना है और वह पूर्ण आनन्द सादि-अनन्त, जब से प्रगट हुआ, वहाँ आदि हुआ परन्तु भविष्य में उसका अन्त नहीं है। आहाहा! 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में।' श्रीमद् में आता है न? 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो; अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?' ऐसा कहते हैं। गुजराती में ऐसा कहते हैं, क्यारे आवशे?

यहाँ कहते हैं कि सच्चे सन्त धर्मात्मा हों, वे अपनी **पूर्ण दशा में सादि-अनन्त काल पर्यन्त...** आहाहा! **प्रतिसमय...** प्रतिसमय, प्रत्येक समय में **पूर्ण अमृत पिया जाता है...** पूरा निर्विकारी आनन्द का पान करते हैं। आहाहा! इसका नाम मोक्ष है। आहाहा! है? **पूर्ण दशा में सादि-अनन्त काल पर्यन्त प्रतिसमय पूर्ण अमृत पिया जाता है...** आहाहा! और **घट भी सदा परिपूर्ण भरा रहता है।** आहाहा! घट में से अमृत की परिपूर्ण पर्याय आयी, तो भी घट तो पूरा भरा हुआ है। घट में से कम हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। दुनिया को तो कठोर लगता है। सत्य मार्ग तो यह है। आहाहा!

प्रतिसमय पूर्ण अमृत पिया जाता है और घट भी सदा परिपूर्ण भरा रहता है। आहाहा! ऐसी ही वस्तु की कोई चमत्कारिक दशा है। यह पूर्ण आनन्द हुआ तो भी। अल्प आनन्द था, तब भी घट तो पूर्ण भरा हुआ था। मोक्षपर्याय में पूर्ण आनन्द हुआ, तब भी घट तो पूर्ण भरा हुआ ही रहता है। पूर्ण आनन्द हुआ तो घट कम हो गया, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! द्रव्यस्वभाव और गुणस्वभाव में कुछ कमी होती है, ऐसा नहीं है। **प्रतिसमय पूर्ण अमृत पिया जाता है और घट भी सदा परिपूर्ण भरा रहता है।** आहाहा! विस्मय लगे न! अल्प आनन्द के समय भी घट पूरा भरा हुआ है और पूर्ण आनन्द आया तो भी घट पूरा भरा हुआ ही है। आहाहा! यह मुनिपने की दशा है। आहाहा! यह परिपूर्ण हो, वह केवलज्ञान की दशा है। मुनि हैं, वे अपने आनन्द के अनुभव में परिपूर्ण अमृतधारा की भावना करते हैं। आहाहा! यह भावना करते हैं। **घट भी सदा परिपूर्ण भरा रहता है।**

चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य... आहाहा! यह आत्मा चमत्कारिक

वस्तु है। आहाहा! साधारण को तो ख्याल में न आवे। परिपूर्ण आनन्द आवे तो, जिसमें से आया, उसमें से उतनी कमी हुई या नहीं? यह कैसे जँचे? पूर्ण अमृत आनन्दस्वरूप भगवान के द्रव्य-गुण में से केवली को पूर्ण आनन्द आया। ऐसी भावना मुनि की है, तथापि घट तो परिपूर्ण रहता है। आहाहा! पर्याय में पूर्ण आनन्द का अनुभव हुआ तो भी द्रव्य और गुण तो परिपूर्ण भरपूर हैं। यह बात किस प्रकार जँचे? कि वस्तु ही विशेष चमत्कारिक है। आहाहा! वस्तु द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव ऐसी ही कोई चमत्कारिक चीज़ है, आहाहा! उसमें से परिपूर्ण प्रतिसमय सादि-अनन्त अनन्त काल में अनन्त आनन्द आता है, तो भी वस्तु तो परिपूर्ण भरपूर है। आहाहा!

एक समय में पूर्ण आनन्द आया, दूसरे (समय) में आया, तीसरे (समय) में आया - ऐसे सादि-अनन्त। ऐसा पूर्ण आनन्द आने पर भी वस्तु का स्वभाव तो परिपूर्ण भरपूर है। आहाहा! ऐसे द्रव्य और गुण परिपूर्ण भरपूर हैं। आहाहा! किस प्रकार जँचे? आहाहा! और उसमें भी फिर पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द हो। घट तो पूर्ण (भरपूर) है परन्तु अतीन्द्रिय आनन्द में षट्गुण हानि-वृद्धि अगुरुलघु की होती है। आहाहा! यह कोई चमत्कारिक वस्तु है न?

पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द आया तो भी एक आनन्द की पर्याय में समय-समय में षड्गुणहानिवृद्धि (होती है)। अनन्त गुण वृद्धि, अनन्त गुण हानि, असंख्य गुण वृद्धि... आहाहा! क्या है यह? ऐसा ही कोई पर्याय का स्वभाव है। द्रव्य-गुण तो ऐसे हैं। आहाहा! द्रव्य-गुण तो परिपूर्ण रहे हैं, परन्तु पर्याय परिपूर्ण हुई, उसमें भी षड्गुणहानिवृद्धि अन्दर योग्यता है। आहाहा! तथापि उस परिपूर्णता में कमी नहीं होती और परिपूर्ण में वृद्धि नहीं होती, तथापि अनन्त गुण वृद्धि और अनन्त भाग हानि (होती है)। आहाहा! उसके द्रव्य-गुण का धर्म तो कोई अलौकिक है परन्तु उसकी पर्याय, एक-एक पर्याय ऐसी अनन्त आनन्द, ऐसा अनन्त केवलज्ञान, उस अनन्त केवलज्ञान में भी एक समय में षड्गुणहानिवृद्धि (होती है)। अनन्त गुण वृद्धि, अनन्त गुण हानि... आहाहा! असंख्य गुण वृद्धि, असंख्य गुण हानि, ...एक समय में यह तो कोई भगवान...! आहाहा! द्रव्य, गुण और पर्याय, यह वस्तु ही कोई चमत्कारिक चीज़ है। तीनों चमत्कारिक चीज़ हैं। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य... आहाहा! **और प्रतिसमय ऐसी ही पूर्ण व्यक्तिवाला...** देखा? **चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य और प्रतिसमय ऐसी ही पूर्ण व्यक्तिवाला...** परिणमन। आहाहा! शक्तिवान पूरा, वह परिपूर्ण रहता है और व्यक्ति प्रगट होती है, वह भी परिपूर्ण कायम रहती है। आहाहा! **ऐसी उत्कृष्ट-निर्मल दशा की हम भावना भाते हैं।** मुनिराज तो यह भावना भाते हैं। आहाहा! **ऐसी उत्कृष्ट-निर्मल दशा की हम भावना भाते हैं।** तथापि कहते हैं।

(ऐसी भावना के समय भी...) ऐसी भावना के काल में भी **(मुनिराज की दृष्टि तो सदाशुद्ध आत्मद्रव्य पर ही है।)** तीसरी बात है। पूर्ण द्रव्य और गुण त्रिकाल और पूर्ण पर्याय आयी, वह तो चमत्कारिक। और ऐसे समय में भी मुनिराज की दृष्टि तो द्रव्य पर है। परिपूर्ण पर्याय पर नहीं। आहाहा! समझ में आया? **(ऐसी भावना के समय भी...)** पूर्ण पर्याय की भावना के काल में भी **(मुनिराज की दृष्टि तो सदाशुद्ध आत्मद्रव्य...)** त्रिकाली। आहाहा! **(आत्मद्रव्य पर ही है।)** अलौकिक है, भाई! द्रव्य, गुण चमत्कारिक पूर्ण, षड्गुण हानि-वृद्धि होने पर भी पर्याय में पूर्ण चमत्कारिक है और ऐसी पर्याय होने पर भी दृष्टि द्रव्य के ऊपर है। बोल पूरा हुआ।

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसर कृष्ण -१५, शुक्रवार, दिनाङ्क २९-१२-१९७८
वचनामृत- ४१३ से ४१७ प्रवचन-१७३

४१३, फिर से लेते हैं। यह आधा चला है न? सर्वज्ञ भगवान परमात्मा को ज्ञानदशा कैसी होती है, उसका वर्णन है। **सर्वज्ञभगवान...** सर्व को जाननेवाले परमात्मा **परिपूर्ण ज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं।** जिनकी ज्ञान की दशा परिपूर्ण हो गयी। **वे अपने को पूर्णरूप से—अपने सर्व गुणों के भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित—प्रत्यक्ष जानते हैं।** पहले अपना कहा। **साथ ही साथ वे स्वक्षेत्र में रहकर, पर के समीप गये बिना, परसन्मुख हुए बिना, निराले रहकर लोकालोक के सर्व पदार्थों को अतीन्द्रियरूप से प्रत्यक्ष जानते हैं।** यहाँ तक तो आ गया। आहाहा! परमात्मा कैसे होते हैं? '**जो जाणदि अरहंतं**' आता है न? '**दव्वत्तगुणत्तपज्जय**' उनकी पर्याय यह कितनी कैसी बढ़ी! आहाहा!

पर को जानने के लिये वे परसन्मुख नहीं होते। अपने क्षेत्र में स्वसन्मुख होकर जानते हैं, परसन्मुख होकर नहीं जानते। आहाहा! परसन्मुख होने से तो ज्ञान दब जाता है। आहाहा! ज्ञान ढँक जाता है। वे परसन्मुख नहीं होते, स्वसन्मुख में पूर्ण ज्ञान की पर्यायरूप परिणमित होते हैं। आहाहा! वस्तु जैसी कृतकृत्य है, वैसी ही पर्याय में कृतकृत्यता हो जाती है, कुछ करना बाकी नहीं रहता। आहाहा! जैसी चीज़ द्रव्य-गुण वस्तु कृतकृत्य है, उसके अवलम्बन से पूर्ण पर्याय प्रगट होती है, वह कृतकृत्य हो गयी है। अब उसे नया कुछ करना, बढ़ाना रहा नहीं।

रुक जाता है, परसन्मुख होने से ज्ञान (ढंक जाता है) दब जाता है—रुक जाता है, विकसित नहीं होता। जो ज्ञान पूर्णरूप से परिणमित हो गया है.... ज्ञान की पर्याय पूर्णरूप से परिणमित हो गयी। **ज्ञान किसी को जाने बिना नहीं रहता।** आहाहा! **वह ज्ञान स्वचैतन्यक्षेत्र में रहते हुए, वह ज्ञान स्वचैतन्यक्षेत्र-अपने में में रहते हुए, तीनों**

काल के तथा लोकालोक के सर्व स्व-पर ज्ञेयों मानों वे ज्ञान में उत्कीर्ण हो गये हों उस प्रकार,... आता है प्रवचनसार में। उत्कीर्ण हो जाएँ अर्थात् उसमें ज्ञात हो जाएँ। लोकालोक है, वह ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो जाता है। स्व-पर प्रकाशक अपना स्वभाव है, इसलिए (ज्ञात हो जाता है)।

समस्त स्व-पर को एक समय में... समस्त स्व और पर को एक समय, काल एक समय, **सहजरूप से (स्वाभाविकरूप से) प्रत्यक्ष जानता है;...** आहाहा! **जो बीत गया है, उस सबको भी पूरा जानता है,...** बीत गया है, उसे भी वर्तमान (में) पूरा जानता है।) आहाहा! **जो आगे होना है, उस सबको भी पूरा जानता है।** आहाहा! **ज्ञानशक्ति अद्‌भुत है।** अन्तिम योगफल। आहाहा! शक्ति अर्थात् पर्याय की शक्ति भी अद्‌भुत है, ऐसा। अन्दर गुणस्वभाव की शक्ति तो अद्‌भुत है, परन्तु पर्याय में अद्‌भुत शक्ति परिणमित हो जाती है। भूत-भविष्य-वर्तमान अपने और पर के प्रत्यक्ष हो गये और होंगे, उन सबको प्रत्यक्ष जानता है। ऐसा ज्ञान में परिणमन का पर्याय का स्वभाव है। अद्‌भुत है अद्‌भुत बात।

भवभ्रमण चलता रहे, ऐसे भाव में यह भव व्यतीत होने देना योग्य नहीं है। भव के अभाव का प्रयत्न करने के लिये यह भव है। भवभ्रमण कितने दुःखों से भरा है, उसका गम्भीरता से विचार तो कर! नरक के भयंकर दुःखों में एक क्षण निकलना भी असह्य लगता है, वहाँ सागरोपम काल की आयु कैसे कटी होगी? नरक के दुःख सुने जायें ऐसे नहीं हैं। पैर में काँटा लगने जितना दुःख भी तुझसे सहा नहीं जाता, तो फिर जिसके गर्भ में उससे अनन्तानन्तगुने दुःख पड़े हैं, ऐसे मिथ्यात्व को छोड़ने का उद्यम तू क्यों नहीं करता? गफलत में क्यों रहता है? ऐसा उत्तम योग पुनः कब मिलेगा? तू मिथ्यात्व छोड़ने के लिये जी-जान से प्रयत्न कर, अर्थात् साता-असाता से भिन्न तथा आकुलतामय शुभाशुभ भावों से भी भिन्न ऐसे निराकुल ज्ञायकस्वभाव को अनुभवने का प्रबल पुरुषार्थ कर। यही इस भव में करनेयोग्य है॥४१६॥

४१६, **भवभ्रमण चलता रहे ऐसे भाव में यह भव व्यतीत होने देना योग्य नहीं है।** आहाहा! भवभ्रमण चालू रहे, आहाहा! चार गति के भव। **ऐसे भाव में यह भव व्यतीत होने देना योग्य नहीं है।** आहाहा! **भव के अभाव का प्रयत्न करने के लिये यह भव है।** आहाहा! भव के अभाव के लिये, आहाहा! भव के अभाव के लिये, आहाहा! **भव के अभाव का प्रयत्न करने के लिये यह भव है।** आहाहा! भविष्य का भव न रहे, ऐसे भविष्य के भव के अभाव के प्रयत्न के लिये यह भव है। आहाहा! क्या कहा ? भव के अभाव के प्रयत्न के लिये यह भव है। यह भव, भव का अभाव हो, उसके प्रयत्न के लिये यह भव है। आहाहा! यह भव, भव को बढ़ाने के लिये यह भव नहीं है। आहाहा!

भवभ्रमण कितने दु:खों से भरा है,... भवभ्रमण। आहाहा! नरक और निगोद आदि के भव इसके कितने दु:खों से भरे हुए हैं। **उसका गम्भीरता से विचार तो कर!** गम्भीरता से गहरा-गहरा विचार कर। आहाहा! कितने भव में, कितने दु:ख सहन किये। उनमें कितने दु:ख भरे हैं। आहाहा! **नरक के भयंकर दु:खों में एक क्षण निकलना भी असह्य लगता है...** नरक के भयंकर दु:ख, जिसके एक क्षण का दु:ख करोड़ों भव और करोड़ों जीभों से नहीं कहे जो सकते, ऐसा दु:ख। आहाहा! **नरक के भयंकर दु:खों में एक क्षण निकलना भी असह्य लगता है...** आहाहा! रात्रि में पीड़ा विशेष हो तो रात्रि बड़ी हो जाती है न इसे ? अरे रे! बड़ी रात हुई। रात तो है उतनी है, परन्तु बहुत पीड़ा हो, इसलिए ऐसा लगता है। अरे रे! यह तो अनन्तवें भाग की पीड़ा है। आहाहा! नरक की पीड़ा तो, पहले नरक की दस हजार वर्ष आयुष्य की स्थिति के क्षणों का दु:ख। आहाहा! उसके तैंतीस सागर के दु:खों का वर्णन तो अलौकिक है।

इसलिए ऐसा कहते हैं, **वहाँ सागरोपम काल की आयु कैसे कटी होगी ?** आहाहा! एक क्षण के दु:ख भी भयंकर हैं, उसमें सागरोपम कैसे गये होंगे ? आहाहा! इसने विचार नहीं किया। कितने सागरोपम में और वह भी अनन्त बार सागरोपम में। आहाहा! **नरक के दु:ख सुने जायें, ऐसे नहीं हैं।** आहाहा! शरीर का ऐसा पानी हो जाए। उसके शीत की वेदना में शरीर ऐसा पारा जैसे बिखर जाए, वैसे बिखर जाता है। आहाहा! और वापस इकट्ठा होता है, फिर बिखर जाता है। अरे! ऐसे नरक के दु:ख सुने जाएँ, ऐसे नहीं हैं, कहते हैं। आहाहा!

पैर में काँटा लगने जितना दु:ख भी तुझसे सहा नहीं जाता,... आहाहा! पैर में एक काँटा लगा हो, थोर का, आंकड़े का, तो चिल्लाहट मचाता है। वह तो साधारण कुछ (नहीं)। आँख में एक बड़ा कण आवे तो सहन नहीं किया जाता, चिल्लाहट मचाता है। आहाहा! **पैर में काँटा लगने जितना दु:ख भी तुझसे सहा नहीं जाता, तो फिर जिसके गर्भ में...** मिथ्यात्व, मिथ्यात्वभाव है, उसके गर्भ में। आहाहा! **उससे अनन्तानन्तगुने दु:ख पड़े हैं,...** मिथ्यात्वभाव में। आहाहा! राग को अपना मानना, (अपने को) पर्याय जितना मानना, पर में सुख मानना.. आहाहा! ऐसे जो मिथ्यात्व के भाव अर्थात् झूठे ऐसे असत्यभाव। आहाहा! झूठे अर्थात् वस्तु में नहीं, इस अपेक्षा से। वस्तु है, वह सत्य है। मिथ्यात्वभावरूप से है, वह तो सत्य है। आहाहा! ऐसे दु:खों के भाव।

जिसके गर्भ में उससे अनन्तानन्तगुने दु:ख पड़े हैं, ऐसे मिथ्यात्व को छोड़ने का उद्यम तू क्यों नहीं करता? पहले में पहला तो यह है। आहाहा! पर्यायबुद्धि में जो मिथ्यात्व है, उसमें अनन्त-अनन्त भव के गर्भ पड़े हैं, अनन्त-अनन्त भव का कारण है। आहाहा! मिथ्यात्व को ही अनन्त कहा है। अनन्तानुबन्धी कषाय कही है न? कषाय अर्थात् मिथ्यात्व वह अनन्त है, उसके साथ रही हुई कषाय अनन्तानुबन्धी। आहाहा! मिथ्यात्व स्वयं अनन्त है, उसके साथ रही हुई कषाय, वह अनन्तानुबन्धी है। आहाहा! अस्थिरता के दोष दूसरी बात है परन्तु यह मिथ्यात्व दोष तो एक महा अनन्त नरक और निगोद के भव इसके गर्भ में पड़े हैं। **ऐसे मिथ्यात्व को छोड़ने का उद्यम तू क्यों नहीं करता?** आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्तानुबन्धी कषाय से भी मिथ्यात्व का दोष बड़ा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का दोष है, उसके साथ अनन्तानुबन्धी होती ही है। किसी को न हो, यह बात अलग है। अनन्तानुबन्धी इतना, यह तो अनन्तानुबन्धी मिथ्यात्व के साथ होती है, उसकी अभी बात है। अनादि का मिथ्यात्व है, वही अनन्त दु:ख का कारण है। उसके साथ कषाय है। आहाहा! दूसरे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी है, परन्तु मिथ्यात्व नहीं है। वह तो कोई एक क्षण की बात है। आहाहा!

अनन्त-अनन्त गुणों का सागर प्रभु, उससे विरुद्ध की मान्यता कितनी अनन्त भव

का कारण है। आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण का सागर भगवान, अनन्त-अनन्त गुण का कोई माप नहीं, इतने अनन्त। ऐसे अनन्त-अनन्त गुण से विरुद्ध भाव, आहाहा! ऐसे मिथ्यात्व के भाव में अनन्त भव करने की ताकत है, क्योंकि अनन्त-अनन्त गुणों का अनादर होकर... आहाहा! अनन्त-अनन्त गुणों का सागर भगवान आत्मा का अनादर होकर जो मिथ्यात्वभाव होता है, वह अनन्त-अनन्त भव का कारण है। आहाहा! पहले यह छोड़ना चाहिए, इसकी दरकार नहीं और राग की मन्दता के पत्ते तोड़े, परन्तु मूल (मिथ्यात्व/जड़) सुरक्षित रह गया। आहाहा! हमारी बड़ी भूल, नहीं वह उसमें आता है? रमेश (के भजन में) मिथ्यात्व की भूल हमारी बड़ी भूल है विपरीत श्रद्धा। आहाहा!

अनन्त-अनन्त गुणों का सागर भगवान, उससे विरुद्ध जो मिथ्यात्वभाव। आहाहा! राग को अपना मानना, राग से लाभ मानना... आहाहा! वह अनन्त-अनन्त गुणों का अनादर करता है। आहाहा! अनन्त-अनन्त गुणों का लाभ स्वाश्रय से होता है, उसे न मानकर, पराश्रय से ऐसा जो राग... आहाहा! जिसमें अपनापन माना है, उसने अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुणों को मार डाला है। नहीं है, ऐसा आरोप है। आहाहा!

यह अनन्त-अनन्त दु:ख पड़े हैं, वह कहते हैं, इसका अर्थ यह है कि अनन्त-अनन्त गुण जो हैं, उससे विपरीत मिथ्यात्वभाव में अनन्त-अनन्त दु:ख है। ऐसे जो अनन्त-अनन्त गुण हैं... आहाहा! उतना ही उनका अनादर अनन्तानन्त का करके और राग का एक कण है परन्तु उसे अपना माने। आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त गुणों का पार नहीं, उसका वह अनादर करता है। आहाहा! ऐसा जो **मिथ्यात्व भाव, उसे छोड़ने का उद्यम तू क्यों नहीं करता?** आहाहा! **गफलत में क्यों रहता है?** आहाहा! यह भव, भव के अभाव के लिये प्रयत्न का यह भव है। आहाहा! इसका गफलत में रहकर मिथ्यात्वभाव को छोड़ने का प्रयत्न क्यों नहीं करता? आहाहा! **गफलत में क्यों रहता है?**

ऐसा उत्तम योग पुन: कब मिलेगा? आहाहा! जिसे त्रसपना प्राप्त करना चिन्तामणि रत्न की भाँति कहा है। निगोद में से निकलकर त्रस हो, त्रस। छहढाला में आता है न? चिन्तामणि। आहाहा! तो उसमें मनुष्यपना, उसमें जैन सम्प्रदाय में जन्म... आहाहा! उसमें जिनवर की वाणी, ऐसा योग मिलना, भाई! महादुर्लभ है। पैसा और इज्जत मिलना दुर्लभ

नहीं है, वह तो अनन्त बार मिली है। आहाहा! परन्तु अपनी इज्जत कितनी है, इसकी इसे खबर नहीं है। आहाहा!

जिसके गुण सर्वज्ञ भी पूरे नहीं कह सकते। एक-एक गुण को कहने जाए तो अनन्त-अनन्त काल चाहिए, इतना तो आयुष्य होता नहीं। आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त गुण का (भण्डार) प्रभु, उससे विरुद्ध करके यह मिथ्यात्व को सेवन किया है। उसे छोड़ने का प्रयत्न क्यों नहीं करता? पहली-पहली यह बात है। आहाहा! ऐसा उत्तम योग बिजली की चमकार में मोती पिरो लो तो पिरो लो। आहाहा! यह चमक लम्बे काल नहीं रहेगी। आहाहा! ऐसा मनुष्य का भव, उसमें ऐसी बात—वीतराग की वाणी, कान में पड़ना। आहाहा! **ऐसा उत्तम योग पुनः कब मिलेगा? तू मिथ्यात्व छोड़ने के लिये जी-जान से प्रयत्न कर,...** आहाहा! मिथ्याश्रद्धा को छोड़ने का जी-जान से प्रयत्न कर, मर जाए वहाँ तक प्रयत्न कर। आहाहा! एक कलश में आता है न? मरण? (समयसार कलश २३)

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मृत्वा आता है, कलश में आता है। आहाहा! एक बार मरकर भी स्व का प्रयत्न कर। मरकर अर्थात् राग से मार डालकर। आहाहा! दुनिया के मान-सम्मान को एक ओर छोड़ दे। दुनिया में गिनाना-गिनना है... आहाहा! उस गिनने में, गिनाने में मान गिना परन्तु गिननेवाला, गिननेयोग्य आत्मा गुण है, वह गिनने योग्य है, वे गिनती में लेने योग्य है। आहाहा!

अनन्त गुण की मणिरत्न से भरपूर प्रभु, चैतन्यरत्नाकर कहा है न? आता है न कलश में? यह देव है। आहाहा! यह चैतन्यरत्नाकर, गुण का पार नहीं होता, उसका रत्नाकर। आहाहा! रत्न का आकर बड़ा समुद्र.. समुद्र.. समुद्र.. ऐसे स्वभाव का जो अनादर और एक विकृत राग का भाव जो विकृत और विभाव है, उसका आदर, यह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! उस मिथ्यात्व को छोड़ने के लिये जी-जान से प्रयत्न कर। आहाहा! दुनिया क्या कहेगी, कैसे मानेगी, यह उसके पास रहा, भाई! आहाहा! **तू मिथ्यात्व छोड़ने के लिये जी-जान से प्रयत्न कर,...** मृत्वा आता है न? मृत्वा। आहाहा!

अर्थात् साता-असाता से भिन्न... अनुकूल साता और प्रतिकूल असाता से प्रभु

अन्दर भिन्न है। आहाहा! साता के लिये झपट्टे मारता है, ऐसी कुछ अनुकूलता हो ऐसे पानी की, आहार की, सोने की, बैठने की, बिछाने की, ओढ़ने की, आहाहा! बैठने की जगह की, उठने की जगह की ऐसी अनुकूल, अनुकूल ऐसे बाहर में झपट्टे मारता है, यह.. यह.. यह होवे तो (ठीक)। आहाहा! **साता-असाता से भिन्न...** आहाहा! **तथा आकुलतामय शुभाशुभ भावों से भी भिन्न...** वे तो संयोग साता-असाता से मिलते हैं। आहाहा! वह तो ठीक, परन्तु कहते हैं आकुलतामय भाव, है न? आकुलतमय शुभाशुभभाव। आहाहा!

यह स्तुति है न? यह स्तुति। २५-२५ श्लोक की। उसमें डाला है, पन्नालाल (जी ने) द्रव्य संयम पहले कहा। परन्तु भाई! इसका क्या अर्थ? आहाहा! यह तो विकल्प आता है, चौथे, पाँचवें में, पहले पंच महाव्रत लेने का। आता है, इसलिए उससे कुछ भावसंयम मिलता है? वह होता है, जैसे निमित्त होता है, परन्तु पर में क्या कार्य करता है? व्यवहार होता है, इससे क्या? निश्चय का कार्य करता है? इसी प्रकार द्रव्य संयम होता है, परन्तु उससे क्या? वह भाव संयम का कार्य करता है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो शुभभाव की बात आयी न! शुभभाव आते हैं। मुनि होने के लिये विकल्प उठे न पहले, पंच महाव्रत लेने का। ऐसा द्रव्य संयम हो परन्तु उससे पंच महाव्रत लिया, इसलिए यहाँ भाव संयम आ गया, ऐसा नहीं है। द्रव्य संयम लिया होने पर भी भाव संयम न हो तो चौथे गुणस्थान में रहे और क्रिया रह जाए द्रव्य की (द्रव्यलिंग की)। आहाहा! क्योंकि वह तो जो भाव है, वह तो स्वद्रव्य का अनन्त-अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु, वह बादशाह प्रभु, उसका आश्रय करे तो भाव संयम होता है। आहाहा! यहाँ तो उसके पहले मिथ्यात्व को तो छोड़, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

शुभाशुभभावों से भी भिन्न... आहाहा! संयम लेने के लिये विकल्प आया। चौथे, पाँचवें में आता है न? परन्तु इससे क्या? उस शुभभाव से अन्दर संयम आता है? आहाहा! होता है, निमित्त होता है, परन्तु निमित्त से कहीं पर में कार्य होता है? व्यवहार होता है, उससे क्या निश्चय में उससे कार्य होता है? आहाहा! इसी प्रकार द्रव्य संयम का शुभभाव पहले आता है... आहाहा! परन्तु उससे क्या वहाँ भावसंयम, उससे होता है? चेतनजी! आहाहा! यह बात है। वे वजन वहाँ करते हैं। आता है, होता है, परन्तु वह तो आकुलतामय भाव है। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम हैं, वे भी आकुलतामय भाव हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तो फिर ऐसा कहते हैं कि पहले द्रव्य संयम आवे, पश्चात् भाव संयम आता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, वह पहला द्रव्य (संयम) ऐसा आवे। कहा न ? परन्तु तत्पश्चात् भाव कहीं उसके कारण आता है, ऐसा नहीं है। अनन्त बार संयम ऐसा मिथ्यादृष्टि ने भी लिया है तथापि वहीं का वहीं रहा है। सम्यक् दृष्टि भी जब द्रव्य संयम लेता है, तो भी आगे अन्दर स्व का आश्रय नहीं लेता तो वह चौथे में रह जाता है और द्रव्य संयम की क्रिया रह जाती है। भाई ! चेतनजी ! आहाहा ! और द्रव्य संयम आदि है तथा तत्त्वार्थसूत्र में यह पाठ है, वह जीव समकित भी प्राप्त करता है। परन्तु किसके कारण ? इसके (द्रव्य संयम के) कारण नहीं। आहाहा ! आता है न ? तत्त्वार्थसूत्र में। मिथ्यादृष्टि है, द्रव्य संयम है, वह जीव भी समकित प्राप्त करता है। परन्तु पाता कैसे है ? वह इसके आश्रय से नहीं। आहाहा ! वह अन्दर ग्रन्थिभेद (करके) स्वभाव का आश्रय करता है, इसलिए वहाँ ग्रन्थिभेद होता है। यह विकल्प आया कि यह तो... आहाहा ! इसलिए वहाँ भाव संयम आ जाता है (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! अरे रे ! ऐसी बातें बहुत कठिन। थोड़ा अन्तर हो परन्तु कहाँ अन्तर है, यह खबर नहीं होती, इसलिए क्या हो ? आहाहा !

शुभाशुभ भावों से भी भिन्न ऐसे निराकुल ज्ञायकस्वभाव को... आहाहा ! ऐसे **निराकुल ज्ञायकस्वभाव को अनुभवने का प्रबल पुरुषार्थ कर।** आहाहा ! शुभ और अशुभभाव जो आकुलतामय है, उस अनाकुल भगवान से-आत्मा से तो विरुद्ध है। आहाहा ! उन्हें छोड़कर अनाकुल ज्ञायकभाव, आनन्दस्वरूप जो ज्ञायकभाव... आहाहा ! उसे अनुभव करने का प्रबल पुरुषार्थ (कर)। इतने विशेषण दिये—निराकुल ज्ञायकस्वभाव को अनुभव करने का प्रबल पुरुषार्थ कर। आहाहा ! ऐसी बात है।

यही इस भव में करनेयोग्य है। लो ! शुरुआत वहाँ से की थी न ? **भवभ्रमण चलता रहे ऐसे भाव में यह भव व्यतीत होने देना योग्य नहीं है। यही...** यही, यही, **इस भव में करनेयोग्य है।** आहाहा ! यह नहीं हुआ तो इसने भव निरर्थक गँवाया। स्वभाव के लिये निरर्थक, परिभ्रमण के लिये सार्थक व्यतीत किया। आहाहा ! जिसमें भव का अभाव न हो, वह वस्तु क्या ? भले भव स्वर्ग का मिले, या नौवें ग्रैवेयक आदि का मिले, वह तो

भव है। उस भव का कारण है, वह तो विकार है। भव के अभाव के लिये प्रयत्न करे। आहाहा! स्वभावभाव की प्राप्ति के लिये और भव के अभाव के प्रयत्न के लिये वहाँ पुरुषार्थ कर। आहाहा! ऐसा नास्ति से लिया है (कि) भव के अभाव में से। बाकी तो स्वभावभाव में प्रयत्न कर। भाषा बहुत संक्षिप्त! आहाहा!

मुमुक्षु : अवधि कितनी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अवधि अन्तर्मुहूर्त। एक समय। अन्तर्मुहूर्त का उपयोग आया, इसलिए (अन्तर्मुहूर्त कहते हैं, बाकी तो) एक समयान्तर। आहाहा! और ऐसा आचार्य छह माह (कहा है)। बहुत कठिन लगे तो छह माह कहा है। बाकी तो लक्ष्य ऐसे है, वह लक्ष्य बदल, वह एक समयमात्र में है। आहाहा! क्योंकि पर्याय का काल ही एक समय है। आहाहा! इसलिए निराकुल ज्ञायकस्वभाव को अनुभव करने का, वेदन करने का... आहाहा! प्रबल पुरुषार्थ कर। दूसरा विशेष आवे, न आवे; समझाना आवे, न आवे; लिखना आवे नहीं, उससे क्या काम है। आहाहा! ज्ञायकस्वभाव जो परिपूर्ण परमात्मा अनाकुल आनन्द से भरपूर भगवान है, उसे जानकर अनुभव करनेयोग्य प्रयत्न कर। आहाहा! शब्द तो थोड़े हैं, भाव तो बहुत गम्भीर हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : अनादि का, वह एक समय में जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही समय में छूट जाता है, पर्याय एक समय की है, उसकी अवधि ही एक समय की है। अनादि तो परम्परा करते हुए अनादि आया, परन्तु पूर्व की पर्याय का व्यय होता है और नयी होती है, उसमें एक ही समय रहती है। आहाहा! अरे रे! आहाहा! देखो न! क्षण-क्षण में मनुष्य कैसे जाते हैं! आहाहा!

वे दो दृष्टान्त नहीं दिये थे? भाई, बाबूभाई की लड़की का... हमारे हरिभाई का भाई, दोनों को पीलिया हुआ था, पीलिया। सुना न? हरिभाई, बाबूभाई नहीं अपने? बाबूभाई की लड़की है। दी है माणेकचन्दभाई के यहाँ। उनके एक ही लड़की है, उनके दामाद को पीलिया हुआ। चार दिन में दस हजार रुपये खर्च किये परन्तु क्या करे? बापू! आहाहा! तुम्हारा भाई भी वह चार या पाँच दिन हुए न? आहाहा! वह तो स्थिति पूरी होती है, बापू! आहाहा! क्या करे पैसा लाख-करोड़ खर्च करे तो भी? अरे रे! भव के एक समय की

कीमत कितनी ? जिससे भव का अभाव हो, वह भव कैसा ? आहाहा ! अन्दर से चिन्तामणि रत्न प्राप्त होता है। आहाहा ! उसके एक समय की क्या कीमत, बापू ! आहाहा !

दुनिया के चक्रवर्ती के राज्य और इन्द्र के इन्द्रासन जिनके समक्ष तुच्छ हैं। आहाहा ! ऐसा उदासीन आश्रम अपना, प्रभु ! आहाहा ! उदासीन आश्रम है। राग से उदासीन होकर अपने में आसन डाला है। आहाहा ! उदासीनोसि आता है न ? यह तो कहा था न ? नाटक में भी उदासीनोसि कहा था। अनुसुईया का नाटक, (संवत्) १९६४ का वर्ष। उदासीनोसि, इतनी सब खबर नहीं कि यह उदासीन अर्थात् क्या ? उदासीन अर्थात् पर से उदास, ऐसा। परन्तु वास्तव में तो उदासीन तेरा आसन ही राग से भिन्न तेरा आसन वहाँ स्वभाव में है, तेरी बैठक वहाँ है। आहाहा ! यह तो १९६४ की बात है। बड़ोदरा में नाटक देखने गये थे। बेटा ! उदासीनोसि... आहाहा ! यह शब्द अपने उसमें-बन्ध अधिकार में है। आहाहा ! प्रभु ! तेरा आसन उदासीन है। राग से भिन्न तेरा आसन-बैठक वहाँ है, प्रभु ! आहाहा ! तेरी बैठक वहाँ है, राग में तेरी बैठक नहीं है, प्रभु ! आहाहा ! अनन्त-अनन्त ज्ञायकस्वभाव से भरपूर भगवान, वह तो और ज्ञान को अनन्त कहा परन्तु ऐसे अनन्त-अनन्त गुण के स्वभाववाला ज्ञायकभाव है, उसमें तेरी बैठक कर, प्रभु ! आहाहा ! राग में बैठा है, पुण्य में बैठा है, राग के कण में। यह तेरी बैठक नहीं है, भाई ! आहाहा ! वह कुजात की बैठक है। आहाहा !

निराकुल ज्ञायकस्वभाव को अनुभवने का प्रबल पुरुषार्थ कर। आहाहा ! बहुत बात (मीठी है)। दुनिया में कैसे बढ़ूँ और आगे कैसे बढ़ूँ और दूसरे से बड़प्पन में आ जाना और गिनती में गिना जाना... अरे ! प्रभु ! क्या है ? भाई ! तेरे अनन्त गुणों की गिनती में तुझे आना नहीं और बाहर की गिनती में जाना है। आहाहा ! जिसके गुण के गुण की गिनती का पार नहीं। आहाहा ! अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्त गुणा वर्ग करो तो भी वह अन्तिम अनन्त नहीं आता। यह वह क्या है यह, प्रभु ! आहाहा ! ऐसा जो ज्ञायकस्वभाव प्रभु, वैसे निराकुल प्रभु को अनुभव कर, यह प्रयत्न कर, आहाहा ! बाकी सब बातें हैं। **यही इस भव में करनेयोग्य है**। आहाहा !

सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते, बारम्बार स्वरूपलीनता होती रहे, ऐसी दशा हो तब मुनिपना आता है। मुनि को स्वरूप की ओर ढलती हुई शुद्धि इतनी बढ़ गयी होती है कि वे घड़ी-घड़ी आत्मा में प्रविष्ट हो जाते हैं। पूर्ण वीतरागता के अभाव के कारण जब बाहर आते हैं तब विकल्प तो उठते हैं परन्तु वे गृहस्थदशा के योग्य नहीं होते, मात्र स्वाध्याय-ध्यान-व्रत-संयम-तप-भक्ति इत्यादि सम्बन्धी मुनियोग्य शुभ विकल्प ही होते हैं और वे भी हठ रहित होते हैं। मुनिराज को बाहर का कुछ नहीं चाहिए। बाह्य में एक शरीरमात्र का सम्बन्ध है, उसके प्रति भी परम उपेक्षा है। बड़ी निःस्पृह दशा है। आत्मा की ही लगन लगी है। चैतन्यनगर में ही निवास है। 'मैं और मेरे आत्मा के अनन्त गुण ही मेरे चैतन्यनगर की बस्ती है। उसी का मुझे काम है। दूसरों का मुझे क्या काम? इस प्रकार एक आत्मा की ही धुन है। विश्व की कथा से उदास हैं। बस, एक आत्मामय ही जीवन हो गया है— मानों चलते-फिरते सिद्ध! जैसे पिता की झलक पुत्र में दिखायी देती है उसी प्रकार जिनभगवान की झलक मुनिराज में दिखती है। मुनि छठवें-सातवें गुणस्थान में रहें उतना काल कहीं (आत्मशुद्धि की दशा में आगे बढ़े बिना) वहीं के वहीं खड़े नहीं रहते, आगे बढ़ते जाते हैं; केवलज्ञान न हो तब तक शुद्धि बढ़ाते ही जाते हैं।—यह, मुनि की अन्तःसाधना है। जगत के जीव मुनि की अन्तरंग साधना नहीं देखते। साधना कहीं बाहर से देखने की वस्तु नहीं है, अन्तर की दशा है। मुनिदशा आश्चर्यकारी है, वन्द्य है॥४१७॥

अब लिया **सम्यग्दर्शन होने के पश्चात्...** ४१७। आहाहा! **सम्यग्दर्शन होने के पश्चात्...** आत्मा राग से भिन्न पड़कर आत्मा अनुभव में प्रतीति हुई, उसके **पश्चात् आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते,...** आहाहा! आत्मा में अन्तर में स्थिरता बढ़ते-बढ़ते **बारम्बार स्वरूपलीनता होती रहे...** आहाहा! घर देखा, वहाँ बारम्बार जाए। आहाहा! आता है न उसमें? '**दीठ मग्गे**' धवल... धवल। ...मार्ग दिखा न अन्दर! आहाहा! राग से भिन्न पड़कर जहाँ मार्ग दिखा, उस मार्ग में अब अधिक जा। आहाहा! धवल में शब्द आता है। आहाहा!

सन्तों की वाणी कहती है। सम्यग्दर्शन में मार्ग तो दिखा। आहाहा! अन्तर आनन्द का नाथ अनाकुल स्वभाव से भरपूर, उसकी अनुभव में प्रतीति हुई। अकेली प्रतीति, ऐसा नहीं। आहाहा! अब पश्चात् **आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते,...** आहाहा! चढ़ती बिजली न तोड़, भाई! ऐसा लोगों में कहते हैं। कुछ इज्जत बढ़ी हो न, अपने चढ़ता हुआ है, अपने यह... न तोड़, चढ़ता, बढ़ने दे, बढ़ने दे। बाहर का, हों! आहाहा! इसी प्रकार यहाँ **सम्यग्दर्शन होने के पश्चात्...** वह हुआ न पहले **आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते, बारम्बार स्वरूपलीनता होती रहे...** आहाहा! बारम्बार स्वरूप में जाया करे, अनुभव हुआ करे। आहाहा! **ऐसी दशा हो, तब मुनिपना आता है**। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सीधे छठे में आवे, वह चौथे से छठे में आवे, पाँचवें से सातवें में आवे, पहले सातवाँ आता है। क्या कहा?

मुमुक्षु : तैंतीस सागर तक पाँचवाँ नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें भले न आवे, उसकी कहाँ बात है! यहाँ तो मनुष्य भव के लिये प्रश्न है न? आहाहा! वह तो बढ़ते-बढ़ते कैसे हो, इसकी बात है न! आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते तो मुनिपना कैसे हो, उसकी बात है। देव में कहाँ मुनिपना है? आहाहा! यहाँ आनन्द का नाथ अन्दर अनाकुल स्वभावी भगवान आत्मा, उसका वेदन-अनुभव में हुआ, ऐसा कहते हैं। अब वह बारम्बार वहाँ जाता है। आहाहा! '**दीठ मग्गे**' मार्ग दिखायी दिया, वहाँ बारम्बार जाता है। आहाहा!

ऐसी दशा हो, तब मुनिपना आता है। आहाहा! वह मुनिपना कहीं विकल्प आया, इसलिए होता है—ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। पंच महाव्रत का विकल्प आया, इसलिए (नहीं)। अन्दर बारम्बार होते-होते मुनिपना आता है। आहाहा! प्रचुर स्वसंवेदन। पहला अल्प वेदन जो आया है, उसमें वेदन को बढ़ाते-बढ़ाते, अन्दर जाने से (मुनिपना आता है), ऐसा यह कहते हैं। आहाहा! ऐसी दशा हो, तब सच्चा सन्तपना, मुनिपना आता है। आहाहा!

मुनि को स्वरूप की ओर ढलती हुई शुद्धि... मुनि को स्वरूप की ओर ढलती

हुई शुद्धि इतनी बढ़ गयी होती है... आहाहा! **कि वे घड़ी-घड़ी आत्मा में प्रविष्ट हो जाते हैं।** छठा-सातवाँ, छठा-सातवाँ है न। आहाहा! चलते-फिरते भी वे अन्दर में प्रवेश कर जाते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। **वे घड़ी-घड़ी (अर्थात् क्षण-क्षण में) आत्मा में प्रविष्ट हो जाते हैं।** आहाहा! **पूर्ण वीतरागता के अभाव के कारण जब बाहर आते हैं, तब विकल्प तो उठते हैं परन्तु वे गृहस्थदशा के योग्य नहीं होते,...** मुनि को। आहाहा! पूर्ण वीतरागता के अभाव के कारण जब विकल्प में बाहर आते हैं, तब वृत्ति उठती है, परन्तु वह गृहस्थदशा के योग्य नहीं होते। आहाहा!

मात्र स्वाध्याय-ध्यान-व्रत-संयम-तप-भक्ति इत्यादि सम्बन्धी मुनियोग्य शुभ विकल्प ही होते हैं... आहाहा! है? स्वाध्याय का विकल्प आता है। ध्यान का, व्रत का, संयम, तप, भक्ति... आहाहा! **इत्यादि सम्बन्धी मुनियोग्य शुभ विकल्प ही होते हैं...** आहाहा! **और वे भी हठ रहित होते हैं।** उस समय सहज विकल्प की दशा उत्पन्न होती है। स्थिर में से हट जाते हैं, इसलिए ऐसा आता है। सहज राग होता है, हठ से नहीं। आहाहा! **हठ रहित होते हैं। मुनिराज को बाहर का कुछ नहीं चाहिए।** आहाहा! **बाह्य में एक शरीरमात्र का सम्बन्ध है, उसके प्रति भी परम उपेक्षा है।** उसके प्रति भी परम उपेक्षा है। आहाहा! मुनिदशा, आहाहा! धन्य दशा!

बड़ी निःस्पृह दशा है। आहाहा! भावलिंगी सन्त को अन्दर इतनी स्थिरता आयी है कि बहुत निःस्पृह दशा। बाहर की स्पृहा ही सब उड़ गयी है। आहाहा! अस्थिरता के ऐसे विकल्प होते हैं। **आत्मा की ही लगन लगी है।** आहाहा! मुनिराज को तो भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द की लगन लगी है। राग आता है, उसकी लगन नहीं है, आता है- ऐसा कहते हैं। समझ में आया? हठ बिना आता है परन्तु लगन यहाँ लगी है। आहाहा! वह धन्य मुनिदशा, आती है न? पुस्तक का क्या नाम था? धन्य मुनिदशा। आहाहा!

बड़ी निःस्पृह दशा है। आत्मा की ही लगन लगी है। आहाहा! **चैतन्यनगर में ही निवास है।** लो! चैतन्यनगर में वास है। आहाहा! चैतन्यनगर जो अनन्त गुण का भण्डार ऐसा नगर। वह नगर है, चैतन्यनगर है। आहाहा! उसमें जिनका वास है, चैतन्यनगर में ही वास है। राग आता है, परन्तु वास वहाँ है। आहाहा! '**मैं और मेरे आत्मा के अनन्त गुण**

ही मेरे... आहाहा! मैं अर्थात् आत्मा और **आत्मा के अनन्त गुण ही मेरे चैतन्यनगर की बस्ती है**। आहाहा! वह चैतन्यनगर की बस्ती है। आहाहा!

पहले आ गया है न? ४०१ आ गया है। विकल्प आवे, तब जाने कि आहाहा! अरे! हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ नहीं सुहाता। हमारा यह परिवार नहीं है। आहाहा! हमारा परिवार तो अन्दर ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि वह हमारा परिवार है, वह हमारा वतन है, वह हमारा धाम है, वह हमारा नगर है। आहाहा! वह **चैतन्यनगर की बस्ती है**। आहाहा! **उसी का मुझे काम है**। आहाहा! **दूसरों का मुझे क्या काम? इस प्रकार एक आत्मा की ही धुन है**। आहाहा! **विश्व की कथा से उदास हैं**। आहाहा! **बस, एक आत्मामय ही जीवन हो गया है—मानों चलते-फिरते सिद्ध!** इसका स्पष्टीकरण किया। आत्मामय ही जीवन, आत्मामय ही जीवन हो गया है। मानो चलते-फिरते सिद्ध, ऐसा। विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल -१, शनिवार, दिनाङ्क ३०-१२-१९७८
वचनामृत- ४१७ से ४१८ प्रवचन-१७४

शुरुआत सम्यग्दर्शन होने से की है। सम्यग्दर्शन अर्थात् यह आत्मा आनन्द और ज्ञायकस्वरूप पूर्ण है। उसे राग से भिन्न करके, शुद्धस्वरूप की अनुभूति होकर अन्दर जो प्रतीति होती है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। **सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते,...** यह आया है न? आहाहा! पहले सम्यग्दर्शन क्या है, उस चीज़ की प्राप्ति कैसे होती है?—यह अपूर्व बात है। यह क्रियाकाण्ड दया, दान, व्रत, भक्ति आदि लाख-करोड़ करे, वह राग है, उससे कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता।

अन्तर परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर भगवान के अन्तर में पर्याय को झुकाने से जो अन्तर में पूर्ण अनुभूति होती है। आहाहा! जो शुद्धस्वरूप है; उसे अनुसरकर अन्तर दशा अनुभव की—आनन्द के वेदन की होती है; उसमें प्रतीति हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसी बात है, आहाहा! और उसके होने के बाद भी अन्तर में स्थिरता बढ़ते-बढ़ते मुनिपना प्रगट होता है। यह बात है न? मुनिपना कहीं ऐसे के ऐसे बाह्य क्रियाकाण्ड किये, इसलिए आ जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अन्तर में शुद्ध चैतन्यघन पूर्ण ज्ञानस्वभाव में भान हुआ ज्ञान में कि यह तो पूर्ण स्वरूप है, अब उसमें स्थिरता बढ़ती जाए; वह बढ़ते-बढ़ते मुनिपना प्रगट होता है। ऐसा है। सवेरे जरा सूक्ष्म था। सवेरे तो अधिकार वह परपरिणति का था न? आहाहा! भेदज्ञान का अधिकार था न? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जब मुनिपना प्रगट होता है, अन्तर के अनुभव में बढ़ते-बढ़ते, शुद्धस्वरूप में स्थिरता होते-होते तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव होकर वीतरागता की प्रचुर दशा स्वसंवेदन में प्रगट होती है, तब उसे मुनिदशा होती है। आहाहा! यह यहाँ तक आया। **मानों चलते-फिरते सिद्ध!** यहाँ तक आया है। आहाहा! **जैसे पिता की झलक...**

जैसे पिता की झलक पुत्र के शरीर में दिखती है। आहाहा! पिता का अणसार, गुजराती सादी भाषा। हिन्दी में अणसार को क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : उणियारो..

पूज्य गुरुदेवश्री : उणियारो, झलक। **जैसे पिता की झलक पुत्र में दिखायी देती है...** आहाहा! **उसी प्रकार जिनभगवान की झलक...** आहाहा! वीतरागस्वभाव परमात्मा की झलक-नमूना **मुनिराज में दिखती है।** आहाहा! ऐसा मुनिपना! जिसे वीतरागता प्रगट हुई है। उसके योग्य विकल्प आवे, परन्तु उसमें से भी हटकर बारम्बार अन्दर में जाते हैं। आहाहा! मुनि के योग्य व्रत, तप के, भक्ति के विकलप आवें, राग आवें, तथापि वे बारम्बार अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान में अन्दर जाने को डुबकी लगाते हैं। आहाहा! ऐसा मुनिपना। आहाहा..! ऐसा मुनिपना भगवान का, जिनभगवान की झलक, वीतराग भगवान की झलक-नमूना दिखता है। शान्त शरीर, वीतरागमूर्ति।

मुनि छठवें-सातवें गुणस्थान में रहें... आहाहा! उनकी दशा तो छठवें-सातवें गुणस्थान में। क्षण में छठवाँ, विकल्प आवे; क्षण में विकल्प छूटकर सप्तम में, आनन्द में चले जाते हैं। आहाहा! ऐसी मुनिदशा होती है। लोग मुनिदशा को कुछ का कुछ मानते हैं, तो यह (मुनिदशा की) स्थिति होती है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! **मुनि छठवें-सातवें गुणस्थान में रहें, उतना काल कहीं (आत्मशुद्धि की दशा में आगे बढ़े बिना) वहीं के वहीं खड़े नहीं रहते,...** क्या कहते हैं यहाँ? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलते मुनि। विकल्प / राग आवे छठवें में और सातवें में इस प्रकार से आते-आते अन्दर बढ़ते जाते हैं। वहाँ की वहाँ इतनी दशा रहती है, ऐसा नहीं है - यह कहते हैं। आहाहा!

(आत्मशुद्धि की दशा में आगे बढ़े बिना) वहीं के वहीं खड़े नहीं रहते,... आहाहा! क्या कहते हैं यह? अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते हुए छठवें (गुणस्थान में) विकल्प आ जाता है, फिर अन्दर में जाते हैं। कहते हैं कि यह छठवें-सातवें में रहने से एक की एक सरीखी दशा रहती है, ऐसा नहीं है; वहाँ बढ़ती दशा है। आहाहा! वीतरागस्वभाव को प्राप्त करने के ओर की दशा बढ़ती है। आहाहा! निर्विकल्प प्रचुर स्व-संवेदन में होने पर भी आगे बढ़ता जाता है। समझ में आया इसमें? **(आत्मशुद्धि की दशा में आगे बढ़े**

बिना) वहीं के वहीं... छठवें और सातवें में जो पर्याय की भूमिका है, उतनी की उतनी में रहता है, ऐसा नहीं है – यह कहते हैं। आहाहा!

वहीं के वहीं खड़े नहीं रहते, आगे बढ़ते जाते हैं;... आहाहा! अन्तर आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द के सागर में डूबता हुआ अन्दर स्थिर होता जाता है। आहाहा! यह मुनिपना है। जिसे गणधर भी नमस्कार करते हैं—णमो लोए सव्व साहूणं। वह मुनिपना कैसा होगा? भाई! आहाहा! बाह्य में नग्नदशा हो, अन्तर में बाह्य विकल्प उसके योग्य हो, तथापि अन्तर में आनन्द की रमणता तो चलती ही है। आहाहा! यह भेदज्ञान की धारा तो अन्दर बढ़ती जाती है। आहाहा! ऐसी दशा में, **आगे बढ़ते जाते हैं;...**

केवलज्ञान न हो, तब तक... आहाहा! एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने ऐसा **केवलज्ञान न हो, तब तक शुद्धि बढ़ाते ही जाते हैं।...** आहाहा! **यह, मुनि की अन्तःसाधना है।** उन मुनि की यह अन्तरसाधना है। आनन्द के सागर को साधते हैं। आहाहा! **जगत के जीव मुनि की अन्तरंग साधना नहीं देखते।** आहाहा! बाह्य की क्रिया देखते हैं कि यह महाव्रत के परिणाम हैं और पालन करते हैं, यह है और वह है। वह कोई मूल दशा नहीं है। आहाहा! **यह, मुनि की अन्तःसाधना है। जगत के जीव मुनि की अन्तरंग साधना नहीं देखते। साधना कहीं बाहर से देखने की वस्तु नहीं है,...** आहाहा! अन्तर की दशा है। आहाहा! जंगल में रहते हों, बाघ और सिंह की दहाड़ पड़ती हो, सिर पर पानी का प्रपात गिरता हो। आहाहा! शरीर में भी रोग हो। आहाहा! परन्तु भगवान निरोग स्वरूप में, साधन में इतने लीन होते हैं... आहाहा! कि जिनकी बाहर की, परिवार की खबर भी नहीं, ऐसे अन्तरध्यान में मस्त हो जाते हैं। आहाहा! मुनिपना, भाई! आहाहा! अलौकिक चीज़ है। निर्ग्रन्थ गुरु किसे कहना? आहाहा! जिनकी राग की गाँठ तो गल गयी है और आत्मा में शुद्धता में एकाग्रता हुई है, परन्तु तदुपरान्त जिनकी दशा वीतरागता की शुद्धि की वृद्धि में अन्दर होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभोपयोग के समय भी शुद्धि बढ़ती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धि तो अन्दर बढ़ती ही है उस समय। स्वभाव-सन्मुख की धारा बहती है न! आहाहा! अशुभ तो होता नहीं, शुभ होता है परन्तु अन्दर में शुद्धता की ओर का जोर चलता है, वह बढ़ता जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह जंगल में शरीर में दमा हो, आहाहा! क्षय रोग हो, आहाहा! शरीर में कम्पन जगे, पूरा शरीर काँपने लगे। आहाहा! परन्तु अन्तर दशा में निष्कम्परूप से वर्तते हैं। आहाहा! वहाँ उन्हें कोई दवा-दारू नहीं है। आहाहा! दवा तो अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान निधान जो खोला है; राग की एकता तोड़कर स्वभाव की एकता के निधान खोले हैं। यह खोले सो खोले, वे खुलते जाते हैं। आहाहा! इसका नाम मुनिदशा है। **अन्तर की दशा है। बाहर से देखने की वस्तु नहीं है। मुनिदशा आश्चर्यकारी है,...** आहाहा! **वन्द्य है।** अन्तिम ऐसा कहते हैं। वह दशा वन्द्य है। आहाहा! यह मुनि की दशा का वर्णन किया।

सिद्धभगवान को अव्याबाध अनन्त सुख प्रगट हुआ सो हुआ। उसका कभी नाश नहीं होता। जिनके दु:ख के बीज ही जल गये हैं, वे कभी सुख छोड़कर दु:ख में कहाँ से आयेंगे? एक बार जो क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करके भिन्नरूप परिणमित होते हैं, वे भी कभी अभिन्नरूप-एकरूप नहीं होते, तब फिर जो सिद्धरूप से परिणमित हुए, वे असिद्धरूप से कहाँ से परिणमित होंगे? सिद्धत्व-परिणमन प्रवाहरूप से सादि-अनन्त है। सिद्धभगवान सादि-अनन्त काल प्रति समय पूर्णरूप से परिणमित होते रहते हैं। यद्यपि सिद्धभगवान के ज्ञान-आनन्दादि सर्व गुणरत्नों में चमक उठती ही रहती है—उत्पाद-व्यय होते ही रहते हैं, तथापि वे सर्व गुण परिणमन में भी सदा ज्यों के त्यों ही परिपूर्ण रहते हैं। स्वभाव अद्भुत है॥४१८॥

४१८ अब, सिद्धभगवान की व्याख्या आती है। पहली सम्यग्दृष्टि की थी, पश्चात् मुनि की थी, मुनि अरहन्त पद को प्राप्त करे, उसकी भावना। अब यह सिद्ध भगवान की आयी। आहाहा! णमो सिद्धाणं। वह सिद्धपद कैसा होगा?

सिद्धभगवान को अव्याबाध अनन्त सुख प्रगट हुआ सो हुआ। जो शक्तिरूप से, स्वभावरूप से अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द था, वह अन्तर के ध्यान से व्यक्तरूप से अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, सो प्रगट हुआ। अर्थात् कि प्रगट हुआ, सो प्रगट हुआ। अब वह वापस गिरे, ऐसा नहीं है। आहाहा! **उसका कभी नाश नहीं होता।** आहाहा! जैसे द्रव्य अविनाशी

है, उसी प्रकार जहाँ अन्दर अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, वह भी अविनाशी हो गया। आहाहा! **जिनके दु:ख के बीज ही जल गये हैं...** रागादि जो हैं, वह तो बीज ही जल गया है। आहाहा!

वे कभी सुख छोड़कर दु:ख में कहाँ से आयेंगे? अनन्त-अनन्त जहाँ आनन्द प्रभु को प्रगट हुआ। आहाहा! और दु:ख के कारण तो जल गये हैं। अब वे सुख छोड़कर दु:ख में कैसे आयेंगे? अर्थात्? कोई ऐसा कहता है कि यहाँ लोगों को दु:ख होता है, इसलिए भगवान भव धारण करते हैं। लोगों को-भक्तों को ऐसे कष्ट पड़े हों तो भव धारण करते हैं। कहते हैं, भव धारण (करना) तो दु:ख है। आहाहा! उस अनन्त आनन्द को छोड़कर दु:ख में कहाँ से आवे? वह अवतार कैसे धारण करे? आहाहा! ऐसा कहते हैं न कि भक्तों को कष्ट पड़े और राक्षसों का जोर बढ़ जाए तो भगवान भी अवतार धारण करते हैं। अरे! प्रभु! कहते हैं कि भाई! जहाँ अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, वहाँ भव... भव करना वह तो दु:ख है। वह आनन्द छोड़कर भव के दु:ख में वे क्यों आयेंगे? आहाहा! विशेष न्याय देते हैं।

एक बार जो क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करके भिन्नरूप परिणमित होते हैं... आहाहा! न्याय देते हैं। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जहाँ क्षायिक समकित में प्रगट हुआ। आहाहा! चौथे गुणस्थान में क्षायिक समकित श्रेणिक राजा आदि को था। वह क्षायिक समकित भी वापिस गिरता नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। **क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करके भिन्नरूप परिणमित होते हैं...** वे भिन्न ही परिणमित होते हैं। **वे भी कभी अभिन्नरूप-एकरूप नहीं होते,...** आहाहा! यह क्या कहते हैं? शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा और ज्ञान ऐसे प्रगट हुए कि क्षायिकभाव से प्रगट हुए और वे क्षायिकभाव से प्रगट हुए, वे जब राग में से पृथक् हैं, उस राग की एकता नहीं होती। क्षायिक समकिती को राग होता है, तथापि उस राग में एकता को प्राप्त नहीं होते। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **क्षायिक सम्यग्दर्शन...** आहाहा! **प्राप्त करके भिन्नरूप परिणमित होते हैं....** राग से, वे भी कभी राग में एकरूप नहीं होते। आहाहा!

तब फिर जो सिद्धरूप से परिणमित हुए... क्षायिक समकिती रूप से परिणमित

हुए, क्षायिक समकित चौथे गुणस्थान में। आहाहा! वे भी वापिस नहीं गिरते अर्थात् राग में एकता नहीं होती तो फिर सिद्धरूप से हुए, वे राग में एकरूप कैसे हों? ऐसा कहते हैं। उन्हें अवतार कैसे हो? आहाहा! चौथे के, क्षायिक समकित के साथ तुलना की। आहाहा! जिसके राग के बीज जल गये हैं। आहाहा! एकता के बीज जल गये हैं। आहाहा! और शुद्ध चैतन्य भगवान आनन्द का नाथ क्षायिक समकितरूप से परिणमित होता है। वह क्षायिकरूप से परिणमित हुआ भी राग की एकतारूप नहीं होता। आहाहा! देखो! यह क्षायिक सम्यग्दर्शन। आहाहा! एक जोड़नी क्षायिक होता है। आहाहा!

(समयसार) ३८ गाथा में कहा है न? भगवान आत्मा आनन्द का सागर जहाँ अन्दर प्रगट होता है और जिसके आगम और शास्त्र के न्याय द्वारा समझ में आया और जिसे आत्मज्ञान हुआ और दर्शन हुआ, उसे फिर से राग के, मिथ्यात्व के अंकुर उत्पन्न नहीं होते। आहाहा! पंचम काल के अप्रतिबुद्ध जीव को समझाया, उसे ऐसा होता है, यह कहते हैं। आहाहा! अत्यन्त अप्रतिबुद्ध अज्ञानी था, उसे समझाया, प्रभु! तू तो पूर्णानन्द का नाथ है न! आहाहा! अल्पज्ञपना वह भी तेरा मूलस्वरूप नहीं है। राग तो तेरा स्वरूप नहीं... आहाहा! अल्पज्ञपना भी तेरा स्वरूप नहीं। तू तो सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु है। आहाहा! ऐसे अप्रतिबुद्ध को समझाया और वह समझा। पंचम काल का अप्रतिबुद्ध जीव। आहाहा! वह भी फिर से गिरता नहीं, कहते हैं। आता है न ३८ गाथा में? भाई! (समयसार) ३८ में। प्रवचनसार की ९२ गाथा में। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की दशा का वर्णन अपना करते हुए दूसरों का भी ऐसा होता है, कहते हैं। आहाहा!

पंचम काल के साधु, पंचम काल के अप्रतिबुद्ध को समझाया। आहाहा! और उसे अन्तर में राग से भिन्न पड़कर क्षयोपशम सम्यग्दर्शन हुआ, तथापि वह क्षयोपशम समकिती भी... आहाहा! पंचम काल का समकिती, आहाहा! वह भी ऐसा कहता है कि हमें अब फिर से मिथ्यात्व का अंकुर उत्पन्न होनेवाला नहीं है। भगवान! तूने यह किससे पूछा? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! चौथे गुणस्थानवाले की यह (बात) है। भले छठवें में आया है। यहाँ तो पूर्ण लिया है, तथापि सम्यग्दर्शन हुआ है, आत्मा के अनुभव में प्रतीति हुई है, वह प्रतीति अब फिर से गिरे, ऐसा (नहीं है)। पंचम काल के हैं, (इसलिए गिरेंगे –ऐसा नहीं है)। आहाहा! कितना जोर है! यह दिगम्बर सन्तों का तो इतना जोर है परन्तु

इनके श्रोता... आहाहा! राग से भिन्न पड़कर भगवान की जहाँ एकता हुई है, अब यह हमें राग की एकता कभी नहीं होगी। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन। भले चारित्र है, वह तो गिर जाएगा परन्तु यह बात ली है। क्योंकि चारित्र है, वह तो पंचम काल के साधु हैं, इसलिए स्वर्ग में जाएँगे। गिरकर चौथे में (जाएँगे)। परन्तु हमारा सम्यग्दर्शन जो है, वह गिरनेवाला नहीं है, कहते हैं। आहाहा!

अरे! पंचम काल के सन्तों ने सिखाया, समझाया और पंचम काल का अप्रतिबुद्ध शिष्य (को) भी इस प्रकार से जब अनुभव में आया... आहाहा! तो ऐसा कहता है कि हमें अब राग की एकता टूटी, वह टूटी। अब एकता नहीं होगी। आहाहा! देवीलालजी! ऐसा तो मार्ग तो देखो! आहाहा! तो फिर जिसे क्षायिक समकित हुआ है... आहाहा! वह जब राग से पृथक् हुए और वीतरागस्वरूप की अनुभव की दशा प्रगट हुई, वह राग की एकता को फिर से कैसे प्राप्त होंगे? आहाहा! ऐसी दशा जब क्षायिक समकित में होती है तो फिर सिद्धपना प्राप्त हुआ... आहाहा! वह फिर से राग को प्राप्त हो और अवतार धारण करे, प्रभु! यह कैसे हो सकता है? आहाहा! समझ में आया?

जो क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करके भी... आहाहा! **भिन्नरूप परिणमित होते हैं...** अर्थात् कि राग के कण से गोला (चैतन्य गोला) भिन्न परिणमित होता है। आहाहा! चाहे जो शरीर की दशा हो परन्तु फिर भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी राग से पृथक्रूप से, भिन्नरूप से परिणमित होता है तो फिर सिद्ध को राग की एकतारूप (परिणमन) हो, वे अतीन्द्रिय आनन्द में से आकर दु:ख में, राग में आवे... आहाहा! ऐसा नहीं होता। आहाहा! **तब फिर जो सिद्धरूप से परिणमित हुए...** जहाँ पूर्ण दशा प्रगट हुई, अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य,... अरे! संख्या में जितने गुण हैं, उतने सब गुण पर्याय में परिपूर्णरूप से परिणमित हुए। आहाहा! वह तो एक सम्यग्दर्शन, क्षायिक सम्यग्दर्शन हुआ था या क्षयोपशम सम्यक्त्व अप्रतिहत हुआ था। वह भी जब राग की एकतापने को प्राप्त नहीं होते... आहाहा! तो सिद्ध भगवान जो पूर्णरूप से परिणमित हुए हैं, उन्हें राग की एकता अब कैसे होगी? अर्थात् कि अनन्त आनन्द की प्राप्तिवाले दु:ख में अब कैसे आयें? राग, वह दु:ख है। आहाहा! ऐसा कहकर परमात्मा अवतार धारण करते हैं, यह बात मिथ्या है। आहाहा! दुनिया के दु:ख देखकर, राक्षसों का और जैनशासन के विरोधियों का जोर बढ़

गया हो, इसलिए वे अवतार धारण करें, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या कहा ?

क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करके भिन्नरूप परिणमित होते हैं... आहाहा! जैसे नारियल का गोला काँचली से पृथक् है; उसी प्रकार सम्यग्दर्शन में राग के कण से भगवान भिन्न परिणमित होता है। आहाहा! वह अब रागरूप नहीं होता, एकता भी नहीं होती, तो जो सिद्धपने की दशा प्राप्त होती है, आहाहा! वह **असिद्धरूप से कहाँ से परिणमित होंगे ?** आहाहा! है ? आहाहा!

मुमुक्षु : अपने बोला जाता है कि भगवान महावीरस्वामी का जन्म चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को हुआ। भगवान ने अवतार लिया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अवतार तो, वे सिद्ध कहाँ थे, वे समकिती थे। सिद्ध अवतार धारण करे, इसकी बात चलती है न! और वह भी क्षायिक समकिती थे। आदीश्वर भगवान आदीश्वर सर्वार्थसिद्धि में (थे), और यहाँ आये, वह भी राग से एकता हुई है उन्हें ? वह राग का अवतार है, उससे एकता हुई है ? आहाहा! ऋषभदेव भगवान क्षायिक समकित लेकर आये हैं। अरे! श्रेणिक राजा पंचम काल में भगवान के काल में क्षायिक समकित को प्राप्त हुए। भले नरक में गये परन्तु क्षायिक समकित है, वह लेकर आनेवाले हैं। इस राग की एकता कभी होगी उन्हें ? अवतार धारण करेंगे, तथापि अवतार की एकता होगी ? आहाहा! अवतार भिन्न रहेगा और अवतार से भिन्न आत्मा वहाँ रहेगा। आहाहा! पहले नरक में क्षायिक समकिती, आहाहा! आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। आहाहा! परन्तु जो राग से भिन्न पड़कर भगवान क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त हुए, वह अवतार और राग की एकता को नहीं प्राप्त करेंगे। अवतार लिया, वह भी अन्दर एकता भिन्न-टूट गयी है। आहाहा!

सिद्धरूप से परिणमित हुए वे असिद्धरूप से कहाँ से परिणमित होंगे ? दो सिद्धान्त रखे हैं। जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी राग की एकतारूप नहीं होते, नहीं परिणमित होते, पृथक् परिणमते हैं। आहाहा! वे सिद्धपद को प्राप्त हुए, वे राग की एकतारूप-असिद्धरूप कैसे होंगे ? आहाहा! **सिद्धत्व-परिणमन प्रवाहरूप से सादि-अनन्त है।** आहाहा! सिद्ध की पहिचान देते हैं, ऐसे सिद्ध होते हैं। आहाहा! सिद्धत्व परिणमन-सिद्धपने की पर्याय जो पूर्ण हुई, वह प्रवाहरूप से ऐसी की ऐसी प्रवाह पर्याय... पर्याय... पर्याय... सिद्ध पूर्ण... पूर्ण.. पूर्ण (रहते हैं)। जैसे पानी का प्रवाह ऐसा तिरछा चलता है,

उसी प्रकार यह सादि-अनन्त पर्याय का प्रवाह पूर्ण होकर सादि-अनन्त ऐसे प्रवाह पूर्वक आता है। आहाहा! यह सिद्ध ऐसे होते हैं। आहाहा! णमो सिद्धाणं करे, परन्तु उसकी खबर नहीं होती है कि सिद्ध क्या कहलाते हैं? आहाहा! णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं (बोले परन्तु उसके स्वरूप की पहिचान नहीं होती)।

सिद्धत्व-परिणमन प्रवाहरूप से जो पर्याय की धारारूप से सादि-अनन्त, जब से सिद्धपना हुआ, तब से सादि होकर पश्चात् अनन्त-अनन्त काल प्रवाहरूप से इस प्रकार परिणमित होंगे। आहाहा! **सिद्धभगवान सादि-अनन्त काल प्रति समय...** वह परमात्मा सिद्ध प्रभु जब से सिद्धपने की पर्याय शुरु हुई, वह सादि हुई परन्तु अनन्त काल प्रति समय प्रत्येक समय में अनन्त काल भविष्य में... आहाहा! **पूर्णरूप से परिणमित होते रहते हैं।** आहाहा! ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि की पर्याय पूर्ण हुई, वह पूर्णरूप से परिणमित हुआ ही करती है। जब से शुरु हुई, वह अनन्त काल प्रवाहरूप से ऐसी की ऐसी (परिणमित हुआ करती है)। आहाहा! अरे! वस्तु अनादि-अनन्त, परन्तु सिद्धपना सादि-अनन्त; संसारपना अनादि शान्त; वस्तु अनादि-अनन्त; संसार अनादि-शान्त। अनादि का होने पर भी अन्त है और सिद्धपने की सादि होने पर भी अनन्त है। आहाहा! प्रति समय, प्रत्येक समय में **पूर्णरूप से परिणमित होते रहते हैं।** आहाहा!

यद्यपि सिद्धभगवान के ज्ञान-आनन्दादि सर्व गुणरत्नों में चमक उठती ही रहती है... पर्याय में। यद्यपि सिद्धभगवान को ज्ञान-आनन्द आदि सर्व गुणरत्नों में चमक अर्थात् पर्याय उठती ही रहती है। पर्याय का झबकारा, परिणमन का उठता ही रहता है। आहाहा! सर्व गुण और द्रव्य ध्रुव होने पर भी, उसकी चमक अर्थात् परिणति समय-समय की चमक उठती ही रहती है, सादि-अनन्त उठती ही रहती है। आहाहा!

मुमुक्षु : सिद्ध होने के पश्चात् परिणमन कैसा?

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमन नहीं होता? यदि परिणमन न हो, तब तो पर्याय नहीं है। कृतकृत्य (हुए, इसलिए) नया करने का नहीं है। पूर्णरूप से पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. परिणमित हुआ ही करते हैं। कृतकृत्य का अर्थ कहीं अब कम हो और पूर्ण करना हो तो कृतकृत्य; नहीं तो नहीं। ये तो कृतकृत्य हो गये, पूर्ण हो गया है यह। आहाहा! परन्तु परिणमन की पर्याय तो प्रवाहरूप से सादि-अनन्त हुआ करती है। आहाहा!

ज्ञान, आनन्दादि सर्व गुणरत्न, जितने गुणों की संख्या अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त है, सभी गुणरत्नों में चमक अर्थात् परिणमन उठता ही रहता है। आहाहा! चमक, चमक तो हुआ ही करती है। आहाहा! उत्पाद-व्यय हुआ ही करते हैं, इसका अर्थ किया, लो! समय-समय की पर्याय उत्पन्न होती है, दूसरे समय उसका व्यय होता है और दूसरे समय नयी उत्पन्न होती है। ऐसी की ऐसी, उतनी की उतनी परन्तु दूसरी। आहाहा! जो एक समय में अनन्त गुण की चमक-परिणति है, वैसी ही दूसरे समय में परिणति पर्याय ऐसी की ऐसी है, वह नहीं। वैसी की वैसी चमक परिणति है। आहाहा! 'सादि-अनन्त अनन्त समाधिसुख में।' श्रीमद् में आता है न?

सादि-अनन्त अनन्त समाधिसुख में
अनन्त दर्शन, ज्ञान अनन्त सहित जो ॥१९॥

आहाहा! देखो! यह सिद्धपना। आहाहा! लोगस्स में आता है 'सिद्धा सिद्ध मम दिसंतु' सिद्धपद मुझे दिखाओ। दिखाओ अर्थात् मैं देखूँ, तब तो केवलज्ञान हुआ। आहाहा! समझ में आया? लोगस्स में आता है। 'एवंमये अभिथुआ, विहूयरयमला पहिण जर मरणा।' आहाहा! ....परन्तु अर्थ किसे आता है? जय भगवान। सिद्धा-हे सिद्धभगवन्तों! सिद्धिमने मम दिसंतु। दो, इसका अर्थ कि सिद्धि पर्याय मुझे पूर्णता प्राप्त होओ। आहाहा! समझ में आया? अथवा पूर्ण सिद्धि मुझे दिखाओ। इसका अर्थ कि पूर्ण सिद्धि पर्याय हो, तब ऐसे केवलज्ञान में वह दिखती है, मुझे केवलज्ञान होओ - ऐसा कहते हैं। लोगस्स में आता है, उसके अर्थ की किसे खबर है। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान से प्रार्थना करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कथन की शैली है। प्रार्थना यहाँ है। स्तुति है, वह पर की स्तुति है, वह तो विकल्प है। समझ में आया? परन्तु उसमें जो भाव है, वह अपनी ओर ढला है, उसकी यहाँ बात है। चौबीस तीर्थंकर और अनन्त केवलियों की चाहे जितनी स्तुति करो परन्तु वह स्तुति पर की है, वह तो विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? वह यह स्तुति आती है न? पच्चीस-पच्चीस बोल की। स्तुति परन्तु वह स्तुति है, पर की स्तुति है। अर्थात् वह स्तुति है, उसमें विकल्पात्मक भाव वहाँ है। उसकी भावना भले चाहे जो हो, परन्तु पर की स्तुति है, वह तो अन्दर वहाँ विकल्प आया। सूक्ष्म बात है, भाई!

'**परदव्वादो दुग्गई**' आता है न ? जितने सिद्ध भगवान परद्रव्य हैं, वे भी लक्ष्य में और स्तुति में लो तो वहाँ राग ही होता है। आहाहा! '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**' वहाँ यह व्यवहार है और '**नमः समयसाराय:**', जो आया, वह निश्चय है। आहाहा! परन्तु अपनी पर्याय में स्थापित करते हैं, ऐसा है न ? आहाहा! अनन्त सिद्ध पर हैं न ? उन्हें स्थापित करते हैं, वहाँ आगे जरा विकल्प है, वहाँ व्यवहार है और '**स्वानुभूत्या चकासते।**' नमः समयसाराय, वहाँ तो नमः समयसाराय (अर्थात्) मेरा प्रभु पूर्णानन्दस्वरूप, उसमें मैं नम जाता हूँ, वहाँ ढल जाता हूँ। वहाँ स्वाश्रित है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं आनन्दादि में समय-समय में उत्पाद-व्यय हुआ ही करता है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्, तो उत्पाद-व्यय कहीं सिद्ध में नहीं है ? आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द का उत्पाद, वह एक समय में रहता है, दूसरे समय दूसरा; ऐसा, परन्तु दूसरा होता है। आहाहा! इससे केवलज्ञान की पर्याय को भी नाशवान कहा है न ? नियमसार। आहाहा! '**जीवादिबहित्तच्चं हेयम्**' (गाथा ३८) केवलज्ञान भी हेय है। आहाहा! पर है न ? आहाहा! '**जीवादिबहित्तच्चं हेयम्**' जीव की एक समय की पर्याय वहाँ लेना, जीवद्रव्य वहाँ नहीं लेना और आस्रव, संवर-निर्जरा और मोक्ष, वे सब बहिरतत्त्व हैं, वे हेय हैं। आहाहा! '**उपादेयमप्पणो अप्पा**' दो पद में तो गजब काम है! दूसरा पद यह है न ? अपना भगवान आत्मा पूर्ण है, वह उपादेय है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय भी हेय है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वह हेय होने पर भी वह वस्तु है। उसमें उस-उस समय में उत्पाद -व्यय, उत्पाद-व्यय हुआ करता है। साधक को वह परपर्याय हेय है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! सिद्ध की महिमा में यह सिद्धपद ऐसा होता है - ऐसा उसे ज्ञात होता है। समझ में आया ? आहाहा!

उत्पाद-व्यय होते ही रहते हैं,... समय-समय में केवलज्ञान, अनन्त आनन्द, अरे! सर्व गुण, सर्व गुणरत्नों में चमक उठा करती है, उत्पाद-व्यय होते हैं। आहाहा! उत्पाद-व्यय तो उसका स्वरूप ही है। पर्याय प्रति समय अनन्त पूर्ण गुणरत्नों की पर्याय प्रगट हुई, तथापि वह उत्पादरूप हुई और दूसरे समय में उसका व्यय होता ही है। आहाहा! इसलिए वे '**जीवादिबहित्तच्चं**' आहाहा! वे हेय हैं। '**उपादेयमप्पणो अप्पा**' आहाहा! देखो! यह वचन। सिद्ध की पर्याय भी हेय है, साधक को। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु एक समय में ध्रुव अविनाशी तत्त्व, अनन्त गुण का पिण्ड, वह उपादेय है। आहाहा! '**उपादेयमप्पणो अप्पा**'। '**उपादेयमप्पणो अप्पा**' अर्थात् यहाँ पर निकाल दिया। आहाहा! ऐई! आहाहा! भगवान आत्मा उपादेय पूर्ण स्वरूप है, वह '**अप्पणो अप्पा**' अपना आत्मा, वह उपादेय है। यह सिद्धभगवान की पर्याय भी साधक को तो हेय है। आहाहा! यह पर है न! आहाहा! समझ में आया? यह तो उसका ज्ञान कराते हैं कि ऐसे सिद्ध होते हैं। आहाहा! उत्पाद-व्यय हुआ ही करते हैं, हुआ 'ही' करते हैं। आहाहा!

तथापि वे सर्व गुण परिणमन में भी सदा ज्यों के त्यों ही परिपूर्ण रहते हैं। आहाहा! यह क्या कहा? अनन्त-अनन्त जितने गुण हैं, वे सब पर्याय में चमकरूप से परिणमित होते हैं। पूर्णरूप से परिणमित होते हैं, तथापि वस्तु तो पूर्ण है, वह है। उसमें कहीं न्यूनता या अपूर्णता नहीं हुई। आहाहा! यह तो क्या चीज़ है! आहाहा! यह क्या कहा? **परिणमन में भी सदा ज्यों के त्यों ही...** ऐसी परिपूर्ण पर्याय के परिणमन के काल में भी **ज्यों के त्यों ही परिपूर्ण रहते हैं।** कौन? सर्व गुण। ऊपर आ गया है न? है? ऐसे **उत्पाद-व्यय होते ही रहते हैं, तथापि... तथापि वे सर्व गुण परिणमन में भी सदा ज्यों के त्यों ही परिपूर्ण रहते हैं।** आहाहा! लोगों को ऐसा लगता है कि इतना अनन्त केवलज्ञान प्रगट हुआ, एक निगोद में तो अक्षर के अनन्तवे भाग ज्ञानपर्याय थी, तो भी परिपूर्ण! वहाँ अन्दर अधिक नहीं। यहाँ कम है, इसलिए वहाँ अधिक है (ऐसा नहीं) और यहाँ परिपूर्ण पर्याय प्रगट हुई, इसलिए कहीं उसमें (स्वभाव-गुण में) घट गया है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! अलौकिक है, बापू! आहाहा! उसका द्रव्यस्वभाव और गुणस्वभाव तो परिपूर्ण, परिपूर्ण परिणमन में भी, ऐसा। सर्व गुणों की वर्तमान दशा की परिणमन उत्पाद-व्यय में भी सदा वैसे के वैसे ही। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय यह अपना द्रव्य है। ऐसा द्रव्य जो है, जो परिपूर्ण परिणमे, परिणमे तो भी द्रव्य और गुण ज्यों के त्यों हैं, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! समझ में आया?

आहाहा! **परिणमन में भी सदा ज्यों के त्यों ही परिपूर्ण रहते हैं।** वस्तु परिपूर्ण रहती है। ज्ञानगुण पर्याय में केवलज्ञानरूप हुआ, तो भी गुण तो ज्यों का त्यों अन्दर रहता है। यह तो कोई बात है! अनन्त आनन्द पर्यायरूप पर्याय हुई, तथापि अन्दर का आनन्द गुण तो इतना और ऐसा ही रहता है। यह तो क्या चीज़ है! आहाहा!

मुमुक्षु : यह गणित ही दूसरे प्रकार का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही अलग है। यह द्रव्यवस्तु... आहाहा! सामान्य को तो ऐसा हो जाता है। वह घड़े का दृष्टान्त नहीं दिया कि पूर्ण प्रवाह निकले तो घड़ा घट जाए, प्रवाह। आहाहा! यह द्रव्य और गुणस्वभाव परिपूर्ण त्रिकाल, परिपूर्ण, त्रिकाल परिपूर्ण। अल्पज्ञदशा में भी परिपूर्ण और सर्वज्ञदशा में भी वस्तु और द्रव्य-गुण तो परिपूर्ण है। इतनी सब पर्याय आयी जो अनन्त-अनन्त-अनन्त लोक को, अनन्त केवली को जाने, ऐसी एक समय की पर्याय अनन्त सिद्ध को जाने, ऐसी पर्याय (आवे), तो भी गुण और द्रव्य तो ज्यों के त्यों हैं। यह तो क्या है ? भाई! आहाहा! मात्र तर्क से करने जाए तो जँचे ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा ही कोई स्वभाव है। आहाहा! निःसन्देह ऐसा स्वभाव है। आहाहा! अद्भुतता है, प्रभु! आहाहा!

परिपूर्ण पर्यायरूप से अनन्त आनन्दरूप से हुआ, तथापि अस्तित्वरूप से जो आनन्द गुण है, वह तो परिपूर्ण इतना का इतना रहा है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय पर्यायरूप से परिपूर्णरूप से हुई, जिसमें अनन्त सिद्ध और केवली जाने, इतनी पर्याय परिपूर्ण हुई, तथापि ज्ञानगुण तो उतना का उतना रहा है। आहाहा! पर्याय में अनन्त पुरुषार्थ का वीर्य आया है, पर्याय में अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है। जो निगोद में पर्याय में अल्प वीर्य था तो भी उसका वीर्यगुण अन्दर में तो उतना का उतना परिपूर्ण है, बापू! यह कोई तर्क का विषय नहीं है। आहाहा!

यद्यपि शास्त्र में तो ऐसा भी कहते हैं सर्वविशुद्ध अधिकार, चरणानुयोग में है ऐसा कि तर्क से स्पष्ट, तर्कणा से वह स्पष्ट जँचता है। वहाँ आता है। आहाहा! परन्तु ऐसे तर्क से। सम्यक् तर्क से बात जँचे तो जँच जाए, बराबर जँच जाती है। आहाहा! अरे! इसके द्रव्य और गुण की क्या बात करना, कहते हैं। यह द्रव्य और गुण तो परिपूर्णरूप से पड़े-पड़े, वैसे के वैसे, ज्यों के त्यों, वह के वही, वह के वही, वैसे के वैसे हैं। आहाहा!

पर्याय में अनन्त पुरुषार्थ प्रगट हुआ है तो भी अन्दर जो वीर्यगुण है, वह तो पूर्ण / पूरा है। आहाहा! चारित्र की रमणता पूर्ण यथाख्यात हो गयी। आहाहा! पर्याय में पूर्ण रमणता पूर्ण प्रगट हुई तो भी जो अन्दर चारित्रगुण है, वह तो वैसा का वैसा रहा है। आहाहा!

उसमें से आती है—ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! वह पर्याय जो अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की पर्याय अपने षट्कारक से परिणमती हुई उत्पन्न होती है। आहाहा! तथापि भगवान आत्मा में जो षट्कारक जो गुण हैं, वे इतने के इतने और ऐसे के ऐसे गुण षट्कारक आन्दर रहे हैं। आहाहा! क्या समझ में आता है इसमें कुछ? आहाहा! अनन्त पर्याय में ईश्वरता, प्रभुता प्रगट हुई है... आहाहा! तथापि प्रभुता का गुण जो अन्दर है, वह इतना का इतना और वह का वही, वैसा का वैसा है, कहते हैं। यह तो क्या है! ऐसा कोई द्रव्य और गुण का अद्भुत विस्मयकारी चीज़ है वह। आहाहा! साधारण का गजु नहीं कि इस बात को मानना। आहाहा!

यह यहाँ कहा। सदा **परिणमन में भी...** आहाहा! **उत्पाद-व्यय होते ही रहते हैं, तथापि वे सर्व गुण...** सर्व गुणों? सब आये न? वीर्य, ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, यह गुण अन्दर है और पर्याय में षट्कारक के परिणमन से ज्ञान, दर्शन, आनन्द परिणमित हुए हैं। एक-एक पर्याय षट्कारक से परिणमित हुई है, तथापि द्रव्य और गुण के जो षट्कारक अन्दर हैं, वे तो परिपूर्णरूप से पड़े हैं। आहाहा! चेतनजी! यह चेतन की बात चलती है यहाँ। आहाहा! है?

उत्पाद-व्यय होते ही रहते हैं, तथापि वे सर्व गुण परिणमन में भी सदा ज्यों के त्यों ही परिपूर्ण रहते हैं। अन्तिम शब्द कहा है **स्वभाव अद्भुत है।** बापू! क्या कहें? यह द्रव्य और गुण का स्वभाव कोई अद्भुत है। साधारण माप में करने जाए, वह नहीं मिलता। आहाहा! साधारण लोगों को ऐसा लगे, अनन्त-अनन्त प्रगट हुआ तो भी कहे आनन्द उतना का उतना? दु:ख था तब जब राग की दशा में दु:ख था, तो भी आनन्द उतना का उतना और अतीन्द्रिय आनन्दरूप पर्याय हुई तो भी आनन्द उतना का उतना! राग था, तब भी ऐसा चारित्रगुण तो अन्दर उतना का उतना और यथाख्यातचारित्र परिणमित हुआ तो भी चारित्रगुण तो उतना का उतना! **स्वभाव अद्भुत है।** आहाहा! विशेष कहा जाएगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल -२, रविवार, दिनाङ्क ३१-१२-१९७८
वचनामृत- ४१९ से ४२१ प्रवचन-१७५

प्रश्न—हम अनन्त काल के दुखियारे; हमारा यह दुःख कैसे मिटेगा?

उत्तर—'मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, विभाव से भिन्न मैं ज्ञायक हूँ' इस मार्ग पर जाने से दुःख दूर होगा और सुख की घड़ी आयेगी। ज्ञायक की प्रतीति हो और विभाव की रुचि छूटे—ऐसे प्रयत्न के पीछे विकल्प टूटेगा और सुख की घड़ी आयेगी। 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भले ही पहले ऊपरी भाव से कर, फिर गहराई से कर, परन्तु चाहे जैसे करके उस मार्ग पर जा। शुभाशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का ज्ञायकरूप से अभ्यास करके ज्ञायक की प्रतीति दृढ़ करना, ज्ञायक को गहराई से प्राप्त करना, वही सादि-अनन्त सुख प्राप्त करने का उपाय है। आत्मा सुख का धाम है, उसमें से सुख प्राप्त होगा॥४१९॥

४१९, वचनामृत है। ४१८ हुए। **प्रश्न...** ये अन्तिम थोड़े प्रश्न हैं। **हम अनन्त काल के दुखियारे;...** प्रश्न है।

हम अनन्त काल के दुखियारे; हमारा यह दुःख कैसे मिटेगा?

उत्तर—'मैं ज्ञायक हूँ,..' त्रिकाल ज्ञायक हूँ। **'मैं ज्ञायक हूँ,..'** दो बार विशेषण लिया। यह छठी गाथा में है न, **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो'** ज्ञायकभाव हूँ, ज्ञायकभाव हूँ। **'विभाव से भिन्न मैं ज्ञायक हूँ'...** पहले अस्ति सिद्ध की पश्चात् विभाव शुभ-अशुभभाव, **'विभाव से भिन्न मैं ज्ञायक हूँ'...** एक न्याय से तो चार भाव भी विभाव हैं। आहाहा! विशेष भाव है न? चार भाव भी (विभाव हैं)। यह खटकता है, वह आया है न अन्दर? चार विभावभाव क्यों कहा उन्हें? विशेष भाव है। सामान्य जो ज्ञायकभाव त्रिकाल एकरूप जो ज्ञायक है, सामान्य है और यह उदय, उपशम, क्षयोपशम,

क्षायिक चार पर्याय, यह विभाव / विशेष भाव है। आहाहा! वास्तव में तो इन विशेष-विभाव से भी आत्मा ज्ञायक भिन्न है। आहाहा! यह नियमसार का अभी किसी को खटका है। नेमीचन्द को। कि ऐसा कैसे कहा? भाई! एकरूप चैतन्यस्वभाव जो ज्ञायक सामान्य जो ध्रुव है, उसकी अपेक्षा से चार भाव विशेष हैं, विभाव हैं। वे विभावभाव त्रिकाल ज्ञायकभाव में नहीं हैं। यह तो (नियमसार गाथा) ४१ में आया है न? ४१ गाथा नियमसार। उन्हें खटका है। ऐसा कि चार भाव से मोक्ष नहीं होता। तब पारिणामिकभाव से मोक्ष नहीं होता तो मोक्ष होने की शक्ति कौन चीज़ रहे? ऐसा कहते हैं। बापू! चार के आश्रय से नहीं होता, आहाहा! अरे! पर्याय के आश्रय से, द्रव्यदृष्टि बिना पर्याय के आश्रय से नहीं होता। आहाहा!

चाहे तो क्षायिक समकित हो, परन्तु वह भाव भी विभाव वि—शेष, विभाव अर्थात् विशेष भाव, ऐसा। विकारभाव, ऐसा (आशय) नहीं है। आहाहा! यह विभावभाव, विभाव से भिन्न मैं ज्ञायक हूँ। आहाहा! यद्यपि यहाँ तो सामान्य पुण्य-पाप के विभाव से भिन्न है, (ऐसा) कहते हैं, परन्तु वास्तव में तो, आहाहा! अकेला ज्ञायकस्वभाव ध्रुव नित्यस्वभाव, वह तो विभाव की पर्याय से भी भिन्न है। ऐसा इसे बारम्बार अन्दर रटन करना चाहिए। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

इस मार्ग पर जाने से... मैं ज्ञायक हूँ अर्थात् जाननेवाला हूँ अर्थात् पर्यायवाला, ऐसा नहीं; त्रिकाल। यह तो आता है न? ज्ञायक है, इसलिए ऐसा कि पर को जानता है, ऐसी उसमें प्रसिद्धि है—ऐसा नहीं। वह तो अपनी पर्याय को जानता है, यह व्यवहार है। आहाहा! अकेला ज्ञायकभाव वस्तु है, वह (मैं) विभावभाव से भिन्न हूँ। **इस मार्ग पर जाने से...** इस पद्धति और पन्थ में पड़ने से, आहाहा! **दुःख दूर होगा...** आहाहा! क्योंकि सुख पन्थ जहाँ ज्ञायक हूँ, वह सुख पन्थ है। आहाहा! ज्ञायक हूँ, ऐसी जो परिणति प्रतीत होती है। आहाहा! ज्ञायक तो ज्ञायक है परन्तु ज्ञायक हूँ, ऐसी जो ज्ञान में जानने की पर्याय और प्रतीति होती है, वह सुखरूप है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञायक हूँ, यह तो इससे ज्ञायक हूँ, वह ज्ञायक हूँ, वह ज्ञायक हूँ, उसमें ज्ञायक हूँ ऐसा ध्रुवपना अकेला नहीं आता। पर्याय आवे, वह कहती है कि मैं ज्ञायक हूँ। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह मुद्दे की, यह तो रकम की बात है। पूरे जैनदर्शन का प्राण

(समयसार की) ११वीं गाथा। '**भूदत्थमस्सिदो...**' यह भूतार्थ कहो या ज्ञायक कहो। आहाहा! परमपारिणामिक स्वभावभाव ऐसा ज्ञायक। पारिणामिकभाव न कहकर, क्योंकि पारिणामिकभाव तो परमाणु में भी पारिणामिकभाव है परन्तु यह पारिणामिक सहज ज्ञायकभाव ज्ञान की प्रधानता से इसे ज्ञायकभाव (कहा है), परन्तु है तो अनन्त गुण का पिण्ड। आहाहा!

विभाव से भिन्न मैं ज्ञायक हूँ' इस मार्ग पर जाने से दुःख दूर होगा... ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! अभी तो यह सब ऐसी गड़बड़ हो गयी है। आहाहा! भक्ति करना, यात्रा करना, वांचन करना, सुनना और ऐसे सब, इनसे, आहाहा! भगवान एक समय में पूर्ण ज्ञायकभाव हूँ, ऐसी जो प्रतीति, वह तो पर्याय है। आहाहा! ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, वह तो पर्याय है। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी प्रतीति। परन्तु है किसकी? मैं ज्ञायक त्रिकाल हूँ उसकी। ज्ञायक हूँ, वह ध्रुव मैं ज्ञायक हूँ—ऐसा नहीं आता। ज्ञायक ध्रुव है परन्तु मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा ध्रुव में प्रतीति में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह मार्ग कहा न? पन्थ कहा, पर्याय कही। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा जो मार्ग, पन्थ, पर्याय, उस मार्ग पर जाने से, आहाहा! **दुःख दूर होगा और सुख की घड़ी आयेगी।** आनन्द का काल आयेगा, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है। अब ऐसा कठिन। लोगों को कठिन पड़ता है परन्तु मार्ग तो यह है। लाख क्रियाकाण्ड करे और लाख वांचन करे और लाखों शास्त्र बनावे, वे सब विकल्प हैं। आहाहा! यहाँ तो मैं त्रिकाल ज्ञायक हूँ, ऐसी दृष्टि होने पर, उस पन्थ में पड़ा, वहाँ दुःख मिटेगा और सुख होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : सुख तो तत्काल आवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्काल। कहा न, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी प्रतीति हुई, उस काल में ही उसे पर्याय में सुख आता है। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा सुखरूप त्रिकाल हूँ—ऐसा ज्ञान की पर्याय जानती है, उस पर्याय में आनन्द साथ में आता है। आहाहा! मैं ज्ञायक हूँ—ऐसी पर्याय में अनन्त गुण की प्रगट व्यक्त पर्याय आती है। आहाहा! भाई! यह तो सत्य सिद्धान्त है। आहाहा!

दुःख मिटेगा और आनन्द की घड़ी आयेगी। आहाहा! यह दुःख मिटे और आनन्द

तुझे मिलेगा ही। आहाहा! क्योंकि आनन्द का सागर भगवान आत्मा है। वह ज्ञायक ज्ञान की प्रधानता से बात ली है। बाकी आनन्द का सागर भगवान है, वह त्रिकाली ध्रुव है। समझ में आया? वह आनन्दस्वरूप त्रिकाली आनन्दरूप, त्रिकाली आनन्दरूप, वह मैं— ऐसा ज्ञान की पर्याय में जानना और प्रतीति होना, उसमें अनन्त गुण की व्यक्तता प्रगट पर्याय, वह भी षट्कारक के परिणमन से परिणमित पर्याय खड़ी होती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मात्र उसका लक्ष्य वहाँ जाता है, परन्तु वह पर्याय जो है, उसके लक्ष्य से यह हूँ, ऐसी जो पर्याय प्रगट होती है... आहाहा! वह पर्याय भी षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न होती है। लक्ष्य भले उसका—ज्ञायक का है। आहाहा! ऐसा सम्यग्दर्शन का पन्थ, वह सुख का पन्थ है – ऐसा कहते हैं। आहाहा!

ज्ञायक की प्रतीति हो और विभाव की रुचि छूटे... आहाहा! उसे त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव पोसाये, रुचि में पोसाये, रुचि हो उसे। आहाहा! आहाहा! रुचि है, पोसाता है, वह तो पर्याय है परन्तु पोसाती है पूरी त्रिकाली चीज़। आहाहा! **ज्ञायक की प्रतीति हो और विभाव की रुचि छूटे...** यह तो एक ही समय है। समझाना किस प्रकार? ज्ञायक की... बापू! भले ज्ञायक शब्द है... आहाहा! परन्तु ज्ञायक शब्द है, वह तो वाचक है किन्तु उसका जो वाच्य है त्रिकाली ज्ञायक। आहाहा! उसकी प्रतीति होने पर विभाव की रुचि छूटती है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव की रुचि छूटती है। ज्ञायकभाव की रुचि होने पर, ऐसा है न?

ज्ञायक की प्रतीति हो... आहाहा! **और विभाव की रुचि छूटे—ऐसे प्रयत्न के पीछे...** ऐसे प्रयत्न के पीछे **विकल्प टूटेगा...** आहाहा! राग की एकता टूटेगी। आहाहा! आत्मा ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप, ऐसी त्रिकाली वस्तु की रुचि होने पर, विभाव छूटने पर। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव भगवान आत्मा एक समय में त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव... आहाहा! उसकी दृष्टि-रुचि होने पर, विभाव की रुचि छूटने पर... आहाहा! **ऐसे प्रयत्न के पीछे विकल्प टूटेगा...** आहाहा! चिदानन्द भगवान अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु की रुचि होने पर पुण्य और पाप के विभावभाव की रुचि छूटने पर... आहाहा! उसके प्रयत्न से विकल्प टूटेंगे। स्वभाव की एकता होने पर विकल्प अर्थात् राग की एकता टूटेगी। आहाहा! ऐसी बात है।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में यह स्थिति है। प्रथम सम्यग्दर्शन–धर्म की पहली सीढ़ी। जो ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी रुचि होने पर और विभाव की रुचि छूटने पर विकल्प टूट जाएँगे। राग की एकता जो अनादि की है, वह छूट जाएगी। आहाहा! और सुख की घड़ी आयेगी। पहले आया था न? पहले आया था, सुख की घड़ी आयेगी। उसका स्पष्टीकरण किया है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञायक का पिण्ड प्रभु है, ऐसी अन्तर की दृष्टि होने पर विकल्प / राग की एकता टूटेगी और स्वभाव की शान्ति की काल / घड़ी प्रगट होगी। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

यह बाहर की कोई प्रवृत्ति, क्रियाकाण्ड से कुछ मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्रियाकाण्ड है, वह तो पुण्य–पाप के भाव हैं। उनसे भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्यमूर्ति भिन्न है, उसका भान होने पर आनन्द का काल आयेगा, कहते हैं। आहाहा! तुझे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आयेगा। सम्यग्दर्शन होने पर, ज्ञायकस्वरूप की रुचि होने पर, पुण्य–पाप के विकल्प की एकता टूटने से तुझे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आयेगा, उस आनन्द का काल आयेगा, तुझे घड़ी आयेगी – ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। सूक्ष्म बात है, बापू! अनन्त काल में इसने कभी किया नहीं। बाहर की प्रवृत्ति में सब माना है। मानों उससे होगा और उससे होगा, परन्तु प्रवृत्ति का जो विकल्प है, वह राग है और दुःख है। आहाहा! उससे निवृत्तस्वरूप भगवान आत्मा है, उसकी अन्तर की दृष्टि, रुचि करने से तुझे (सुख की घड़ी आयेगी)। आहाहा!

'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भले ही पहले ऊपरी भाव से कर,... कहते हैं न? मैं ज्ञायक हूँ, जाननेवाला हूँ, ज्ञाता हूँ – ऐसा पहले ऊपरी भाव से परन्तु ऐसा कर। आहाहा! इस दुःख से छूटने का मार्ग यह है। **'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भले ही पहले ऊपरी भाव से कर,...** अर्थात् अन्दर में अभी प्रविष्ट न हो गया हो। विकल्प की भूमिका में यह ज्ञायक हूँ, ऐसा ऊपरी भाव से भी पहले कर। आहाहा! है?

ऐसा भले ही पहले ऊपरी भाव से कर, फिर गहराई से कर,... गहराई अर्थात् एक समय की पर्याय के पीछे भगवान अन्तर आत्मा पूर्ण पड़ा है। प्रभु एक समय की पर्याय के गहरे में अन्दर। आहाहा! गहराई यह... है। उस पर्याय की दृष्टि छोड़कर, वर्तमान पर्याय और पर के प्रति लक्ष्य को छोड़कर और उस पर्याय को गहरे अर्थात् उसका जो ध्रुव है,

वहाँ ले जा। आहाहा! ऐसी बात है। **ऐसा भले ही पहले ऊपरी भाव से कर, फिर गहराई से कर,...** अर्थात् ? ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्द प्रभु, उसे पहले ऊपर से अर्थात् कि विकल्प के आश्रय से यह ज्ञायक है, ज्ञायक है—ऐसे उस ओर जा। पश्चात् अन्दर में, गहराई में विकल्प को तोड़कर अन्दर जा। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की पद्धति है। प्रथम धर्म; और सम्यग्दर्शन बिना चारित्र और व्रत, तप कोई सच्चे नहीं होते। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे... आहाहा! **गहराई से कर, परन्तु चाहे जैसे करके...** आहाहा! **चाहे जैसे करके उस मार्ग पर जा।** ज्ञायकस्वरूप भगवान परमानन्दरूप से विराजमान है, उस मार्ग पर जा। वर्तमान पर्याय और राग के मार्ग में अनादि से है। चाहे तो दया, दान, व्रत का विकल्प हो परन्तु वह राग है, विकार है, उसके मार्ग में तो अनादि से है। अब उसकी ओर से हटकर गहराई में अर्थात् पर्याय को गहराई में, वर्तमान पर्याय जो है, उसे गहराई अर्थात् ध्रुव में, गहराई में ले जा। आहाहा! ऐसा मार्ग है, यह ग्यारहवीं गाथा की शैली है। आहाहा! **चाहे जैसे करके उस मार्ग पर जा।** अन्तर चैतन्य भगवान पूर्णानन्द प्रभु विराजता है।

घट-घट अन्तर जिन बसै, घट-घट अन्तर जैन
मत-मदिरा के पान सौं, मतवाला समझे न॥

'घट-घट अन्तर जिन बसै' अन्तर घट-घट में जिन प्रभु वीतरागस्वरूप से विराजमान आत्मा है। आहाहा! द्रव्यस्वरूप से, वस्तुस्वरूप से, घट-घट में उसका जिनस्वरूप ही है। उसके ऊपर जा, जिनस्वरूप पर दृष्टि कर तो अजैन ऐसा जो विभावभाव, उसकी एकता टूटेगी और तुझे आनन्द होगा। आहाहा! तो तू जैन होगा।

घट-घट अन्तर जिन बसै, घट-घट अन्तर जैन
मत-मदिरा के पान सौं, मतवाला समझे न॥

अपने अभिप्राय के जोरवाले—राग से लाभ होता है और पुण्य से लाभ होता है तथा शुभभाव से लाभ होता है - ऐसा जो मतवाला अभिप्राय—उसे यह नहीं जँचता। आहाहा!

कहते हैं **चाहे जैसे करके उस मार्ग पर जा। शुभाशुभभाव से भिन्न...** शुभ और अशुभभाव दोनों। आहाहा! उनसे भगवान आत्मा अन्दर भिन्न है। यहाँ तो शुभभाव करते-

करते होगा, ऐसा कहते हैं। शुभभाव वह सहारा है, शुभभाव से शुद्धता होगी—ऐसी दृष्टि अनादि की है। आहाहा!

शुभाशुभभाव—शुभ और अशुभ जो विकारी भाव हैं, उनसे भिन्न **ज्ञायक का ज्ञायकरूप से अभ्यास करके...** आहाहा! अन्दर जाननस्वभाव भगवान ज्ञायक, उस ज्ञायक का ज्ञायकरूप अभ्यास करके। भाषा तो सादी है परन्तु अब वस्तु... अनभ्यास, अनादि की वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं। आहाहा! शुभाशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का-जाननस्वभाव जो है, उस जाननस्वभावरूप, जाननस्वभाव का जाननस्वभावरूप अभ्यास कर। लो! यह अभ्यास। शास्त्र अभ्यास कर, यहाँ यह नहीं कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : दिशा पलटकर अन्तर का अभ्यास कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्यदृष्टि, जो पर्याय का बाह्य परलक्ष्य है, उसे गहराई में अर्थात् पर्याय के अन्दर में ध्रुवतत्त्व पड़ा है, पूरा परमात्मतत्त्व है, आत्मतत्त्व वह पूरा है। उस पर्याय को आत्मतत्त्व में झुका, उसमें अभ्यास कर। आहाहा! ज्ञायकभाव की ओर शुभाशुभभाव से भिन्न, उसका अभ्यास कर। आहाहा! लो! यह मोक्ष के मार्ग की उत्पत्ति का यह कारण है। आहाहा! बहुत व्यवहार करे और भक्ति करे, यात्रा करे, इसलिए यह होता है—ऐसा नहीं है, भाई! शास्त्र का बहुत ज्ञान करे तो यह होता है—ऐसा भी नहीं है। शास्त्रज्ञान, वह परज्ञेय है। उसमें-परज्ञेय में निमग्न है, वह स्वसन्मुख नहीं ढल सकेगा। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

शुभाशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का ज्ञायकरूप से अभ्यास करके ज्ञायक की प्रतीति दृढ़ करना,... आहाहा! ज्ञायक का-जाननस्वभावस्वरूप का, जाननस्वभाव द्वारा अभ्यास करते हुए ज्ञायक की प्रतीति दृढ़ करना। आहाहा! पहले में पहला यह है। ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... उसके सन्मुख झुकाव करना। आहाहा! ऐसा है। **ज्ञायक की प्रतीति दृढ़ करना, ज्ञायक को गहराई से प्राप्त करना,...** विशेष कहा। यह ज्ञायक प्रभु है। जैसे भोंयरे में जाने से भगवान के दर्शन होते हैं, वैसे पर्याय को अन्दर भोंयरा में-ध्रुव में-ज्ञायक में ले जाने से उस ज्ञायक के दर्शन होते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, इसलिए लोगों को एकान्त लगता है। यह बाहर की धमाधम देखो न, ऐसी भक्ति और यात्रा और यह और वह... मानो इसमें से कल्याण हो जाएगा। आहाहा!

ज्ञायक को गहराई से प्राप्त करना,... पर्याय को अन्दर में झुकाकर ज्ञायक को प्राप्त करना। वर्तमान पर्याय को—बाहर की ओर झुकती है उसे—वह पर्याय नहीं परन्तु पर्याय को अन्दर में झुकाने से। आहाहा! **ज्ञायक को गहराई से प्राप्त करना, वही सादि-अनन्त सुख प्राप्त करने का उपाय है।** सादि-अनन्त आनन्द ऐसी जो मुक्तदशा है, उसे प्राप्त करने का यह उपाय है। आहाहा! बाहर की प्रवृत्ति से हट जा और पर्याय को अन्दर में ले जा। आहाहा! यही सादि-अनन्त सुख प्राप्त करने का अर्थात् मोक्ष (प्राप्त करने का उपाय है)। **ज्ञायक को गहराई से प्राप्त करना, वही सादि-अनन्त...** क्योंकि अनन्त आनन्द की उत्पत्ति होती है, इसलिए सादि है। अनन्त आनन्दस्वरूप आत्मा है, वह अनादि है। अनन्त आनन्दस्वरूप है, वह अनादि है परन्तु अनादि में से अनन्त आनन्द की पर्याय में प्राप्ति होना, वह सादि है, वह आदि है। सादि=स—आदि अर्थात् आदि है, आदि सहित है। आहाहा!

वही सादि-अनन्त सुख प्राप्त करने का उपाय है। क्यों?—कि **आत्मा सुख का धाम है,...** अन्दर स्वयं आनन्द का धाम है। उसके आश्रय में जाने से सादि-अनन्त, अनन्त सुख की प्राप्ति होगी। आहाहा! आत्मा अनादि-आनन्द का धाम है। उस अनादि अनन्त आनन्द का वह क्षेत्र है। आहाहा! स्थान है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम / स्थान / ठाम / ठिकाना, वह है। आहाहा! **उसमें से सुख प्राप्त होगा।** आहाहा! क्योंकि अनन्त आनन्द का धाम है। ज्ञायक कहा था न? ज्ञायक के साथ में फिर आनन्द लिया।

मूल आचार्य दो ही बात को बहुत (जगह) स्थापित करते हैं, ज्ञान और आनन्द, ज्ञान और आनन्द, ज्ञान और आनन्द। ज्ञायक है, वह स्वयं अनन्त आनन्द का धाम है—ऐसा कहा है। आहाहा! उस आनन्द के धाम में एकाग्र होने से सादि-अनन्त सुख प्राप्त होगा क्योंकि आत्मा आनन्द का धाम है, उसमें से आनन्द प्राप्त होगा। आहाहा! राग में से भी नहीं प्राप्त होगा और पर्याय में से भी नहीं प्राप्त होगा - ऐसा कहते हैं। पूरा धाम है, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है। आहाहा! उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त होगा। आहाहा! मोक्ष का मार्ग है, वह तो पर्याय है और यह वस्तु है, वह तो अनन्त आनन्द का धाम है, द्रव्य है, वस्तु है। आहाहा! उसमें से सुख प्राप्त होगा, लो! इस प्रश्न का उत्तर। **हम अनन्त काल के दुखियारे; हमारा यह दुःख कैसे मिटेगा?** आहाहा! इसका यह उत्तर है। आहाहा! दूसरा प्रश्न, अब अन्त में प्रश्न ही है।

प्रश्न—जिज्ञासु को चौबीसों घण्टे आत्मा के विचार चलते हैं?

उत्तर—विचार चौबीसों घण्टे नहीं चलते। परन्तु आत्मा का खटका, लगन, रुचि, उत्साह बना रहता है। 'मुझे आत्मा का करना है, मुझे आत्मा को पहिचानना है' इस प्रकार लक्ष्य बारम्बार आत्मा की ओर मुड़ता रहता है॥४२०॥

प्रश्न—जिज्ञासु को चौबीसों घण्टे आत्मा के विचार चलते हैं? प्रश्न है। तुम तो ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... किया करते हो। क्या चौबीस घण्टे (ज्ञायक के विचार चलते हैं)? जिज्ञासु को, हों! प्रगट हुआ है, उसे तो कायम ज्ञायकपना ही परिणमित होता है। आहाहा! परन्तु जिज्ञासु को—ऐसा प्रश्न है न? जिसे आत्मा की जिज्ञासा है, उसे **चौबीसों घण्टे आत्मा के विचार चलते हैं?** ऐसा प्रश्न है।

मुमुक्षु : जिज्ञासु और आत्मार्थी एक ही?

पूज्य गुरुदेवश्री : जिज्ञासु है अर्थात् ऐसा वह प्राप्त हुआ नहीं है। वह तो आत्मार्थी अर्थात् जिज्ञासा है, इसलिए आत्मार्थी कहलाता है परन्तु आत्मार्थी को आत्मा उसे प्रगट नहीं हुआ है। आहाहा! सत्य की जिज्ञासा है। जिसे सत्य को प्राप्त करने की जिज्ञासा, इच्छा, अभिलाषा, भाव है। आहाहा!

उत्तर—विचार चौबीसों घण्टे नहीं चलते। परन्तु आत्मा का खटका,... आहाहा! अखण्ड ज्ञायकस्वरूप का खटका अन्दर... अन्दर... अन्दर... अन्दर झुकने की अन्दर भावना, झुकने की भावना-खटका रहा करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **लगन,...** आत्मा का खटका, आत्मा की लगन, आहाहा! उसकी **रुचि,...** विशेष शब्द कहते हैं। आत्मा का खटका, आत्मा की लगन, आहाहा! उसकी रुचि, उसकी **उत्साह बना रहता है।** आहाहा! चाहे जितने काम में हो, परन्तु उसका नाम भूल जाएगा? नाम तो उसे रटन में हो गया है, वह रात्रि में नींद में उसे कहे कि अमुक... हं! ऐसी उसे खटक होनी चाहिए, कहते हैं। आहाहा!

आत्मा ज्ञायक चिदानन्द प्रभु का खटका। गुजराती सादि भाषा है न! उसकी लगन। आहाहा! 'लागि लगन हमारी जिनराज सुजस सुन्यों मैं' जिनराज ऐसा आत्मा का

स्वरूप जहाँ सुना... आहाहा! वह जिनराजस्वरूप है, जिनस्वरूप है।

लागि लगन हमारी जिनराज सुजस सुन्यों मैं
काहू के कहे कबहुँ न छूटे, लोकलाज सब डारि॥

आहाहा! 'जैसे अमली अमल करत समें, जैसे अमली अमल करत समें लाग रही खुमारी।' आहाहा! इसी प्रकार आत्मा की खुमारी की खटक रहा करे। आहाहा! **खटका, लगन, रुचि, उत्साह बना रहता है। 'मुझे आत्मा का करना है,...'** ऐसा आत्मा, मुझे आत्मा का करना है, मेरा ज्ञायक प्रभु, उसका मुझे काम है, ऐसी उसे खटक बारम्बार रहनी चाहिए। दूसरे का करना है, या दूसरे में बाहर प्रसिद्ध होना है, यह बात भूल जाता है। मुझे तो मेरे आत्मा का करना है। आहाहा!

'मुझे आत्मा को पहिचानना है'... आहाहा! मुझे मेरे आत्मा का करना है और मुझे आत्मा को पहिचानना है। मुझे तो यह काम है। भगवान ज्ञायकस्वरूप को पहिचानना है, ऐसी उसे खटक और धगश (रहा करती है)। आहाहा! पुण्य हो और स्वर्ग में जाऊँ और भगवान के पास जाऊँगा, यह बात यहाँ नहीं है। आहाहा! यह भगवान आत्मा है, उसकी धगश ऐसी लगे कि मुझे तो आत्मा का-मेरा करना है, मुझे मेरा करना है। आहाहा! मुझे आत्मा को पहिचानना है, ऐसी जिज्ञासावाले को खटक बारम्बार रहती है। आहाहा!

इस प्रकार लक्ष्य आत्मा की ओर... इस प्रकार लक्ष्य आत्मा की ओर **बारम्बार मुड़ता रहता है।** संक्षिप्त कर दिया। मुझे मेरे आत्मा का करना है, मुझे मेरे आत्मा को पहिचानना है, ऐसी धगश, लक्ष्य आत्मा की ओर बारम्बार झुका करे, यह जिज्ञासु का कर्तव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो अति निकट की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो निकट की बात है। यहाँ तो कहा न पाँचवीं गाथा में? **'जदि दाएज्ज पमाणं'** (समयसार गाथा ५)। हे श्रोता! हे अप्रतिबुद्ध श्रोता! आहाहा! पंचम काल के सन्त, पंचम काल के अप्रतिबुद्ध श्रोता को कहते हैं। हे श्रोता! यदि मैं कहूँ तो प्रमाण करना। आहाहा! ऐसी ही शैली ली है। आहाहा! मैं जो पर से भिन्न कहूँगा, स्व से एकत्व और पर से भिन्न। **'तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण' 'तं एयत्तविहत्तं'**

इस राग के विकल्प से भिन्न और स्वभाव की एकता से बात करूँगा, इतना पहले लिया, परन्तु '**जदि दाएज्ज**' यदि कहने में आया और तुझे सुनने में आया। आहाहा!

दो बोल लिये हैं। '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण**' मैं मेरे वैभव से कहूँगा परन्तु कहूँगा, इतना रखकर फिर कहते हैं '**जदि**' दिखाऊँ तो, यदि दिखाने में आया तो। आहाहा! यह प्रवाह यदि कहने में आया। आहाहा! '**जदि दाएज्ज**' यदि मैं आत्मा को राग से भिन्न और स्वभाव से एकता दिखाऊँ तो। पहले दिखाऊँगा कहा, परन्तु दिखाऊँगा कहकर दिखाऊँ तो अब फिर (कहते हैं)। आहाहा! वाणी निकलने के प्रसंग में दिखाऊँ तो, आहाहा! प्रमाण करना। भाई! अनुभव से प्रमाण करना, ऐसा कहा है। पंचम काल के सन्त, पंचम काल के अप्रतिबुद्ध श्रोता को भी ऐसा कहते हैं। इतनी तेरी तैयारी मैं देखता हूँ, कहते हैं। आहाहा!

यदि मैंने आत्मा तुझे कहा, राग के विकल्प से भिन्न प्रभु और पूर्णानन्द के स्वभाव से स्वयं एकत्व है—ऐसी बात यदि तुझे दिखाऊँ, प्रभु! तू प्रमाण करना, अनुभव करके प्रमाण करना। हाँ, करके इतने से नहीं अटकना। आहाहा! शैली तो देखो! समयसार!! आहाहा!

वहाँ ऐसा कहा, केवली की स्तुति अर्थात् कि मेरी स्तुति, तेरी स्तुति, (वह) केवली की स्तुति। केवल भगवान अकेला आत्मा। आहाहा! उसके अन्दर में स्वद्रव्य में पकड़ एकान्तरूप से। आहाहा! उस सम्यक् एकान्त से तुझे अनेकान्त का सच्चा ज्ञान होगा। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप जहाँ दृष्टि में आया, एकान्तनय से, एकनय से। आहाहा! इससे तुझे पर्याय का ज्ञान भी सच्चा होगा। यह होने से पर्याय का ज्ञान अनेकान्त सच्चा है। आहाहा! और इससे तू प्रमाण करना। आहाहा! क्या यह वाणी! आहाहा! समुद्र उछला है। आहाहा!

इस प्रकार लक्ष्य बारम्बार आत्मा की ओर मुड़ता रहता है। आहाहा! जिज्ञासु को ऐसा करना चाहिए - ऐसा कहने में आता है। आहाहा! जिज्ञासु को पहले मेरी भक्ति करना, ऐसा नहीं (कहा)। आहाहा! जिज्ञासु को तो इस आत्मा को पहिचानने का प्रयत्न करना, आत्मा का मुझे तो आत्मा का काम है, बाकी कुछ काम नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : क्लास में पढ़ना तो आया ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्लास भगवान आत्मा अन्दर है, वहाँ जा। अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, आहाहा! उस क्लास में जा। आहाहा! देखो! यह व्यवहार की बातें आवे, तब आवे। परमार्थ तो यह है। आहाहा! दो प्रश्न हुए। तीसरा प्रश्न।

प्रश्न—मुमुक्षु को शास्त्र का अभ्यास विशेष रखना या चिन्तन में विशेष समय लगाना?

उत्तर—सामान्य अपेक्षा से तो, शास्त्राभ्यास चिन्तन सहित होता है, चिन्तन शास्त्राभ्यासपूर्वक होता है। विशेष अपेक्षा से, अपनी परिणति जिसमें टिकती हो और अपने को जिससे विशेष लाभ होता दिखायी दे, वह करना चाहिए। यदि शास्त्राभ्यास करने से अपने को निर्णय दृढ़ होता हो, विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत शास्त्राभ्यास विशेष करना चाहिए और यदि चिन्तन से निर्णय में दृढ़ता होती हो, विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत चिन्तन विशेष करना चाहिये। अपनी परिणति को लाभ हो, वह करना चाहिये। अपनी चैतन्यपरिणति आत्मा को पहिचाने यही ध्येय होना चाहिए। उस ध्येय की सिद्धि के हेतु प्रत्येक मुमुक्षु को ऐसा ही करना चाहिए, ऐसा नियम नहीं हो सकता।।४२१।।

प्रश्न—मुमुक्षु को शास्त्र का अभ्यास विशेष रखना या चिन्तन में विशेष समय लगाना? आहाहा! मुद्दे का प्रश्न है। आहाहा! **मुमुक्षु को...** पहले जिज्ञासु था। आहाहा! जिसे आत्मा के मोक्ष की अभिलाषा है, उसे यह मुमुक्षु कहते हैं। ऐसे **मुमुक्षु को शास्त्र का अभ्यास विशेष रखना या चिन्तन में विशेष समय लगाना?** आहाहा!

उत्तर—सामान्य अपेक्षा से तो, शास्त्राभ्यास चिन्तन सहित होता है,... परन्तु यह, हों! शास्त्राभ्यास चिन्तन सहित होता है। आहाहा! **सामान्य अपेक्षा से तो, शास्त्राभ्यास चिन्तन सहित होता है, चिन्तन शास्त्राभ्यासपूर्वक होता है।** वापस ऐसा रखा। यह चिन्तन भी शास्त्राभ्यासपूर्वक होता है। शास्त्राभ्यास चिन्तनसहित होता है और चिन्तन शास्त्राभ्यास-पूर्वक होता है। आहाहा! **विशेष अपेक्षा से,...** वह सामान्य अपेक्षा से कहा (था)।

विशेष अपेक्षा से, अपनी परिणति जिसमें टिकती हो... आहाहा! अपनी वर्तमान दशा जिसमें टिकती हो। **और अपने को जिससे विशेष लाभ होता दिखायी दे...** देखा? आहाहा! **अपने को जिससे विशेष लाभ होता दिखायी दे, वह करना चाहिए। यदि शास्त्राभ्यास करने से अपने को निर्णय दृढ़ होता हो,...** बात तो यह करनी है, कहते हैं। आहाहा! शास्त्राभ्यास में भी दृढ़ निर्णय होता हो। आहाहा! विशेष लाभ होता हो। **निर्णय दृढ़ होता हो, विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत (आवश्यकतावाला) शास्त्राभ्यास विशेष करना चाहिए...** आहाहा! मुनि को भी ध्यान और स्वाध्याय दो ही हैं न? आहाहा! ध्यान में रहना और न रह सके तो शास्त्राभ्यास करना। स्वाध्याय, वह विकल्प है। आहाहा!

विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत शास्त्राभ्यास विशेष करना चाहिए और यदि चिन्तन से निर्णय में दृढ़ता होती हो,... आहाहा! देखा? शास्त्राभ्यास करने से अपना निर्णय दृढ़ होता हो, विशेष लाभ होता हो तो ऐसा प्रयोजनभूत विशेष करना और चिन्तन से निर्णय में दृढ़ता होती हो। आहाहा! **चिन्तन से निर्णय में दृढ़ता होती हो, विशेष लाभ होता हो,...** दोनों बातें ली न! उसमें ली है। **तो ऐसा प्रयोजनभूत चिन्तन विशेष करना चाहिए।** आहाहा! स्वसन्मुख का चिन्तन विशेष करना चाहिए। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत सार आ गया है। पुस्तक में पहले से ठेठ तक की सब बात बहुत पूरी और सादी भाषा में सहज-सहज आ गयी है। आहाहा!

ऐसा प्रयोजनभूत चिन्तन विशेष करना चाहिए। पहले प्रयोजनभूत शास्त्राभ्यास करना, (ऐसा कहा) और यहाँ अकेला चिन्तन विशेष करना। **अपनी परिणति को लाभ हो, वह करना चाहिए।** बापू! आहाहा! अन्तर के स्वभाव का लाभ प्राप्त हो, यह एक मुख्य रखना। आहाहा! मैं शास्त्राभ्यास करूँ तो मुझे बहुत आयेगा, प्रश्न का उत्तर देना आयेगा, यह बात भूल जा। तेरे आत्मा के लिये यदि शास्त्राभ्यास से दृढ़ निर्णय होता हो तो वह कर और चिन्तन से होता हो तो वह कर। आहाहा! आहाहा! कठिन बातें, भाई!

अपनी परिणति को लाभ हो, वह करना चाहिए। अपनी चैतन्यपरिणति आत्मा को पहिचाने... आहाहा! जो चैतन्य की वर्तमान पर्याय आत्मा को पहिचाने। पर्याय आत्मा को पहिचाने। आहाहा! जो वर्तमान पर्याय आत्मा को पहिचाने। आहाहा! **यही ध्येय होना**

चाहिए। आहाहा! शास्त्राभ्यास में या चिन्तन में भी यह ध्येय होना चाहिए। आहाहा! **अपनी चैतन्यपरिणति आत्मा को पहिचाने, यही ध्येय होना चाहिए।** आहाहा! परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा को पहिचाने, यह ध्येय होना चाहिए। आहाहा!

मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है न? शास्त्र का वाँचन आदि ज्ञान बराबर हो, परन्तु प्रयोजन लाभ मान लेने का हो। आहाहा! दूसरे को बताकर लाभ लेने का हो तो वह ज्ञान, अज्ञान है। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। आहाहा! आत्मा के ध्येय के लिये हो, यह बात / प्रयोजन बराबर है। आहाहा! मैं पढ़ूँ, विचार करूँ तो जगत के लोगों को प्रश्नों का उत्तर दे सकूँगा, लोगों को समझा सकूँगा, ऐसा जो प्रयोजन है, वह प्रयोजन अज्ञान है। भले शास्त्रज्ञान हो। आहाहा! यहाँ तो आत्मा के ध्येय के लिये अभ्यास और चिन्तवन, उसके लिये चाहिए, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

उस ध्येय की सिद्धि के हेतु... वह ध्येय-आत्मा आनन्दस्वरूप को पहुँचने के ध्येय के लिये। **प्रत्येक मुमुक्षु को ऐसा ही करना चाहिए, ऐसा नियम नहीं हो सकता।** आहाहा! आत्मा के ध्येय को पहुँचने के लिये शास्त्राभ्यास से अन्दर-अन्दर निर्णय होता हो या चिन्तन से दृढ़ निर्णय होता हो, वैसा करना चाहिए। ऐसा ही करना, (ऐसा नहीं होता)। आहाहा! बहुत सरस बात आयी। आहाहा! **ऐसा ही करना चाहिए, ऐसा नियम नहीं हो सकता।** आहाहा! विशेष कहेंगे..... (*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल -३, सोमवार, दिनाङ्क ०१-०१-१९७९
वचनामृत- ४२२ से ४२३ प्रवचन-१७६

प्रश्न—विकल्प हमारा पीछा नहीं छोड़ते!

उत्तर—विकल्प तुझे लगे नहीं हैं, तू विकल्पों को लगा है। तू हट जा न! विकल्पों में रंचमात्र सुख और शान्ति नहीं हैं, अन्तर में पूर्ण सुख एवं समाधान है।

पहले आत्मस्वरूप की प्रतीति होती है, भेदज्ञान होता है, पश्चात् विकल्प टूटते हैं और निर्विकल्प स्वानुभूति होती है॥४२२॥

वचनामृत ४२२। ४२१ हुए हैं न? ४२१ हुए। प्रश्न है प्रश्न। ये सब पीछे प्रश्न हैं।

प्रश्न—विकल्प हमारा पीछा नहीं छोड़ते! यह प्रश्न है। विकल्प जो राग जो वृत्ति उठती है, वह हमारा पीछा नहीं छोड़ते—ऐसा प्रश्न है। इसका उत्तर।

उत्तर—विकल्प तुझे लगे नहीं हैं,... आहाहा! तू तो आनन्द ज्ञानस्वरूप है, उसकी दृष्टि नहीं, इसलिए तुझे निमित्ताधीन विकल्प उठते हैं। वे विकल्प तुझे लगे नहीं हैं, तू लगा है। आहाहा! विकल्प तुझे लगे नहीं हैं। आहाहा! जो वृत्ति उठती है, वह कहीं स्वरूप में नहीं है परन्तु तू उस विकल्प को (देखता है), दृष्टि वहाँ रखकर चिपटा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग के ऊपर दृष्टि होने से विकल्प को तूने पकड़ा है। भगवान (आत्मा) को पकड़ना चाहिए। आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा अनाकुल शान्तरस आनन्द को पकड़ना चाहिए, उसे न पकड़कर तूने विकल्प को पकड़ा है। आहाहा! सूक्ष्म है, यह ऐसा तत्त्व।

तू विकल्पों को लगा है। है न? आहा..! अर्थात्? वस्तुस्वरूप तो शुद्ध निर्विकल्प

आनन्द है, उसमें तेरी दृष्टि नहीं है, इसलिए तू वर्तमान के राग को लगा है। यहाँ जो लगना चाहिए, ऐसा कहते हैं, वहाँ लगा है। आहाहा! ऐसी बात है।

तू हट जा न! अर्थात् कि राग और स्वभाव के बीच तो सांध है, सन्धि है। राग और स्वभाव की एकता नहीं है। तूने एकता मानी है, वह मान्यता छोड़। आहाहा! हट जा का अर्थ यह है। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, भाई! अन्तर चीज़... **तू हट जा न!** जो तुझमें नहीं है, उसे तू लगा है, (तू) हट जा न। आहाहा!

विकल्पों में रंचमात्र सुख और शान्ति नहीं हैं,... यह विकल्प जो वृत्ति उठती है, चाहे तो शुभ या अशुभराग। आहाहा! उनमें कुछ सुख और शान्ति नहीं है। शान्ति अर्थात् चारित्र की शान्ति और सुख अर्थात् आनन्द-दोनों (लिये हैं)। जहाँ सुख और शान्ति है, वहाँ जा न, उससे लग न। विकल्प उत्पन्न नहीं होंगे, उसे विकल्प छोड़ा—ऐसा कहने में आयेगा। **विकल्पों में रंचमात्र सुख...** आहाहा! चाहे तो शुभराग हो या अशुभराग हो, उसमें जरा भी सुख और शान्ति (नहीं है), स्थिरता और सुख उसमें नहीं है। आहाहा!

अन्तर में पूर्ण सुख एवं समाधान है। उसमें इतना ही कहा कि राग की वृत्ति उठती है, उसमें सुख और शान्ति अर्थात् आनन्द, चारित्र की स्थिरता, शान्ति उसमें नहीं है। आहाहा! तुझमें सुख-शान्ति है, ऐसा न कहकर, तुझमें अन्दर (सुख-शान्ति है)। विकल्प है, वह बाहर है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! **अन्तर में पूर्ण सुख एवं समाधान (शान्ति) है।** ऐसा कहते हैं। अब ऐसी बातें। भगवान आत्मा में अन्दर में विकल्प है, शुभ-अशुभ आदि, वे तो बाह्य हैं। उनमें सुख और शान्ति नहीं है, अन्दर में विकल्प रहित चीज है, जिसमें विकल्प है ही नहीं, ऐसी जो चीज़ आत्मस्वभाव, उसमें सुख और समाधान अर्थात् शान्ति है। आत्मा में आनन्द और शान्ति है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : शान्ति और आनन्द में अन्तर क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : शान्ति चारित्र की कही है। कहा न, पहले कहा। चारित्र है, वह शान्ति है और आनन्द है, वह सुख है। दो बातें। दो बातें पहले कही थी। आहाहा! राग में सुख नहीं है तथा स्थिरता-शान्ति नहीं है। भगवान आत्मा में सुख है और शान्ति, वह समाधान वीतरागता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अन्दर में पूर्ण सुख और समाधान है। शान्ति

अर्थात् समाधान। आहाहा! भगवान आत्मा में सुख भी पूर्ण है और शान्ति अर्थात् वीतरागता, चारित्रता – वीतरागता भी पूर्ण है।

परन्तु **पहले आत्मस्वरूप की प्रतीति होती है,...** ऐसा शब्द लिया है। 'पहले', बाकी जब प्रतीति होती है, तब शान्ति साथ में आती है परन्तु पहले विकल्प तोड़ने जाए, ऐसा नहीं, यह कहते हैं। इसलिए ऐसा लिया है। पहले आत्मस्वभाव भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति का सागर, उसकी प्रतीति हो और राग से भेदज्ञान हो, ऐसी दो बातें ली हैं। प्रतीति होती है, तब भेदज्ञान है ही परन्तु यह विशेष समझाया है। भगवान आत्मा स्वभाव में आनन्द और शान्ति है, वहाँ उसे प्रतीति होती है, इसलिए उसे भेदज्ञान होता है। उसे राग से भेदज्ञान (होता है), वह विकल्प से पृथक् पड़ता है। आहाहा! ऐसी बात है। **पश्चात् विकल्प टूटते हैं...** अर्थात् कि इस ओर की प्रतीति हो, राग से भिन्न पड़े तो विकल्प उत्पन्न नहीं होता, उसे विकल्प टूटते हैं – ऐसा (कहा जाता है)। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों के बीच अन्तर कितना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर समय (नहीं है), साथ ही है। समझाने में क्या आवे ? जहाँ राग से भिन्न पड़े और स्वभाव, चैतन्यस्वभाव की प्रतीति हो, उसी काल में उसे विकल्प उत्पन्न नहीं होता, उसे विकल्प टूटते हैं – ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

पश्चात् विकल्प टूटते हैं और निर्विकल्प स्वानुभूति होती है। पहले विश्वास साधारण कहा। पश्चात् राग से भिन्न पड़कर भेद हुआ, पश्चात् विकल्प उत्पन्न नहीं हुआ, वह टूटा और अनुभूति—विकल्परहित निर्विकल्प अनुभूति होती है। आहाहा! आत्मा का स्वभाव निर्विकल्प जो है, उसका निर्विकल्प पर्याय में अनुभव होता है। ऐसी बात है। रमणीकभाई गये ? गये होंगे। आहाहा! निर्विकल्प स्वानुभूति, स्वानुभूति। स्व... स्व... भगवान आत्मा की वर्तमान पर्याय में स्वसन्मुख झुकने से उसका अनुभव होता है। आहाहा! पर्याय को स्वसन्मुख झुकने से... स्वानुभूति कही न ? स्वसन्मुख झुकने से उसका अनुभव होता है। आहाहा! ऐसे शब्द हैं, गहन शब्द हैं।

मुमुक्षु : पहले और पश्चात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले और पश्चात्, यह शब्द तो ऐसा ही पूछा जाए न! पहले

विश्वास आवे, ऐसा कहना है। यह एक चीज़ महाप्रभु है, ऐसा विश्वास (आवे); इसलिए राग से भिन्न पड़े। भिन्न पड़े, इसलिए वह विकल्प टूट जाता है अर्थात् विकल्प उत्पन्न नहीं होता। इसलिए वह निर्विकल्प स्वानुभूति होती है। आहाहा!

स्व अनुभूति; जो विकल्प में अनुभव था, वह विकल्प राग का अनुभव था। उस राग से (भिन्न) स्वरूपस्वभाव की प्रतीति होने पर भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप है, ऐसा पहले विश्वास आता है। उसमें कहा है न? रहस्यपूर्ण चिट्ठी में (कहा है) ऐसा होता है, ऐसा होता है, विकल्प टूटे, रोमांच हो, पश्चात् आनन्द होता है, ऐसे अपेक्षा से शब्द हैं। उसमें वह है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु शब्द है। ऐसी शैली है, समझाना है न। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है, है न? मोक्षमार्गप्रकाशक है? मोक्षमार्गप्रकाशक नहीं? नहीं होगा। है उसमें? यह मोक्षमार्गप्रकाशक है न इसमें? **वह सम्यग्दृष्टि कदाचित् स्वरूप ध्यान करने का उद्यमी होता है, वहाँ प्रथम स्व-पर का भेदविज्ञान (विवेक) करता है।** 'प्रथम' शब्द है न? **नोकर्म-द्रव्यकर्म-भावकर्मरहित केवल चैतन्य-चमत्कारमात्र अपना स्वरूप जाने, पश्चात् पर का भी विचार छूट जाए, केवल स्वात्मविचार ही रहता है; वहाँ अनेक प्रकार निजस्वरूप में अहंबुद्धि धरता है। चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ, इत्यादिक विचार होने पर सहज ही आनन्द तरंग उठती है, रोमांच (उल्लसित) हो आता है; तत्पश्चात् ऐसा विचार तो छूट जाए, केवल चिन्मात्रस्वरूप भासने लगे;...** ऐसी भाषा है। यह विचारशैली कैसे बतावे? समझ में आया? सविकल्प द्वार द्वारा निर्विकल्प परिणाम होने का विधान, यह शैली है। आहाहा! नहीं तो भेदज्ञान हुआ वहाँ... परन्तु यह समझाने की शैली है। **मैं चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ, इत्यादिक विचार होने पर सहज ही आनन्द तरंग उठती है,...** ऐसा कहा। **रोमांच (उल्लसित) हो आता है; तत्पश्चात् ऐसा विचार तो छूट जाए,...** आहाहा! और अपना स्वरूप तो केवल चिन्मात्र भासित होने लगे। आहाहा! **वहाँ सर्व परिणाम उस रूप में एकाग्र होकर प्रवर्तते हैं;...** आहाहा! ऐसे तो '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ जो त्रिकाल सत्यार्थ प्रभु, उस ओर पर्याय को झुकाने से

अर्थात् उसका आश्रय करने से, ऐसा कहा है। विकल्प टूट जाए और निर्विकल्प अनुभूति हो, उसका बाद में यह विस्तार है।

मुमुक्षु : आप फरमाते हो, उससे विस्तार अलग प्रकार का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसका विस्तार उसी प्रकार का है, अलग प्रकार का नहीं। कहा और बताया न इसमें। इसमें भी बताया न, सब बात ख्याल है। समझाना है तो किस प्रकार समझावे? बाकी तो द्रव्य का आश्रय करने से विकल्प नहीं रहता। विकल्प टूट जाता है। तब टूट जाता है अर्थात् उत्पन्न नहीं होता, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले अभ्यास करे, पश्चात् अनुभव होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभ्यास करे और ख्याल में ले न, कि यह चैतन्य है, यह शुद्ध है – ऐसा अभ्यास करे। उसमें ऐसा आया है न! सविकल्प द्वारा निर्विकल्प (होता है) द्वारा अर्थात् वह वहाँ होता है। बाकी उसके द्वारा अनुभव होता है, ऐसा नहीं है। उसे छोड़े, तब होता है। भाषा तो अन्दर ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : भाषा कुछ और भाव कुछ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा का अन्दर भाव यह है। भाषा व्यभिचारी भाषा, उसमें भाषा से बात करना। आहाहा! भाषा से बात करना, कितनी करे? किस प्रकार करे? आहाहा!

यहाँ ऐसा (कहते हैं) कि वस्तुस्वरूप जो है... वह (प्रश्न) ऐसा पूछा है कि विकल्प कैसे टूटें? तब उसका अर्थ कि भगवान आत्मा स्वरूप में विकल्प है नहीं, परन्तु उसे वह लगा है। लगा है अर्थात् उसने उत्पन्न किया है। यहाँ न जाकर, यहाँ उत्पन्न किये हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसलिए उसे आत्मा के स्वरूप का विश्वास लाकर राग से भिन्न करके, यह तो एक साथ ही है और निर्विकल्प अनुभूति स्व की होती है तो विकल्प नहीं रहते। वे विकल्प टूट जाते हैं, ऐसा। वह निर्विकल्प होता है, तब विकल्प नहीं होते, उसे टूट जाते हैं—ऐसा कहने में आता है। तोड़ने जाए तो कहाँ तोड़ने जाए? आहाहा! यह विकल्प है और इन्हें तोड़ूँ, तो वह दृष्टि वहाँ पर के ऊपर रही। आहाहा! समझाने में क्या समझावे? होवे उस प्रकार वह शैली जो हो, उस प्रकार समझायी जाए। भगवान आत्मा निर्विकल्प अभेद चीज़ है, उसके ऊपर दृष्टि पड़ने से राग से भिन्न पड़ा, स्वभाव के ऊपर

दृष्टि हुई, तब उसे विकल्प उत्पन्न नहीं होता, उसने विकल्प तोड़ा – ऐसा कहने में आता है। यह वस्तुस्थिति है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात। समझावे तो क्या? पहले नवतत्त्व को जाने—ऐसा कहे, लो! और जानने के पश्चात् एक तत्त्व पर दृष्टि करे।...नव में से एक को छाँटे अकेला भिन्न। नव के भेद के ऊपर भी दृष्टि न रहे।

संवर, निर्जरा और मोक्ष आदि। यह आया न? ३८ गाथा में आया है, शुद्ध में। जीव के विशेष, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष—ऐसे जो व्यवहारीभाव, उनसे ज्ञायकभाव भिन्न है। यह उसमें आया है (समयसार गाथा) ३८ में। शुद्ध के अर्थ में (आया है)। वह उत्पन्न हुआ नहीं। यह विकल्प तोड़ा और विकल्प नहीं हुआ, सब जैसा कहे, वैसा कहा जाए उसे। आहाहा! ऐसी शैली वस्तु की अध्यात्मशैली है।

मुमुक्षु : पहले आपने फरमाया कि ख्याल में ले...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ख्याल अर्थात् इस ओर ख्याल ले, तब राग से भिन्न पड़ा है न! तब ख्याल आवे न! आहाहा! 'वस्तु विचारत ध्यावते मन पावै विश्राम' आता है न? 'रस स्वादत सुख ऊपजे अनुभव ताको नाम।' आहाहा! समझाया किस प्रकार? देखो! 'वस्तु विचारत ध्यावते मन पावै विश्राम' ऐसा जहाँ ध्यान हुआ, इसलिए मन विश्राम को प्राप्त हुआ। 'रस स्वादत सुख ऊपजे अनुभव ताको नाम।' यह अनुभूति, स्व-अनुभूति। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें तो पहले... बाद में ज्ञान लिया...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ध्यावते अर्थात् अन्दर लक्ष्य करने पर। आहाहा! उसे ध्यान में ध्येय में लेने से। ध्यान में ध्येय में लेने पर। वर्तमान पर्याय का ध्यान, उसमें ध्येय द्रव्य में लेने पर। आहाहा! दूसरा क्या हो? आहाहा!

मुमुक्षु : ध्यान से पहले विचार लिया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ध्यान हुआ, यह ध्यान हुआ, वह अन्दर स्थिर हुआ। आहाहा! परन्तु समझाने की शैली क्या हो? 'वस्तु विचारत ध्यावते मन पावै विश्राम' वहाँ

विकल्पातीत हो गया। 'रस स्वादत सुख ऊपजे' इस ओर, 'अनुभव ताको नाम।' यह शब्द है यह – स्वानुभूति। दूसरा प्रश्न। बस, ४२२ हुए। आहाहा! यह तो शान्ति और धीरज का काम है। यह कोई बहुत पठन हो जाए और बहुत वांचन आ जाए, इसलिए यह होता है, ऐसा नहीं है। यह चीज़ दूसरी है। आहाहा!

प्रश्न—सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व कहा है, तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के सर्व गुणों का आंशिक शुद्ध परिणमन वेदन में आता है?

उत्तर—निर्विकल्प स्वानुभूति की दशा में आनन्द-गुण की आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होने पर आत्मा के सर्व गुणों का (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणों की पर्यायों का वेदन होता है।

आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्मा के ही हैं, इसलिए एक गुण की पर्याय का वेदन हो, उसके साथ-साथ सर्व गुणों की पर्यायें अवश्य वेदन में आती हैं। भले ही सर्व गुणों के नाम न आते हों, और सर्व गुणों की संज्ञा भाषा में होती भी नहीं, तथापि उनका संवेदन तो होता ही है।

स्वानुभूति के काल में अनन्त गुणसागर आत्मा अपने आनन्दादि गुणों की चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायों में रमण करता हुआ प्रगट होता है। वह निर्विकल्प दशा अद्भुत है, वचनातीत है। वह दशा प्रगट होने पर सारा जीवन पलट जाता है॥४२३॥

प्रश्न—सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व कहा है,... श्रीमद् में आता है न? और रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है। ज्ञानादि एकदेश व्यक्त होते हैं। ज्ञानादि जितने गुण हैं, उतने पर्याय में एक अंश सब व्यक्त / प्रगट होते हैं, उसे सम्यक्त्व कहना। आहाहा! यह पूछा है। यह श्रीमद् का शब्द है और वह रहस्यपूर्ण चिट्ठी का है। **सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व कहा है, तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर...** आत्मा की विकल्परहित निर्विकल्प दृष्टि होने पर, **आत्मा के सर्व गुणों का आंशिक शुद्ध परिणमन वेदन में आता है?** यह प्रश्न है। सर्व

गुणांश, वह सम्यक्त्व? **तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर...** आहाहा! **आत्मा के सर्व गुणों का...** जितने गुण हैं, सब गुणों का, **आंशिक शुद्ध परिणमन...** आंशिक शुद्ध परिणमन **वेदन में आता है?** यह प्रश्न है। सर्व गुणांश कहा न? तो सर्व गुणांश (अर्थात्) जितने गुण हैं, उनका एक अंश व्यक्त पर्याय में होता है और वह वेदन में आता है? या वेदन में अकेला सम्यग्दर्शन और शान्तिमय आनन्द अकेला आता है? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उत्तर—निर्विकल्प स्वानुभूति की दशा में... विकल्परहित शुद्ध चैतन्यस्वरूप की निर्विकल्प स्वानुभूति, स्व-अनुभूति की दशा में **आनन्द-गुण की आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होने पर...** अतीन्द्रिय **आनन्द-गुण की आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होने पर आत्मा के सर्व गुणों का (यथासम्भव)...** अर्थात् जो उसकी शक्ति योग्यता प्रमाण, **आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है...** आहाहा! भगवान आत्मा का निर्विकल्प रागमिश्रित विचार छूटकर विकल्परहित निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर... आहाहा! स्वानुभूति की दशा में आनन्दगुण की, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की **आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होने पर...** यह तो मूल मुद्दे की बातें हैं।

आत्मा के सर्व गुणों... जितने गुण हैं, उनका यथासम्भव, उनके योग्य **आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है...** आहाहा! अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण हैं। जिनका अन्त नहीं, इतने अनन्त गुण हैं, उनका निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर उन सब गुणों का एक अंश व्यक्त परिणमन पर्याय में होने से उसका वेदन होता है। समझ में आया? यह तो अकेला मक्खन है। आहाहा!

पूरा भगवान पूर्ण है न! अनन्त गुण से उस पूर्ण को ध्येय में लेकर जो अनुभव हुआ तो पूर्ण जितने गुण हैं, उतने गुणों का एक अंश उस-उस योग्यता प्रमाण सब गुणों का एक अंश परिणमन होने पर उसका वेदन होता है। ...भाई! ऐसी बात है, बापू! अरे रे! आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसा है। क्यों?—कि जितने गुण अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ऐसे अनन्त के अनन्त गुणा करो तो भी पार न आवे, इतने गुण हैं। परन्तु ऐसे गुणों का एकरूप जो वस्तु है, उसका निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर, जितने गुणों की संख्या है, उतने सब गुणों का यथासम्भव उनके योग्य... आहाहा! प्रत्येक गुण का अंश व्यक्त प्रगट परिणमन होता है, इसलिए उसका वेदन होता है। आहाहा! ऐसी बात है।

रहस्यपूर्ण चिट्ठी में भी आया है न! ज्ञानादि एकदेश गुण। चौथे गुणस्थान में भी ज्ञानादि अनन्त गुणों का एक अंश-देश व्यक्त प्रगट परिणमन में होता है। सर्वज्ञ भगवान को अनन्त गुणों का पूर्णरूप परिणमन होता है। आहाहा! यह साधक और साध्यदशा का अन्तर है। साधक में पूर्ण गुणों का-अनन्त का जितना स्वरूप है, उसका एक अंश व्यक्त परिणमन होने पर वेदन होता है और केवलज्ञान होने पर अनन्त गुणों का पूर्णरूप परिणमन होने पर पूर्ण का वेदन होता है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! क्या हो?

मुमुक्षु : अधूरा और पूरा परन्तु जाति एक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाति तो एक ही है। यहाँ तो साधक है, इसलिए अंश व्यक्त है। पूर्ण है, वहाँ पूर्ण व्यक्त है, तथापि पर्याय में पूर्ण व्यक्त होने पर भी गुण तो पूर्ण के पूर्ण ही हैं। आहाहा! पूर्ण व्यक्त पर्याय हुई, इससे गुण में कुछ अपूर्णता हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो धीर का काम है, बापू! धर्म ऐसी कोई अपूर्व चीज़ है। उसके लिये तो अन्दर बहुत धीरज चाहिए, धीरज चाहिए। आहाहा!

आत्मा के सर्व गुणों का (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणों की पर्यायों का वेदन होता है। देखा? प्रश्न ऐसा था न उसका? परिणमन वेदन में आता है? ऐसा प्रश्न था। प्रश्न ऐसा था न? **आंशिक शुद्ध परिणमन वेदन में आता है?** ऐसा प्रश्न था। इसलिए कहा है कि **सर्व गुणों का (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है...** आहाहा! यथासम्भव क्यों लिया है? - कि सम्यग्दर्शन की पर्याय तो वहाँ पूर्ण होती है। समझ में आया? पश्चात् ज्ञान की अपेक्षा से परम अवगाढ़ भले कहो परन्तु सम्यग्दर्शन की.... जो अन्दर अनन्त गुणों में (एक) श्रद्धागुण है, उस गुण की पर्याय जो होती है, वह तो पूरी पर्याय है, उसमें कम नहीं है। समझ में आया? यथासम्भव शब्द क्यों रखा है?

आत्मा के सर्व गुणों का (यथासम्भव)... अर्थात् सम्यग्दर्शन की पर्याय आंशिक ही हुई है और पश्चात् पूर्ण होगी, ऐसा नहीं है। आहाहा! देवीलालजी! आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण हैं, उनमें अन्दर श्रद्धा भी एक गुण है और यहाँ सम्यग्दर्शन की पर्याय होने पर उस श्रद्धा-गुण का एक अंश व्यक्त है, परन्तु वह कहीं कम है और आगे पूरा होगा, ऐसा

नहीं है। बहुत कठिन है, बापू! आहाहा! सब (गुणों का) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है; इसलिए सम्यग्दर्शन भी अंश ही प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन की पर्याय तो पूरी (प्रगट होती है)। भले क्षयोपशम हो, या क्षायिक हो परन्तु उस पर्याय में अपूर्णता नहीं है। क्षायिक, क्षयोपशम है, उसमें भले क्षायिक की वह (दूसरे गुणों की अधूरी) है परन्तु वह क्षायिक समकित पर्याय हुई, वह पूरी पर्याय है, पूरी पर्याय है। दूसरे गुणों का अंश है, पूरी नहीं, वैसे ही समकित की पर्याय अंश है, पूरी नहीं, ऐसा नहीं है। चेतनजी! ऐसी (बात) है। आहाहा! खिलाड़ी आत्मा आत्मा के साथ खेल करे। आहाहा! यह पर्याय खेल करे। आहाहा! यहाँ तो पर्याय में सम्यग्दर्शन का भी अंश ही प्रगट होता है, पूर्ण नहीं और दूसरे गुणों का अंश प्रगट होता है और पूर्ण नहीं, ऐसा इकट्ठा समान नहीं है। पण्डितजी! समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दर्शन क्षायिक हुआ, वह पर्याय है तो अंश परिणमन परन्तु वह पर्याय पूरी है। और ज्ञान की पर्याय अंश आयी, वह पूरी नहीं। चारित्र का अंश आया, वह पूरा नहीं। आनन्द का अंश आया, वह पूरा नहीं। वीर्य का अंश आया, वह पूरा नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी लोगों को कहाँ निवृत्ति है... बाहर की प्रवृत्ति यह करूँ और यह करूँ और यह करूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : आपकी दुकान अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु भगवान की दुकान ही अलग है, बापू! ओहोहो! समझ में आये ऐसा है, कहते हैं। समझ में नहीं आये, ऐसा नहीं है, प्रभु! आहाहा!

आत्मा के सर्व गुणों का (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन... यदि ऐसा कहो तो सम्यग्दर्शन का भी अंश ही होता है, तो ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन की पर्याय तो वहाँ पूर्ण है। आहाहा! **आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है...** अर्थात् शक्तिरूप गुणरूप जितने गुण हैं, शक्तिरूप जितने गुण हैं, उनका सम्यग्दर्शन होने पर, उनकी (उस) समय की पर्याय में सम्यग्दर्शन की पर्याय तो पूरी है परन्तु दूसरे सब गुणों का अंश है; इसलिए **(यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है...** आहाहा! यहाँ तो अक्षर-अक्षर का तौलने में... यदि ऐसा ही कहो कि सम्यग्दर्शन की पर्याय कम है; जैसे ज्ञान की पर्याय

न्यून व्यक्त है, चारित्र की स्वरूपाचरण की पर्याय अल्प है, आनन्द की पर्याय अल्प है, वीर्य की अल्प है, वैसे सम्यग्दर्शन की पर्याय अल्प है—ऐसा नहीं है। भले ही अंश है परन्तु है वह पूरी। आहाहा!

मुमुक्षु : यथासम्भव अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : यथासम्भव यह इसकी परिभाषा। आहाहा! भाई! यह तो प्रभु का मार्ग अन्दर है। आहाहा! आहाहा! प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि तुझे मेरे सन्मुख देखने से भी राग होगा। अंश जो सब गुणों का प्रगट, वह मेरे सन्मुख देखने से नहीं होगा। आहाहा! तेरे सन्मुख देखने से पूर्णानन्द का नाथ प्रभु! आहाहा! उसके सन्मुख होने से जितने गुण हैं, उतने सब गुणों का एक अंश थोड़ा प्रगट होगा, उसमें सम्यग्दर्शन का अंश कम प्रगट होगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! कान्तिभाई! यह ऐसी बात है।

आत्मा के सब गुणों का यथासम्भव, ऐसा लेना। है तो आंशिक सीधा, परन्तु उस आंशिक में सम्यग्दर्शन की पर्याय अल्प और दूसरी सब अल्प, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन की पर्याय पूरी है, क्षायिक होने पर और दूसरी सब पर्यायें आंशिक हैं। आहाहा! **आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व...** गुणों का परिणमन प्रगट होता है, ऐसा कहा न? तो व्यक्त आया न बाह्य? आहाहा! शक्ति में से व्यक्ति हुई, प्रगट हुई। इसलिए **परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणों की पर्यायों का वेदन होता है।** परिणमन होता है, उस समय ही उसका वेदन है, ऐसा। समझाना तो किस प्रकार समझाना? समझ में आया? ऐसी बातें हैं। वीतरागमार्ग कोई अलौकिक है, बापू! आहाहा! उसके एक-एक अक्षर और एक-एक शब्दों में बहुत गम्भीरता है। आहाहा!

जितने गुण भगवान आत्मा में... आहाहा! परन्तु कितने? अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्त गुणा करे और उसका (जो योगफल) आवे, उसके साथ उतना गुणा करे, उसका (योगफल) आवे, ऐसे उसे अनन्त गुणा करे, उसका योगफल आवे, उसे अनन्त गुणा करे, ऐसे अनन्त बार अनन्त गुणा करे... आहाहा! तो भी उन गुणों की संख्या की हद नहीं आती। आहाहा! इतने सब गुणों का पिण्ड प्रभु द्रव्य है, इसलिए द्रव्य की दृष्टि / सम्यग्दर्शन होने पर... आहाहा! उसके सब अंश परिणमन प्रगट हों, उसमें सम्यग्दर्शन का अंश थोड़ा, इतना नहीं लेना। समझ में आया? ऐसा है।

वह शुद्धपरिणमन प्रगट होता है, इसलिए उन सब गुणों की पर्यायों का वेदन होता है, गुणों की पर्यायों का वेदन होता है। गुणों की पर्याय कही। भाषा तो ऐसी ही आवे या नहीं ? पर्याय, पर्याय की है। पर्याय गुणों की पर्याय नहीं परन्तु गुणों का परिणमन शक्ति में से व्यक्तरूप हुआ है। आहाहा! वह द्रव्य का परिणमन हुआ है, वही गुणों का परिणमन हुआ। यह तो चिद्विलास में आता है। यह गुणों का, इसका अर्थ हुआ कि जितने गुण हैं, उतना द्रव्य है, उनका परिणमन है, वह द्रव्य का परिणमन है। इसलिए यहाँ तो गुणों का परिणमन पूरे गुणों का सबका परिणमन लेना है, इससे द्रव्य को ऐसे न लेकर गुणों का जो गुण जितने हैं उतनों का व्यक्त परिणमन होने पर उसका वेदन उस प्रकार से होता है। आहाहा! ....वह द्रव्य का अर्थात् गुणों का और वह गुण का नहीं कहा न! गुणों का और अनन्त गुणों का। आहाहा! कान्तिभाई! यह ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : ....स्पष्ट लिखा है, द्रव्य का परिणमन होता है, वह गुणों का परिणमन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है, है। वह द्रव्य का ही परिणमन है। गुणों का कहा न ? गुणों का अर्थात् अनन्त गुणों का परिणमन अर्थात् द्रव्य का परिणमन। यहाँ तो गुण की पर्याय व्यक्त है, वह परिणमनरूप है और वेदनरूप है, इतना सिद्ध करना है। आहाहा! जितने गुण हैं... द्रव्य तो एकरूप है। अब यहाँ तो अनन्त गुणों का, उनकी व्यक्त पर्याय होती है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया ? वह तो द्रव्य परिणमित होता है, वह गुण परिणमता है। कहीं गुण अलग परिणमते हैं और द्रव्य (अलग परिणमता है) ऐसा नहीं है परन्तु यहाँ तो गुण जितने हैं, उतनों का व्यक्त परिणमन होता है, ऐसा सिद्ध करना है। यह ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! अरे! ऐसी बातें कहाँ हैं ? बापू! आहाहा! यह तो भगवान के घर की बात है। आहाहा! यह सब गुणों की पर्यायों का अर्थात् जितने गुण हैं, उन सबका व्यक्त परिणमन है, उसका वेदन होता है। लो, इतने शब्दों में इतना भरा है।

आत्मा अखण्ड है,... अब आया देखो! वे सब गुण... **आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्मा के ही हैं,...** यह तो सर्व गुणांश, वह समकित—प्रश्न था न ? प्रश्न यह था न ? द्रव्य का अंश... आहाहा! यह श्रीमद् का वाक्य है, यथार्थ है। सर्व गुणांश, वह समकित कहा है न ? इसलिए **निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के सर्व गुणों का आंशिक**

शुद्ध परिणमन वेदन में आता है ? ऐसा प्रश्न है न ? इसलिए उसका यह उत्तर दिया है। आहाहा!

जितने गुण हैं, वह सब अखण्ड द्रव्य है। अब वापस सिद्ध करते हैं। आहाहा! आत्मा अखण्ड है। ऐसे तो अलिंगग्रहण में नहीं आता ? गुणविशेष को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! अलिंगग्रहण में आता है। अनन्त गुण हैं, उन्हें द्रव्य, भेद को स्पर्श नहीं करता। ऐई! समझ में आया ? है यहाँ प्रवचनसार ? नहीं ? है ? इसे ? १७२ (गाथा) देखो!

लिंग अर्थात् गुण... अलिंग कहना है न ? लिंग अर्थात् गुण, ऐसा जो ग्रहण अर्थात् कि अर्थावबोध। अर्थावबोध तो ज्ञान की प्रधानता से कथन है, बाकी सब गुण। अर्थावबोध पदार्थ ज्ञान अर्थात् पदार्थ के गुण, वह जिसे नहीं है। वह गुणभेद जिसे नहीं है, वह अलिंगग्रहण है। **इस प्रकार आत्मा गुण विशेष से नहीं आलिंगित ऐसा शुद्ध द्रव्य है...** शुद्ध द्रव्य सिद्ध करना है न! द्रव्य है, वह गुण के भेद को; सामान्य है, वह विशेष को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! द्रव्य है। गुण-गुणी का भेद पड़ा न इतना ? भले उनके प्रदेश पृथक् नहीं हैं, परन्तु संज्ञा, लक्षण भेद है न! प्रवचनसार में आता है न ? परद्रव्य के पृथक् प्रदेश हैं, गुण और द्रव्य के पृथक् प्रदेश नहीं परन्तु द्रव्य और गुण में संज्ञा, संख्या, लक्षण से भेद है। ऐई! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! सूक्ष्म पड़े परन्तु समझ में आये ऐसा है, भाई! यहाँ तो कहते हैं लिंग अर्थात् गुण। अलिंग अर्थात् गुण को ग्रहण नहीं करता अर्थात् स्पर्श नहीं करता। आहाहा! अर्थावबोध अर्थात् पदार्थ के गुण, वे जिसे नहीं हैं। आहाहा! अर्थावबोध तो ज्ञानगुण से बात की है।

जिसे गुणभेद नहीं वह अलिंगग्रहण है; इस प्रकार आत्मा (गुण) पर्याय विशेष से नहीं आलिंगित ऐसा शुद्ध द्रव्य है.... आहाहा! यहाँ तो इसका प्रश्न सर्व गुणांश वह समकित (ऐसा प्रश्न) था, इसलिए फिर उसका जवाब (इस प्रकार से दिया है) और इसीलिए उस रहस्यपूर्ण चिट्ठी में ऐसा कहा, ज्ञानादि एकदेश गुण व्यक्त हैं, ऐसा कहा। द्रव्य परिणमित होता है, ऐसा वहाँ प्रश्न कहाँ था ? यहाँ तो गुण का प्रश्न है। ऐसा लिया न यहाँ ? ज्ञानादि एकदेश व्यक्त हैं परन्तु उसमें एकदेश व्यक्त हैं, उसमें भी अन्तर है। समकित का एक अंश व्यक्त है, और दूसरे का अंश कम व्यक्त है, वे दोनों समान हैं – ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बात कहाँ! यह तो अन्तर के घर की बातें हैं। आहाहा!

आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्मा के ही हैं, इसलिए एक गुण की पर्याय का वेदन हो... भाषा देखी! अब अनन्त गुण की पर्याय का वेदन हो, उसमें एक साथ अनन्त पर्याय का वेदन है, यह सिद्ध करना है। एक ही गुण की पर्याय का वेदन है और दूसरी का वेदन नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वैसे तो श्रद्धा की पर्याय द्रव्य के ऊपर झुकाता है, तब एक ही श्रद्धा की पर्याय उस ओर झुकती है, ऐसा नहीं है; सभी पर्यायें उसमें झुकती हैं। आहाहा! क्या कहा यह? '**भूदत्थेणाभिगदा**'। उसके आश्रित सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन की पर्याय अर्थात् सब गुण को नहीं स्पर्श करता, ऐसा नहीं। सब गुण एकरूप हैं। आहाहा! उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है परन्तु वह सम्यग्दर्शन की एक समय की पर्याय है, इतने सब पर्याय अंश इतने कम-ज्यादा प्रगट हुए हैं, यह तो पूरी पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? एक गुण की पर्याय का वेदन होता है। आहाहा! यहाँ तो यह कहना था कि जैसे श्रद्धा, द्रव्य के आश्रय से होती है—सम्यग्दर्शन। तो एक ही श्रद्धा की पर्याय ने द्रव्य का आश्रय लिया है, ऐसा नहीं है। सभी पर्यायों ने (आश्रय लिया है) परन्तु श्रद्धा की प्रधानता से कथन किया है। समझ में आया? अब ऐसा। शब्द-शब्द में अन्तर, बात-बात में अन्तर, ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : कौन सी बात मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है, ऐसा मानना। जिस अपेक्षा से कहा, उस अपेक्षा से उसे मानना। द्रव्य की प्रधान दृष्टि से बात है न इसमें तो? आहाहा! समयसार... यह तो प्रवचनसार है, ज्ञानप्रधान है, तथापि उसे कहते हैं कि गुणविशेष को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! वहाँ तो अभेद द्रव्य को सिद्ध करना है और यहाँ तो जितने गुण हैं, उनका एक अंश व्यक्त प्रगट परिणमन होता है, वह प्रगट करना है। समझ में आया? इसलिए वे पर्यायें प्रगट होती हैं, वे कोई द्रव्य (नहीं है), समकित का विषय नहीं है। आहाहा! समकित का एक अंश प्रगट हुआ, परन्तु उसका विषय पूर्ण द्रव्य है और उसके साथ सभी पर्यायें उस ओर झुकी हुई हैं, और इसलिए सब गुणों की पर्यायें अंशरूप समकित दर्शन की पर्याय के अतिरिक्त सब गुणों की पर्यायें अल्प अंशरूप परिणमित हुई है, इतना उसे वेदन है। आहाहा! अब ऐसी बातें हैं।

एक गुण की पर्याय का वेदन हो, उसके साथ-साथ सर्व गुणों की पर्यायें

अवश्य वेदन में आती हैं। आहाहा! हाँ, भले सब। हाँ, अर्थात् **भले ही सर्व गुणों के नाम न आते हों,...** आहाहा! समझ में आया? सामान्य गुण अनन्त और विशेष गुण अनन्त, एक-एक द्रव्य में। आत्मा में सामान्य अनन्त और विशेष अनन्त, वे **भले ही सर्व गुणों के नाम न आते हों, और सर्व गुणों की संज्ञा भाषा में होती भी नहीं,...** उनके नाम नहीं होते, संज्ञा लक्ष्य में नहीं होती। सब गुणों की संज्ञा लक्ष्य में कहाँ से होगी?

तथापि उनका संवेदन तो होता ही है। आहाहा! जितने अनन्त-अनन्त गुण हैं, उन सबके वेदन का नाम इसे न आवे कि यह गुण है, यह उसकी संज्ञा का नाम भी न (आवे कि) यह उसकी संज्ञा है, तथापि भाषा में होवे भी नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म आया, बापू! **तथापि उनका संवेदन तो होता ही है।** आहाहा! भले उन अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायों के नाम न आवें, संज्ञा (न आवे कि) वे क्या हैं, उनका ख्याल भी न हो, तथापि वेदन में तो सब पर्यायें हैं। आहाहा! फिर थोड़ा है, परन्तु विशेष कहा जाएगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल -४, मंगलवार, दिनाङ्क ०२-०१-१९७९
वचनामृत- ४२३ से ४२४ प्रवचन-१७७

वचनामृत ४२३। फिर से लेते हैं हिन्दी। आज हिन्दी लेना है न? लिया गया था, अन्तिम थोड़ा बाकी था, परन्तु फिर से (लेते हैं)।

प्रश्न—सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व कहा है,... क्या कहते हैं? यह आत्मा जो है, आत्मा, उसमें अनन्त गुण है, तो पूरा द्रव्य जब ज्ञान में ज्ञात होता है, तब उसमें प्रतीति होती है। प्रतीति होती है, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। उस सम्यग्दर्शन के काल में **सर्व गुणांश...** जितने गुण हैं, वे सब व्यक्त अंश प्रगट होते हैं। यह श्रीमद् का शब्द है। आहाहा! **सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व...** जितने आत्मा में गुण हैं अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त, वे सब वर्तमान ज्ञान की पर्याय उन्हें ज्ञेय करके जानती है, तो उसमें प्रतीति आती है तो जितने गुण हैं, उन सबका एक अंश व्यक्त / प्रगट अनुभव में आता है। आहाहा! ऐसी बात है।

तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर... आहाहा! आत्मा अखण्ड पूर्ण अभेद स्वभाव है। उसकी अन्तर में प्रतीति, सम्यग्दर्शन में जो प्रतीति होती है, वह निर्विकल्प प्रतीति है। उसे राग के साथ सम्बन्ध नहीं है। राग से भिन्न पूर्णानन्द प्रभु को ज्ञान में जानने पर भी, प्रतीति अन्दर दर्शनशुद्धि होती है। वह **सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व कहा है, तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के सर्व गुणों का आंशिक शुद्ध परिणमन वेदन में आता है?** यह प्रश्न है। कल आ गया है।

उत्तर—निर्विकल्प स्वानुभूति की दशा में... सूक्ष्म बात है। अनन्त काल से की नहीं न! आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुणरूपी सच्चिदानन्द प्रभु के सन्मुख होकर, पर से विमुख होकर, निमित्त से, राग से, पर्याय से भी विमुख होकर पूर्णानन्द का नाथ प्रभु सम्यग्दर्शन में प्रतीति में आता है, तब निर्विकल्प स्वानुभूति होती है। आहाहा!

राग के सम्बन्धरहित, जैसा स्वभाव शुद्ध चैतन्य निर्विकल्प वस्तु है, वैसी निर्विकल्प प्रतीति होती है। अरे! ऐसी बात है।

उस **दशा में आनन्दगुण की आश्चर्यकारी...** आहाहा! सम्यग्दर्शन में निर्विकल्प प्रतीति के काल में... आनन्दगुण की मुख्यता ली है। आनन्द का वेदन। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसमें से पर्याय में अतीन्द्रिय **आनन्दगुण की आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होने पर...** आहाहा! जिसके स्वाद के समक्ष इन्द्र का इन्द्रासन भी सड़े हुए तृण-समान दिखते हैं... आहाहा! चक्रवर्ती का राज्य, छियानवें हजार स्त्रियाँ आदि नअुकूल, वह सब सड़ा हुआ कचरा है, ऐसा अपने आनन्द की दशा में दिखता है।

सम्यग्दर्शन के काल में... आहाहा! **आनन्द-गुण की आश्चर्यकारी पर्याय...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति की पर्याय **प्रगट होने पर आत्मा के सर्व गुणों का...** जितने अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण हैं... आहाहा! **सर्व गुणों का (यथासम्भव)...** (यथासम्भव)... कल थोड़ा कहा था। सम्यग्दर्शन की पर्याय अंश है, परन्तु पूर्ण है और उसके साथ ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुतादि की शक्ति है, उसका एक अंश है; पूर्ण नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय पूर्ण है। तथा आत्मा में अस्तित्वगुण है, उसकी पर्याय भी पूर्ण नहीं—ऐसा नहीं है; पूर्ण ही है। आहाहा! अस्तित्वगुण है। कल रात्रि को कहा था। इत्यादि कहकर कितने तो ख्याल में आते नहीं। अनन्त-अनन्त गुण हैं, उनमें कितने ही गुण तो पर्याय में परिपूर्णरूप से पर्याय प्रगटे और बाकी अनन्त-अनन्त गुणों के अंशरूप से। पूर्ण नहीं, परन्तु अंशरूप से परिणमन होता है। आहाहा!

ऐसे परिणमन में **(यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है...** आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त गुण की अस्तित्व, सत्तावन्त ऐसे पूर्ण अस्तित्व का ज्ञान में भान होकर निर्विकल्प प्रतीति होती है, तो **सर्व गुणों का (यथासम्भव)...** एक अंश शक्तियाँ व्यक्त में पर्याय में पूर्ण भी है, कितनी ही पर्याय में अपूर्ण अंश है, इसलिए यथासम्भव शब्द लिया है। कितनी ही तो अपने को खबर भी न पड़े। अनन्त-अनन्त गुण में दर्शन आदि, सत्ता आदि की पूर्ण पर्याय है और अनन्त दूसरे गुण हैं ज्ञान, शान्ति, आनन्द, उनका अंश प्रगट व्यक्त है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणों की पर्यायों का वेदन होता है। परिणमन होता है तो वेदन होता है। आहाहा! जितने अन्दर अनन्त-अनन्त गुण हैं, अनन्त की संख्या का कोई पार नहीं इतने गुण। आहाहा! क्षेत्र भले शरीरप्रमाण है और प्रदेश असंख्य है परन्तु गुण अनन्त हैं। अनन्त गुण को रहने में अनन्त प्रदेश की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण का अस्तित्व / सत्ता होने से अनुभव के काल में उनमें से कितनी ही पर्यायें अंशरूप व्यक्त होती है, कितनी ही पर्यायें पूर्ण होती है। आहाहा! ऐसा है।

सर्वज्ञ शक्ति है। सर्वज्ञ गुण है न? सर्वज्ञस्वभाव-ज्ञ स्वभाव है तो वह सर्वज्ञस्वभाव है तो उसका अंश प्रगट होता है। सर्व अंश सर्वज्ञपना उसकी पर्याय में प्रगट नहीं होता। आहाहा! इसी तरह सर्वदर्शी गुण है, उसकी प्रतीति में एक अंश बाहर आता है। पूर्ण तो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी केवल (ज्ञान) होवे तब होता है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसकी पर्याय की व्यक्तता का परिणमन, उसका भी वेदन। कहीं ध्रुव का वेदन नहीं है। आहाहा! ऐसा कहा जाता है। अज्ञानी को मात्र रागादि का पर्याय का वेदन है, ध्रुव का नहीं परन्तु ज्ञानी को ध्रुव का (वेदन) है अर्थात्? वेदन तो पर्याय का है परन्तु ध्रुव की ओर के झुकाव से जो पर्याय हुई, (उसका वेदन है)। समझ में आया? आहाहा!

महाप्रभु, चैतन्यप्रभु, महाप्रभु के प्रति झुकाव हुआ, अर्थात् ध्रुव का जो सामर्थ्य है, उसकी प्रतीति और ज्ञान में आया, वह वस्तु भले नहीं आयी, परन्तु उसकी प्रतीति और ज्ञान में पूर्ण आया। आहाहा! समझ में आया? इससे जो पर्यायें प्रगट हुईं, उनका उसे परिणमन में वेदन है। सर्व गुणों का सर्वज्ञ गुण है तो उस पर्याय में सर्वज्ञपने की पर्याय बाहर आयी, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसे कितने ही अनन्त हैं। परमात्मा... आहाहा! वापस अगुरुलघु गुण है। आहाहा! उसकी भी एक समय में पर्याय होती है, उस पर्याय में भी षड्गुण हानि-वृद्धि आदि भगवान ने देखी है। आहाहा! ऐसे अंश का वेदन; परिणमन हुआ, उसका वेदन होता है।

आत्मा अखण्ड है,... आहाहा! अब ऐसा मार्ग। भगवान आत्मा अखण्ड है, अस्ति है, वस्तु है, एकरूप है, अखण्ड है। आहाहा! **सर्व गुण आत्मा के ही हैं,...** जो गुण कहे, वे सब गुण आत्मा के हैं। आत्मा के हैं। **आत्मा के ही हैं,...** आत्मा के ही हैं। आहाहा!

इसलिए... इस कारण से एक गुण की पर्याय का वेदन हो, उसके साथ-साथ सर्व गुणों की पर्यायें अवश्य वेदन में आती हैं। कारण कि **आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्मा के ही हैं,...** आहाहा! ऐसी बात। इसमें धर्म किस प्रकार का? भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज़ है 'वत्थु सहाओ धम्मो' वस्तु जो भगवान आत्मा वस्तु है, पूर्ण है, अखण्ड है, अभेद है, उसमें जो धर्मस्वभाव है, उसका अनुभव होवे तो पर्याय में धर्म होता है। आहाहा! उस पर्याय में परिणमन हो, उसका वेदन होता है। आहाहा! क्योंकि **आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्मा के ही हैं, इसलिए एक गुण की पर्याय का वेदन हो...** एक गुण की वर्तमान पर्याय का वेदन हो, **साथ-साथ सर्व गुणों की पर्यायें अवश्य वेदन में आती हैं।** क्योंकि आत्मा अखण्ड गुण का पिण्ड है, तो एक गुण की पर्याय का वेदन तो सर्व गुण की पर्याय का वेदन साथ में होता है। ऐसी व्याख्या लो!

भले ही सर्व गुणों के नाम न आते हों,... आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण का धाम भगवान, उसके परिणमन में अनन्त गुण की पर्याय। उसमें अनन्त गुण की पर्याय के नाम भी न आते हों। नाम न आवें, इसलिए परिणमन नहीं और वेदन नहीं—ऐसा नहीं है। आहाहा! परिणमन नहीं है, नाम नहीं आता, इसलिए परिणमन नहीं है - ऐसा नहीं है। आहाहा! अलौकिक चीज़ है। आत्मा क्या चीज़ है!

एक समय की पर्याय के समीप में पूरा तत्त्व विद्यमान है। आहाहा! वर्तमान प्रगट ज्ञान की दशा, जिसमें सब विचार आदि चलते हैं, उस पर्याय के समीप में अन्तर में पूरा तत्त्व भगवान पूर्ण परमात्मा विद्यमान है। परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप ऐसा आत्मा। आहाहा! **भले ही सर्व गुणों के नाम न आते हों,...** कहते हैं। आहा! **और सर्व गुणों की संज्ञा भाषा में होती भी नहीं,...** सब गुणों की संज्ञा भाषा में नहीं होती। भगवान की भाषा में भी इतनी नहीं आती, ऐसा कहते हैं। **सर्व गुणों की संज्ञा भाषा में होती भी नहीं,...** आहाहा! भगवान की वाणी में समुच्चय बात आती है। एक-एक गुण की भाषा, ऐसी अनन्त भाषा नहीं आती। कहो, हिम्मतभाई! ऐसा सब सुना नहीं कभी। बाड़ा में दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, (ऐसी बातें चलती हैं)। आहाहा!

भगवान पूर्णानन्द का नाथ, प्रभु वस्तु है तो अनन्त स्वभाव—गुण उसमें रहे हुए हैं, बसे हैं। वस्तु है, वह स्वभाव से खाली नहीं होती। यह पहले आ गया है। उत्पाद-व्यय

परिणमन है, तथापि ध्रुव भिन्न है। वह ध्रुव खाली नहीं है। ध्रुव में अनन्त-अनन्त गुण भरे हैं। आहाहा! उन अनन्त गुण के परिणमन में अनन्त गुण की पर्यायों का वेदन है, उनका नाम भी कितनों का नहीं आता **और सर्व गुणों की संज्ञा भाषा में होती भी नहीं,...** आहाहा! सर्वज्ञ की वाणी में भी अनन्त-अनन्त गुण की-प्रत्येक गुण की भाषा नहीं आती। आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वज्ञ को नाम नहीं आते होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान में सब है, परन्तु भाषा में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त (गुण हैं)। अब एक-एक को कहते जाएँ तो तीन काल से अनन्तगुणे गुण हैं। एक-एक समय है, ऐसे-ऐसे भूत-भविष्य आदि तीन काल हैं। अनादि-अनन्त उस काल का जो समय है, उससे अनन्तगुने तो गुण हैं। अब एक समय में अनन्त-अनन्त एक-एक और एक-एक समय में अनन्त-अनन्त कहे तो तीन काल से भी अनन्तगुने गुण हैं। आहाहा! ऐसी बात है। ओहोहो! उन अनन्त गुण का भण्डार समुद्र, सागर पड़ा है, प्रभु! इतने गुण की पर्याय प्रगट वेदन में होती है। नाम भले न आते हों। आहाहा! शक्कर का स्वाद तिर्यंच को भी आता है परन्तु यह शक्कर का स्वाद है, ऐसा उसे नाम भी याद नहीं होता। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का समुद्र, भण्डार है। उसकी अनन्त-अनन्त गुण की पर्याय, उस प्रत्येक गुण की पर्याय का नाम नहीं आता तथा उसकी भाषा भी नहीं हो सकती। अनन्त की भाषा कितनी करे? आहाहा! **तथापि उनका संवेदन तो होता ही है।** आहाहा! क्या कहते हैं? वस्तु है न? आत्मा अस्ति है न? वस्तु है न? और है तो अनादि-अनन्त है न? है तो अनादि-अनन्त है, तो उसके गुण भी अनादि-अनन्त है न? वस्तुरूप से एक है परन्तु गुणरूप से अनन्त है। आहाहा! यह अनन्त गुण की, सम्यग्दर्शन-पर्याय प्रगट होने पर अनन्त गुण की एक अंश व्यक्त पर्याय सबकी प्रगट होती है। नाम नहीं आते और सबकी भाषा भी नहीं हो सकती। आहाहा! **तथापि उनका संवेदन तो होता ही है।** आहाहा! सम्यग्दर्शन की वर्तमान त्रिकाल गुण-द्रव्य की प्रतीति की पर्याय में सब गुण की पर्याय व्यक्त है, उसका वेदन साथ में पूर्ण है, सबका है। नाम भले भाषा में न कर सके, नाम भी न आता हो... आहाहा! परन्तु वेदन में अनन्त गुण की अनन्त पर्याय का सबका एक समय में वेदन है। आहाहा! यह क्या वस्तु

है? यहाँ तक तो आया था। कल यहाँ तक आया था। यह तो हिन्दी आया न, इसलिए थोड़ा...

स्वानुभूति के काल में... स्व अनुभूति। भगवान आत्मा—भग अर्थात् अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, शान्ति आदि। भग अर्थात् उसकी लक्ष्मी, वान, उसका स्वरूप। अनन्त लक्ष्मी जिसका स्वरूप है, उसका नाम भगवान आत्मा... आहाहा! वह **स्वानुभूति के काल में...** वह पूर्णानन्द और पूर्ण गुण का पिण्ड, प्रभु! उसकी **स्वानुभूति के काल में...** स्वभाव की अनुभूति, त्रिकाल गुण को अनुसरकर होनेवाली प्रगट पर्याय, उस **स्वानुभूति के काल में अनन्त गुणसागर आत्मा...** आहाहा! अकेला मक्खन है।

स्वानुभूति के काल में... भगवान पूर्णानन्द की अनुभूति वर्तमान के काल में। **अनन्त गुणसागर आत्मा अपने आनन्दादि गुणों की...** आहाहा! **अपने आनन्दादि गुणों की...** अतीन्द्रिय आनन्द कोई अलौकिक बात है, प्रभु! आहाहा! इन्द्र के इन्द्रासन में जिसकी गन्ध नहीं, ऐसा आनन्द। आहाहा! उन **आनन्दादि गुणों की चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायों में रमण करता हुआ...** आहाहा! पूर्णानन्द प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी स्व-अनुभूति—स्व के अनुभवकाल में... आहाहा! **अपने आनन्दादि गुणों की चमत्कारिक...** आहाहा! कभी जाना नहीं, कभी अनुभव नहीं किया, ऐसी चमत्कारिक **स्वाभाविक पर्यायों में...** अनुभूति काल में रमण करता हुआ... आहाहा! ध्रुव में तो रमना है नहीं। ध्रुव सन्मुख की अनुभूति के काल में... आहाहा! ऐसा कैसा! भाई! तेरे भगवान की बात इतनी बड़ी है। आहाहा! भाषा से पार नहीं पड़ती। वह अनुभवगम्य चीज़ है। आहाहा!

वह **स्वाभाविक पर्यायों में रमण करता हुआ प्रगट होता है।** कौन? अनन्त गुण सागर आत्मा। आहाहा! अनुभूति के काल में **अनन्त गुणसागर आत्मा...** पर्याय में प्रगट होता है। आहाहा! जो शक्तिरूप और स्वभावरूप है। जो सत् वस्तु सत् है, उसका जो सत्त्व है। सत् का सत्त्व, गुण का सागर कहा न? गुण है, वह तो उसका सत्त्व है और उसका सागर भगवान, वह सत् है। सत् का अनन्त गुण सत्त्व, अनन्त गुणपना... आहाहा! उसकी पर्यायों में रमण करता हुआ... आहाहा! भगवान पर्याय में **प्रगट होता है।** आहाहा! शक्ति और सत्त्वरूप जो है, वह उसकी-स्व की अनुभूति के काल में अनन्त गुण की पर्याय में आत्मा प्रगट होता है। आहाहा!

वह निर्विकल्प दशा अद्‌भुत है,... आहाहा! भगवान आत्मा की अनुभूति, उसके अनन्त गुण को अनुसरकर वर्तमान में दशा होना, वह अनुभूति कोई अद्‌भुत है। आहाहा! **निर्विकल्पदशा अद्‌भुत है,** आहाहा! **वचनातीत है।** वचन में नहीं आती, ऐसी वचन से अतीत है। ऐसा मार्ग है, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : कथंचित् नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। कथंचित् नहीं। आहाहा! सब पूर्ण होता है। नाम कथंचित् हो, न हो परन्तु सर्व गुण की पर्याय के वेदन में आत्मा प्रगट होता है। सब गुण की पर्याय में आत्मा प्रगट होता है। आहाहा! द्रव्य आता है, ऐसा नहीं परन्तु द्रव्य के अनन्त गुण हैं, उनकी अनन्त गुण की पर्याय प्रगट होती है, वहाँ आत्मा पर्याय में प्रगट हुआ। आहाहा! अनादि काल से राग और द्वेष, शुभ और अशुभ विकल्प... जो सवेरे आया था न? दुःखरूप जो प्रगट है, उसका वेदन है, वह दुःखरूप है। उसका अभाव करके पर्याय त्रिकाली गुण के भाव का पर्याय में वेदन करके... आहाहा! जो अस्तिरूप अनन्त गुणभाव है, उसकी पर्याय में अनन्त गुण की पर्याय में आत्मा प्रगट होता है। आहाहा!

यह **दशा अद्‌भुत है, वचनातीत है।** आहाहा! **वह दशा प्रगट होने पर सारा जीवन पलट जाता है।** आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड भगवान... आहाहा! उसकी अनुभूति होने पर पूरे जीवन की दशा पलट जाती है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक नया अवतार हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! जो राग और कषाय के वेदन का जीवन था, उससे रहित जहाँ भगवान आत्मा का वेदन आया, वह अद्‌भुत है, वचनातीत है। आहाहा! ऐसा स्वरूप भगवान आत्मा का, आत्मा का स्वरूप ऐसा है। ऐसा ही पर्याय में वेदन में आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वह दशा प्रगट होने पर सारा जीवन पलट जाता है। आहाहा! पर की दिशा में अनादि की जो दशा है, पर की दिशा की दशा अनादि विकार की है, उस स्व की दशा में स्वदिशा की ओर ढलने पर... आहाहा! स्वदिशा की ओर जाने से जीवन की दशा बदल जाती है। समझ में आया? भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उसकी वर्तमान

पर्याय में पर दिशा की ओर का लक्ष्य है, तो उस पर की दिशा की ओर की दशा दुःखरूप है। वह दशा स्वदिशा की ओर ढलती है। आहाहा! अनन्त गुण का सागर प्रभु है, उस ओर दशा-दिशा झुकती है तो जीवन पलट जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अद्भुता अद्भुत आत्मा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्भुता-अदभुत आता है न? कलश में, एक कलश में अद्भुत आता है, दूसरे कलश में अद्भुता-अद्भुत, बापू! चैतन्य तत्त्व अर्थात् क्या? भाई! यह (शरीर) तो जड़, मिट्टी, धूल है। आहाहा! कर्म जड़ है, धूल है। पुण्य-पाप के भाव, वे भी अचेतन, दुःख और जड़ है। आहाहा! भगवान उनसे भिन्न, चैतन्यरस से भरपूर ज्ञायकभाव है। आहाहा!

उस ज्ञायकभाव में अनन्त गुणभाव पड़े हैं। उस ओर की दिशा होने से दशा बदल जाती है। आहाहा! जीवन में आनन्द का और शान्ति का जीवन हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा होता है, कहते हैं। आहाहा! अरे! यह ४२३ (बोल) हुआ। अलौकिक बात थी। पूरा पेराग्राफ ही है। आहाहा! वह प्रोफेसर पुस्तक ले गया था न! ब्राह्मण है। भावनगर (रहता है)। वह पढ़कर कहता है कि यह तो पेराग्राफ-पेराग्राफ में निधान भरे हुए हैं। आहाहा! सहज आया है न! आहाहा! ऐसी चीज़ है। एक पेराग्राफ में पार है। बारह अंग का सार... आहाहा! बारह अंग में भी अनुभूति की क्रिया कही गयी है न? कलश में आता है। बारह अंग कोई अपूर्व नहीं है। आहाहा! परन्तु बारह अंग में अनुभूति कही है। आहाहा! अनन्त गुणसागर भगवान आत्मा की अनुभूति बारह अंग में कही है। वह कोई चमत्कारिक वस्तु है, वचनातीत है, अद्भुत दशा है, जीवन बदल जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस आनन्द का भोक्ता कहना। थोड़ा राग है, उतना दुःख भी है। समझ में आया? दोनों हैं। जितना स्वभाव-सन्मुख होकर शक्ति की व्यक्तता प्रगट हुई, उतना आनन्द है, परन्तु जितना पूर्ण वीतराग नहीं तो राग भी आता है, उतना दुःख भी है। चौथे, पाँचवें, छठे गुणस्थान में। आहाहा! वह आता है न? ज्ञानधारा और कर्मधारा। श्लोक

में आता है। आहाहा! राग से भिन्न भगवान आत्मा पूर्णानन्द के नाथ की दशा जहाँ भेदज्ञान में हुई, उस धारा में आनन्दधारा, ज्ञानधारा, शान्तिधारा, स्वच्छता की धारा (प्रगट हुई है)। साथ में अभी कमजोरी है तो राग आता है। आहाहा! उतना दु:ख वेदन भी है। ज्ञानी हुआ इसलिए जरा भी दु:ख का वेदन नहीं, ऐसा नहीं। सर्वज्ञ को दु:ख का वेदन जरा भी नहीं है; मिथ्यादृष्टि को आनन्द का वेदन जरा भी नहीं है। आहाहा! साधकदशा में आनन्द और दु:ख का वेदन दोनों साथ में हैं। आहाहा! ऐसा कठिन पड़ता है। लोगों को अभ्यास नहीं है। प्रगट करते हैं तो आठ वर्ष की बालिका भी प्रगट करती है। आत्मा कहाँ बालिका है और आत्मा कहाँ स्त्री है? आहाहा! आत्मा कहाँ पुरुष है, स्त्री है, नपुंसक है, तिर्यंच है और मनुष्य, देव, नारकी है? आहाहा! वह तो भगवान पूर्णानन्द पूर्ण गुण का पिण्ड, अनन्त गुण का सागर भगवान... आहाहा! सागर के बिन्दु का पार नहीं होता तथापि वह भी अभी असंख्य है। सागर के बिन्दु भी असंख्य हैं। यह तो अनन्त है, प्रभु! यह तो बातें अनन्त गुण सागर की है।

स्वयंभूरमण समुद्र लो, तो भी बूँद-बूँद असंख्य होती है, अनन्त नहीं होती। भले परमाणु अनन्त होते हैं, उसमें निगोद के जीव इकट्ठे हों तो वे अनन्त होते हैं, परन्तु बूँद है, वह अनन्त नहीं होती। आहाहा! स्वयंभू असंख्य योजन में व्याप्त समुद्र है, उसमें असंख्य बिन्दु है। भगवान आत्मा शरीरप्रमाण असंख्यप्रदेशी है, तथापि अनन्त गुण हैं। आहाहा! अरे! भाई! यह विश्वास अन्दर से आना (अपूर्व है)। यह बातों से बड़ा बने, ऐसा नहीं है। आहाहा!

अनन्त-अनन्त गुण का सागर, तथापि उस सागर के बिन्दु की संख्या तो असंख्यरूप से गिनती में आती है। आहाहा! इसके तो गुण की संख्या का पार नहीं, इतनी ही एक समय की पर्याय है, उसका भी पार नहीं। भले अवधि एक समय की है। आहाहा! पर्याय की अवधि एक समय की है परन्तु पर्याय इतनी अनन्त एक समय में है कि कुछ पार नहीं। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... करो तो भी पर्याय अनन्त में यह अन्तिम अनन्त है, ऐसा नहीं आता। आहाहा! ऐसा आत्मा स्वयंभू समुद्र है। स्वयंभू आता है न? प्रवचनसार की १६वीं गाथा में।

भगवान आत्मा का जहाँ आनन्द का सम्यक् अनुभव हुआ, अब उसे कोई बाह्य चीज़ खेंच सके, आकर्षित कर सके - ऐसा रहा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त

गुण और शान्ति और आनन्द जहाँ पर्याय में आकर्षित हुए, वहाँ आत्मा का आकर्षण हुआ। अब जगत की कोई इन्द्राणी या जगत के भोग या राग उसे ललचा दे, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसा अद्‌भुत अनुभूति का आनन्द है, ऐसा कहते हैं। कहा न? आहाहा! ४२३ बोल हुआ।

प्रश्न—आत्मद्रव्य का बहुभाग शुद्ध रहकर मात्र थोड़े भाग में ही अशुद्धता आयी है न?

उत्तर—निश्चय से अशुद्धता द्रव्य के थोड़े भाग में भी नहीं आयी है, वह तो ऊपर-ऊपर ही तैरती है। वास्तव में यदि द्रव्य के थोड़े भी भाग में अशुद्धता आये अर्थात् द्रव्य का थोड़ा भी भाग अशुद्ध हो जाये, तो अशुद्धता कभी निकलेगी ही नहीं, सदाकाल रहेगी! बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव द्रव्य के ऊपर तैरते हैं परन्तु उसमें सचमुच स्थान नहीं पाते। शक्ति तो शुद्ध ही है, व्यक्ति में अशुद्धता आयी है॥४२४॥

४२४। अब नौ बोल (बाकी) हैं। फिर प्रवचनसार चलनेवाला है। प्रवचनसार है न? अभी लिया नहीं।

प्रश्न—आत्मद्रव्य का बहुभाग शुद्ध रहकर... आत्म भगवान आत्मा अस्ति तत्त्व, मौजूदगी चीज़ है। अस्ति भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु का **बहुभाग शुद्ध रहकर मात्र थोड़े भाग में ही अशुद्धता आयी है न?** प्रश्न है? क्या कहते हैं? वस्तु जो भगवान आत्मा पूर्ण वस्तु है, उसके थोड़े भाग में... आहाहा! अशुद्धता और बहुत भाग में शुद्धता – ऐसा है? अशुद्धता तो है, तो द्रव्य के थोड़े भाग में अशुद्धता है और बहुत भाग में शुद्धता है, ऐसा है? आहाहा!

उत्तर—निश्चय से अशुद्धता द्रव्य के थोड़े भाग में भी नहीं आयी है,... आहाहा! वस्तु जो द्रव्य है, वस्तु जो पदार्थ प्रभु, उसके किसी भाग में, द्रव्य के किसी भाग में अशुद्धता नहीं है। वह तो पर्याय में अशुद्धता है। द्रव्य के किसी भाग में अशुद्धता नहीं है। आहाहा! क्या कहते हैं? द्रव्य जो वस्तु... वस्तु है, सत् है, सत्त्व है। सत्, वह द्रव्य और

सत्त्व उसका गुण, परन्तु एक सब अभेद है। आहाहा! ऐसा जो द्रव्य, उसके थोड़े भाग में भी अशुद्धता द्रव्य में नहीं है। आहाहा!

अशुद्धता द्रव्य के थोड़े भाग में भी नहीं आयी है, वह तो ऊपर-ऊपर ही तैरती है। आहाहा! पानी के दल में तेल ऊपर है, वह दल में प्रविष्ट नहीं होता, ऊपर – ऊपर रहता है। इसी प्रकार चैतन्य दल, आत्मपदार्थ, अनन्त गुण भण्डार द्रव्य, वह तो त्रिकाल शुद्ध है। आहाहा! पर्याय जो अशुद्ध है, वह तो ऊपर-ऊपर रहती है, द्रव्य में प्रविष्ट नहीं होती। आहाहा! अशुद्धता की पर्याय है न? नाश होती है तो द्रव्य में जाती है। वह अशुद्धता अन्दर नहीं जाती। उसकी योग्यता वहाँ पारिणामिकभाव से द्रव्य शुद्ध रहता है। आहाहा! पर्याय में जो अशुद्धता है, उसका व्यय होता है और व्यय होकर... वह सत् है न? तो अन्दर में गयी। अन्दर में गयी तो वहाँ अशुद्धता नहीं है। वह तो पूर्ण शुद्ध ही है। आहाहा!

वस्तु जो वस्तु है अनादि-अनन्त द्रव्य-सत्त्व, मौजूदगी चीज़ जो स्वयंसिद्ध जो स्वयंभू भगवान! भू तो बाद में प्रगट हुई है, परन्तु यहाँ तो स्वयं वस्तु जो सिद्ध अनादि-अनन्त ध्रुव है। उसमें अशुद्धता कभी नहीं आती। अशुद्धता ऊपर-ऊपर तैरती है। अरे रे! अब ऐसी बातें! यह क्या कहते हैं? शरीर, वाणी तो ऊपर तैरते नहीं, वे तो भिन्न रहते हैं। शरीर, वाणी, वह जड़ है, वे तो भिन्न रहते हैं परन्तु अशुद्धता भी पर्याय में ऊपर-ऊपर तैरती है, द्रव्य में नहीं जाती। आहाहा!

जिसकी वर्तमान पर्याय में अशुद्धता है। यह शरीर वाणी मन तो उसकी पर्याय में भी नहीं है। यह तो शरीर, वाणी, मन तो उसके द्रव्य और पर्याय उनमें हैं। आत्मा की पर्याय में शरीर, कर्म, वाणी पर्याय में भी नहीं है। आहाहा! पर्याय में जो अशुद्धता होती है, वह पर्याय में है, परन्तु वह ऊपर रहती है, द्रव्य में प्रविष्ट नहीं होती। आहाहा! अधमण, पाँच मण, पच्चीस मण पानी का दल है, उसमें ऊपर तेल की बूँद हो, वह ऊपर-ऊपर रहती है। पानी के दल में नहीं जाती। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे समय व्यय होकर कहाँ जाती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अन्दर जाती है, परन्तु वह वहाँ शुद्ध है। अशुद्धता वहाँ नहीं जाती। उस प्रकार की योग्यता स्वभाविक शुद्ध है, ऐसी अचिन्त्य वस्तु है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : केवली को तो जैसा है, वैसा भासित होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भासित होता है अन्दर योग्यता पारिणामिकभाव से है, ऐसा भासित होता है। शुद्ध है, ऐसा वह भासित होता है। अन्दर में अशुद्ध है, ऐसा भासित नहीं होता, क्योंकि द्रव्य अशुद्ध होता ही नहीं, फिर भासित कहाँ से हो? ऐसी बातें हैं, आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसी योग्यता न!

पूज्य गुरुदेवश्री : योग्यता, योग्यता परन्तु वह पारिणामिकभाव से हो गयी। शुद्ध.. शुद्ध..। आहाहा! गजब बात है, बापू! द्रव्य का स्वभाव कोई (अचिन्त्य है)। आहाहा! वस्तु ही कोई अचिन्त्य है। आहाहा! उसमें से चाहे जितनी शुद्धपर्याय प्रगट हो, शुद्धपर्याय प्रगट हो तो भी द्रव्य तो जैसा है, वैसा परिपूर्ण है, बापू! यह वस्तु कोई अचिन्त्य बात है। आहाहा! यह तो साधारण के तर्क में आ जाए, बैठ जाए, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

आहाहा! **वह तो ऊपर-ऊपर ही तैरती है।** ऊपर-ऊपर ही तैरती है। निश्चय से। आहाहा! **वास्तव में यदि द्रव्य के थोड़े भी भाग में अशुद्धता आये...** अब ख्याल-न्याय देते हैं। वास्तव में यदि द्रव्य अर्थात् भगवान वस्तु, त्रिकाली द्रव्य-द्रव्य। उसके **थोड़े भी भाग में अशुद्धता आये अर्थात् द्रव्य का थोड़ा भी भाग अशुद्ध हो जाये, तो अशुद्धता कभी निकलेगी ही नहीं,...** द्रव्य वस्तु हो गयी तो निकले कहाँ से? वस्तु है, वह यदि अशुद्ध हो जाए तो कभी निकले नहीं। द्रव्य तो कायम रहनेवाली चीज़ है। यदि अशुद्धता अन्दर जाए तो कायम रहनेवाली हो गयी। समझ में आया? ऐसा कैसा उपदेश? किस प्रकार का यह? दुनिया से दूसरा पार नहीं। क्यों? कनुभाई! मार्ग ऐसा है, प्रभु!

तू कौन है? भाई! आहाहा! तेरी एक समय की पर्याय जो वर्तमान है, बस उसमें सब क्रीड़ा अनादि से की है। साधु हुआ तो भी पर्याय में क्रीड़ा की है। परन्तु पर्याय के सामने आत्मद्रव्य जो महाभगवान द्रव्यस्वरूप है... आहाहा! वहाँ नजर नहीं की। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **यदि द्रव्य के थोड़े भी भाग में अशुद्धता आये अर्थात् द्रव्य का थोड़ा भी भाग अशुद्ध हो जाये, तो अशुद्धता कभी निकलेगी ही नहीं,...** द्रव्यवस्तु द्रव्यरूप से जो कायम है, उसमें अशुद्धता जाए तो वह तो कायम रहेगी। आहाहा! क्योंकि वह तो पलटती नहीं - वस्तु तो कायम एकरूप है। आहाहा! **अशुद्धता कभी निकलेगी**

ही नहीं,... निकलेगी ही नहीं। **सदाकाल रहेगी!** आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य-गुण में न मिले परन्तु पर्याय तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय पर्याय में रही। पर्याय गयी तो समाप्त। द्रव्य में अन्दर अशुद्धता गयी नहीं। आहाहा! द्रव्य तो त्रिकाली शुद्ध ही पूर्ण है, वह अशुद्धता अन्दर गयी और शुद्धता आयी तो भी द्रव्य तो वहाँ परिपूर्ण ही है। आहाहा! और बहुत अशुद्धता मिथ्यात्व की गयी... आहाहा! तो भी द्रव्य तो वहाँ पूर्ण शुद्ध ही है। उसकी योग्यता गयी परन्तु वह तो पूर्ण शुद्ध ही है। ऐसी बातें, बापू! आहाहा!

तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभ अनन्तानुबन्धी के, उनका दूसरे समय में व्यय हो गया। वह सत् था। वह सत् कहीं आकाश के फूल की तरह नहीं था। गया अन्दर परन्तु वहाँ तो शुद्ध ही है। अरे रे! ऐसी बात। उस द्रव्य में यदि कोई अंश में अशुद्धता हो तो द्रव्य है, वह तो कायम रहता है। अशुद्धता कभी निकलेगी नहीं। आहाहा! द्रव्य में पलटना नहीं, तो नित्य द्रव्य अशुद्ध हो तो उसमें पलटना नहीं होता तो अशुद्धता टलेगी नहीं। आहाहा! समझ में आया इसमें? आहाहा!

मुमुक्षु : गुण पर्यायशक्ति का कोठा अलग गिनने में आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय अत्यन्त भिन्न ही है। द्रव्य में पर्याय प्रविष्ट नहीं होती और द्रव्य को स्पर्श भी नहीं करती। द्रव्य पर्याय को स्पर्श नहीं करता और पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। यह तो अव्यक्त में (समयसार गाथा ४९) आ गया है। आहाहा! व्यक्त और अव्यक्त दोनों का एक समय में साथ में ज्ञान होने पर भी व्यक्त को अव्यक्त स्पर्श नहीं करता। ४९ (गाथा समयसार)। आहाहा! भाई! वस्तु कोई अद्‌भुत है, प्रभु! आहाहा!

एक समय में ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... शुद्ध पूर्ण। उस पूर्ण शुद्ध में तो कभी अशुद्धता और शुद्धता की... अशुद्धता तो आती नहीं परन्तु पूर्ण शुद्ध में अपूर्ण शुद्धता नहीं होती। आहाहा! क्योंकि पर्याय की शुद्धता का एक अंश पर्याय प्रगट हुई है, तो वहाँ पूर्ण शुद्ध बहुत है और अशुद्धता बहुत आयी, इसलिए वहाँ शुद्धता कुछ कम रही है... आहाहा! ऐसा नहीं है। प्रभु! यह तेरा मार्ग! आहाहा! कोई चीज़ ही अद्‌भुत... अदभुत... अद्‌भुत...! जिसके ज्ञान के समक्ष सब चीज़ें तुच्छ लगती हैं। ऐसा जो द्रव्य, (उसमें) कभी अशुद्धता अंश भी नहीं है।

बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव... समयसार की १४-१५ गाथा का लिया है। भगवान आत्मा

तो अबद्धस्पृष्ट है अर्थात् मुक्त है। आहाहा! द्रव्य जो वस्तु है, वह तो मुक्त है। पर्याय में बन्ध और मुक्त की पर्याय, वह तो पर्याय में दो होते हैं। आहाहा! यह तो भगवान की कालेज है, तत्त्वज्ञान की कालेज है। आहाहा! इस वस्तु को समझने के लिये बहुत तैयारी चाहिए, भाई! आहाहा! **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव...** (समयसार की) १४-१५ (गाथा) में आता है न? आदि अर्थात् पाँचों बोल। बद्धस्पृष्ट, अन्य-अन्य, संयुक्त, विशेष ये सब भाव ऊपर तैरते हैं। आहाहा! अरे! निर्मल पर्याय भी द्रव्य में ऊपर तैरती है और निर्मल पर्याय को भी द्रव्य स्पर्श नहीं करता। अरे भगवान! आहाहा! यह आत्मतत्त्व कैसा है? अद्भुता अद्भुत है! आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चाहे जो जाए और आये, वह वहाँ है, वह है। वहाँ कोई अपूर्णता नहीं होती, अशुद्धता नहीं होती। अपूर्णता होवे तो थोड़ी अशुद्धता हो जाए। आहाहा! ऐसी चीज़ है। अब लोगों को बेचारों को सुनने को नहीं मिलता। व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो,... यह हो गया। आहाहा!

अरे! भगवान! तो कितना बड़ा है, यह तुझे तेरी प्रतीति में और ज्ञान में न आवे, तब तक सब व्यर्थ है। आहाहा! भगवान के दर्शन न हो... आहाहा! पर्याय और राग के दर्शन हो, वह तो अनादि काल का भटकनेवाला है। द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा... आहाहा! पर्याय ऊपर तैरती है। **परन्तु उसमें सचमुच स्थान नहीं पाते।** वास्तव में पर्याय को अन्दर में स्थान नहीं मिलता। समझ में आया? चाहे तो केवलज्ञान की पर्याय हो, परन्तु अन्दर में वास्तव में स्थान नहीं मिलता।

मुमुक्षु : तो फिर ऋषभदेव भगवान को महावीर भगवान के भव कैसे भासित हुए?

पूज्य गुरुदेवश्री : भासित हो न। अपनी पर्याय भासित हुई है। यह तो व्यवहार की बातें हैं। अपनी पर्याय भासित हुई है। ये बातें पूरी अलग हैं। आहाहा! पर्याय का जितना स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, वह स्वयं अपने को देखती है। आहाहा! ज्ञाता वह, ज्ञेय वह, ज्ञान वह, बापू! आहाहा!

शक्ति तो शुद्ध ही है, व्यक्ति में अशुद्धता आयी है। प्रगट में अशुद्धता है। शक्ति में कोई अशुद्धता नहीं है।

यह विशेष कहा जाएगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल -५, बुधवार, दिनाङ्क ०३-०१-१९७९
वचनामृत- ४२५ से ४२७ प्रवचन-१७८

प्रश्न—जिज्ञासु जीव, तत्त्व को यथार्थ धारण करने पर भी किस प्रकार अटक जाता है ?

उत्तर—तत्त्व को धारण करने पर भी जगत के किन्हीं पदार्थों में गहरे-गहरे सुख की कल्पना रह जाये अथवा शुभ परिणाम में आश्रयबुद्धि रह जाये—इत्यादि प्रकार से वह जीव अटक जाता है। परन्तु जो खास जिज्ञासु—आत्मार्थी हो और जिसे खास प्रकार की पात्रता प्रगट हुई हो, वह तो कहीं अटकता ही नहीं, और उस जीव को ज्ञान की कोई भूल रह गयी हो तो वह भी स्वभाव की लगन के बल से निकल जाती है; अन्तर की खास प्रकार की पात्रतावाला जीव कहीं अटके बिना अपने आत्मा को प्राप्त कर लेता है ॥४२५॥

४२५, **प्रश्न—जिज्ञासु जीव, तत्त्व को यथार्थ धारण करने पर भी...** शास्त्र से सुनकर **तत्त्व को यथार्थ धारण करने पर भी किस प्रकार अटक जाता है ?** मुद्दे का प्रश्न है। आहाहा! जिज्ञासा है और तत्त्व की धारणा भी की है, तत्त्व की यथार्थ धारणा, ऐसी भाषा है। **तथापि किस प्रकार अटक जाता है ?** आहाहा!

उत्तर—तत्त्व को धारण करने पर भी जगत के किन्हीं पदार्थों में गहरे-गहरे सुख की कल्पना रह जाये... उसे किसी भी प्रकार से बाह्य पदार्थ में गहरे-गहरे सुख की कल्पना रह जाती है। धारणा करने पर भी। मोक्षमार्गप्रकाशक चौथे अध्याय में आया है, है न ? सत्य ज्ञान होने पर भी अयथार्थ प्रयोजन को साधता है, इसलिए वह सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जाता। यह क्या कहा ? जानने में—धारणा में उसे आया है, तथापि अयथार्थ प्रयोजन—दुनिया को कहूँ, दुनिया प्रसन्न हो तो मेरा ज्ञान यथार्थ कहलाये। मैं दूसरों को समझाऊँ और

समझाने से दूसरे प्रसन्न हों, सुखी हों—ऐसी जहाँ बुद्धि है, वह अयथार्थ प्रयोजन है। आहाहा! समझ में आया? उसमें यह कल्पना रह जाती है कि यह मेरा ज्ञान है, वह बाहर प्रसिद्ध हो तो दुनिया माने तो वह मेरा ज्ञान सच्चा, ऐसे प्रसन्न हो, उसमें प्रसन्न होता है। यह तो उसमें सुखबुद्धि हुई। आहाहा! सूक्ष्म विषय है। चौथे अध्याय में लिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में चौथे अध्याय में है, मोक्षमार्गप्रकाशक। धारणाज्ञान ग्यारह अंग का किया, करोड़ों श्लोक धारण किये, आहाहा! परन्तु अन्दर में गहराई में परसन्मुख के झुकाव में कहीं न कहीं उसे प्रसन्नता लगती है। वह परसन्मुख का जो ज्ञान है, वह परसत्तावलम्बी है। आहाहा! तथापि उसमें यह प्रसन्नता होती है कि मुझे ज्ञान हुआ और जिससे मैं दुनिया को समझाऊँ, दुनिया प्रसन्न हो। आहाहा! बहुत लोग एकत्रित हों, उसमें मेरा ज्ञान प्रसिद्ध हो—ऐसी बुद्धि रह जाती है, इसलिए उसे सम्यग्ज्ञान नहीं होता। आहाहा! सूक्ष्म बात है। यह तो पूरी मुद्दे की बात आयी है। आहाहा!

मुमुक्षु : फिर उसने यथार्थ धारणा कहाँ की?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धारणा धारी है, ऐसा होता है, यथार्थ धारण किया है न। धारणा में है न, कि यह द्रव्य है, यह है, धारणा में है परन्तु प्रयोजन दूसरा है। धारणा में तो यथार्थ है। ग्यारह अंग (का ज्ञान) किया, उसमें धारणा में नहीं? परन्तु अन्दर में बाह्य के किसी भी प्रकार के प्रसंग में उसे प्रसन्नता, खुशीपना रह जाती हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : यथार्थ धारणा तो उसे ही कहा जाता है कि पर से लाभ न माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : यथार्थ धारणा तो धारी है। यथार्थ कहा है न? वहाँ भी ऐसा कहा है मोक्षमार्गप्रकाशक में। यह मोक्षमार्गप्रकाशक है न? चौथा अधिकार है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि किसी काल में किसी पदार्थ को सत्य जाने। देखा? आहाहा! तो भी उसके निश्चयरूप निर्धार द्वारा श्रद्धानपूर्वक नहीं जानता। उसे कल्पना हो जाती है कि मैं बराबर जानता हूँ। आहाहा! है? उसे यथार्थ ज्ञान नहीं कहते। किसे? माता को माता जाने... तीन कारण दिये हैं न? भाई! कारणविपरीतता, स्वरूपविपरीतता, भेदाभेदविपरीतता। भाई! तीन, तीन कारणों में उसे कोई रह जाता है। आहाहा! उसे गहरे पकड़ने में नहीं आता।

समझ में आया? यह उसमें दिया है, हों! यह कारणविपरीतता, स्वरूपविपरीतता, भेदाभेदविपरीतता। आहाहा! उसमें से कहीं उसे गहरे-गहरे, बाहर के ज्ञान के कारणों में बाहर से दूसरे प्रसन्न हों, खुशी हों, मेरा ज्ञान बाहर प्रसिद्ध हो—ऐसे प्रसन्न होता है, वह ज्ञान यथार्थ नहीं है। वहाँ वह बाह्य में उसे सुखबुद्धि है, गहरे-गहरे बाह्य में उसे कल्पना सुखबुद्धि है। आहाहा! और दूसरी जगह कुछ आता है न, ऐसा कि सभा में पढ़े, सुने तो बहुत लोग सुने तो प्रसन्न होता है, ऐसा उसमें कहीं आता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में। आहाहा!

यहाँ ऐसा जाने कि फिर अब तुम्हारा यथार्थ... सत्य जाने तथापि... देखा? धारणा में तो आयी बात। सत्य जाने, तथापि उसके द्वारा अपना अयथार्थ प्रयोजन ही साधता है। आहाहा! दुनिया में बाहर प्रसिद्ध होना, दुनिया मुझे प्रसिद्ध करे, प्रसिद्ध होऊँ तो मेरा ज्ञान मुझे हुआ, ऐसा यथार्थ कहलाये - यह सब बाह्य में कहीं भी गहरे-गहरे उसे सुखबुद्धि है। आहाहा! वह मिथ्याज्ञान है। सत्य होने पर भी मिथ्या है। सत्य कहा है न? यथार्थ कहा है न? आहाहा!

मुमुक्षु : अयथार्थ प्रयोजन होवे तो सम्यक्त्व-सन्मुख तो नहीं हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, समकित कहाँ है? यह तो धारणा है न, उसे धारणा है परन्तु अयथार्थ प्रयोजन साधता है। ज्ञान में धारणा तो है, धारा है। सत्यज्ञान है, देखा? यह शब्द यहाँ बहिन का है। सत्य जानता है, तथापि। यहाँ भी तत्त्व को यथार्थ धारणा करने पर भी। आहाहा! कहीं न कहीं बाहर सुने, दूसरे समझे, इसका उसे गहरा रस है। इसलिए उसमें वह सुखबुद्धि है। आहाहा!

बहिन में नहीं आता? आता है न? क्षयोपशम का अभिमान एक और बाहर प्रसिद्ध होना, यह दो बोल आते हैं। पहले आ गया है। इसमें आ गया है। इसमें-वचनामृत में बहुत न्याय आ गये हैं, बहुत न्याय आ गये हैं। आहाहा! कहीं अपने क्षयोपशम का इसे गहरे-गहरे परलक्ष्यी ज्ञान में गहरे क्षयोपशम का अभिमान है। आहाहा! और बाहर प्रसिद्ध होने का भाव है। गुप्त रहने का भाव नहीं है, बाहर प्रसिद्ध होने का (भाव है) किसी प्रकार झपट्टे मारता है ऐसे बाहर प्रसिद्ध होने के लिये। आहाहा! कहो, कान्तिभाई! यथार्थ होने पर भी? तो यथार्थ भी कैसे कहलाये? परन्तु धारणा है, वह बराबर है, ऐसा कहते हैं। इसलिए उसमें

ऐसा कहा है न, सत्य जानता है, तथापि... आहाहा! उसमें ८९ पृष्ठ पर है। अयथार्थ प्रयोजन साधता है, इसलिए उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहते। आहाहा! एक बात।

मुमुक्षु : व्यवहाराभासी और....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहाराभासी का अर्थ ही अन्दर में, बाहर में कुछ उसे प्रेम रह जाता है। गहरे-गहरे सुखबुद्धि। देखो न! पहली भाषा ही यह है न! गहरे-गहरे सुख की कल्पना रह जाती है। शब्द यथार्थ है।

अथवा शुभ परिणाम में आश्रयबुद्धि रह जाये... विकल्प है न, विकल्प? आहाहा! उसमें अन्दर में गहरे-गहरे आश्रयबुद्धि रह जाती है। आहाहा! यह आता है न उसमें, कलश-टीका में। कहीं द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद में, उत्पाद-व्यय-ध्रुव के भेद में रस आ जाता है और आत्मा ज्ञानस्वरूप है... यह भाषा है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। मोक्षमार्गप्रकाशक में न? कलश-टीका में। कलश-टीका है?

आठवाँ कलश है। **जो गुण-पर्यायभेद या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यभेद न देखा जाये, वस्तुमात्र देखी जाये तो समस्त भेद झूठा है। ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है। और कैसी है आत्मज्योति? चेतना लक्षण से जानी जाती है,...** यह भी अभी भेद है, ऐसा कहते हैं। **इसलिए अनुमानगोचर भी है।** प्रत्यक्ष ज्ञानगोचर है। **भावार्थ इस प्रकार है - जो भेदबुद्धि करते हुए जीववस्तु चेतना लक्षण से जीव को जानती है; वस्तु विचारने पर इतना विकल्प भी झूठा है,...** आहाहा! चेतनजी! आहाहा! देखो न! बहुत सरस है? मुझे वह सवेरे कहना है और यह २९वाँ नहीं, यह आठवें का कहना था। सवेरे कुछ कहा न? रात्रि को। वह इसमें है, देखो।

एक ही जीववस्तु द्रव्य, गुण, पर्यायरूप से, उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप से अनेकरूप कही जाती है। उसमें तो मन-वचन-काया के आरोप से, ऐसा शब्द २९ में है। मन-वचन-काया के आरोप से द्रव्य भेद लागू पड़ता है। यह तो सीधा ऐसा है। आहाहा! क्या कहते हैं यह? आठवाँ है। उसमें यह है। '**चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं**' इसमें ही है। '**कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे। अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं, प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ॥८॥**' इस उद्योतमान का अर्थ इन्होंने यह किया है।

प्रत्यक्ष ज्ञानगोचर है। (भावार्थ इस प्रकार है -) जो भेदबुद्धि करते हुए जीववस्तु चेतना लक्षण से जीव को जानती है; वस्तु विचारने पर इतना विकल्प भी झूठा है,... आहाहा! कठिन काम, भाई! यह (कलश) आठ का कहना था। कुछ याद नहीं रहता, सब श्लोक याद रहे ? भाव लक्ष्य में होता है। आहाहा! इतनी यादशक्ति कहाँ है! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, शुभपरिणाम में... वहाँ तो एक जगह ऐसा भी कहा है न ? भेदज्ञान भी विकल्प है। वह केवलज्ञान की भाँति निर्विकल्प नहीं है। यह कहाँ तक ? कि यह यह नहीं, यह राग नहीं, यह यह नहीं - ऐसा अन्दर जो भेदविकल्प है, वहाँ तक विकल्प है। अन्दर राग से भिन्न पड़कर अनुभव हो जाए तो वह भेदज्ञान अभेद हो गया। आहाहा! यह तो सूक्ष्म (रूप से) कहाँ अटक जाता है, इसकी बात है। आहाहा! और प्राप्त करके भी गिरता है, वह कहाँ अटकता है, उसकी इसे खबर नहीं होती। वापस गिरता है, वह किस प्रकार गिर जाता है। आहाहा! सूक्ष्म अन्दर में गहरे-गहरे, आहाहा! बाहर में सुखबुद्धि, कल्पनाबुद्धि या शुभ की आश्रयबुद्धि इत्यादि, ऐसा है न ? **शुभ परिणाम में आश्रयबुद्धि रह जाये—इत्यादि...** इत्यादि अर्थात् जिस-जिस प्रकार से इसे अटकने के (स्थान हैं), वे ले लेना। आहाहा!

वहाँ तो ऐसा भी आया था न ? एक में नहीं आया था ? ज्ञेयनिमग्न। आहाहा! और परमार्थवचनिका में ऐसा आया, परसत्तावलम्बी ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहाहा! पर के लक्ष्यवाला परसत्तावलम्बी ज्ञान, वह मोक्षमार्ग नहीं है; इसलिए उसका अर्थ हुआ कि वह उन्मार्ग है। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! .....और वह परसत्तावलम्बी ज्ञान है, वह ज्ञेयनिमग्न है, परज्ञेयनिमग्न है; इसलिए उसे स्वज्ञेय में निमग्नपना नहीं आता। आहाहा! समझ में आया ?

तत्त्व को धारण करने पर भी जगत के किन्हीं पदार्थों में गहरे-गहरे सुख की कल्पना रह जाये... आहाहा! **अथवा शुभ परिणाम में...** बहुत प्रकार के होते हैं न शुभ परिणाम ? गुणी-गुणभेद भी विकल्प है। उसमें ऐसा कहा है न ? नियमसार में (कहा है) द्रव्य-गुण-पर्याय का भेदविकल्प है, अनावश्यक है। मूल पाठ है। कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। आहाहा! पर का ज्ञान तो ठीक, परन्तु अपने में यह द्रव्य, गुण और पर्याय का भेद

करके यह भेद डाले, वह विकल्प है। आहाहा! ऐसी बात है। वहाँ अटक जाता है गहरे, उसकी इसे खबर नहीं कि मैं कहाँ अटका हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानी को तो खबर है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भेद पड़ गया, उसकी बात है, यह तो कहाँ अटकता है उसकी बात / प्रश्न है न! यहाँ तो प्रश्न यह है न! आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : ....पकड़ में तो आवे परन्तु निकाल न सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पकड़ में अर्थात् इसकी धारणा में आया, समवसरण में गया, केवली भगवान से सुना परन्तु अन्दर में स्वसन्मुख से विरुद्ध किसी भी प्रकार के विकल्प में, भेद में, राग में... आहाहा! गहरे-गहरे पर्याय को अन्तर में झुकाना चाहिए, वह न झुकाकर इस प्रकार पर्यायबुद्धि में कहीं अटक जाता है। समझ में आया? **इत्यादि प्रकार से वह जीव अटक जाता है।** आहाहा!

परन्तु जो खास जिज्ञासु—आत्मार्थी हो... देखो! भाषा देखी? खास जिज्ञासु और आत्मार्थी हो। **और जिसे खास प्रकार की पात्रता प्रगट हुई हो...** देखा? आहाहा! अन्तर में जाने के लिये जिसकी पात्रता प्रगट हुई है। आहाहा! उसे ज्ञान हुआ है, वह भी अब अन्तर में जाने के लिये है। बाहर में अटकने और बाहर को बताने के लिये नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा!

कलशकार तो और दो जगह ऐसा कहते हैं—यत्नसाध्य नहीं, सहज साध्य है। ....यहाँ तो पुरुषार्थ कहीं अटकता है, काललब्धि नहीं होती इसका अर्थ यह है कि कहीं वह अटकता है। आहाहा! पुरुषार्थ स्वसन्मुख झुके और काललब्धि पके बिना रहे, ऐसा बनता नहीं। आहाहा! दो जगह कलश में है। आत्मा को... आहाहा! **जिसे खास प्रकार की पात्रता प्रगट हुई हो...** जिसे खास प्रकार की, खास तत्त्व-वास्तविक तत्त्व को प्राप्त करने की जिसे जिज्ञासा (हुई हो)।

मुमुक्षु : खास प्रकार अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : खास अर्थात् जिसे अकेला आत्मा ही चाहिए है, वह खास प्रकार की। कोई प्रयोजन दूसरा कुछ है नहीं। इज्जत का, दुनिया में प्रसिद्धि का, दुनिया मुझे

गिने तो कुछ मुझे ठीक कहलाये, यह कोई प्रकार है, उसे जिज्ञासा नहीं है। आहाहा! पुस्तक के बहाने, वाणी के बहाने भी मैं बाहर प्रसिद्ध होऊँ, लिखकर लिखे अन्दर लिखे, इससे लोग उसे जानें। वह उसे खास प्रकार की जिज्ञासा नहीं है। आहाहा! ऐसी (बात) है।

वह तो कहीं अटकता ही नहीं,... देखा? आहाहा! और कहीं अटकने की भूल हो, उसे वह शोध लेता है। समझ में आया? **अटकता ही नहीं, और उस जीव को ज्ञान की कोई भूल रह गयी हो...** अन्दर गहराई में। आहाहा! कहीं बाहर की चीज़ों की आश्चर्यता गहरे-गहरे रह गयी हो परन्तु यह खास जिज्ञासा है, उसे टाल देगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। अरे! खास जिज्ञासु आत्मार्थी और खास प्रकार की पात्रता प्रगट हुई (हो), दो बातें ली हैं न! आहाहा!

उस जीव को ज्ञान की कोई भूल रह गयी हो तो वह भी स्वभाव की लगन के बल से... आहाहा! **निकल जाती है;...** आहाहा! एक ही बात है। उसे आत्मा भगवान पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! ज्ञायकस्वभावी पकड़ना है, बस एक ही बात। अर्थात् सर्वज्ञस्वभावी सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु... आहाहा! उसे ही जिसे पकड़ना है, ऐसी खास जिज्ञासा और खास प्रकार की पात्रता है। आहाहा! उसकी कोई भूल अन्दर हो तो वह निकल जाएगी। आहाहा!

मुमुक्षु : तत्त्व की भूल हो तो निकल जाती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तत्त्व की अर्थात् कहीं पर में सुखबुद्धि या ऐसा कुछ गहरे-गहरे (होवे तो) वह निकल जाएगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह है न... जो अन्दर है न, तत्त्व के अन्दर, अन्दर जिज्ञासा में गहरे-गहरे यहाँ तत्त्व की ओर की झुकाववाली उग्र भावना है और खास ज्ञायकभाव को पकड़ने की भावना है, उसे कोई अटकी हुई बात हो तो वह निकल जाएगी। आहाहा!

मुमुक्षु : कोई गन्ध रह गयी हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निकल जाएगी। ऐसे जाना है वहाँ, उसे गहरे-गहरे वह शोध लेगा। आहाहा! शोधन करेगा। अन्दर जाना है न! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो ? व्याख्या तो जिसे इतने प्रकार से कहा जाता है, बाकी तो... आहाहा ! चेतनालक्षण जीव, ऐसा जो भेद और विकल्प भी जहाँ झूठा है। आहाहा ! यह आया न ? चेतनालक्षण। आठवाँ कलश। भेद किया न, यह चेतनालक्षण जीव। ऐसा जहाँ विकल्प है, वह भी स्वरूप के अनुभव के लिये बिल्कुल काम नहीं करता। आहाहा ! ऐसा है। जगत माने, न माने, स्वतन्त्र है। अनादि से क्या भूल रह गयी है, उसकी इसे खबर नहीं है। आहाहा !

अन्तर की खास प्रकार की पात्रतावाला जीव... यह भाषा देखो ! एक ही बात है, जिसे ज्ञायकस्वभाव ही पकड़ना है। आहाहा ! 'लाख बात की बात', आता है न 'निश्चय उर लाओ, तोरि सकल जगद्वंद फन्द' अकेला भगवान ज्ञायकभाव, अकेला ज्ञायक अर्थात् सर्वज्ञस्वभावी वस्तु, उसे जिसे एक पकड़ना है। आहाहा ! ऐसी लगन (के) बल से निकल जाएगा। **अन्तर की खास प्रकार की पात्रतावाला जीव कहीं अटके बिना...** आहाहा ! **अपने आत्मा को प्राप्त कर लेता है।** बहुत सरस बात है। आहाहा ! समझ में आया या नहीं ? कहाँ गये ? रमणीकभाई ! ऐसी बात है, कठिन है। तुम्हारे यहाँ कुछ नहीं मिलता। आहाहा ! सूक्ष्म काता है। जिसमें अकेला भगवान ज्ञायकभाव अर्थात् सर्वज्ञस्वभावभाव—ऐसा जो भाव, उसे पकड़ने की जिज्ञासा और पात्रता है... आहाहा ! उसे कुछ सूक्ष्म कोई प्रकार की भूल हो, (तो वह) निकल जाएगी।

मुमुक्षु : गुरु बताये बिना रहेंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उससे निकल जाएगी। बतावे तो ऐसी बात हो। आहाहा ! इसमें बहुत बात आयी है। मात्र जो कोई मध्यस्थ जीव हो और यह पढ़े तो उसे ऐसा लगता है कि आहाहा ! तत्त्व के यथार्थ निधान भरे हैं। आहाहा ! **अटके बिना अपने आत्मा को प्राप्त कर लेता है।** यह प्रश्न था। आहाहा ! अब दूसरा।

प्रश्न—मुमुक्षु को सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिए ?

उत्तर—अनादि काल से आत्मा ने अपना स्वरूप नहीं छोड़ा है, परन्तु भ्रान्ति के कारण 'छोड़ दिया है'—ऐसा उसे भासित हुआ है। अनादि काल से द्रव्य तो शुद्धता से भरा है, ज्ञायकस्वरूप ही है, आनन्दस्वरूप ही है। उसमें अनन्त चमत्कारिक शक्ति भरी है।—ऐसे ज्ञायक आत्मा को सबसे भिन्न—परद्रव्य से भिन्न, परभावों से भिन्न—जानने का प्रयत्न करना चाहिए। भेदज्ञान का अभ्यास करना चाहिए। ज्ञायक आत्मा को पहिचानना चाहिए।

'ज्ञायकस्वरूप हूँ' ऐसा अभ्यास करना चाहिए, उसकी प्रतीति करना चाहिए; प्रतीति करके उसमें स्थिर हो जाने पर, उसमें जो अनन्त चमत्कारिक शक्ति है, वह प्रगट अनुभव में आती है॥४२६॥

प्रश्न—मुमुक्षु को सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिए ? मुमुक्षु को (अर्थात्) जिसे मात्र मोक्ष का ही काम है अथवा आत्मा का ही काम है। आहाहा! उस जीव को **सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिए ?** यह प्रश्न है।

उत्तर—अनादि काल से आत्मा ने अपना स्वरूप नहीं छोड़ा है,... आहाहा! जो स्वरूप है, वह इसने नहीं छोड़ा है; वह ऐसा का ऐसा है। आहाहा! स्वरूप अनादि का है। वह वस्तु ने वस्तु का स्वरूप छोड़ा नहीं है। **अनादि काल से...** आहाहा! **आत्मा ने अपना स्वरूप नहीं छोड़ा है, परन्तु भ्रान्ति के कारण 'छोड़ दिया है'—ऐसा उसे भासित हुआ है।** आहाहा! भ्रमणा के कारण छोड़ दिया है, मानो मेरा द्रव्य छूट गया है, मेरी दृष्टि (में), द्रव्य ही छूट गया है, मानो द्रव्य नहीं है। आहाहा! यह भ्रान्ति अनादि की है। वस्तु भी अनादि की छूटी नहीं और भ्रान्ति भी अनादि की है। आहाहा!

अनादि काल से आत्मा ने अपना स्वरूप... जो शुद्ध चैतन्यघन है, वह छोड़ा नहीं। अर्थात् ?—कि वस्तु है, वह तो ऐसी की ऐसी ही है, ऐसी की ऐसी अनादि की है। विज्ञानघन, चैतन्यरसकन्द है। आहाहा! द्रव्यस्वभावभाव। कभी द्रव्यस्वभाव द्रव्य छोड़े ? आहाहा! तथापि उसकी दृष्टि वहाँ नहीं है। भ्रान्ति में भासित हुआ है कि यह मेरी वस्तु छूट गयी।

आहाहा! **भ्रान्ति के कारण 'छोड़ दिया है'—ऐसा उसे भासित हुआ है।** आहाहा! मुझे पकड़ना है अर्थात् मानो नहीं पकड़ा, नहीं। आहाहा! भ्रान्ति के कारण मानो वस्तु नहीं है। आहाहा! यह सब मुद्दे की बात है। छोड़ दिया है, ऐसा इसे भासित हुआ है। पर्याय में.. वस्तु तो वस्तुरूप से छूटी नहीं थी, तथापि पर्याय में, वर्तमान पर्यायबुद्धि में, अंशबुद्धि में भ्रान्ति के कारण। यह अंशबुद्धि अर्थात् भ्रान्ति। आहाहा! यह वस्तु छोड़ दी है, ऐसा इसे भासित हुआ है। आहाहा! बहुत कठिन। **'छोड़ दिया है'—ऐसा उसे भासित हुआ है।** आहाहा!

अनादि काल से द्रव्य तो शुद्धता से भरा है,... आहाहा! अनादि काल से अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण जो शुद्ध, उनसे वह भरा हुआ पदार्थ है। चाहे जितनी विकारी पर्याय हो गयी, परन्तु वह वस्तु तो वस्तुरूप से ही है। वस्तु को वह अशुद्धता स्पर्श नहीं की है, छुई नहीं है। आहाहा! **अनादि काल से द्रव्य तो शुद्धता से भरा है,...** वह शुद्ध स्वरूप ही त्रिकाल आनन्द ज्ञायकस्वरूप, त्रिकाल आनन्द और ज्ञायकस्वरूप ही वह तो है। ज्ञायकस्वरूप, देखा! **अनादि काल से द्रव्य तो शुद्धता से भरा है,...** अर्थात् क्या? कि **ज्ञायकस्वरूप ही है,...** चैतन्यचन्द्र शीतलता से भरपूर, अनन्त गुण अनादि है। वह **ज्ञायकस्वरूप ही है,...** दो बातें।

आनन्दस्वरूप ही है। दो लेना है न! वह तो अनादि से ज्ञायकस्वरूप है, शुद्ध है अर्थात् ज्ञायकस्वरूप है, आनन्दस्वरूप ही है। आहाहा! यह ज्ञायकस्वरूप और आनन्दस्वरूप वस्तु छोड़ी नहीं है वस्तु ने। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसी चीज़ तो अनादि से ज्ञायकस्वरूप, आनन्दस्वरूप है। आहाहा! यह शुद्धता की व्याख्या की है। द्रव्य तो शुद्धता से भरपूर है अर्थात् ज्ञायकस्वरूप ही है और आनन्दस्वरूप ही है। अरे! दो की बात करते हुए, मुख्य ऐसा कहते हैं, **उसमें अनन्त चमत्कारिक शक्ति भरी है।** आहाहा! भगवान आत्मा में अनादि से अनन्त चैतन्य चमत्कारिक शक्ति भरी हुई है। आहाहा!

मुमुक्षु : चमत्कारिक शक्ति अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्तियाँ, गुण सब चमत्कारिक हैं। ख्याल में लेने पर इसे ऐसा हो जाए कि यह तो क्या चीज है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय का ख्याल आवे पर्याय में कि यह तो क्या चैतन्य है! यह ज्ञान वह क्या चीज़ है यह! चमत्कारिक जिसकी पर्याय शक्ति

स्वभाव भी अनन्त और अपरिमित है। ऐसे अनन्त चमत्कारिक चीज़ से भरपूर तत्त्व है। आहाहा! जिसका सम्यग्दर्शन में... आहाहा! चमक अन्दर से अनन्त गुण के चमत्कार का आनन्द आता है। आहाहा! यह कोई चमत्कारिक वस्तु है। आहाहा! बाहर के चमत्कार-फमत्कार की बातें दुनिया करती है, वह तो सब व्यर्थ हैं। आहाहा!

इसका एक ज्ञानगुण लो तो भी चमत्कारिक वस्तु है, जिसकी शक्ति का पार नहीं होता। आहाहा! जिसकी आनन्दशक्ति का पार नहीं होता। जिसकी ईश्वरशक्ति प्रभुता का पार नहीं होता। अपार.. अपार चैतन्य चमत्कारिक वस्तु पड़ी है। आहाहा! अनन्त चमत्कारिक शक्ति, ऐसा दो के साथ लिया है। दो मुख्य है - ज्ञान और आनन्द। अनन्त चमत्कारिक शक्ति उसमें भरी है। आहाहा! उसका प्रश्न था न कि सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये क्या करना? यह उसका उत्तर है। आहाहा!

ऐसे ज्ञायक आत्मा को... लाईन करके कहा है न? यह जो कहा, ऐसे आत्मा को, ऐसे ज्ञायक आत्मा को कि जो ज्ञायकस्वरूप है, आनन्दस्वरूप 'ही' है। ऐसी अनन्त चमत्कारिक शक्ति। आहाहा! जिसकी पर्याय में तीन काल, तीन लोक ज्ञात हो—ऐसी पर्याय की बात, यह तो इसकी शक्ति ऐसी है। आहाहा! नियमसार में आता है न कि जो अन्दर का ज्ञानदर्शन है, वह स्व को पूर्ण जानने की शक्तिवाला है। नियमसार में है। यह शक्ति। आहाहा! यह ज्ञानशक्ति स्व को पूर्ण जानने की शक्तिवाली है। दर्शनशक्ति, आत्मा को पूर्ण देखने की शक्तिवाली है। आनन्दशक्ति, आत्मा के पूर्ण आनन्द को लक्ष्य में लेकर आनन्द आया है, ऐसा पूर्ण आनन्द चमत्कार अन्दर है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

आत्मा अर्थात् क्या? भाई! वह तो सर्वोत्कृष्ट चीज़ है। आहाहा! उसके तत्त्व के द्रव्य की इसे खबर नहीं। इसकी वर्तमान पर्याय में इसकी सब क्रीड़ा अनादि की है। आहाहा! शास्त्रज्ञान किया, महाव्रत पालन किये। आहाहा! सब क्रीड़ा एक समय की पर्याय के ऊपर सब क्रीड़ा है परन्तु भगवान अन्दर चैतन्य चमत्कारी अनन्त शक्तिवाला तत्त्व है... आहाहा! उस पर इसकी नजर गयी नहीं। आहाहा!

ऐसे ज्ञायक आत्मा को सबसे भिन्न—परद्रव्य से भिन्न,... आहाहा! लाईन की है न। आहाहा! ऐसे आत्मा को, अनन्त-अनन्त चैतन्य चमत्कारिक शक्ति आदि अनन्त

चमत्कारिक शक्ति अर्थात् चेतन नहीं परन्तु सब शक्ति ऐसी भरी है, **ऐसे ज्ञायक आत्मा को सबसे भिन्न—परद्रव्य से भिन्न, परभावों से भिन्न—...** आहाहा! गुण-गुणी के भेद के विकल्प से भी भिन्न। आहाहा! अर्थावबोधरूप गुण विशेष जिसे आलिंगन नहीं करता, ऐसा शुद्ध द्रव्य है। आहाहा! राग को तो नहीं, पर्याय को तो नहीं परन्तु गुणभेद को (नहीं)। आहाहा! अर्थावबोधरूप गुण विशेष जिसे आलिंगन नहीं (करता), ऐसा वह शुद्धद्रव्य चमत्कारिक है। आहाहा! अब इसमें कहाँ समय कहाँ लेना इसे! उसे **परभावों से भिन्न —जानने का प्रयत्न करना चाहिए।** आहाहा! भाषा में क्या आवे? ज्ञायकस्वरूप ही है, उसे जानने का प्रयत्न करना चाहिए। आहाहा!

भेदज्ञान का अभ्यास करना चाहिए। भाषा तो देखो! राग से भिन्न का और पर्याय से भी भिन्न। आहाहा! ऐसा पर्याय में अभ्यास करना चाहिए। आहाहा! ऐसी बात है। मूल बात छोड़कर अभी सब बातें हैं। इतनी यह बात। आहाहा! मूल पूरा राजा पड़ा रहा। बादशाह तीन लोक का नाथ सर्वोत्कृष्ट पदार्थ (पड़ा रहा)। आहाहा! उसे **जानने का प्रयत्न करना चाहिए। भेदज्ञान का अभ्यास करना चाहिए। ज्ञायक आत्मा को पहिचानना चाहिए।** लो! इसका यह योगफल। ज्ञायक अनन्त-अनन्त चमत्कारिक शक्ति का पिण्ड प्रभु है, उसे पहिचानना चाहिए। आहाहा! पर्याय को उस ओर ढालना चाहिए। पर्याय में ऐसे पूर्ण स्वरूप का ध्येय बनाना चाहिए। आहाहा! पर्याय के ध्यान में, पूर्ण स्वरूप का ध्येय बनाना। यह भी कथन-भेद है, क्या हो? आहाहा! **ज्ञायक आत्मा को पहिचानना चाहिए।** आहाहा!

'ज्ञायकस्वरूप हूँ' ऐसा अभ्यास करना चाहिए,... अन्तर में चैतन्यचमत्कारिक शक्तिवाला तत्त्व, ऐसा जो ज्ञायकस्वभाव, उसे जानने का अभ्यास करना चाहिए। **उसकी प्रतीति करना चाहिए;...** आहाहा! अनन्त चमत्कारिक शक्ति उसमें भरी हुई है, ऐसा आत्मा, आहाहा! उसकी प्रतीति करना चाहिए। आहाहा! **प्रतीति करके उसमें स्थिर हो जाने पर,...** विश्वास... विश्वास करके, उसमें स्थिर हो जाने पर... आहाहा! **अनन्त चमत्कारिक शक्ति है... अनन्त चमत्कारिक शक्ति है, वह प्रगट अनुभव में आती है।** आहाहा!

मुमुक्षु : पहले अभ्यास कहा और फिर अनुभव।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा तो क्या ले ? इस ओर का अभ्यास। ज्ञायकस्वभाव को ध्येय में लेकर अभ्यास (करे)। आहाहा! क्या हो ? भाषा कितनी हो। आहाहा! **अनन्त चमत्कारिक शक्ति है वह प्रगट अनुभव में आती है।** आहाहा! दूसरा प्रश्न। ४२६ हुआ। अब छह बोल बाकी हैं।

प्रश्न—मुमुक्षु जीव पहले क्या करे ?

उत्तर—पहले द्रव्य-गुण-पर्याय—सबको पहिचाने। चैतन्यद्रव्य के सामान्यस्वभाव को पहिचानकर, उस पर दृष्टि करके, उसका अभ्यास करते-करते चैतन्य उसमें स्थिर हो जाये, तो उसमें जो विभूति है, वह प्रगट होती है। चैतन्य के असली स्वभाव की लगन लगे, तो प्रतीति हो; उसमें स्थिर हो तो उसका अनुभव होता है।

सबसे पहले चैतन्यद्रव्य को पहिचानना, चैतन्य में ही विश्वास करना और पश्चात् चैतन्य में ही स्थिर होना... तो चैतन्य प्रगट हो, उसकी शक्ति प्रगट हो।

प्रगट करने में अपनी तैयारी होना चाहिए; अर्थात् उग्र पुरुषार्थ बारम्बार करे, ज्ञायक का ही अभ्यास, ज्ञायक का ही मन्थन, उसी का चिन्तवन करे, तो प्रगट हो।

पूज्य गुरुदेव ने मार्ग बतलाया है; चारों ओर से स्पष्ट किया है ॥४२७॥

प्रश्न—मुमुक्षु जीव पहले क्या करे ? यहाँ तो समझाना है न! उसमें आता है द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान हो, वह ज्ञान एक अंग है। वह परलक्ष्यी है परन्तु एक अंग है। उसमें-कलश टीका में आता है। आहाहा! ऐसा द्रव्य है, देखो! द्रव्य-गुण-पर्याय जिसने जाना नहीं। समझ में आया ? उसमें है, कलश टीका। किसमें है वह ? पाँचवाँ श्लोक है न ? **व्यवहारनय हस्तावलम्ब है। जैसे कोई नीचे पड़ा हो तो हाथ पकड़कर ऊपर लेते हैं, वैसे ही गुण-गुणीरूप भेद कथन ज्ञान उपजने का एक अंग है।** फिर ज्ञान परलक्ष्यी, हों! आहाहा! है ? गुण-गुणीरूप भेद कथन—यह ज्ञान, वह आत्मा। ज्ञान, वह आत्मा।

ज्ञान उपजने का एक अंग है। उसका विवरण—जीव का लक्षण चेतना, इतना कहने पर पुद्‌गलादि अचेतन द्रव्य से भिन्नपने की प्रतीति उपजती है। देखा, वह यह प्रतीति। **इसलिए जब तक अनुभव होता है, तब तक गुण-गुणी भेदरूप कथन ज्ञान का अंग है।** व्यवहार। आहाहा! उसके ख्याल में पहले इतना आवे कि यह द्रव्य है, गुण है, पर्याय है। गुणी है और गुण है। इतना अभी सम्यग्ज्ञान नहीं परन्तु इस प्रकार से ख्याल में आने का एक अंग है। आहाहा! है?

ज्ञान का अंग है। व्यवहारनय जिनका हस्तावलम्ब है। वे कैसे हैं? विद्यमान ऐसी जो ज्ञान उत्पन्न होने पर प्रारम्भिक अवस्था उसमें निहित-रखा है पद-सर्वस्व जिन्होंने ऐसे हैं। भावार्थ इस प्रकार है-जो कोई सहजरूप से अज्ञानी हैं, जीवादि पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्याय-स्वरूप जानने के अभिलाषी हैं, उनके लिये गुण-गुणीभेदरूप कथन योग्य है। यद्यपि व्यवहारनय हस्तावलम्ब है... यह कहा, **तथापि कुछ नहीं,...** आहाहा! **नोंध (ज्ञान, समझ) करने पर झूठा है।** परन्तु इतना भेद। पहले ख्याल में आवे। शास्त्र लक्ष्य दिखाकर अलग रहते हैं। लक्ष्य, लक्ष्य, लक्ष्य। है वह लक्ष्य अभी परसन्मुख का, पर का परन्तु यह आत्मा है, ऐसा इसे भेदज्ञान का लक्ष्य होता है। वह लक्ष्य भेदज्ञान नहीं है परन्तु उसके लक्ष्य में ऐसा आता है कि यह भेदज्ञान ऐसा कहना चाहते हैं। वह भी एक परसन्मुख के ज्ञान को उपजने का एक अंग है। वह स्व नहीं है। आहाहा!

वे जीव कैसे हैं जिनके व्यवहारनय झूठा है? चेतना प्रकाश इतनी ही है शुद्ध जीववस्तु, उसको प्रत्यक्षपने अनुभवते हैं। आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है - वस्तु का अनुभव होने पर वचन का व्यवहार सहज ही छूट जाता है।** वचन का व्यवहार अर्थात् वह विकल्प छूट जाता है। आहाहा! व्यवहार का अर्थ यही किया है न? यद्यपि व्यवहारनय हस्तावलम्ब, व्यवहारनय अर्थात् जितना कथन। उसका अर्थ यही किया है न? आहाहा! कलश टीका भी की है न! आहाहा! **शुद्ध जीववस्तु, उसको प्रत्यक्षपने अनुभवते हैं। वस्तु का अनुभव होने पर वचन का व्यवहार सहज ही छूट जाता है।** अर्थात् गुण-गुणी भेद का विकल्प छूट जाता है, ऐसा कहते हैं परन्तु इतना अंग पहले आता है, शास्त्र सुनकर उसके ख्याल में बात इतनी लक्ष्य में होती है। एक ज्ञान का अंग है अर्थात् उस प्रकार के ज्ञान का अंग। वह सम्यग्ज्ञान, वह यहाँ नहीं है। समझ में आया? ऐसी बात है।

मुमुक्षु : परन्तु पहले किस प्रकार ख्याल आवे...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ख्याल आवे, बस इतना। शास्त्र बतावे वहाँ ख्याल (आवे)। इतना अंग है, वह भी फिर उससे तो भिन्न पड़ जाता है। **वस्तु का अनुभव होने पर वचन का व्यवहार सहज ही छूट जाता है। कैसी है वस्तु ? उत्कृष्ट है, उपादेय है। और कैसी है वस्तु ? द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से भिन्न है।** यह यहाँ बात है। समझ में आया ? लो !

मुमुक्षु जीव पहले क्या करे ? प्रथम यह लक्ष्य में ले। **पहले द्रव्य-गुण-पर्याय— सबको पहिचाने।** आहाहा ! **चैतन्यद्रव्य के सामान्यस्वभाव को पहिचानकर, उस पर दृष्टि करके,...** यह वस्तु। आहाहा ! द्रव्य-गुण-पर्याय सबको पहिचाने। आया न उसमें अंग ? अंग कहा न ? यह तो गुण-गुणी भेद (करने के अतिरिक्त) दूसरा कोई उपाय नहीं है। जैसे कहे, चेतनागुण है यह गुणी भगवान है। ऐसा एक उपजने का अंग है, परलक्ष्यी ज्ञान का अंग है; स्वज्ञान नहीं। ऐसा लक्ष्य आवे, फिर वह छूट जाता है। आहाहा !

चैतन्यद्रव्य के सामान्यस्वभाव को पहिचानकर,... पहिचाननेवाली है वह विशेष पर्याय है। समझ में आया ? आहाहा ! परन्तु पहिचानने में आता है वह चैतन्यद्रव्य का सामान्य स्वभाव। आहाहा ! **उस पर दृष्टि करके, उसका अभ्यास करते-करते चैतन्य उसमें स्थिर हो जाये,...** आहाहा ! **तो उसमें जो विभूति है...** तो उसमें जो विभूति है, चमत्कारिक शक्ति की विभूति है। आहाहा ! **वह प्रगट होती है।** वह विभूति अन्दर है, वह प्रगट होती है। आहाहा ! अनन्त चमत्कारिक विभूति अन्दर में है। उसके ऊपर दृष्टि देने से... आहाहा ! **उसमें जो विभूति है, वह प्रगट होती है।** उसमें जो विभूति है, वह प्रगट होती है। आहाहा ! कहो, पुनातर ! यह ऐसी बातें हैं। तुम्हारे यहाँ सब यह व्रत करो और अष्टमी तथा चौदस को होता है न तुम्हारे... पहले आये थे। जब (संवत्) १९८२ में, तब सब प्रौषध करे न आठम के। ताराचन्दभाई थे। बात होने पर हुई कि भाई ! यह विकल्प है वह तो सब पुण्यबन्ध का कारण है। देखो, तुम्हारे 'ज्ञानसागर' में। खबर है तुम्हारे पुनातर से किया हुआ है ज्ञानसागर। यह तो १९८२ की बात है देखो ! मन का भाव, वचन का भाव आदि है, वह तो पुण्य का कारण है, वह धर्म नहीं है। अरे ! महाराज ! लोग भड़केंगे। आहाहा ! परन्तु कहा देखो ! यह तुम्हारे ज्ञानसागर में ? पुनातर की ओर से छपा है, उसमें

लिखा है। मन सरल, वचन सरल, काया सरल, अविसंवाद – (ऐसे) चार बोल हैं। यह १९८२ में ताराचन्दभाई को कहा था। ताराचन्दभाई भड़के थे। भड़क गये थे क्योंकि बाहर से व्यवहार से कहनेवाले न, सूत्र के जाननेवाले, पढ़नेवाले, साधु को समझावे परन्तु व्यक्ति नरम व्यक्ति। बापू! भाई! यह सब विकल्प है। मन की सरलता शुभभाव भी बन्ध का कारण है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। **विभूति है, वह प्रगट होती है। चैतन्य के असली स्वभाव की लगन लगे, असली स्वभाव की लगन लगे, तो प्रतीति हो; उसमें स्थिर हो तो उसका अनुभव होता है।** विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल -६, गुरुवार, दिनाङ्क ०४-०१-१९७९
वचनामृत- ४२७ से ४२९ प्रवचन-१७९

४२७ वचनामृत है, है न? थोड़ा चला है। फिर से।

प्रश्न—मुमुक्षु जीव पहले क्या करे? जिसे मोक्ष की अभिलाषा है, उसे पहले क्या करना? यह पूछा है। जिसे आत्मा की मोक्ष–धर्मदशा, मोक्ष की जिसे अभिलाषा है, उसे प्रथम क्या करना चाहिए?

उत्तर—पहले द्रव्य-गुण-पर्याय—सबको पहिचाने। आत्मा द्रव्य क्या है, गुण क्या है और पर्याय क्या है, उसका ज्ञान करे। इस प्रकार समझाया है न? जैसे १३वीं गाथा में कहा न? '**भूदत्थेणाभिगदा**' नवतत्त्व को जानता है। इस प्रकार पहले द्रव्य अर्थात् आत्मा; अन्दर आत्मा द्रव्य अर्थात् क्या चीज़ है और उसमें गुण क्या चीज़ है और पर्याय क्या है। द्रव्य है, वह अनन्त गुण का पिण्ड है; गुण है, वह अनन्त शक्ति है और उसकी वर्तमान अवस्था, वह उसकी दशा है। इस प्रकार इन्हें—तीनों को पहिचाने। पहिचानकर **चैतन्यद्रव्य के सामान्यस्वभाव को पहिचानकर,...** यह बात सूक्ष्म है, लो! प्रथम में प्रथम यह करनेयोग्य है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव, वह तो शुभराग है। वह तो अनन्त काल में अनन्त बार हुए परन्तु यह आत्मा चैतन्यद्रव्य सामान्य जो त्रिकाली एकरूप है, उसे पहिचाने। ऐसी बात है। ओहो!

चैतन्यद्रव्य वस्तु जो आत्मा त्रिकाल है, वह सामान्य है, जो विशेष पर्यायरहित, गुणभेदरहित, रागरहित, निमित्तरहित है। आहाहा! ऐसा चैतन्य ज्ञायकस्वभाव जो भगवान जिनेश्वरदेव ने जिसे सामान्य ज्ञायकभाव कहा, उसे पहिचाने, लक्ष्य में ले। वर्तमान ज्ञान की पर्याय में उसे लक्ष्य में ले। आहाहा! है?

चैतन्यद्रव्य के सामान्यस्वभाव को पहिचानकर,... त्रिकाली ज्ञायकभाव नित्यानन्द प्रभु की पहिचान करे, **उस पर दृष्टि करके,...** यह ज्ञान करके दृष्टि करे, ऐसा कहते हैं। उसे

पहिचाने कि यह चैतन्य सामान्य एकरूप ध्रुव सदृश वस्तु है, उसका ज्ञान करके उसकी दृष्टि करे। आहाहा! यह करना है, बाकी तो सब बहुत अनन्त बार किया।

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

महाव्रत लिया, नग्नपना दिगम्बर अनन्त बार लिया परन्तु अन्दर आत्मा क्या चीज़ है, उसके अन्तरज्ञान बिना सब निरर्थक हो गया, चार गति में भटकने का (कारण हुआ)।

उसका अभ्यास करते-करते... चैतन्यसामान्य स्वभाव जो त्रिकाल है, उसके ऊपर अभ्यास करते हुए... आहाहा! **चैतन्य उसमें स्थिर हो जाये,...** आहाहा! ज्ञान की वर्तमान पर्याय में त्रिकाली को लक्ष्य में लेकर, उसमें दृष्टि करके, उसमें स्थिर हो। ज्ञान हुआ, प्रतीति हुई और स्थिर हो - स्वरूप-आचरण। ऐसी बात है। प्रथम जिसे सम्यग्दर्शन -धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म-दर्शन जो करना हो तो उसे धर्मी ऐसा ज्ञायकभाव... आहाहा! उसे पहिचानकर वहाँ दृष्टि देना और फिर उसमें स्थिर होना। आहाहा! है?

उसमें स्थिर हो जाये, तो उसमें जो विभूति है... आहाहा! भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता—ऐसी अनन्त-अनन्त विभूति आत्मा में भरी है। आहाहा! यह धूल की विभूति नहीं, अन्दर की विभूति। आहाहा! अनन्त ज्ञान, जिसे हद नहीं—ऐसा अनन्त ज्ञान, एक शक्ति। जिसका अनन्त आनन्द, वह आनन्द जिसकी शक्ति का पार नहीं। ऐसी-ऐसी अनन्त शक्ति का सागर, उस पर दृष्टि करने से। आहाहा! **विभूति है, वह प्रगट होती है।** जो शक्ति में स्वभाव है, उसे दृष्टि देने पर पर्याय में गुण के अंश प्रगट होते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। पहले यह भक्ति करना, पहले व्रत पालना, अपवास करना - ऐसा नहीं कहा। पहले द्रव्य, गुण, पर्याय को पहिचाने। (यहाँ से) शुरुआत की है। (समयसार) १७वीं गाथा में तो यह भी छोड़ दिया है, पहले से आत्मा को जानना चाहिए। (ऐसा वहाँ कहा है)। आहाहा!

भगवान आत्मा इन देह के परमाणु-मिट्टी से भिन्न, कर्म से भिन्न, अन्दर दया, दान और राग-द्वेष के परिणाम से भी भिन्न / पृथक्, एक समय की पर्याय जितना भी नहीं। आहाहा! सामान्य कहा न? वह त्रिकाल ज्ञायकभाव, त्रिकाल ध्रुवभाव, त्रिकाल सदृश

स्वभाव के ऊपर दृष्टि देकर स्थिर हो तो जो शक्ति जो अनन्त है, उसमें से पर्याय में विभूति प्रगट हो। सम्यग्दर्शन प्रगटे, सम्यग्ज्ञान प्रगटे, सम्यक्चारित्र, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, विभूति, विभु—ऐसी अनन्त शक्तियों का पिण्ड है, उस पर दृष्टि देने से उसकी पर्याय में अनन्त शक्ति में से व्यक्तरूप, प्रगटरूप पर्याय प्रगटे, उसका नाम धर्म है। आहाहा!

मुमुक्षु : दया, धर्म का मूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दया, यह दया। जितना, आत्मा जितना है, उतना उसे प्रतीति में लेना, वह स्व की दया है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! इसने अनन्त काल में अन्दर चैतन्यरत्न (है, उसे पहिचाना नहीं)। एक समय की वर्तमान पर्याय / अवस्था पर ही अनादि का लक्ष्य है। त्यागी हुआ, मुनि हुआ, दिगम्बर साधु हुआ, आहाहा! ग्यारह अंग का पठन किया परन्तु सब क्रीड़ा एक समय की पर्याय / अवस्था (के ऊपर रही)। पर्याय के अन्दर तल में ध्रुवस्वरूप भगवान सामान्य है, उस पर दृष्टि स्थापित नहीं की। आहाहा! इससे उसके स्वभाव की शक्ति प्रगट नहीं हुई। आहाहा! समझ में आया?

चैतन्य के असली स्वभाव की लगन लगे,... आहाहा! चैतन्य का असली कायमी स्वभाव, उसकी लगन लगे। आहाहा! है? **तो प्रतीति हो;...** तो वह स्वरूप ऐसा पूर्णानन्द है, उसका ज्ञान होने पर उसकी प्रतीति हो। आहाहा! ऐसी बात है। **उसमें स्थिर हो तो उसका अनुभव होता है।** पश्चात् अन्दर में एकाग्र हो और आनन्द का अनुभव (हो)। आहाहा! निर्विकल्प आनन्द का अनुभव हो, उसे चैतन्य की शक्ति की विभूति प्रगट हो, इसका नाम धर्म और मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! कल यहाँ तक तो आया था। यहाँ तक कल आया था।

सबसे पहले... उसमें पहले यह कहा था कि द्रव्य-गुण-पर्याय को पहले (जानना चाहिए)। अब यहाँ कहा कि **सबसे पहले चैतन्यद्रव्य को पहिचानना,...** अजीव को पहिचानना या भगवान को-तीर्थंकर को, केवली को पहिचानना, यह नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य-गुण-पर्याय में आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की बात है। पर के द्रव्य-गुण-पर्याय तो विकल्प है। यहाँ तो द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान (करे), वह भी अभी विकल्प

है। यहाँ तो स्वद्रव्य, गुण, पर्याय की बात है। उसमें से सामान्य पर दृष्टि देना—ऐसा कहा। आहाहा!

सबसे पहले चैतन्यद्रव्य को पहिचानना,... वहाँ पहले लिया, द्रव्य-गुण-पर्याय। एक समय में भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का पूर्ण स्वरूप है, उसे पहले पहिचानना। आहाहा! **चैतन्य में ही विश्वास करना...** आहाहा! यह भरोसा, बापू! यह कहीं साधारण बात नहीं है। आहाहा! अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण का पिण्ड प्रभु, उसे पहिचानकर उसका विश्वास करना कि यह तो महाप्रभु चैतन्य भगवान पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड है। ऐसे इसकी श्रद्धा / विश्वास करना। आहाहा! **और पश्चात् चैतन्य में ही स्थिर होना...** तीन बातें आ गयीं। ज्ञान, श्रद्धा और स्थिर होना। यह चैतन्यस्वरूप जो भगवान ज्ञाता अखण्डानन्द पूर्ण स्वरूप है, उसे पहिचानकर, उसकी प्रतीति करके, उसमें स्थिर होना, उसमें एकाग्र होना। आहाहा! ऐसी बात है। यह तो मुद्दे की रकम की बात है, भाई!

तो चैतन्य प्रगट हो,... भगवान शक्ति और स्वभावरूप है, उस पर प्रतीति आने से... आहाहा! जैसे पानी का... क्या कहलाता है वह? नल। वह पानी भरा हुआ है, उसे जरा ऐसे दबावे तो अन्दर से पानी निकलता है; इसी प्रकार भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उसे एकाग्रता से दबावे, आहाहा! तो पर्याय अन्दर से प्रगट होती है। ऐसी बात है। अनजान व्यक्ति को तो लगता है कि यह क्या है? ऐसी बातें कभी की नहीं और उसका अभ्यास (नहीं है)। अभी तो बाहर की प्रवृत्ति-यह किया और यह किया और यह किया। आहाहा! और करना है, वहाँ तो मरना है। सवेरे नहीं आया? राग के एक विकल्प को भी करना, वह स्वरूप तो ज्ञाता-दृष्टा है, उसमें विकार को करना वह तो मरना, शान्ति का नाश-घात करना है पर्याय में। आहाहा!

चैतन्य में ही विश्वास करना और पश्चात् चैतन्य में ही स्थिर होना... तो चैतन्य प्रगट हो, उसकी शक्ति प्रगट हो। ऐसा। चैतन्य प्रगटे अर्थात् चैतन्य की शक्तियाँ जो अनन्त गुण हैं, उसमें अन्तर्दृष्टि करने से पर्याय में अनन्त शक्ति की पर्याय प्रगट हो। सर्वगुणांश, वह समकित। आहाहा! **प्रगट करने में अपनी तैयारी होना चाहिए;...** आहाहा!

कोई दूसरे की सहायता मदद वहाँ काम नहीं आती, ऐसा कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र भी वहाँ कुछ (काम नहीं करते)। दिशा दिखाकर अलग रहते हैं। वहाँ तो स्वयं की तैयारी चाहिए। आहाहा! **प्रगट करने में अपनी तैयारी होना चाहिए; अर्थात् उग्र पुरुषार्थ बारम्बार करे,...** आहाहा! चैतन्यद्रव्य में ऐसे बारम्बार ऐसा प्रयत्न उस ओर करे। ऐसा उग्र पुरुषार्थ करे।

ज्ञायक का ही अभ्यास,... राग का नहीं, पर्याय का नहीं। पर्याय अभ्यास करे ज्ञायक का। पर्याय का अभ्यास नहीं परन्तु पर्याय अभ्यास करे ज्ञायक का। आहाहा! ऐसी बात है। पहले तो (बात) समझना कठिन पड़ती है। क्या कहते हैं? अनन्त काल से भटकता है। दिगम्बर जैन साधु भी अनन्त बार हुआ, शास्त्र का ज्ञान भी अनन्त बार ग्यारह अंग का किया। आहाहा! परन्तु चैतन्यवस्तु जो महाप्रभु है, उस पर नजर नहीं की। उसका स्वीकार, सत्कार नहीं किया और एक समय की पर्याय तथा राग का स्वीकार और सत्कार से मिथ्यात्व में भटकता है। आहाहा! मराठी आये हैं, वे भाषा नहीं समझते। यह भाषा तो एक तो जाने हिन्दी। मराठी आये हैं। आहाहा!

प्रगट करने में अपनी तैयारी होना चाहिए;... उसकी धुन लगनी चाहिए। ज्ञायक की ओर के अभ्यास में पुरुषार्थ की उग्रता चाहिए। आहाहा! **ज्ञायक का ही अभ्यास, ज्ञायक का ही मन्थन,...** जाननहार.. जाननहार.. जाननहार.. जाननहार... ऐसा जो ज्ञायकस्वभाव, उसका ही मन्थन। आहाहा! **उसी का चिन्तवन करे,...** मन्थन और चिन्तवन भेद पड़ा है, इतना अभी विकल्प है परन्तु वह करे।

मुमुक्षु : उसमें पर्यायदृष्टि की बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायदृष्टि छूट जाएगी। चिन्तवन करता है, इसके दो अर्थ हैं। एक चिन्तवन में चिन्तवन विकल्प भी है और एक चिन्तवन का अर्थ उसमें कहा है न? नियमसार, प्रायश्चित्त अधिकार में है न? यह चिन्तवन अर्थात् स्वरूप जो आनन्दस्वरूप है, उसमें एकाग्रता, वह चिन्तवन। तथा एक चिन्तवन विकल्प है कि यह ऐसा है, यह ऐसा है, ऐसा है। इस विकल्प से पार दूसरा चिन्तवन, वह एकाग्रता, उसे चिन्तवन कहा है। नियमसार में आता है, नियमसार। फिर कहते हैं, चिन्तवन करना अर्थात् चिन्तवन अर्थात् कि एकाग्र होना। अर्थात् कि चेतन को चेतना। आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वभाव में, अन्तर

में लक्ष्य करके एकाग्र होना, उसका नाम परमार्थ चिन्तवन है। विकल्प से चिन्तवन है, वह तो राग है। पहले आता है परन्तु वह कहीं वास्तविक निर्णय और वास्तविक अनुभव नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....पर्यायदृष्टि का।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस पर्यायदृष्टि का अर्थ ही यह पर्याय यहाँ झुकायी तो पर्यायदृष्टि छूट गयी। आहाहा! सूक्ष्म आता है। वर्तमान ज्ञान की प्रगट पर्याय है, उस पर्याय की दिशा को बदलना। जो परसन्मुख दिशा की दशा है, पर तरफ की दिशा की दशा है, वह स्वतरफ की दिशा की दशा करना। ऐसा है। दूसरा क्या हो? भाषा कितना काम करे? आहाहा!

मुमुक्षु : दिशा पलटने से दशा पलट जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पलट जाती है, कहा न! दिशा पलटे, तब दशा पलट गयी। दशा की दिशा स्व के ऊपर गयी, इसलिए दशा पलट गयी। आहाहा! **ज्ञायक का उसी का चिन्तवन करे, तो प्रगट हो।** यह बहिन ने स्वयं डाला, ऐसा कि मार्ग बताया है। चारों ओर से स्पष्टीकरण (करते हैं)। आहाहा! चारों ओर से इसे सामान्य क्या है, उसे बहुत पहलुओं से समझाया है। अब समझना तो इसको है। आहाहा! ४२७ (बोल) पूरा हुआ।

प्रश्न—आत्मा की विभूति को उपमा देकर समझाइये।

उत्तर—चैतन्यतत्त्व में विभूति भरी है। कोई उपमा उसे लागू नहीं होती। चैतन्य में जो विभूति भरी है, वह अनुभव में आती है; उपमा क्या दी जाये?॥४२८॥

४२८। प्रेमचन्दभाई नहीं आये तुम्हारे वे लन्दनवाले। यह तो कहा एकाध सुने और मौका आया है। प्रेमचन्द है, लन्दनवाले हैं... आहाहा! ४२८।...

प्रश्न—आत्मा की विभूति को उपमा देकर समझाइये। आत्मा की विभूति को उपमा देकर समझाओ...

उत्तर—चैतन्यतत्त्व में विभूति भरी है। कोई उपमा उसे लागू नहीं होती। आहाहा!

अनन्त-अनन्त चैतन्य की शक्तियों का सागर प्रभु है, उसे क्या उपमा, किसकी दें? आहाहा! उसकी उपमा उसे। आहाहा! **चैतन्यतत्त्व में विभूति भरी है।** आहाहा! द्रव्य अर्थात् क्या! आत्मा निश्चय स्वतत्त्व ध्रुव, वह क्या! आहाहा! और वह सामान्य अर्थात् कि जिसमें गुण का भेद भी नहीं। आहाहा! पर्याय भेद नहीं, राग भेद नहीं, गुण-गुणी का भेद भी नहीं। आहाहा!

यह तो आया है न अलिंगग्रहण में? अर्थावबोधरूप गुण विशेष आलिंगनरहित शुद्ध द्रव्य है। आहाहा! अर्थावबोधरूप गुण विशेष - अठारहवाँ बोल है। अलिंगग्रहण। बीस बोल हैं न? अर्थ आ गये हैं, सब व्याख्यान हो गये हैं। लिखते हैं कोई कहता था। व्याख्यान के अर्थ हुए हैं, उन्हें लड़के गुजराती में लिखते हैं। लिखते हैं, ऐसा कहते हैं...। हसमुख कहता था। चार महीने हो गये हैं और शक्ति का, नय के, अव्यक्त के व्याख्यान के गुजराती होते हैं। किसमें में से लिखते हैं?

मुमुक्षु : टेप में से।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें से? इसमें से उतारते हैं। वह हसमुख कहता था। आहाहा!

कहते हैं कि चैतन्यभगवान वस्तु है न? तत्त्व है न? अस्ति-सत्तास्वभावरूप वस्तु है न? उसकी सत्ता में अनन्त-अनन्त सत्ताएँ गुण की भरी हैं। विभूति कहो या गुण कहो। आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण की विभूति भरी है। आहाहा! एक-एक गुण की शक्ति अनन्त पर्याय होती है और एक-एक गुण की शक्ति अनन्त गुण के रूपपने है। आहाहा! आत्मा की अनन्त विभूति, उसमें एक-एक गुण जो है, उसकी पर्याय अनन्त होती हैं और एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। ऐसी जो चैतन्य विभूति। आहाहा! उसे क्या उपमा देना? वह चैतन्य विभूति, उसे कोई उपमा उसे लागू नहीं पड़ती।

चैतन्य में ही जो विभूति भरी है, चैतन्य में जो विभूति अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त आनन्द, अनन्त-अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, चारित्र / वीतरागता—ऐसी जो अनन्त शक्ति की **विभूति भरी है, वह अनुभव में आती है;...** आहाहा! उपमा क्या कहना? वह अनुभव में आती है, आहाहा! वेदन में आती है। है न? **उपमा क्या दी जाये?** उसे क्या उपमा देना। आहाहा! अनन्त-अनन्त विभूति जहाँ, आहाहा! चैतन्यतत्त्व अर्थात्

सर्वोत्कृष्ट तत्त्व, पूर्ण तत्त्व। एक समय में अनन्त गुण के अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण के रूप, एक-एक गुण में अनन्त-अनन्त गुण के रूप, ऐसा जो चैतन्य भण्डार पूर्ण। आहाहा! वह अनुभव में आ सकता है। समझ में आया? **उपमा क्या दी जाये?** आहाहा! अनुभवगम्य है, वह अनुभव से ज्ञात होता है। उसे उपमा क्या देना? आहाहा!

मुमुक्षु : रत्न की उपमा की दी है, रत्नत्रय।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नाम दिया जाता है कि यह चैतन्य रत्नाकर है परन्तु यह क्या है? आहाहा! चैतन्य रत्नाकर देव, वह तो विभूति भरी है, इतना। उपमा किसकी? जैसे समुद्र में अनन्त रत्न भरे हैं, असंख्यात भरे हैं। स्वयंभूरमण समुद्र में। उसमें अनन्त भरे हैं, परन्तु वह क्या? उसकी उपमा क्या लागू पड़े? स्वयंभू भगवान आत्मा स्वयं अपने से सिद्ध है। आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली तत्त्व, आत्मतत्त्व निश्चय। आहाहा! जिसमें केवलज्ञान की पर्याय भी नाशवान है, ऐसा जो भगवान पूर्ण तत्त्व अविनाशी। आहाहा! उसे क्या उपमा दी जाए? आहाहा! वह तो उसके सन्मुख से अनुभव हो, तब जानने में आता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : नमूना तो होवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नमूना, पर्याय में अनुभव आवे, वह नमूना। अनुभव में आवे, वह नमूना है। वही नमूना है परन्तु अनुभव कैसा? वह विभूति कैसी? कैसा उसका वैभव? उसे क्या कहते हैं? अनुभव में आवे वेदन में (आवे), तब वह पूरी चीज़ ऐसी है, ऐसी दृष्टि होती है। आहाहा! वह ज्ञान की धारणा का भी विषय नहीं है। वह तो ज्ञान की वर्तमान पर्याय में इतना सामर्थ्य है कि जो उसे जानने से अनन्त विभूति का ज्ञान होता है। अनन्त विभूति पर्याय में आती नहीं। आहाहा! अनुभव में वह पर्याय में वह स्वभाव अनन्त है, (ऐसा आता है)। तल में, पर्याय के तल में अन्तर आत्मा भगवान अनन्त-अनन्त विभूति से भरपूर है, उसका अनुभव होता है अर्थात् उसकी खबर पड़ती है। आहाहा!

मुमुक्षु : फिर तो किसी को पूछने नहीं जाना पड़ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूछने का क्या पूछे? हमारे पहले क्या करना? आत्मा को जानना। अब कैसे जानना? जानने का अर्थ ही वहाँ अनुभव करना, ऐसा है। आहाहा! १७ गाथा। वह ज्ञान की पर्याय में सदा, सर्वदा, सबको अनुभव में आता है, कहते हैं।

आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय का स्वभाव ही ऐसा है, भले वह परलक्ष्यी ज्ञान हो, परन्तु उस ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य इतना है। आहाहा! परलक्ष्यी ज्ञान के समय भी वह पर्याय द्रव्य को जानती है, ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा! यह क्या कहा?

(समयसार) १७ गाथा। सदा, सर्वदा, सबको, आबाल-गोपाल को। आहाहा! बालक से लेकर वृद्ध को, उसकी पर्याय में स्व-पर प्रकाशक होने से वह स्व अनुभव में आता है, तथापि उसका वहाँ लक्ष्य नहीं है। आहाहा! इसलिए वह अनुभव में आता है परन्तु आता नहीं। आहाहा! क्या कहा यह?

रागरहित ज्ञान की जो पर्याय है, भले राग हो उस काल में, उस ज्ञान की पर्याय में उसका स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है, इसलिए स्वद्रव्य तो ज्ञान में ज्ञात तो है। आहाहा! परन्तु उसका लक्ष्य वहाँ द्रव्य के ऊपर नहीं है। आहाहा! पर्याय में द्रव्य पूरा जानने में आता है। आबाल-गोपाल सबको (जानने में आता है)। आहाहा! उसका लक्ष्य, पर्याय उसे जानती है, उसके ऊपर लक्ष्य नहीं है, पर्याय का लक्ष्य पर्याय के ऊपर है; इसलिए पर्याय में जानने में आता होने पर भी उसे जानने में नहीं आता। आहाहा! शैली तो देखो! शैली! समयसार! गजब बात है। १७-१८ (गाथा)। सत्रह आने का धन्धा। बड़ा करोड़ों का धन्धा हो और सत्रह आना हो। हमारे वहाँ दुकान में बहुत पैसे पैदा होते थे, तब गिनते थे। सत्रह आना हुए हैं, ऐसा कहते थे। आहाहा! पहले बहुत वर्ष की बात है। पहले तीन वर्ष में पाँच हजार की आमदनी हुई थी, तब उसे कहा कि यह सत्रह आना हुआ। फिर तो आमदनी बढ़ गयी। यह तो सब बात धूल की है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें कुछ नहीं, भटकने का रास्ता है। अरे रे! यह बाहर के जड़ के ऊपर लक्ष्य है। जो ज्ञान में स्व का लक्ष्य है, आहाहा! लक्ष्य अर्थात् कि उसका अनुभव है। आहाहा! तथापि उसका लक्ष्य वहाँ नहीं है; यहाँ है—पर्याय में, राग में लक्ष्य है। आहाहा! क्या बात कही है! क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक उस पर्याय का स्वरूप ही इतना, ऐसा है। आहाहा! उस पर्याय की इतनी ताकत है। स्व-परप्रकाशक - स्व आत्मा भगवान ही पूरा ज्ञात होता है। आहाहा! जानने पर भी उसके ऊपर लक्ष्य नहीं

है; इसलिए जानता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लक्ष्य वर्तमान पर्याय और राग के ऊपर, शुभराग... आहाहा! विकल्प उठता है, उसके ऊपर इसका लक्ष्य है। आहाहा! इसलिए पर्याय में स्व और पर को जानने का स्वभाव होने पर भी, स्व को जानने की ओर का लक्ष्य नहीं है; इसलिए वह स्व में जानने का सामर्थ्य है, इसलिए यदि स्व-सन्मुख ढले तो स्व को जान सकता है। पर्याय में स्व को जानने का स्वभाव है, ऐसा ज्ञात होता है तो वह पर्याय ऐसे झुके तो वह ज्ञात होता है, ज्ञात होता है, वह जानने में आ जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह भाषा करे तो वह कहीं इससे-भाषा से कहीं मिले, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ईशारा...

पूज्य गुरुदेवश्री : ईशारा से भी वह तो दूसरी चीज़ है। लक्ष्य हो उतना। शास्त्र या गुरु उसे लक्ष्य करावे इतना बस। लक्ष्य अर्थात् अभी कि यह ऐसा है। इतना लक्ष्य पर्याय में परलक्ष्यी अभी लक्ष्य हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : १७-१८ गाथा में तो खूब चमत्कार दर्शाया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में देखे तब बताया है, उसे कहा जाए। तब व्यवहार से फिर गुरु को निमित्त से कहा जाए। इन्होंने हमें दिया। आता है न श्रीमद् में? 'वह तो प्रभु ने ही दिया वर्तूं चरणाधीन।' यह निमित्त से कथन है। आहाहा! उन्होंने बताया था, वैसा किया। इसलिए इसने किया, वह निश्चय हुआ, तब व्यवहार गुरु ने किया—ऐसा कहा जाता है। आहाहा! तब यह व्यवहार कहलाता है।

भाई में आता है, नहीं? सोगानी में। सोगानी में एक लेख है। ऐसा कि महाराज ने कहा, वह मैंने किया है। अब मुझे दूसरों को कहने का कुछ (है नहीं)। ऐसा कि तुम दूसरे को कहो। वह कहीं मेरा स्वभाव नहीं है, मेरे भाव में नहीं है। है न? उसमें कहीं है। द्रव्यदृष्टि प्रकाश में है। द्रव्यदृष्टि प्रकाश में है न, भाई? तुम ऐसा कि कहो न महाराज को जाकर। (तो कहा) यह मेरे स्वभाव में नहीं है। ऐसा लक्ष्य करके जाना, यह मुझमें नहीं है। आहाहा! है कहीं। द्रव्यदृष्टि प्रकाश में है।

मुमुक्षु : जाना यह ठीक या नहीं जाना यह ठीक।

पूज्य गुरुदेवश्री : आने-जाने की बात ही कहाँ है ? वह स्वयं ने जाना सो जाना। अब यह दूसरे को काम क्या है, उसे दूसरे को-दूसरे को बताकर कि मैंने जाना है। क्या कहा ?

मुमुक्षु : गुरु का उपकार मानने तो जाना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपकार, यह तो व्यवहार से विकल्प आवे, इसलिए यह तो कहा न ! यहाँ हुआ, तब निमित्त का उपकार है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। यही सब डालते हैं न वे ? पुरुषाकार लोक करके... समझे न ? 'परस्परोग्रहो जीवानाम्' सूत्र आता है न ? तत्त्वार्थसूत्र का। (परस्परोग्रहो जीवानाम्) । यह आता है पुस्तक, प्रत्येक में सबमें डालते हैं अभी-अभी। पूरा पुरुषाकार बनाकर एक दूसरे को उपग्रह (करना) । उपग्रह अर्थात् क्या है ? उपकार करे, इसका अर्थ कि यहाँ हुआ है, तब निमित्त को ऐसा कहने में आता है। यह सर्वार्थसिद्धि वचनिका में ऐसा अर्थ किया है कि भाई ! यह उपकार है, इसका अर्थ क्या ? यह स्वयं किया तब वे थे, इतना उन्होंने उपकाररूप से किया। उनसे कुछ हुआ है, ऐसा नहीं है। सर्वार्थसिद्धि वचनिका है न ? उसमें अर्थ किया है। परस्पर उपकार... यह रखते हैं परस्परोग्रहो जीवानाम्। एक दूसरे का उपकार, गुरु का उपकार... ऐसा रचते हैं।

मुमुक्षु : ....कार्य करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वयं करे, तब उसे कहने में आता है, बापू ! यहाँ तो गुण-गुणी के भेद का विकल्प छोड़े तब होता है। अब उसे सामने लक्ष्य रखकर होता है, (ऐसा नहीं बनता) । आहाहा ! अगम्य बातें हैं। आहाहा !

यही कहते हैं, चैतन्य में जो विभूति भरी है, वह अनुभव में आती है। उपमा क्या दी जाए ? आहाहा ! निर्विकल्प अनुभव में आवे, उसे कहना क्या ? आहाहा !

श्रीमद् ने ऐसा कहा न ? 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह न सके...' यहाँ तो वाणी और यह चैतन्य। वह जड़ और यह चैतन्य। पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। आहाहा !

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में
कह न सके वह भी श्री भगवान जो,
उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे ?

अनन्त वीर्य जागृत हुआ है। आहाहा ! कहते हैं कि वे भी कह नहीं सके। उस

स्वरूप को अन्य वाणी... अल्प पुरुषार्थी प्राणी साधक आदि उसे क्या कहे ? आहाहा !

अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो।

वह यह। आहाहा ! अनुभवगम्य है। ऐसा कहा जाता है सप्तभंगी आती है न जहाँ ? वहाँ व्यक्त-अव्यक्त की सप्तभंगी चले, तब ऐसा कहा जाता है। सप्तभंगी आती है न उसमें ? कथंचित् वक्तव्य, कथंचित् अवक्तव्य, कथंचित् वक्तव्य-अवक्तव्य से रहित। सप्तभंगी आती है न ? कथंचित् वक्तव्य, कथंचित् अवक्तव्य, कथंचित् वक्तव्य-अवक्तव्य, कथंचित् वक्तव्य-अवक्तव्य से रहित। ज्ञान को बतलाना हो तब... ऐई ! आहाहा ! ऐसा है।

यहाँ कहते हैं कि वह अनुभवगम्य है। वक्तव्य है, ऐसा कहाँ कहा है ? किस अपेक्षा से ? बापू ! वह तो व्यवहार बताया है। आहाहा ! वक्तव्य इतना सर्वथा-सर्वथा यदि वक्तव्य न हो तो उसे समझाने की बात ही न रहे। इतनी अपेक्षा। आहाहा !

शून्य-अशून्य चलता है न ? प्रवचनसार में सप्तभंगी। आहाहा ! अपने से अशून्य है, पर से शून्य है, इसकी सप्तभंगी। अपने से अशून्य है, भरपूर भगवान है। पर से शून्य है, पर से खाली है। आहाहा ! नय में आता है, नहीं ? नय में आता है, नहीं ? वक्तव्य और अवक्तव्य। नय-नय, सैंतालीस नय नहीं आते ? यह प्रवचनसार सैंतालीस नय में आता है। अस्तित्व-नास्तित्व ऐसा पहले लिया। पश्चात् गुणीनय और अगुणीनय और ईश्वरनय लिया। पश्चात् क्रियानय, ज्ञाननय, व्यवहारनय, निश्चयनय है न ?

शुरुआत में ही यह पहले लिया है। यह पहला देखो ! देखो ! यह लिया है। आत्मद्रव्य अस्तित्वनय से... लिया है न ? तीसरा (नय) और चौथा नास्तित्वनय से। आत्मद्रव्य अस्तित्व-नास्तित्वनय से। आत्मद्रव्य अवक्तव्यनय से युगपद... यह सातवें में आया और आत्मद्रव्य अस्तित्व अवक्तव्यनय से स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव... अवक्तव्य है। आहाहा ! है न ? आहाहा ! आत्मद्रव्य नास्तित्व अवक्तव्य, परद्रव्य से नास्ति है। आहाहा ! परन्तु अस्ति-नास्ति दोनों से कहा नहीं जा सकता, ऐसा है। ज्ञानप्रधान की बात है। यह तो ज्ञानप्रधान कथन है न ! नय है न। जहाँ शक्ति का वर्णन है, वह तो अकेला द्रव्यप्रधान। समयसार में (वर्णन है)। आहाहा ! ऐसा है। यह ४२८ हुआ। यह तो भरा हुआ, भरे हुए का आता है न ? जैसे जहाज भरा हुआ हो...

मुमुक्षु : भरे हुए जहाज की भाँति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह।

मुमुक्षु : शून्य और अशून्यनय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : शून्य, अशून्य। हाँ, हाँ, शून्य-अशून्य। यह निकालना है। भाव लक्ष्य में होता है। शून्य-अशून्यनय, हों! आहाहा! विकल्पनय, अविकल्पनय, नामनय, स्थापना। स्थापनानय से कहा जा सकता है। स्थापित किया जा सकता है। द्रव्यनय, भावनय, सामान्यनय। देखा? नित्यनय, अनित्यनय, सर्वगतत्व, असर्वगतत्व। शून्यनय, बस यह। आत्मद्रव्य शून्यनय से खाली घर की भाँति अकेला अमिलित भासित होता है। आत्मद्रव्य अशून्य... मुझे यह कहना है। वह अस्तित्व का नहीं। शून्यनय और अशून्यनय। शून्यनय से अर्थात् आत्मा पर से अत्यन्त शून्य है। आहाहा! खाली घर की भाँति। अशून्यनय से लोगों से भरे हुए जहाज की भाँति। यह लेना है, हों! बाह्य कहना था यह। बहुत नय हैं। ४२८ (बोला पूरा हुआ)।

प्रश्न—प्रथम आत्मानुभव होने से पूर्व, अन्तिम विकल्प कैसा होता है?

उत्तर—अन्तिम विकल्प का कोई नियम नहीं है। भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व की सन्मुखता का अभ्यास करते-करते चैतन्यतत्त्व की प्राप्ति होती है। जहाँ ज्ञायक की ओर परिणति ढल रही होती है, वहाँ कौन सा विकल्प अन्तिम होता है (अर्थात् अन्त में अमुक ही विकल्प होता है) ऐसा 'विकल्प' सम्बन्धी कोई नियम नहीं है। ज्ञायकधारा की उग्रता-तीक्ष्णता हो वहाँ 'विकल्प कौन सा?' उसका सम्बन्ध नहीं है।

भेदज्ञान की उग्रता, उसकी लगन, उसी की तीव्रता होती है; शब्द द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। अभ्यास करे, गहराई में जाये, उसके तल में जाकर पहिचाने, तल में जाकर स्थिर हो, तो प्राप्त होता है—ज्ञायक प्रगट होता है ॥४२९॥

४२९। **प्रश्न—प्रथम आत्मानुभव होने से पूर्व, अन्तिम विकल्प कैसा होता है ?** यह प्रश्न। यह वचनामृत तो पढ़ा होगा... प्रेमचन्दभाई ! बहिन के वचनामृत। अभी पहले याद किया था व्याख्यान के शुरुआत में। कहा, वे आये होते तो एकाध सुन जाए न यह। किस अर्थ में किस प्रकार आता है ? आहाहा ! लन्दन में पढ़ते हैं। **आत्मानुभव होने से पूर्व, अन्तिम विकल्प कैसा होता है ?** प्रश्न है।

उत्तर—अन्तिम विकल्प का कोई नियम नहीं है। आहाहा ! ऐसा ही विकल्प (होवे), कोई नियम नहीं है। कोई विकल्प यह हूँ—ऐसा होता है, कोई यह नहीं—ऐसा होता है। अनेक प्रकार के विकल्पों में ऐसा ही विकल्प अन्तिम होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है। आहाहा ! अन्तिम विकल्प होता अवश्य है परन्तु ऐसा ही होता है, यही होता है- ऐसा नियम नहीं है। आहाहा ! है विकल्प वह राग, कहीं राग से वह वस्तु प्राप्त नहीं होती परन्तु उसका अन्तिम विकल्प / राग कैसा होता है, यह भी निश्चित नहीं किया जा सकता। आहाहा ! यह क्या कहा ?

भगवान आत्मा आनन्दसागर नित्यानन्द प्रभु सामान्यस्वरूप, उसका विचार करते हुए अनेक विकल्प आते हैं परन्तु यह विकल्प अन्तिम शुभराग कैसा होता है ? है वह विकल्प शुभराग; परन्तु शुभराग कैसा होता है, इसका निर्णय नहीं है। इसका एकान्त नहीं कि ऐसा ही विकल्प आता है। आहाहा ! तथापि उस विकल्प से प्राप्त होता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा ! ऐसी बात है, बहुत सूक्ष्म बात, बापू !

मुमुक्षु : सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होता है, ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सविकल्प कहा न ! विकल्प ऐसा होता है, उसके द्वारा, उससे हटकर यहाँ जाता है, यह बताना है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी है न ? बताया था न ! उसमें आया है। सविकल्प द्वारा बताया है। है, सब ख्याल है। यह एक बात कहते हुए बहुत सब ख्याल मस्तिष्क में होता है। सब कहीं... आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं भगवान आत्मा शुद्ध पूर्ण आनन्दघन का अनुभव होने पर सम्यग्दर्शन होने पर अन्तिम विकल्प कैसा होता है, ऐसा शिष्य ने पूछा है। आहाहा ! तो यह विकल्प अन्तिम ऐसा ही होता है – ऐसा कोई नियम नहीं है। **अन्तिम विकल्प का कोई नियम नहीं**

है। **भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व की सन्मुखता का अभ्यास करते-करते...** देखा ? आहाहा ! जो राग है, उस ओर का लक्ष्य छोड़कर भेदज्ञान करने से, आत्मा की ओर अन्दर झुकाव करने से, राग से विकल्प चाहे जिस प्रकार का हो परन्तु उससे भी भेदज्ञान करना है। आहाहा ! यह विकल्प राग है, उससे भिन्न करना है। उसे साथ में लेकर भिन्न नहीं हुआ जाता। क्या कहा ? जो अन्तिम विकल्प है, वह यहाँ मदद करता है, ऐसा नहीं है क्योंकि उससे तो भिन्न करना है। आहाहा ! अन्तिम विकल्प का कोई नियम नहीं है। बहुत सूक्ष्म बातें, बापू ! इसमें इतनी समाहित हो गयी है। ओहोहो ! **भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व...** राग से भिन्न ऐसा जो भेदज्ञान, उससे **शुद्धात्मतत्त्व की सन्मुखता का...** शुद्धस्वरूप की सन्मुखता का। आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इस भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व का अनुभव होता है। पर से भिन्न पड़े, तब शुद्धात्मतत्त्व के सन्मुख होता है। राग से भिन्न पड़े, तब शुद्धात्मतत्त्व के सन्मुख होवे न ? राग है, वह तो परसन्मुख है। अब उससे भेद करता है, तब स्वसन्मुख होता है अर्थात् भेदज्ञानपूर्वक स्वसन्मुख होता है। बहुत सूक्ष्म बातें, बापू ! वीतराग का मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा ! उनके एक-एक शब्द में, अर्थ में बहुत गम्भीरता है। आहाहा ! भेदज्ञानपूर्वक। क्या कहा ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह काल काम में नहीं आता, यह भी विकल्प है। उससे भिन्न निवृत्ति का विकल्प जो है, किस प्रकार का है, उससे निवर्त होना, ऐसा विकल्प नहीं। परिणाम का... उसे परिणाम का ख्याल नहीं होता तब। परिणाम का ख्याल करने जाए तो अन्दर स्वसन्मुख नहीं होता। आहाहा ! इसलिए अनिवृत्तिकरणादि के परिणाम को समकिती, समकित पाते हुए जान नहीं सकता। आते हैं, हो जाते हैं, होते हैं। आहाहा ! आते हैं न ये ? आहाहा ! सब प्रकार है।

शुद्धात्म... भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व। ऐसे राग से भिन्न पड़ता है, तब शुद्धात्मतत्त्व की ओर झुकाव जाता है। ऐसा **अभ्यास करते-करते चैतन्यतत्त्व की प्राप्ति होती है।** लो !

ऐसी बात है। सूक्ष्म में सूक्ष्म विकल्प गुण-गुणी के भेद का, उस विकल्प से भी भिन्न पड़ने पर... ऐसे भिन्न पड़े, तब स्वसन्मुख होता है। आत्मा के स्वसन्मुख होता है। आहाहा! यह अभ्यास करने से तत्त्व की प्राप्ति होती है। आहाहा! संक्षिप्त भाषा में बहुत (कहा है)। शरीर, वाणी, मन तो कहीं एक ओर रहे परन्तु जो अन्तिम विकल्प है, उससे भी ऐसे भेद करने से, पृथक् करने से उसका लक्ष्य छोड़ने से, उसका लक्ष्य छोड़ा अर्थात् स्वसन्मुख हुआ।

मुमुक्षु : यहाँ अभ्यास करते-करते, ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह अभ्यास करते हुए। परसन्मुख के झुकाव को छोड़ते और स्वसन्मुख का झुकाव करते हुए। आहाहा!

जितने कोई मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन। अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥**' जो कोई अभी तक अनन्त (जीव) सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं, वे भेदज्ञान से प्राप्त हुए हैं अर्थात् पर से भिन्न पड़कर स्वसन्मुख होकर प्राप्त हुए हैं और '**अस्यैवाभावतो बद्धा**' कर्म के कारण नहीं। राग के भेदज्ञान का अभाव के कारण वे बन्धन में हैं। आहाहा! '**अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।**' जितने अनादिकाल के बँधे हुए हैं, वे भेदज्ञान के अभावरूप भाव से बँधे हुए हैं। आहाहा! कर्म से बँधे हुए हैं और कर्म के कारण (बँधे हैं), यह बात नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! यह वीतरागमार्ग तो अभी फेरफार हो गया है न, इसलिए एकदम सूक्ष्म पड़ता है। आहाहा!

भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व की सन्मुखता का अभ्यास करते-करते चैतन्यतत्त्व की प्राप्ति होती है। भगवान ज्ञायकस्वरूप की पर्याय में अनुभव की प्राप्ति होती है। आहाहा! भाषा क्या काम करे? भाषा जड़, चैतन्य अरूपी की बातें भाषा द्वारा करना! आहाहा! **जहाँ ज्ञायक की ओर परिणति ढल रही होती है,...** देखा! सन्मुखता की व्याख्या की है। ज्ञायकस्वभाव की ओर वर्तमान पर्याय की दशा ढल रही है। वर्तमान ज्ञान की पर्याय उस ज्ञायक की ओर ढल रही है, उस ओर ढल रही है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

ढल रही होती है, वहाँ कौन सा विकल्प अन्तिम होता है (अर्थात् अन्त में अमुक ही विकल्प होता है), ऐसा 'विकल्प' सम्बन्धी कोई नियम नहीं है। ज्ञायकस्वभाव

सन्मुख ढलते हुए अन्तिम कौन सा विकल्प होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है। आहाहा! आहाहा! ऐसा स्वरूप।

मुमुक्षु : टोडरमलजी ने तो लिया, मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ—ऐसा विचार....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प आता है परन्तु यह किस प्रकार का, ऐसा ही हो - ऐसा नियम नहीं है। किसी को गुणगुणी के भेद का विकल्प अन्तिम होता है। आहाहा! किसी को द्रव्य, गुण, पर्याय के भेद का अन्तिम विकल्प होता है, परन्तु सबको ऐसा ही होता है—ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा!

वहाँ कौन सा विकल्प अन्तिम होता है (अर्थात् अन्त में अमुक ही विकल्प होता है) ऐसा 'विकल्प' सम्बन्धी कोई नियम नहीं है। ज्ञायकधारा की उग्रता-तीक्ष्णता हो... आहाहा! ज्ञायकस्वरूप जो भगवान ज्ञानरस और चिदानन्दस्वरूप विज्ञानघन त्रिकाल। आहाहा! एक समय में पूर्ण ज्ञानघन, एक समय की पर्याय से भी भिन्न। जो पर्याय उसका लक्ष्य करती है, उस पर्याय से भी वह चीज़ भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है।

ऐसा 'विकल्प' सम्बन्धी कोई नियम नहीं है। ज्ञायकधारा की उग्रता... यह जाननस्वरूप ऐसा ज्ञायक जो ध्रुव नित्यानन्द प्रभु है, उसकी ओर के पुरुषार्थ की जो उग्रता—तीक्ष्णता। उग्रता की व्याख्या ऐसे लाईन करके की है। उग्रता अर्थात् क्या? तीक्ष्णता। आहाहा! ज्ञायकधारा की उग्रता। अन्दर अखण्डानन्द प्रभु ज्ञायकस्वभाव की ओर का पुरुषार्थ। **तीक्ष्णता हो वहाँ 'विकल्प कौन सा?' उसका सम्बन्ध नहीं है।** आहाहा! यह सम्यग्दर्शन होने पर, राग से भिन्न करने पर अन्तर सन्मुख होने पर अन्तिम कौन सा विकल्प है, ऐसा कोई नियम नहीं है। आहाहा! और यह विकल्प होता है तो भी उससे भेद करना है। अर्थात् वहाँ विकल्प का सहारा नहीं है। आहाहा! ऐसी वस्तु लोगों को कठिन लगती है। क्या हो? बापू! मार्ग तो यह है। उसकी यह विधि है। आहाहा!

भेदज्ञान की उग्रता,... अर्थात् स्वसन्मुख की दशा में भेदज्ञान की उग्रता है। राग से भिन्न पड़कर स्वसन्मुख की जो उग्रता है, **उसकी लगन,...** आहाहा! **उसी की तीव्रता होती है; शब्द द्वारा वर्णन नहीं हो सकता।** आहाहा!

मुमुक्षु : कथंचित् वक्तव्य है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कथंचित् कहलाये और कथंचित् न कहलाये और कथंचित् कहलाये-न कहलाये से पार है। ऐसी बात है। यह तो आया है, वक्तव्य-अवक्तव्य कहा न! जहाँ ज्ञानप्रधान कथन आवे, वहाँ ऐसा आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य को प्राप्त करना है तो विकल्प द्रव्य सम्बन्धी का होता है, गुण-पर्याय का किस प्रकार होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यसम्बन्धी का होता है, गुणसम्बन्धी का होता है, अखण्ड सम्बन्धी का होता है, सामान्यसम्बन्धी का होता है। आहाहा! परन्तु ऐसा ही हो, विकल्प अमुक प्रकार का (ही हो), ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे भिन्न करना है, इसलिए अमुक प्रकार का, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! हो गये चार। विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल -७, शुक्रवार, दिनाङ्क ०५-०१-१९७९
वचनामृत- ४२९ से ४३१ प्रवचन-१८०

वचनामृत ४२९। दूसरा पैराग्राफ है। दूसरा पैराग्राफ है न ? **भेदज्ञान की उग्रता,...** यहाँ से शुरु हुआ है। आहाहा! कहते हैं कि ज्ञायकस्वरूप जो प्रभु, वह पर्याय में प्राप्त हो, वह इसकी विधि क्या ? ज्ञायक जो त्रिकाली एक समय की पर्याय से भी भिन्न, वह पर्याय में ज्ञायक प्राप्त हो, यह तो मूल मुद्दे की बात है। आहाहा! यह भेदज्ञान की उग्रता चाहिए। विकल्प जो गुण-गुणी का भेद है, ऐसे विकल्प से भी भिन्नता का पुरुषार्थ अन्दर चाहिए। **भेदज्ञान की उग्रता, उसकी लगन,...** ज्ञायकस्वभाव ध्रुव है, उसमें उसकी लगन। आहाहा!

उसी की तीव्रता होती है;... उग्रता पहले कही, पश्चात् यहाँ तीव्रता शब्द प्रयोग किया है। उसकी ही अन्दर ध्रुवस्वभाव में उसे पकड़ने की उग्रता होती है। आहाहा! पकड़ती है वह पर्याय, ध्रुव को। आहाहा! परन्तु उसके अन्तर में जाने की जिसे उग्रता हो, तीव्रता हो, धगश हो। आहाहा! दूसरी बाहर से चाहे जो बात हो। जानपना कम हो, अधिक हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। राग की मन्दता चाहे जिस प्रकार की हो परन्तु उसके साथ सम्बन्ध नहीं है, उससे तो भिन्न करना है। आहाहा!

शब्द द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। राग से भिन्न और पर्याय से उसे पकड़ना। आहाहा! उसे शब्द से क्या कहा जा सकता है ? इशारा से कहते हैं। अभ्यास करे, तीव्र पुरुषार्थ से राग से भिन्न करने का, अन्तर्मुख होने का **अभ्यास करे, गहराई में जाये,...** आहाहा! पर्याय के ऊपर जो दृष्टि है, वह गहराई में जाए - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : द्रव्य में जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर ध्रुव में जाए, इस ध्रुव पर जाए। आहाहा! दृष्टि करती है पर्याय क्योंकि कार्य पर्याय में होता है। वेदान्ती पर्याय नहीं मानते, प्रगट पर्याय नहीं मानते। वह तो कूटस्थ वस्तु है, बस एक ही। परन्तु वह सामान्य है, यह निर्णय किसने किया ?

यह पर्याय अन्तर्मुख होकर निर्णय करती है। आहाहा! समझ में आया? यह तो एकदम मक्खन की बात है। आहाहा! **गहराई में जाये,...** अर्थात्? पर्याय जो बाह्य प्रगट है, उस पर्याय को अन्दर गहराई में ले जाए, ध्रुव की ओर ले जाए। आहाहा! क्या हो भाषा का? पर्याय है, वह ऊपर है, ऊपर तैरती है और पर्याय के अन्तर में, गहराई में ध्रुव है। आहाहा! उस पर्याय को गहराई में ले जाए, ध्रुव की ओर ले जाए। ऐसा सूक्ष्म है, बापू! आहाहा! **उसके तल में जाकर पहिचाने,...** तल है, वह तल। आहाहा! ध्रुव है, वह पर्याय का तल है। आहाहा! एक समय की पर्याय ऊपर-ऊपर तैरती है। उस पर्याय को गहराई में अर्थात् जो अन्तर में चीज़ है... आहाहा! वहाँ ले जाए। यह उसके तल में जाकर पहिचाने, ध्रुव में पर्याय को ले जाए और उसे पहिचाने। पहिचाने, वह पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? पहिचाने-ऐसा कहा न? तल में जाकर पहिचाने। ध्रुव की ओर दृष्टि करके उसे पहिचाने। ऐसा सूक्ष्म है। प्रेमचन्दभाई! मार्ग ऐसा बहुत सूक्ष्म, भाई! लन्दन में वाँचन करते हैं न!

उसके तल में जाकर पहिचाने,... अर्थात्? वर्तमान जो प्रगट पर्याय—ज्ञान है, वह तो पर के ओर की लक्ष्यवाली (पर्याय) है। बाद की पर्याय... आहाहा! उसे राग से भिन्न करने से द्रव्य की पर्याय जो होती है, उस पर्याय को तल में ले जाए। आहाहा! विशेष जो पर्याय है, उसे सामान्य जो ध्रुव, पर्याय के तल में ध्रुव है, अन्तर में है, बाह्य में तो, पर्याय के बाह्य में तो रागादि हैं परन्तु पर्याय को अन्तर में ध्रुव... आहाहा! पर्याय को ध्रुव में ले जाए और तल में ले जाए। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय को...

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं कि पहले राग से भिन्न पड़े और इस पर्याय के लक्ष्य में आवे, यह पर्याय उसमें झुकावे। आहाहा! ज्ञान की पर्याय राग से ऐसे पृथक् है। अब उस पर्याय को अन्तर में झुकावे। तल में ले जाए, ध्रुव में ले जाए। आहाहा!

मुमुक्षु : राग से पृथक् होवे, वह तो आत्मा की ओर झुक ही जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह पृथक् हुआ है, वह पहले भेद समझाना है, तथापि वह भेद हुआ है, वह पर्याय अन्तर में जाए, तब उसे-तल को-ध्रुव को पहिचाने। आहाहा! तल में महाप्रभु विराजता है। पर्याय के समीप में, अन्तर में, अन्तर्मुख में पर्याय के समीप में

अन्तर्मुख में। आहाहा! पूरा तत्त्व, शुद्ध तत्त्व प्रभु को निश्चय आत्मा कहते हैं; पर्याय को तो व्यवहार आत्मा कहा जाता है। आहाहा! और (समयसार) ११वीं गाथा के हिसाब से तो पर्याय को अभूतार्थ (अर्थात्) 'नहीं' ऐसा कहा जाता है। किस अपेक्षा से?

त्रिकाली ध्रुव की ओर दृष्टि कराने के लिये पर्याय नहीं है, पर्याय नहीं है, उसे गौण करने के लिये नहीं है - अभूतार्थ है। नहीं तो अभूतार्थ कहा पर्याय को। नहीं है—ऐसा कहा है परन्तु पर्याय को गौण करके उसका लक्ष्य छोड़ने को त्रिकाली ज्ञायकभाव को मुख्य करके निश्चय कराने को यह मुख्य, वह निश्चय है और पर्याय गौण करके, व्यवहार करके 'नहीं है' ऐसा कहा है। आहाहा! पर्याय है ही नहीं तो फिर काम तो पर्याय से होता है। प्रगट पर्याय नहीं है। आहाहा! बड़ा कठिन काम है। काम तो पर्याय में लेना है। आहाहा! यह तो धीर का काम है, भाई! आहाहा! कहो, भरतजी! नाम है, यह समझ में आता है या नहीं? आहाहा! सब लड़कों को पकड़ में आता है, अब बहुत लड़के बातें करते हैं। वह एक लड़का नहीं आया था, ...संजय नाम है, लड़का ठण्डा है, छोटी उम्र का अठारह वर्ष का। ज्ञायक जहाँ याद आता है और भारी आनन्द आता है। भाषा तो ऐसी ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. भगवान। तुम्हारा रिश्तेदार होता है न, लड़का नरम है। चम्पक के साथ आया था। यहाँ चम्पक रहता था न! फिर चला गया। आहाहा!

पहले ज्ञायक है यह वस्तु, ऐसा विकल्प से इसे ख्याल में आवे। ख्याल में आवे तो ज्ञान से। समझ में आया? परन्तु विकल्पपूर्वक इसे ज्ञान की पर्याय में यह वस्तु अन्दर ज्ञायक है, ध्रुव है, सदृश है, सामान्य है, एकरूप है। आहाहा! पर्याय को गहराई में, तल में ले जाकर... आहाहा! इससे दूसरी भाषा कितनी हो?

तल में जाकर पहिचाने,... पहिचानती है वह पर्याय। आहाहा! ऐसे पर्याय गयी, वह पर्याय नहीं। पर्याय गयी, वह पहिचाने। ध्रुव को कहाँ पहिचानना था? आहाहा! यह वहाँ से। इसलिए कहा है न वेदान्त में—पर्याय है ही नहीं। पर्याय नहीं है तो फिर एकरूप अभेद है, यह निर्णय किसमें किया? आहाहा! अभी बहुत वेदान्त का यह सुधरे हुए में बहुत प्रचार है, बाह्य में भी बहुत प्रचार है। हिन्दुस्तान में सुधरे हुए लोगों (को) बातें करना।

मुमुक्षु : अद्वैत....

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्वैत, बस। दो नहीं। आत्मा अनुभव करे, यह भी नहीं है - ऐसा इनकार करते हैं। आत्मा और अनुभव, यह तो दो हो गये। क्योंकि अनुभव तो पर्याय हो गयी। आहाहा! है न, जिसकी दृष्टि एकान्त है, उसे वह भासित नहीं होता। आहाहा! और उसे असत्य ही सत्य लगता है। आहाहा! उसके तल में जाकर, तल में जाए कौन? पर्याय। और पहिचाने कौन? पर्याय। आहाहा!

तल में जाकर स्थिर हो,... पहिचाना न। ज्ञान ऐसा हुआ और फिर अन्दर स्थिर हुआ, एकाग्र होता है। आहाहा! चार लाईन का है परन्तु पूरा सार है। आहाहा! **तल में जाकर स्थिर हो,...** ध्रुव में, पर्याय को ले जाकर यह है आत्मा - ऐसा पहिचानकर उसमें स्थिर हो, **तो प्राप्त होता है...** जो वस्तु ज्ञायक है, वह प्राप्त होती है अर्थात्? पर्याय में ज्ञात होती है। प्राप्त होती है अर्थात् पर्याय में ज्ञायक आ नहीं जाता। आहाहा! अरे! ऐसी बात है। ज्ञायक की पर्याय जो वर्तमान, उसमें ज्ञायक पर्याय को अन्तर में ले जाने पर तल में जाने पर पहिचाने और वहाँ स्थिर हो। वह भी पर्याय है। आहाहा!

ज्ञायक प्रगट होता है। प्रगट होता है की व्याख्या (यह की है) लाईन की है न लाईन? प्राप्त होता है अर्थात् क्या, ऐसा उसका अर्थ। **ज्ञायक प्रगट होता है।** आहाहा! ज्ञायक प्रगट होता है तो ज्ञायक है ही। ११वीं गाथा में आया था न? ११वीं (गाथा समयसार)। ज्ञायकभाव अज्ञानी को तिरोभूत है। उसे तिरोभूत है। वस्तु तो कहीं तिरोभूत (नहीं है)। वह है तो वह है। आहाहा! ११वीं गाथा। और जो यह भेद, राग से (पृथक्) पड़कर जहाँ शुद्ध का आश्रय लिया, वहाँ ज्ञायक आविर्भाव हुआ। ज्ञायक तो ज्ञायक ही हुआ, परन्तु ज्ञान में, ख्याल में आया कि यह ज्ञायक, यह आविर्भाव हुआ। आहाहा! कठिन काम है, भाई! मूल वस्तु को जानना अभी पहले यह रीति-उसकी पद्धति है, वह कठिन है। आहाहा!

स्थिर हो, तो प्राप्त होता है अर्थात् ज्ञायक प्रगट होता है। ऐसा यह इसका अर्थ है। अर्थात् कि पर्याय में ज्ञान ज्ञात होता है, वह ज्ञायक प्रगट होता है। पर्याय में ज्ञायक ज्ञात होता है, वह ज्ञायक प्रगट होता है - ऐसा कहा। ज्ञायक तो है वह है, प्रगट और अप्रगट उसमें कुछ है नहीं। आहाहा! द्रव्य जो ज्ञायक वस्तु है और उसका सत्त्व ज्ञायकभाव, वह

तो परिपूर्ण, परिपूर्ण एकरूप त्रिकाल शुद्ध है। उसे आवरण और उसे अनावरण—ऐसा शब्द उसे लागू नहीं पड़ता। समझ में आया? परन्तु वह जानने में नहीं आया था। पर्याय ज्ञायक को नहीं जानती थी, पर्याय पर्याय को जानती और राग को जानती थी। इसलिए उसे ज्ञायक ढँक गया। ऐसा इसकी पर्याय में आया नहीं, इसलिए ढँक गया, (ऐसा कहा जाता है)। आहाहा! और ज्ञान की पर्याय अन्तर में झुकाने से पर्याय में ज्ञायक ज्ञात हुआ, वह ज्ञायक प्रगट हुआ, ऐसा कहा जाता है। ज्ञायक तो द्रव्य है, वह है। आहाहा! कहो, शकुनचन्दजी! देव है न, बड़ा भगवान अन्दर। आहाहा! कहो, सुनायी देता है? समझ में आया या नहीं? मनुभाई! वहाँ कलकत्ता-बलकत्ता में कहीं (यह) बात नहीं मिलती। शशीभाई के भाई हैं, मूलजीभाई के पुत्र हैं। आहाहा!

अरे! प्रभु! तू कहाँ है? कि मैं तल में हूँ, ध्रुव में हूँ। उस तल में पर्याय को ले जाए तो उसे ज्ञायक के तल का ज्ञान होता है। आहाहा! सामान्य का ज्ञान विशेष में होता है। विशेष ज्ञान ध्रुव में झुके, तब विशेष में ध्रुव का ज्ञान होता है। वह ज्ञायक प्रगट हुआ, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसा है। यह ४२९ (बोल पूरा हुआ)।

प्रश्न—निर्विकल्प दशा होने पर वेदन किसका होता है? द्रव्य का या पर्याय का?

उत्तर—दृष्टि तो ध्रुवस्वभाव की ही होती है; वेदन होता है आनन्दादि पर्यायों का।

द्रव्य तो स्वभाव से अनादि-अनन्त है, जो पलटता नहीं है, बदलता नहीं है। उस पर दृष्टि करने से, उसका ध्यान करने से, अपनी विभूति का प्रगट अनुभव होता है॥४३०॥

४३०, **प्रश्न—निर्विकल्प दशा होने पर वेदन किसका होता है? द्रव्य का या पर्याय का?** आत्मा ज्ञायकस्वरूप भगवान की अन्तर में दृष्टि होने पर, निर्विकल्पदशा होने पर अर्थात् राग का विचार रागमिश्रित छूटकर भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप है। भगवान सर्वज्ञ ने देखा वैसा आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अन्दर है, उसकी निर्विकल्प दृष्टि होने

पर अर्थात् रागमिश्रित विचार छूटने पर। आहाहा! अकेली निर्विकल्प दृष्टि होने पर, निर्विकल्प दशा होने पर-ऐसा कहा है। आहाहा! अर्थात् क्या?—कि आत्मा जो आनन्दस्वरूप भगवान ध्रुवस्वरूप चेतनरूप अनूप अमूर्त, सिद्ध समान सदा पद मेरौ - ऐसा और चैतन्यभगवान पूर्णानन्द द्रव्यस्वभाव... आहाहा! उसकी निर्विकल्पदशा होने पर, उसका सम्यग्दर्शन... आहाहा! सम्यग्दर्शन अर्थात् निर्विकल्पदशा होने पर वेदन किसका होता है? कहते हैं। यह क्या कहते हैं? आत्मा जो नित्यानन्द ध्रुवस्वरूप प्रभु है, उसकी पर्याय में निर्विकल्पदशा हो, निर्विकल्प दृष्टि हुई, वह निर्विकल्पदशा हुई। सम्यग्दर्शन हुआ, वह निर्विकल्प दृष्टि है, निर्विकल्प दृष्टि है, वह निर्विकल्पदशा है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा स्वयं त्रिकाल निर्विकल्पस्वरूप है, उसकी दृष्टि होने पर निर्विकल्प दृष्टि होती है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन।

वह निर्विकल्प दशा होने पर किसका वेदन होता है? कहते हैं। ध्रुव का वेदन होता है या पर्याय का वेदन होता है? आहाहा! प्रश्न समझ में आता है? यह तो अन्दर मार्मिक शब्द हैं, भाई! यह कहीं कथा-वार्ता (नहीं है)। भक्ति करना, पूजा करना, स्तुति करना, स्तवन करना, इन सब विकल्प की यह बातें नहीं हैं। यह तो प्रभु आत्मा अन्तर के स्वरूप में जाने पर जो निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर, चौथा गुणस्थान होने पर, निर्विकल्प दृष्टि होने पर दशा निर्विकल्प हुई, उस निर्विकल्पदशा में वेदन दशा का है या वेदन ध्रुव का है? समझ में आया? प्रेमचन्दभाई! समझ में आती है न भाषा? निर्विकल्पदशा होने पर वेदन किसका होता है? द्रव्य का या पर्याय का? प्रश्न तो बराबर है। ऐसा कि निर्विकल्प दृष्टि हुई तो फिर अब वेदन किसका? द्रव्य का? द्रव्य की दृष्टि वह निर्विकल्प दृष्टि हुई। वस्तु जो त्रिकाल चैतन्य भगवान, सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा है वह (आत्मा) जिनेश्वर ने देखा आत्मा अन्दर पूर्णानन्द का नाथ। आहाहा! जो नित्यानन्द प्रभु है, उसकी दशा में निर्विकल्प दृष्टि होने पर वह दशा हुई, उस दशा में वेदन किसका है? द्रव्य का वेदन है या पर्याय का वेदन है? समझ में आया? यह तो मार्ग बापू! यह तो अन्तर की बातें हैं। आहाहा!

उत्तर... पहले प्रश्न समझ में आया? कि आत्मा ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्णानन्द है। उसके रागमिश्रित विचार छूटने पर स्वभाव पर दृष्टि पड़ने पर उसे रागरहित निर्विकल्प अभेददृष्टि सम्यक् होती है, सम्यग्दर्शन तो अभी चौथा गुणस्थान; पश्चात् श्रावक और मुनि

तो कहीं रहे, बापू! वह चीज़ तो आगे है। समझ में आया? वह निर्विकल्पदशा होने पर... दशा होने पर पूछा है। दृष्टि होने पर, ऐसा नहीं पूछा। वस्तु है, वह तो त्रिकाल निर्विकल्प सामान्य है। अब निर्विकल्पदशा होने पर... आहाहा! वेदन किसका होता है? द्रव्य का वेदन? अभी द्रव्य क्या और पर्याय क्या, इसकी खबर नहीं होती। जगत के पाप के कारण निवृत्त कहाँ है। ऐ मनुभाई! लड़के-लड़कियाँ नहीं, उसे भी फुरसत नहीं, निवृत्ति नहीं मिलती। पति-पत्नी दो व्यक्ति हों, तो भी निवृत्ति नहीं मिलती। बराबर है? भाई! आहाहा! कहते हैं, एक बार सुन तो सही, प्रभु! तू अन्दर कितना है और वेदन में क्या आता है? कितना तू अन्दर है, यह द्रव्य और पर्याय में वेदन किसका होता है? दशा होने पर वेदन किसका होता है?

उत्तर—दृष्टि तो ध्रुवस्वभाव की ही होती है;... आहाहा! पर्याय की दृष्टि जो है, वह तो ध्रुव के ऊपर ही होती है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि की दृष्टि, धर्म की पहली शुरुआत की मूल की दृष्टि। आहाहा! **दृष्टि तो ध्रुवस्वभाव की 'ही'...** त्रिकाल भगवान पूर्ण आनन्द ज्ञायकभाव। आहाहा! दृष्टि तो ध्रुव के ऊपर होती है, **वेदन होता है आनन्दादि पर्यायों का।** आहाहा! समझ में आया? सामान्य जो ज्ञायक त्रिकाल है, उसके ऊपर, दृष्टि तो उसके ऊपर धर्मी की है। उसे-धर्मी को सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! उसे धर्म की पहली शुरुआत वाला कहते हैं।

तो कहते हैं कि वह दशा हुई, उसमें दशा का वेदन पर्याय का है या द्रव्य का है? आहाहा! **दृष्टि तो ध्रुवस्वभाव की ही होती है;...** दृष्टि तो पर्याय है। वह पर्याय... आहाहा! दृष्टि अर्थात् पर्याय तो ध्रुवस्वभाव की ही होती है, दृष्टि द्रव्यस्वभाव-ध्रुव की होती है। **वेदन होता है आनन्दादि पर्यायों का।** प्रेमचन्दभाई! पकड़ में आता है? यह तो भाषा सादी है। लन्दन में पढ़ते हैं न भाई! इन्हें प्रेम है। ऐसी बात है, बापू! आहाहा! क्या हो? वेदन में आती है पर्याय; वेदन में द्रव्य नहीं आता। आहाहा! यदि सब पर्याय अन्दर में घुस गयी हो तो वेदन की पर्याय कहाँ रही? समझ में आया? आहाहा! बड़ा अन्तर अन्दर। अन्तर कितना है? पूछने में यह प्रश्न है।

शरीर, वाणी, मन, यह तो मिट्टी, धूल, जड़ हैं। यह तो मिट्टी, जड़, धूल। पैसा-बैसा

धूल तो कहीं रह गयी। वह तो भले करोड़ हो या पाँच करोड़ हो या दस करोड़ (हों), वह सब धूल कहीं रह गयी। वह कहीं आत्मा की नहीं और आत्मा में नहीं। अब आत्मा में पुण्य और पाप के विकार, वे भी उसमें नहीं हैं। अब उसमें हैं दो—एक सामान्य ध्रुव और एक विशेष पर्याय। समझ में आया? सामान्य जो त्रिकाली है अर्थात् ध्रुव ओर वर्तमान पर्याय विशेष है, वह पर्याय। अब दो हैं, उनमें दृष्टि ध्रुव के ऊपर होने पर भी वेदन किसका होता है? दृष्टि द्रव्य की हुई और सम्यग्दर्शन हुआ, निर्विकल्पदशा (हुई) तो दशा में, दशा का वेदन है या दशावान ध्रुव का वेदन है?

कहते हैं कि **दृष्टि तो ध्रुवस्वभाव की ही होती है;...** आहाहा! परन्तु **वेदन होता है आनन्दादि पर्यायों का।** अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय वीर्य की जो अवस्था वह वेदन में, पर्याय वेदन में है। पर्याय का वेदन है, ध्रुव का वेदन नहीं होता, तथापि दूसरी जगह वापस कहेंगे कि ध्रुव और पर्याय दोनों का वेदन है अर्थात् उस ध्रुव पर दृष्टि गयी न, इसलिए पर्याय में ध्रुव का सामर्थ्य ख्याल में आया न, इसलिए वह ध्रुव का वेदन है – ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? इसमें है आगे। ध्रुव और पर्याय दोनों इसमें है न? इसमें भी है। पहले में है।

मुमुक्षु : सोगानी में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोगानी में है। इसमें भी है। आहाहा! ध्रुव का वेदन होता है, ऐसा कहा जाता है। वह वेदन होता है अर्थात्? ध्रुव का वेदन नहीं होता परन्तु जो दृष्टि ध्रुव नहीं थी और पर के ऊपर थी, तब पर्याय एक का वेदन ऐसा था, यह राग का। इस ध्रुव पर दृष्टि होने पर ध्रुव का वेदन है, वह वेदन है तो पर्याय का। आहाहा! परन्तु उस ध्रुव के ओर की जोरवाली जो पर्याय है, इसलिए उसे ध्रुव का वेदन और पर्याय का वेदन दोनों कहा जाता है। समझ में आया? है तो पर्याय का वेदन। आहाहा! अब ऐसी बातें। वह तो भाई! यात्रा करो, भक्ति करो, व्रत करो, भगवान की पूजा करो। अब यह तो सब अनन्त बार किया है, सुन न! यह कहीं धर्म नहीं है। यह सब तो राग की क्रियाएँ हैं। आहाहा!

यहाँ तो राग से भिन्न पड़कर शुद्धस्वरूप की निर्विकल्प दशा हुई, जो रागवाली दशा, राग की एकता की बुद्धि की दशा थी, वह दशा। आहाहा! अब निर्विकल्प दशा हुई,

स्वरूप सन्मुख की एकाग्रता की रागमिश्रित विचार छूटकर स्वभाव की दृष्टि हुई, वह निर्विकल्पदशा हुई। अब दशा हुई, उसमें वेदन किसका ? कहते हैं। कि दशा हुई, तथापि दृष्टि तो ध्रुव के ऊपर ही है। वेदन में तो आनन्द और ज्ञान की पर्याय प्रगट व्यक्त है, वह वेदन में आती है। आहाहा! कहो, पण्डितजी! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : ध्रुव का वेदन माने तो कौन सी भूल होती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव का वेदन नहीं होता न! ध्रुव क्या (वेदन में आवे) ? वह तो सामान्य एकरूप है। परिणमता है, उसका वेदन होता है; नहीं परिणमता, उसका वेदन नहीं होता। जो बदलता है, उसका वेदन होता है। यह अभी कहेंगे, यहाँ बाद में कहेंगे। बहुत सरस बात आयी है। सहज आ गयी है। बहिन के उसमें से (स्वाध्याय में से) किसी ने पूछा होगा और आ गयी। यह लिखा गया, उन लिखनेवालों को भी कुछ खबर नहीं थी कि यह बाहर प्रकाशित होगी, कहनेवाले को भी कुछ खबर नहीं थी कि यह लिखा जाता है। आहाहा!

'सहज मिला सो दूध बराबर' आता है न ? माँगने आवे तब। 'खेंच लिया सो पानी, माँग लिया सो पानी, खेंच लिया सो रक्त बराबर, गोरख बोली वाणी।' आहाहा! 'सतिया सत् मत छोड़िये, सत् छोड़ पत जाए।' ऐसा बोलते थे। हमारे दुकान के पास आते थे न, हमेशा एक बाबा आवे। पालेज में रिवाज था। एक व्यक्ति दे उसे कुछ। प्रत्येक दुकान पर माँगने आवे, प्रतिदिन कोई फकीर हो या बाबा हो, रोज आवे। एक पैसा दे उसे बस। तब तो सत्तर वर्ष पहले की बात है। पैसा दे, बस प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। डेढ़ सौ घर हों (तो) डेढ़ सौ पैसा आवे। आहाहा!

वह ऐसा बोलता था।

सत्या सत् मत छोड़िये, सत् छोड़े पत जाये,
सत् की बाँधी लक्ष्मी फिर मिलेगी आये॥

सत् स्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि न छोड़। इस सत् की दृष्टि कर। आहाहा! यह दृष्टि करने से तुझे निर्विकल्पदशा में आनन्द आदि का वेदन आयेगा, ध्रुव का वेदन नहीं। आहाहा! सामान्य जो द्रव्य है। सामान्य है, वह तो एकरूप है, वह

रहेगा। एकरूप में वेदन कैसा ? बदले उसका वेदन होता है। आहाहा! यह क्या कहते हैं ? यह किस प्रकार का धर्म ? बापू! यह वीतराग का धर्म ऐसा है, भाई! आहाहा! कपूरभाई! यह ऐसी बात है। वहाँ कहीं कलकत्ता में नहीं है। आहाहा! प्रभु! प्रभु! तू कहाँ है ? यह है, उसे जाना, निर्विकल्पदशा हुई तो प्रभु कहते हैं कि यहाँ प्रश्न करते हैं कि निर्विकल्पदशा हुई, उस निर्विकल्पदशा में द्रव्य का वेदन है या पर्याय का ? कि भाई! द्रव्य के ऊपर दृष्टि तो वहाँ है। उसका वेदन नहीं है। दृष्टि तो द्रव्य के ऊपर ही है, अन्दर से जम गयी है। आहाहा!

वेदन होता है आनन्दादि पर्यायों का। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द जो शक्तिरूप था, वह निर्विकल्पदशा होने पर व्यक्तरूप से अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, अतीन्द्रिय ज्ञान का वेदन, अतीन्द्रिय सम्यग्दर्शन का वेदन, अतीन्द्रिय प्रभुता का वेदन, अतीन्द्रिय स्वच्छता का वेदन, अतीन्द्रिय कर्ता-कर्म आदि पर्याय का वेदन पर्याय में होता है। समझ में आया ? कहो, मनुभाई! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : यही बात करने और सुनने योग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे रे! बापू! ऐसा मनुष्यपना अरे! कब मिलेगा ? भाई! आहाहा! यह तो आता है न, भाई! यह भव, भव के अभाव के लिये भव है। बापू! इस भव को भोगने के लिये भव नहीं है। आहाहा! भव, भव के अभाव के भोगने के लिये यह भव है। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्रुव भोग में आ जाए तो उसका नाश हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव है, परन्तु वह तो एकरूप है। पलटता हो, उसका वेदन होता है; नहीं पलटता, उसका वेदन क्या ? समझ में आया ? यह नीचे कहेंगे।

द्रव्य तो स्वभाव से अनादि-अनन्त है... देखा ? वस्तु जो भगवान आत्मा है, वह तो स्वभाव से अनादि-अनन्त है। जो बदलता नहीं, देखा ? आहाहा! इसमें मूल तो पूरा सिद्धान्त आता है। जो ध्रुव है, वह तो बदलता नहीं, पलटता नहीं। बदलता नहीं, पलटता नहीं, उसका वेदन क्या ? आहाहा! समझ में आया ? न्याय से, लॉजिक से पकड़ में आये ऐसा है। पहले इसके ख्याल में तो बात आना चाहिए। आहाहा!

स्वभाव से द्रव्य तो भगवान आत्मा कहीं नया हुआ नहीं। अनादि का है, अनन्त

काल है, वह द्रव्यस्वरूप तो है, वह है। उस द्रव्य को तो आवरण भी नहीं और अनआवरण होना, वह नहीं। आहाहा! द्रव्य तो अनादि-अनन्त है। उसकी आदि नहीं और अन्त नहीं। आहाहा! **जो पलटता नहीं है,...** आहाहा! जो सामान्य ध्रुव है, वह पलटता नहीं, बदलता नहीं। आहाहा! **बदलता नहीं है। उस पर दृष्टि करने से,...** जो बदलता नहीं, उस पर दृष्टि करने से-बदलती दृष्टि को उस पर ले जाने से। आहाहा! पलटती दशा को नहीं पलटते तत्त्व पर ले जाने से। आहाहा! **उस पर दृष्टि करने से, उसका ध्यान करने से,...** आहाहा! ध्यान, वह पर्याय है परन्तु उसका ध्यान अर्थात् ध्रुव का। ध्यान की पर्याय में ध्रुव को दृष्टि में लेने से, लक्ष्य में लेने से। आहाहा! बहुत थोड़े शब्द में... **उसका ध्यान करने से,...** आहाहा! अरे! ऐसा सुनने को मिलता नहीं और जिन्दगी अकेली मजदूरी कर-करके चली जाती है। प्रेमचन्दभाई! यह सब संसार की मजदूरी है भले करोड़पति हो सब भिखारी, मजदूर पूरे दिन यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... राग को करूँ, द्वेष को करूँ, यह करूँ। आहाहा! भिखारी अन्तर की लक्ष्मी की उन्हें खबर नहीं, बाहर की लक्ष्मी को अपना मानकर भीख माँगता है, भगवान। आहाहा! भगवान, भगवान के पूर्ण गुणों से भरपूर है, पूर्ण लक्ष्मी से भरपूर ध्रुव है। आहाहा! उस पर दृष्टि होने से जो बदलता नहीं उस पर दृष्टि होने से, जो पलटता नहीं उस पर दृष्टि होने से। उस पर दृष्टि क्या? उसका ध्यान करने से, आहाहा! ध्रुव त्रिकाल परमात्मा सामान्य और विशेष स्वरूप है। उसे विशेष को... विशेष वह ध्यान, उसे ध्यान में ध्येय द्रव्य को लेने से। आहाहा! **अपनी विभूति का प्रगट अनुभव होता है।** आहाहा! थोड़े शब्दों में।

फिर से **द्रव्य तो स्वभाव से अनादि-अनन्त है...** भगवान आत्मा का कोई कर्ता नहीं। कोई ईश्वर-विश्वर (कर्ता नहीं)। क्योंकि वह नया नहीं हुआ। वह तो अनादि है। है, उसे आदि क्या? है, उसका नाश क्या? है, उसके स्वभाव की पूर्णता में कमी क्या? आहाहा! वह तो पूर्ण स्वभाव से भरपूर भगवान नित्य उदयरूप है। वह आ गया है। नहीं? आहाहा! **उस पर दृष्टि करने से,...** आहाहा! **उसका ध्यान करने से,...** दृष्टि करने से अर्थात् उसका ध्यान करने से। ध्यान का विषय ध्रुव को बनाने से। उसमें है परमाध्यात्मतरंगिणी (में) दो-तीन जगह (आता है)। पर्याय ध्यान है, उसका विषय ध्येय ध्रुव को बनाने से। पर्याय ध्यान है, उसका विषय ध्रुव बनाने से. आहाहा! अब ऐसी बातें। वह तो एकेन्द्रिय,

दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौन्द्रिय,... मिच्छामि दुक्कडम्, जाओ। तस्सूत्तरी सामायिक हो गयी। धूल में भी नहीं बापू! सामायिक नहीं और वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! राग का करना और जड़ की क्रिया करना... आहाहा! भाई! कल कहते थे न? प्रेमचन्दभाई। वहाँ सब क्रियाकाण्ड का है। कल कहते थे। सब क्रियाकाण्ड-यह करो.. यह करो... यह करो... वह भी सच्ची सरीखी कहाँ है। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम भी जैसे चाहिए वैसे, व्यवहार से अज्ञानमय जैसे भी कहाँ हैं। आहाहा! क्या हो? प्रभु! लज्जा आती है, कहते हुए लज्जा आती है प्रभु तेरे स्वरूप की भूल बताते हुए (लज्जा आती है)। आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! अन्दर अनादि-अनन्त वस्तु है, वह तो बदलती नहीं, पलटती नहीं, पर्याय में आती नहीं, परिणमन उस ध्रुव का होता नहीं। आहाहा! **उसका ध्यान करने से,...** बदलती नहीं और पलटती नहीं, उसका ध्यान करने से। ध्यान है, वह पर्याय पलटती है। परन्तु नहीं बदलता, उसका ध्यान करने से (अपनी विभूति प्रगट होती है)। आहाहा! बहुत संक्षिप्त शब्दों में (सूक्ष्म बात है)। अपने आप पढ़ जाए प्रेमचन्दभाई! यह तो बहुत समझ में आये ऐसा नहीं है, तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। भाई कहते थे दो बार पढ़ा है। आहाहा! लन्दन में दो बार पढ़ा है। आहाहा! वह तो पूरा अनार्यदेश है। वहाँ ईसाई का जोर अधिक है। आहाहा! ईसाई ईशु ईश्वर का अवतार था। धूल भी नहीं। ईश्वर का पुत्र था। आहाहा! वह अलग बात है। गणधर हैं, वे तो सर्वज्ञ के पुत्र हैं। पिता पूर्ण दशा हो, तब हो जाएँगे। आहाहा!

अरे! समकिती भी लघुनन्दन है। गणधर हैं, वे बड़े नन्दन हैं। आहाहा! भगवान आत्मा का स्वरूप पूर्ण, जिसके अनन्त... अनन्त... अनन्त गुणों का पार नहीं होता। ऐसे अनन्त गुण का धारक ध्रुव, जो पलटता नहीं, बदलता नहीं, फिरता नहीं। उसकी दृष्टि करने से और उसमें ध्यान को ले जाने से... आहाहा! अपनी विभूति जो अन्दर अनन्त आनन्द आदि भगवान आत्मा में भरे हैं, त्रिकाल आनन्द भरा है, वैसी विभूति प्रगट होती है। आहाहा! उस पर्याय में उसकी विभूति प्रगट होती है और उस पर्याय का उसे वेदन होता है। प्रगट होती है, उसका उसे वेदन होता है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, भाई! बापू! भाव तो जो हो वह हो, दूसरा क्या लावे? आहाहा!

उस पर्याय के अनुभव की व्याख्या की है अर्थात् **उसका ध्यान करने से, अपनी**

विभूति... आहाहा ! अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द आदि अनन्त-अनन्त गुण का भण्डार प्रभु ध्रुव है, उसका ध्यान करने से, दृष्टि उस पर ले जाने से अनन्त विभूति जो शक्ति है, उसकी अनन्त शक्तियों में से प्रत्येक शक्ति की पर्याय की व्यक्तता विभूति प्रगट होती है। आहाहा ! यह आत्मा का वैभव है। आहाहा ! रागादि उसका वैभव नहीं है, शरीरादि का नहीं है, लक्ष्मी, धूल का तो कहीं रह गया। आहाहा ! बड़े उद्योगपति ये चालीस करोड़ के और धूल करोड़ के उद्योगपति ! इन्होंने उद्योग बहुत बढ़ाया। माँ-बाप के पास कुछ नहीं था, फिर बढ़ाया और फिर ऐसा किया और... धूल भी नहीं किया। उसका कर्ता होकर मान्यता एक मिथ्यात्व थी। आहाहा !

मुमुक्षु : भले मिथ्यादृष्टि रहा परन्तु रुपयेवाला तो है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपयेवाला नहीं, रागवाला नहीं। वह ध्रुववाला है। पर्याय में वह ध्रुववाला है। आहाहा ! अब ऐसी बातें दुनिया से अलग प्रकार की लगती हैं। दुनिया को जानते नहीं ? सबको जानते हैं। श्रीपालजी ! कहते थे, यहाँ आने का बहुत मन हो जाता है। दिल्ली। आहाहा !

प्रभु ! तू कौन है ? कहाँ है ? भाई ! यह सब... आहाहा ! श्मशान में जैसे मर गये हुए की हड्डियाँ होती हैं, उसमें से फासफूस ऐसे चमक-चमक-चमक होती है। क्या कहलाती है वह ? फॉसफरस (चमक-चमक) आहाहा ! इसी प्रकार यह जगत की सब यह चमक-चमक श्मशान की है। यह पैसा, स्त्री, पुत्र, परिवार और इज्जत... आहाहा ! भाई ! यह बाहर की चमक सब चमक फॉसफरस है। तेरी अन्दर की चमक कोई अलग है, भाई ! आहाहा ! वह चमक तूने प्रगट नहीं की, प्रभु ! आहाहा !

मुमुक्षु : वह सब चमक आप दिखाओ तब न....

पूज्य गुरुदेवश्री : देखनेवाला देखे तब न ! यह कहा न ?

उस पर दृष्टि करने से,... कोई करावे उसे ? आहाहा ! उसकी **अपनी विभूति का प्रगट अनुभव होता है।** प्रगट अनुभव होता है, वह पर्याय में वेदन में आता है, ऐसा कहा। आहाहा ! गुण और द्रव्य तो ध्रुव है, उनका वेदन नहीं होता। दृष्टि ध्रुव के ऊपर होती है परन्तु वह दृष्टि है, वह पर्याय है, पलटती पर्याय है और उसका विषय है, वह नहीं पलटता सामान्य

ध्रुव है। आहाहा! ऐसा प्रगट अनुभव होता है। अपनी विभूति का पर्याय में प्रगट अर्थात् शक्ति में व्यक्त प्रगट अनुभव होता है। विभूति का। विभूति त्रिकाल, उसका प्रगट अनुभव शक्ति में से सम्यग्दर्शन होने पर, सम्यग्ज्ञान होने पर, निर्विकल्पदशा होने पर, निर्विकल्प दृष्टि द्रव्य पर पड़ने से.. आहाहा! उसकी पर्याय में प्रगट विभूति, प्रगट अनुभव होता है। आहाहा! अब ऐसी सादी भाषा, एकदम गुजराती भाषा, सादी भाषा और अकेला मक्खन है। आहाहा! यह ४३० हुआ। ४३१। बहुत सरस बात कही। आहाहा! कोई व्यक्ति ऐसा माने न कि भाई! पर्याय है, वह तो अन्तर में घुस गयी है। पर्याय है, वह तो अन्तर में घुस गयी है सब। वेदन में पर्याय कहाँ रही उसे?

मुमुक्षु : ऐसा भी कहा जाता है कि पर्याय को द्रव्य में अभेद करो तो अनुभव होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद का अर्थ (यह है कि) पर्याय वहाँ जाए, वहाँ अनुभव पर्याय का होता है। अनुभव पर्याय का होता है, द्रव्य का नहीं होता। चैतन्य सामान्य में सब पर्यायें अन्दर में होवे तो यह सामान्य है, ऐसा निर्णय किसने किया? समझ में आया? वह बात है यह। आहाहा! विशेष है, उस विशेष में द्रव्य का निर्णय हुआ। आहाहा! बड़ा अन्तर है। पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि द्रव्य ध्रुव वस्तु है, प्रभु अनादि-अनन्त नहीं पलटता तत्त्व है। उस पर दृष्टि तो वहाँ है परन्तु उस पर दृष्टि होने से पर्याय में विभूति—प्रगट अनुभव होता है। शक्तिरूप से जो अनन्त विभूति है, उसका पर्याय में प्रगट अर्थात् व्यक्तरूप से अनुभव पर्याय में होता है। कहो समझ में आया? आहाहा! अब प्रश्न है।

प्रश्न—निर्विकल्प अनुभूति के समय आनन्द कैसा होता है?

उत्तर—उस आनन्द की, किसी जगत के—विभाव के—आनन्द के साथ, बाहर की किसी वस्तु के साथ, तुलना नहीं है। जिसको अनुभव में आता है, वह जानता है। उसे कोई उपमा लागू नहीं होती। ऐसी अचिन्त्य अद्भुत उसकी महिमा है॥४३१॥

प्रश्न—निर्विकल्प अनुभूति के समय आनन्द कैसा होता है ? आहाहा ! अकेला मक्खन है अन्त में। आहाहा ! निर्विकल्प अनुभूति। आहाहा ! है तो पर्याय, निर्विकल्प अनुभूति वह तो पर्याय है। उस समय आनन्द कैसा होता है ? आहाहा !

उत्तर—उस आनन्द की, किसी जगत के—विभाव के—आनन्द के साथ, बाहर की किसी वस्तु के साथ, तुलना नहीं है। आहाहा ! **उस आनन्द की,...** आहाहा ! आनन्द के वेदन का, हों ! आनन्द गुण तो त्रिकाल है परन्तु आनन्द अनुभव करने पर अनुभूति के समय की बात करनी है न ? त्रिकाली आनन्द की अनुभूति के समय पर्याय में आनन्द कैसा होता है ? **उस आनन्द की, किसी जगत के—विभाव के—आनन्द के साथ,...** आहाहा ! **बाहर की किसी वस्तु के साथ, तुलना नहीं है। जिसको अनुभव में आता है, वह जानता है।** आहाहा !

उसे कोई उपमा लागू नहीं होती। क्या उपमा दे ? आहाहा ! **ऐसी अचिन्त्य अद्‌भुत उसकी महिमा है।** किसकी ? निर्विकल्प अनुभव में आनन्द हो उसकी। आहाहा ! सम्यग्दर्शन के काल में, निर्विकल्प दृष्टि के काल में जिसका अनुभव है, वह कैसा है ? कि वह तो अचिन्त्य अद्‌भुत उसकी महिमा है, बापू ! लो ! ४३१ हुआ। अब एक बोल रहा है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

पौष शुक्ल -८, शनिवार, दिनाङ्क ०६-०१-१९७९
वचनामृत- ४३२ प्रवचन-१८१

प्रश्न—आज वीर निर्वाण दिन के प्रसंग पर कृपया दो शब्द कहिये।

उत्तर—श्री महावीर तीर्थाधिनाथ आत्मा के पूर्ण अलौकिक आनन्द में और केवलज्ञान में परिणमते थे। आज उनने सिद्धदशा प्राप्त की। चैतन्यशरीरी भगवान आज पूर्ण अकम्प होकर अयोगी पद को प्राप्त हुए, चैतन्यपिण्ड पृथक् हो गया, स्वयं पूर्ण चिद्रूप होकर चैतन्यबिम्बरूप से सिद्धालय में विराज गये; अब सदा समाधिसुख-आदि अनन्त गुणों में परिणमन करते रहेंगे। आज भरतक्षेत्र से त्रिलोकीनाथ चले गये, तीर्थंकर भगवान का वियोग हुआ, वीर प्रभु का आज विरह पड़ा। इन्द्रों ने ऊपर से उतरकर आज निर्वाण-महोत्सव मनाया। देवों द्वारा मनाया गया वह निर्वाण कल्याणकमहोत्सव कैसा दिव्य होगा! उसका अनुसरण करके आज भी लोग प्रतिवर्ष दिवाली के दिन दीपमाला प्रज्वलित करके दीपावली महोत्सव मनाते हैं।

आज वीरप्रभु मोक्ष पधारे। गणधरदेव श्री गौतमस्वामी तुरन्त ही अन्तर में गहरे उतर गये और वीतरागदशा प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त किया। आत्मा के स्वक्षेत्र में रहकर लोकालोक को जाननेवाला आश्चर्यकारी, स्व-परप्रकाशक प्रत्यक्ष ज्ञान उन्हें प्रगट हुआ, आत्मा के असंख्य प्रदेशों में आनन्दादि अनन्त गुणों की अनन्त पूर्ण पर्यायें प्रकाशमान हो उठीं।

अभी इस पंचम काल में भरतक्षेत्र में तीर्थंकर भगवान का विरह है, केवलज्ञानी भी नहीं हैं। महाविदेहक्षेत्र में कभी तीर्थंकर का विरह नहीं होता, सदैव धर्मकाल वर्तता है। आज भी वहाँ भिन्न-भिन्न विभागों में एक-एक

तीर्थंकर मिलाकर बीस तीर्थंकर विद्यमान है। वर्तमान में विदेहक्षेत्र के पुष्कलावतीविजय में श्री सीमन्धरनाथ विचर रहे हैं और समवसरण में विराजकर दिव्यध्वनि के स्रोत बहा रहे हैं। इस प्रकार अन्य विभागों में अन्य तीर्थंकर भगवन्त विचर रहे हैं।

यद्यपि वीर भगवान निर्वाण पधारे हैं, तथापि इस पंचम काल में इस भरतक्षेत्र में वीर भगवान का शासन प्रवर्त रहा है, उनका उपकार वर्त रहा है। वीर-प्रभु के शासन में अनेक समर्थ आचार्य भगवान हुए, जिन्होंने वीर भगवान की वाणी के रहस्य को विविध प्रकार से शास्त्रों में भर दिया है। श्री कुन्दकुन्दादि समर्थ आचार्य भगवन्तों ने दिव्यध्वनि के गहन रहस्यों से भरपूर परमागमों की रचना करके मुक्ति का मार्ग अद्‌भुत रीति से प्रकाशित किया है।

वर्तमान में श्री कहान गुरुदेव शास्त्रों के सूक्ष्म रहस्य खोलकर मुक्ति का मार्ग स्पष्ट रीति से समझा रहे हैं। उन्होंने अपने सातिशय ज्ञान एवं वाणी द्वारा तत्त्व का प्रकाशन करके भारत को जागृत किया है। गुरुदेव का अमाप उपकार है। इस काल ऐसे मार्ग समझानेवाले गुरुदेव मिले, वह अहोभाग्य है। सातिशय गुणरत्नों से भरपूर गुरुदेव की महिमा और उनके चरणकमल की भक्ति अहोनिश अन्तर में रहो ॥४३२॥

वचनामृत। प्रश्न था। बहिन से प्रश्न किया।

प्रश्न—आज वीर निर्वाण दिन के प्रसंग पर... भगवान परमात्मा का दीपावली को वीर निर्वाण का दिवस था, उस समय का यह प्रश्न है। **कृपया दो शब्द कहिये।** ऐसा पूछा है।

उत्तर— श्री महावीर तीर्थाधिनाथ... (भगवान) महावीर से बात ली है न, पूछा है इसलिए। वास्तव में महावीर तो पूर्व के भील के भव में से उनका सुधार होने लगा था। पहले भील का भव था। बीच में दूसरे बहुत भव थे, २७वें भव में भील का भव। भील निकला, वहाँ मुनि निकले। भीलों का राजा था। मुनि निकले तो उसे ऐसा लगा कि यह

कोई मृग है मृग। उसने बाण चलाने की तैयारी की। तब उसकी पत्नी ने कहा—यह मृग नहीं है, ये सन्त हैं, कोई मुनि हैं; इसलिए भील ने (बाण) रख दिया (और) जाकर भक्ति से वन्दन किया। आहाहा! यहाँ से-भील के भव में से शुरुआत हुई। भक्ति से वन्दन किया और फिर वहाँ से तो स्वर्ग में गया। भील ने व्रत अंगीकार किया। माँस आदि का त्याग किया। शुभभाव था, अभी कहीं धर्म नहीं था। शुभभाव था। सम्यक्त्व-बिना व्रत को अंगीकार किया, परन्तु उससे स्वर्ग में गया। (ऐसे) करते-करते अन्तिम दसवें भव में उसे सिंह का भव आया। उसमें पहले सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाला है।

सिंह के भव में—भगवान महावीर दसवें भव में.... आहाहा! ऐसे हिरण को मारते थे, हिरण को फाड़कर खाते थे। वहाँ एक मुनि ऊपर से उतरे। मुनिराज ने उससे कहा—अरे सिंह! क्या है यह? देखो! कुदरत क्या करती है? सिंह की भाषा कौन सी होगी? मुनि की भाषा कौन सी होगी? उन मुनि ने उससे कहा—अरे! सिंह! तू यह क्या करता है? मैंने तो भगवान के निकट सुना है कि तुम तीर्थंकर होनेवाले हो। दसवें भव में तीर्थंकर होनेवाले हो। आहाहा!

सिंह ऐसे सामने देखता रहता है। भाषा चाहे जिस प्रकार की परन्तु बराबर समझ गया। आहाहा! कुदरत है न? आँख में से आँसू की धारा बहती है। हिरण ऐसे पड़ा है और सिंह को उपदेश देते हैं। अरे! सिंह! यह तुझे क्या है? तेरा आत्मा आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है, सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा! विज्ञानघन का कन्द प्रभु अन्दर है, उसकी अनुभूति कर न, प्रभु! आहाहा! सिंह को कहा। अरे! सिंह! मैं कहता हूँ कि तेरी काललब्धि पक गयी है। आहाहा! कहो, कहाँ मुनि! उसकी दशा जहाँ होनेवाली है न, उसे ऐसे निमित्त आये बिना नहीं रहते। आहाहा!

हे सिंह! तेरा आत्मा अन्दर आनन्दकन्द है न, प्रभु! आहाहा! इस शरीर से तो भिन्न है; पुण्य-पाप के शुभाशुभ विकल्पों से भी प्रभु अन्दर भिन्न है। आहाहा! उसके अन्दर तो अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान तथा शान्ति भरी है। सिंह एक बार तू अन्तर्मुख हो। आहाहा! देखो न! एक योग। तेरी काललब्धि पक गयी है, मैं कहता हूँ। मुनि ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसकी योग्यता देखकर, आहाहा! देखकर चेष्टा से उन्हें अन्दर हो गया कि

यह जीव सम्यक्त्व प्राप्त करने के योग्य हो गया है। आहाहा! यह इतना चेष्टा से जाना। देवीलालजी! अरे! सिंह! तू दसवें भव में महावीर तीर्थंकर-तीन लोक का नाथ होनेवाला है। यह क्या है? और तेरा स्वरूप ही जैसा पूर्णानन्द होने का है, वैसा अन्दर स्वरूप ही है। आहाहा!

अतीन्द्रिय ज्ञानघन, चिद्घन, आनन्दघन प्रभु आत्मा को तू अनुभव कर, उसकी अनुभूति प्रगट कर – ऐसा कहा। आहाहा! कहो, अब सिंह के भव में मुनि कहाँ से आये? ऊपर से आते हैं, ऐसा देखा। मुनि ने सुना, भविष्य में, भविष्य की बात यह तीर्थंकर का जीव है। उन्हें कहाँ से ख्याल आ गया कि यह सिंह है, वह तीर्थंकर (होनेवाला है)। आहाहा! ऐसा सुनकर अन्दर में, अन्तर में उतर गया। है सिंह का जीव। आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्द का घन चिदानन्द प्रभु इस राग के विकल्प से—भक्ति का विकल्प राग, वह भी भिन्न है। आहाहा! उसके प्रति प्रेम था, मुनि के प्रति जरा, वह भी कोई विकल्प और राग था। आहाहा! राग से अन्दर भिन्न पड़कर ज्ञान की पर्याय में अन्दर भगवान को देख लिया, अन्तर्मुख होकर (देख लिया)। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुआ। सिंह के भव में। अरे! भाई! आहाहा! पात्रता हो वहाँ... उसमें तो यह सिद्ध करते हैं कि पात्रता जहाँ हो, वहाँ निमित्त तो आ मिलते हैं; निमित्त को मिलाना नहीं पड़ता। और निमित्त से उसमें कुछ नहीं होता। आहाहा! उसे जहाँ ऐसा कहा न प्रभु! तू चैतन्य है न, प्रभु! तेरा अन्दर स्वभाव भगवत्स्वरूप है।

घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन,
मत-मदिरा के पान सो, मतवाला समझे न।

आहाहा! ऐसा उसे कहा, जिनस्वरूप—परमात्मस्वरूप अन्दर है। आहाहा! श्रीमद् भी कहते हैं न...

जिनसोही है आत्मा अन्य सोही है कर्म,
कर्म कटे जिनवचन सो तत्त्वज्ञानी का मर्म॥

आहाहा! जिन सो ही है आत्मा। प्रभु! तू तो जिन है न! आहाहा! तू वीतरागमूर्ति प्रभु है। आहाहा! वह हिरण फाड़ता है वहाँ... आहाहा! पात्रता हुई है न! मुनिराज ऊपर से

उतरकर कहते हैं, भाई! तू अन्दर जिनस्वरूप है, तेरी चीज़ वीतरागमूर्ति है। आहाहा! तेरी चीज़ है, वह राग को स्पर्श नहीं करती, स्पर्श नहीं करती—ऐसी चीज़ अन्दर है। आहाहा! दया, दान, भक्ति आदि के परिणाम भी राग हैं, प्रभु! तू उन्हें स्पर्श नहीं करता—ऐसी तेरी चीज़ अन्दर है। देवीलालजी! आहाहा! ऐसे आँसुओं की धारा बहती है। अन्दर में अशुद्धता की धारा बहती जाती है और शुद्धता का अन्दर अनुभव होता है। तब उसकी शुरुआत समकित की हुई दसवें भव में। वह पहले भाव शुभ था और उस भगवान के भव से पहले वासुदेव हो गया। उसका आत्मा वासुदेव त्रिपुष्ट वासुदेव है न! चक्रवर्ती हो गया, छह खण्ड का राजा चक्रवर्ती हो गया। आहाहा! परन्तु पश्चात् यह जब अन्तिम भव था महावीर पहले का, मुनि हुए और उसके ध्यान में मस्त हुए। होते-होते विकल्प ऐसा आया, उसमें तीर्थंकरगोत्र बँध गया। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, आहाहा! उसमें तू नजर कर, प्रभु! अन्दर भगवान विराजता है। तेरा नाथ भगवान है, तीन लोक का सागर है, नाथ है। आहाहा! ऐसे नजर जहाँ अन्दर करता है। वर्तमान पर्याय को जहाँ अन्तर में गहरे झुकाता है। प्रेमचन्दभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! वहाँ तो फिर मुनिराज की भक्ति का विकल्प भी अब वहाँ नहीं है। आहाहा! अन्तर चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य दल जो चैतन्य आनन्द का दल प्रभु, उसमें अन्तर में पर्याय में अन्दर उतर जाता है, पर्याय से अन्तर में अनुभूति होती है, आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन अर्थात् पूर्णानन्द का नाथ सम्यक् जो चैतन्य साहिबा सत्साहेब अन्दर पूर्ण है, उसका अन्दर में ज्ञान होकर, आनन्द होकर प्रतीति होती है। आहाहा! उस वीर का यहाँ पूछा गया है। महावीर हुए, उस काल का। आहाहा! प्रभु! आज वीर निर्वाण दिन प्रसंग पर कृपा करके कहो।

उत्तर—श्री महावीर तीर्थाधिनाथ... आहाहा! तीर्थ के आधिनाथ व्यवहार से। **आत्मा के पूर्ण अलौकिक आनन्द में...** आत्मा का पूर्ण अलौकिक आनन्द। सम्यग्दर्शन में तो आनन्द है परन्तु बहुत अल्प है। सम्यग्दर्शन पहले ज्ञान होने पर आनन्द होता है, परन्तु अल्प है और मुनि होते हैं जब, सच्चे मुनि-सन्त दिगम्बर मुनि, तब प्रचुर आनन्द का वेदन होता है। प्रचुर स्वसंवेदन होता है। पाँचवीं गाथा में समयसार में है। यह तो अब केवली परमात्मा की बात है। आहाहा!

आत्मा के पूर्ण अलौकिक आनन्द में... पूर्ण शब्द क्यों लिया है ? कि चौथे में आनन्द होता है, छठवें में मुनि को भी आनन्द आता है। आहाहा! मुनि की व्याख्या तो ऐसी की है उसमें-प्रवचनसार में। समकित प्राप्त हुए, वे तो आत्मा के अन्तर की अनुभव की दृष्टि होने पर आनन्द का स्वाद आने पर सम्यक्त्व प्राप्त हुए, तब उसे धर्म की शुरुआत हुई, परन्तु पश्चात् साधु होता है, तब प्रवचनसार में आयेगा... कल प्रवचनसार शुरु करेंगे, रविवार है, नौवीं है। यह तो अन्तिम यह पूर्ण होता है। आहाहा! उसमें ऐसा कहा है, परम शुद्धोपयोग भूमिका को आचार्य, उपायध्याय और साधु प्राप्त हैं। आहाहा! यह वीर केवल (ज्ञान) प्राप्त करने से पहले, ये पहले मुनि थे। आहाहा! वे मुनि भी कैसे किसे कहते हैं ? आहाहा! परमशुद्धोपयोग भूमिका को प्राप्त, उन्हें मुनि कहते हैं। अर र...! अभी तो यह चलता है, पंचम काल में शुभयोग होता है। अरे रे! प्रभु...प्रभु..! तू क्या करता है ? भाई! आहाहा! साधु होकर अभी ऐसा कहता है। श्रुतसागर है, शान्तिसागर के अनुगामी, ऐसा कहते हैं, अभी पंचम काल में शुभयोग होता है। अरे! प्रभु! तो धर्म नहीं ? आहाहा! यहाँ कहते हैं कि जब मुनि-सच्चे सन्त होते हैं सच्चे आचार्य सच्चे उपाध्याय, सच्चे साधु, वे परमशुद्धोपयोग भूमिका को प्राप्त होते हैं। शुभयोग की बात नहीं, राग आता है, वह तो हेय है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह उलांघ जाएँगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उलांघ जाएँगे। आयेगा इसमें। आहाहा! सातवाँ गुणस्थान जहाँ मुनि को प्राप्त होता है... आहाहा! परमशुद्धोपयोग। दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम, वह तो शुभ है, राग है, मैल है, दु:ख है। आहाहा! प्रभु! तेरे तत्त्व की कोई अलौकिकता है, भाई! आहाहा! परमशुद्धोपयोग को प्राप्त आचार्य, मुनि और साधु होते हैं। आहाहा! वह भूमि प्राप्त करके पश्चात् केवलज्ञान हुआ, यह उसकी बात है। समझ में आया ? और उस दिन मुक्ति को प्राप्त हुए कार्तिक कृष्ण अमावस्या को।

अलौकिक आनन्द में और केवलज्ञान में परिणमते थे। आहाहा! पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान में परमात्मा त्रिलोकनाथ परिणमते थे। अन्दर में परिणमते थे। आहाहा! **आज उनने सिद्धदशा प्राप्त की।** कार्तिक कृष्ण अमावस्या। ऐसे परिणमते थे। अतीन्द्रिय आनन्द

और अतीन्द्रिय ज्ञान। आहाहा! तेरहवें गुणस्थान में। आहाहा! बापू! यह मुनिपने की दशा, यह सम्यक्त्वदशा और अरिहन्तदशा कोई अलौकिक है। अभी लोगों ने अन्दर में सब गड़बड़ी कर दी है। आहाहा! तीन लोक के नाथ परमात्मा का दिव्यध्वनि में वचन है कि जहाँ केवल (ज्ञान) प्राप्त करते हैं, तब अलौकिक आनन्द और केवलज्ञान में परिणमते हैं। आहाहा! वह केवलज्ञानी, उन्हें नग्नदशा होती है, उन्हें वस्त्र नहीं होते। आहाहा! सच्चे मुनि हों, उन्हें वस्त्र नहीं होते। अन्दर अलौकिक शुद्धोपयोगभूमिका को प्राप्त हैं। आहाहा! उन्हें वस्त्र कैसा? ऐसी दशा वीतरागमार्ग में आये मुनि को मुनि कहने में आता है। यह मुनिपना, उन्होंने प्राप्त किया और पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त किया। और पश्चात् उस दिन कार्तिक कृष्ण अमावस्या (को मुक्ति प्राप्त हुए)। **आज उनने सिद्धदशा प्राप्त की।**

चैतन्यशरीरी भगवान आज... आहाहा! प्रभु को तो यह चैतन्यशरीर है। यह देह तो जड़, मिट्टी, धूल है। आहाहा! विभ्रम आता है न? भाई! ज्ञान विभ्रम, ज्ञान शरीर है। आहाहा! प्रभु का तो ज्ञान शरीर है। विभ्रम आता है। प्रभु अर्थात् आत्मा, हों! यहाँ प्रभु अर्थात् (आत्मा) आहाहा! उसका तो ज्ञान शरीर है। यह शरीर तो मिट्टी, धूल का, जड़ का है और पुण्य-पाप के भाव हैं, वे भी कार्माणशरीर का भाव है; वह जीव का नहीं। आहाहा!

यह तो **अलौकिक आनन्द में और केवलज्ञान में परिणमते थे। आज उनने सिद्धदशा प्राप्त की। चैतन्यशरीरी भगवान...** अकेला चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द का परिणमन हुआ है। **आज पूर्ण अकम्प होकर...** अब चौदहवाँ लिया - चौदहवाँ गुणस्थान। आहाहा! **अकम्प होकर अयोगी पद को प्राप्त हुए,...** अयोगी पद को प्राप्त हुए। **चैतन्यपिण्ड पृथक् हो गया,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन में पृथक् ज्ञात हुआ था परन्तु पूर्ण पृथक् नहीं था। अभी राग का सम्बन्ध था। यहाँ कहते हैं **पूर्ण अकम्प होकर अयोगी पद को प्राप्त हुए, चैतन्यपिण्ड पृथक् हो गया,...** आहाहा! **स्वयं पूर्ण चिद्रूप होकर चैतन्यबिम्बरूप से...** पूर्ण ज्ञानरूप होकर, जैसा उनका चैतन्यस्वरूप है, वैसी ही परिणति में पूर्णरूप होकर। आहाहा! **चिद्रूप होकर चैतन्यबिम्बरूप से... चैतन्यबिम्बरूप से सिद्धालय में विराज गये;...** आहाहा!

अब सदा समाधिसुख-आदि... अब तो सदा शान्ति, आनन्द और सुखादि अनन्त

गुणों में परिणमन किया करेंगे। आहाहा! 'सादि अनन्त, अनन्त समाधि सुख में।' श्रीमद् में आता है।

सादि अनन्त, अनन्त समाधि सुख में,
अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो।
अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?

समकिती की भावना तो यह होती है। आहाहा! मैं पूर्ण दशा को कब प्राप्त करूँ! उसे दुनिया में मान या अपमान या उनकी कुछ उसे आवश्यकता नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं चैतन्यबिम्बरूप से सिद्धालय में, सिद्ध+आलय, आलय अर्थात् स्थान। विराजमान हो गये। **अब सदा समाधिसुख-आदि अनन्त गुणों में परिणमन करते रहेंगे।** वहाँ अब क्या करेंगे? कहते हैं। परिणति में पर्याय में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान आदि परिणमित हुआ करेंगे। आहाहा!

आज भरतक्षेत्र से त्रिलोकीनाथ चले गये,... आहाहा! **तीर्थंकर भगवान का वियोग हुआ,...** जब अष्टापद पर्वत पर ऋषभदेव भगवान मोक्ष पधारते हैं, ऋषभदेव भगवान अष्टापद पर्वत से मोक्ष पधारते हैं, भरत चक्रवर्ती जाता है, ऐसे देखता है वहाँ आँसुओं की धारा... अरे रे! भगवान का विरह पड़ा। भरतक्षेत्र में से परमात्मा का विरह पड़ा। राग है, प्रशस्तराग है, अभी वीतराग नहीं हुए। आँख में से आँसू आते हैं। अरे रे! परमपरमात्मा तो यह देह छूटकर मोक्ष चले गये। आहाहा!

इन्द्र कहता है, इन्द्र साथ में आया है, भगवान मोक्ष पधारे तो भरत और इन्द्र (आये हैं)। हे भरत! तुम तो इस भव में मोक्ष जानेवाले हो न! तुम यह क्या करते हो? सुन, सुन इन्द्र! हमें हमारी सब खबर है। हम इस देह से मुक्त होनेवाले हैं, हमारा चरमशरीर है परन्तु यह भगवान का विरह पड़ा, उसका प्रशस्तराग आया है। आहाहा! यह भी राग है, हों! आहाहा! परन्तु जब तक वीतरागदशा न हो, तब तक ऐसा राग समकिती को, मुनि को आये बिना नहीं रहता। वह राग (भी) बन्धन का कारण है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **भरतक्षेत्र से त्रिलोकीनाथ चले गये, तीर्थंकर भगवान का वियोग हुआ, वीर प्रभु का आज विरह पड़ा।** आहाहा! **इन्द्रों ने ऊपर से उतरकर आज निर्वाण-**

महोत्सव मनाया। इन्द्र है, सौधर्म देवलोक का इन्द्र तो एकावतारी है। शकेन्द्र है, उसकी पत्नी है, दोनों एक भव करके मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! भगवान के आगम में, यह परमागम में कहा है। यह शकेन्द्र है, वह बत्तीस लाख विमान का स्वामी है परन्तु वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है। आहाहा! ऐसे इन्द्र भी भगवान के पास वहाँ उतरे हैं। यह तो सौधर्म इन्द्र देव अभी है परन्तु उस समय जो इन्द्र था वह। **आज निर्वाण-महोत्सव मनाया। देवों द्वारा मनाया गया वह निर्वाण कल्याणकमहोत्सव कैसा दिव्य होगा!** कैसा दिव्य होगा! आहाहा! **उसका अनुसरण करके आज भी लोग प्रतिवर्ष दिवाली के दिन दीपमाला प्रज्वलित करके दीपावली महोत्सव मनाते हैं।** आहाहा!

आज वीरप्रभु मोक्ष पधारे। उस समय गणधरदेव श्री गौतमस्वामी तुरन्त ही अन्तर में गहरे उतर गये... आहाहा! शुद्धोपयोगभूमिका को तो प्राप्त थे, परन्तु अभी विकल्प आता था छठवें में आते थे तब। आहाहा! भगवान का जहाँ मोक्ष हुआ कि अन्तर में उतर गये। आनन्द के नाथ का गुण का समुद्र अन्दर उछलता है। उस गुण में अन्तर में उतरे। है? अन्तर में गहरे उतर गये, ध्रुव में गये, अन्दर स्थिर हुए। ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... जो है समकित का ध्येय जो ध्रुव है, वह तो ध्येय तो है ही, परन्तु अब स्थिरता में अन्दर में उतर गये अन्दर। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ में **अन्तर में गहरे उतर गये और वीतरागदशा प्राप्त करके...** उस दिन **केवलज्ञान प्राप्त किया।** गौतम केवलज्ञान को प्राप्त हुए। आहाहा!

आत्मा के स्वक्षेत्र में रहकर... भगवान आत्मा स्वक्षेत्र में रहकर। आहाहा! **लोकालोक को जाननेवाला आश्चर्यकारी, स्व-परप्रकाशक प्रत्यक्ष ज्ञान उन्हें प्रगट हुआ,...** आहाहा! यह तो पहले से प्रगट हुआ है, यह तो पूर्ण की बात (करते हैं)। **आत्मा के असंख्य प्रदेशों में आनन्दादि अनन्त गुणों की...** आहाहा! आत्मा को प्रदेश असंख्य हैं परन्तु गुण अनन्त हैं। आहाहा! उन अनन्त गुण को रहने के लिये अनन्त प्रदेश की आवश्यकता नहीं है। वे तो चैतन्यघन असंख्य प्रदेशी हैं। आहाहा! उसमें अनन्त गुण असंख्य प्रदेश में रहे हुए हैं। **आनन्दादि अनन्त गुणों की...** आहाहा!

असंख्य प्रदेशों में (आनन्दादि अनन्त गुणों की) अनन्त पूर्ण पर्यायें प्रकाशमान हो उठीं। आहाहा! द्रव्य तो पूर्ण था, गुण भी त्रिकाली पूर्ण है। पर्याय में पूर्ण पर्याय अन्दर प्रगट हो गयी। आहाहा! चौदहवें गुणस्थान में अभी भी जरा थोड़ी अशुद्धता थी न! असिद्धदशा

है न ? आहाहा ! भिन्न पड़ गया पिण्ड, वहाँ तो सब पर्यायें निर्मल हो गयीं। आहाहा ! समय एक, परन्तु पर्यायें अनन्त वेदन में आती है। आहाहा !

सामान्य जो त्रिकाली ध्रुव है, वह कहीं वेदन में नहीं आता। वेदन में तो उसकी पर्याय वेदन में आती है परन्तु वह पर्याय कितनी ? एक काल, एक समय की जितनी परन्तु अनन्त अनन्त पर्यायें। जितने गुण हैं, उतनी सब पर्यायें पर्याय में वेदन में आती हैं। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है, भगवान ! वीतराग का मार्ग कोई ऐसा है, सूक्ष्म है। आहाहा ! असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण ध्रुव, उनकी पर्याय में प्रगट दशा होकर जितने गुण हैं, उतनी पर्याय बाहर प्रगट में है। वे सभी अनन्त पर्यायें प्रगट हैं। वह तो अज्ञानी को गुण की पर्याय अनन्त हैं। परन्तु सब अशुद्ध और मलिन कितनी ही हैं। यहाँ पूर्ण अनन्त... अनन्त... अनन्त... आहाहा ! समय एक, विशेष का वेदन है। यह कहते हैं। है न ? आहाहा !

अनन्त आनन्दादि अनन्त गुणों की अनन्त पूर्ण पर्यायें... आहाहा ! वहाँ पर्याय का वेदन है। **पर्यायें प्रकाशमान हो उठीं।** आहाहा ! ध्रुव है, वह तो अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका वेदन नहीं होता। वेदन तो पर्याय का प्रगट पर्याय जो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... उस अनन्त को कोई हद नहीं, इतनी पर्यायें हैं। भले एक समय है, संख्या से अनन्त पर्याय है। आहाहा ! वह विशेष पर्याय है, वह प्रकाशमान हो उठी है। आहाहा ! द्रव्य, गुण और पर्याय का पूर्णरूप। द्रव्य पूर्ण, गुण पूर्ण, पर्याय भी जो सम्यग्दर्शन में थोड़ी कम, अनन्त सही। सम्यग्दर्शन में भी अनन्त पर्यायें तो हैं ही। आहाहा ! वेदन में, परन्तु थोड़ी, मुनि को अनन्त अवश्य परन्तु विशेष और केवली को अनन्त अवश्य परन्तु पूर्ण। आहाहा ! **वे पूर्ण पर्यायें प्रकाशमान हो उठीं।**

अभी इस पंचम काल में भरतक्षेत्र में तीर्थंकर भगवान का विरह है, केवलज्ञानी भी नहीं हैं। तीर्थंकरों का तो विरह है परन्तु केवलज्ञान उत्पन्न होने का भी अभी काल नहीं है। आहाहा ! ऐसा कहते हैं। भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकर तो अभी नहीं हैं परन्तु केवलज्ञान होने का भी काल नहीं है। आहाहा ! **महाविदेहक्षेत्र में कभी तीर्थंकर का विरह नहीं होता,...** परन्तु प्रभु विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में बीस तीर्थंकर मौजूद हैं। वहाँ कभी तीर्थंकर का विरह नहीं पड़ता। आहाहा ! भरतक्षेत्र में तीर्थंकर का विरह पड़ता है और अभी तो केवलज्ञान का विरह पड़ा है, उत्पन्न होने का (विरह पड़ा है)। महाविदेह में तो सदा

तीर्थंकर विराजते हैं और सदा केवलज्ञान होने के योग्य जीव केवल (ज्ञान) प्राप्त करते हैं। आहाहा! छह महीने आठ समय में छह सौ आठ (जीव) मुक्ति प्राप्त करते हैं। अभी भरतक्षेत्र में नहीं तो कहाँ से प्राप्त करेंगे? आहाहा!

महाविदेहक्षेत्र में कभी तीर्थंकर का विरह नहीं होता,.... आहाहा! वहाँ उसमें-प्रवचनसार में आयेगा। ऐसा कि वर्तमान तीर्थंकर यहाँ नहीं तो विद्यमान तीर्थंकरों को भी मैं नमस्कार करता हूँ। महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहेंगे। अभी भगवान का विरह है, परन्तु वहाँ तीर्थंकर विराजते हैं। उन सबको मैं एक साथ नमस्कार करता हूँ। है विकल्प; और निर्विकल्प दोनों एक साथ हैं। जितना अभेद हो गया है, उतना निर्विकल्प है और जितना परसन्मुख के लक्ष्य का राग है, उतना अभी राग है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। **महाविदेहक्षेत्र में कभी तीर्थंकर का विरह नहीं होता, सदैव धर्मकाल वर्तता है।** धर्मकाल वर्ते अहो! आता है न? क्या कहलाता है वह? समवसरण की स्तुति, समवसरण की स्तुति। भाई ने बनायी है न, पण्डितजी ने! धर्मकाल वर्ते अहो! आहाहा! महाविदेह में सदा तीर्थंकर विराजमान हैं, सदा धर्मकाल वर्तता है। आहाहा! वहाँ विरह नहीं पड़ता। **आज भी वहाँ भिन्न-भिन्न विभागों में एक-एक तीर्थंकर मिलाकर बीस तीर्थंकर विद्यमान है।** आहाहा! अब वे सब ये विज्ञानी बातें करते हैं देवलोक की और अमुक की और अमुक की। यह महाविदेह में भगवान विराजते हैं, इसकी तो उन्हें कोई खबर नहीं। उनकी खबर नहीं। आहाहा! विज्ञान, किसका विज्ञान तेरा? तीन लोक के नाथ तीर्थंकर विराजमान हैं, महाविदेह में समवसरण है। दो हजार हाथ के ऊँचे हैं, करोड़पूर्व का आयुष्य है, एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। आहाहा! साक्षात् विराजते हैं।

भिन्न-भिन्न विभागों में (भिन्न-भिन्न क्षेत्र में) एक-एक तीर्थंकर मिलाकर बीस तीर्थंकर विद्यमान है। हल में वर्तमान में विदेहक्षेत्र के पुष्कलावतीविजय में, अभी हाल में विदेहक्षेत्र के पुष्कलावतीविजय में श्री सीमन्धरनाथ विचर रहे हैं... सीमन्धर भगवान अभी केवलज्ञानरूप से विचर रहे हैं। आहाहा! **और समवसरण में विराजकर...** अरिहन्त हैं न, दिव्यध्वनि है न! दिव्यध्वनि। **समवसरण में विराजकर दिव्यध्वनि के स्रोत बहा**

रहे हैं। दिव्यध्वनि क्यों कहा ? उन्हें ऐसी भाषा नहीं होती। तीर्थंकर केवल(ज्ञान) प्राप्त करें, उन्हें ऐसी भाषा नहीं होती। उनका होंठ बन्द होता, ओम् ध्वनि अन्दर से पूरे शरीर से उठती है।

ओमकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे
रचि परमागम आगम भव्य जीव संशय निवारै।

आहाहा! अरे रे! लोगों को कहाँ विश्वास। आहाहा!

वर्तमान में विदेहक्षेत्र के, वर्तमान में विदेहक्षेत्र के पुष्कलावतीविजय में श्री सीमन्धरनाथ विचर रहे हैं और समवसरण में विराजकर दिव्यध्वनि के स्रोत बहा रहे हैं। आहाहा! **इस प्रकार अन्य विभागों में (दूसरे क्षेत्रों में भी) अन्य तीर्थंकर भगवन्त विचर रहे हैं।** दूसरी जगह भी हैं न दूसरे! इस पुष्कलावतीविजय में हैं और दूसरे सब भी हैं। बीस तीर्थंकर तो सदा त्रिकाल होते हैं। तीनों काल में, तीन काल के जाननेवाले का जगत में विरह नहीं होता। तीन काल ज्ञेय हैं, उन तीन काल में तीन काल के जाननेवाले का कभी विरह नहीं होता। उन्हें ज्ञेय है, इसलिए पूर्ण ज्ञानवाले का विरह नहीं हो सकता। आहाहा! **इस प्रकार अन्य विभागों में अन्य तीर्थंकर भगवन्त विचर रहे हैं।**

यद्यपि वीर भगवान निर्वाण पधारे हैं, तथापि इस पंचम काल में... आहाहा! **इस भरतक्षेत्र में वीर भगवान का शासन प्रवर्त रहा है,...** महावीर का शासन प्रवर्त रहा है। आहाहा!

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी,
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोस्तु मंगलं॥

आहाहा! ऐसा **वीर भगवान का शासन प्रवर्त रहा है, उनका उपकार वर्त रहा है।** आहाहा! प्रवचनसार में लेंगे।

मुमुक्षु : सिद्ध भगवान...

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें कहाँ वाणी है ? यहाँ तो अभी तीर्थंकर हैं, उन्हें वाणी है। सिद्ध हुए, वे तो णमो सिद्धाणं अशरीरी हुए। उन्हें वाणी नहीं, शरीर नहीं। अरिहन्त हैं, उन्हें वाणी और शरीर होते हैं। चार कर्म का नाश है और चार कर्म बाकी हैं। सिद्ध को तो आठों

कर्मों का अभाव होकर अकेला... (अशरीरीपना है)। आहाहा! (अरिहन्त भगवान) कर्म के कारण अटके हैं, ऐसा नहीं, हों! कर्म तो जड़ है, पर है। अपनी भूल के कारण, अपनी अशुद्धता के कारण अटके हैं। आहाहा! कठिन काम है। ऐसा कहे केवली हैं, उन्हें चार घाति का नाश, चार अघातिकर्म हैं, इसलिए वे रुके हैं। ऐसा नहीं है। अभी वहाँ आगे पर्याय में इतनी अशुद्धता उदयभाव की वर्तती है। आहाहा! इससे वहाँ असिद्ध कहने में आते हैं। आहाहा! जो पर्याय पूर्ण हो जाती है पुरुषार्थ से, तब उन्हें सिद्ध कहने में आता है।

वीर-प्रभु के शासन में अनेक समर्थ आचार्य भगवान हुए... आहाहा! **वीर-प्रभु के शासन में अनेक समर्थ आचार्य भगवान हुए, जिन्होंने वीर भगवान की वाणी के रहस्य को विविध प्रकार से...** आहाहा! दिगम्बर सन्त हुए। वीर भगवान के शासन में दिगम्बर सन्त, वे सन्त... आहाहा! श्वेताम्बर हैं, वे तो बाद में निकले हैं। दो हजार वर्ष पहले सनातन दिगम्बर जैनधर्म में से निकले हैं। वह जैनधर्म का शासन नहीं है। कठिन बात है। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है न? श्वेताम्बर और स्थानकवासी भी जैन नहीं, अन्यमती हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक...

मुमुक्षु : दिगम्बर...

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर नहीं, वस्तु की स्थिति यह है। सत्‌श्रुत में मोक्षमार्ग (प्रकाशक) भी सत्‌श्रुत है। मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में यह कहा है और अष्टपाहुड़ में भी कहा है। 'नागेण' नग्नपना है, केवलज्ञानसहित का वस्त्ररहित है, उसका मोक्ष है। बाकी वे सब मार्ग उन्मार्ग हैं। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! कठिन बात है। जो वस्त्रसहित मुनिपना मानते हैं, वह उन्मार्ग है, वह जैनमार्ग नहीं है। आहाहा! प्रेमचन्दभाई! ऐसी बात है। लोगों को कठिन पड़ता है। यह दिगम्बर सन्त, परम्परा की बात है। श्वेताम्बर तो दो हजार वर्ष पहले बड़ा दुष्काल पड़ा, उसमें दृष्टि विपरीत हो गयी और अलग पन्थ निकाला। आहाहा! अरे! जगत को कैसे जँचे? पक्ष में पड़े, उन्हें बात कठिन लगती है। वह यहाँ परम्परा में उन्हें नहीं लिया जाता - ऐसा कहना है।

वीर-प्रभु के शासन में अनेक समर्थ आचार्य भगवान हुए... आचार्य भगवन्त हुए। आहाहा! जिन्हें शुद्धोपयोगभूमिका प्राप्त हुई थी। आहाहा! उन्हें आचार्य भगवान कहा

जाता है, भाई ! आहाहा ! इसलिए आता है न ? णमो लोए सव्व अरिहंताणं। परन्तु णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, ऐसा शब्द सिद्धान्त में है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं इतना शब्द परन्तु सिद्धान्त में तो इससे अधिक पाठ है। धवल में। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सव्व साहूणं। तीनों काल में वर्तनेवाले शुद्धोपयोग भूमिकावाले, उन्हें हमारा नमस्कार है। आहाहा !

श्रेणिक राजा तीर्थंकर होनेवाले हैं, उन्हें भी अभी से नमस्कार होता है। हैं नरक में। श्रेणिक राजा नरक में हैं, चौरासी हजार वर्ष की स्थिति है परन्तु निकलकर यहाँ के पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहाहा ! यह सम्यग्दर्शन का प्रताप ! चारित्र नहीं था, व्रत-तप नहीं थे। आहाहा ! जिन्हें सम्यग्दर्शन शुद्ध था, क्षायिक समकित था। आहाहा ! परन्तु आयुष्य पहले से नरक का बँध गया, इसलिए वह तो छूटता नहीं। आहाहा ! नरक में भी समय-समय तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। वहाँ से तीर्थंकरगोत्र शुरु किया है, भगवान के समीप में—समवसरण में, तब से तीर्थंकरगोत्र समय-समय बाँधते हैं। आहाहा ! नरक में रहे। आहाहा !

शीलपाहुड़ में पाठ नहीं ? नरक में भी शील है, भाई ! शील है, वहाँ से निकलकर अरिहन्तपद प्राप्त करेंगे, ऐसा शील है। शील अर्थात् ? जिन्हें अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व का नाश हो गया है। आहाहा ! उसका नाम शील। ऐंई ! ऐसा शील तो नरक में भी है। शीलपाहुड़ है, अष्टपाहुड़। और उस शील में रहे हैं। आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में हैं। बाकी जितना राग है, उतना दु:ख भी है। जितना राग है, उतना दु:ख भी है। साधक है न ! पूर्ण आनन्द सर्वज्ञ परमात्मा को; पूर्ण दु:ख मिथ्यादृष्टि जीव को; सम्यग्दृष्टि साधक को थोड़ा आनन्द और थोड़ा दु:ख, दोनों इकट्ठे होते हैं। आहाहा ! वह यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : उन्हें शुद्धोपयोग कितने अन्तराल में होता है ? पहले नरक में।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुद्धोपयोग पहले कहाँ है ? वह मुनि को तो तुरन्त ही शुद्धोपयोग सातवें में होता है।

मुमुक्षु : श्रेणिक राजा को।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रेणिक राजा को मुनि होंगे तब। परन्तु अभी यह लेख लेना नहीं है। यह हमारे ख्याल में बात है। यह विचार तो सब आ गये हैं। उपयोग हो, वहाँ भी गर्भ

में आवे तब कब होता है, यह बहुत ख्याल नहीं है। आधार—शास्त्र का आधार चाहिए न। आधार बिना कुछ (नहीं कहा जाता)। परमात्मा के शास्त्र का आधार चाहिए। तीन लोक के नाथ कुन्दकुन्दाचार्य आदि ने बनाये हुए शास्त्रों का आधार होवे तो... आहाहा! यह बात है।

वीर-प्रभु के शासन में अनेक समर्थ आचार्य भगवान हुए, जिन्होंने वीर भगवान की वाणी के रहस्य को, वीर भगवान की वाणी के रहस्य को विविध प्रकार से शास्त्रों में भर दिया है। आहाहा! श्रीमद् में आता है न? बीस सत्श्रुत। उनमें अठारह सूत्र अकेले दिगम्बर के हैं और एक-दो तो... हैं। श्वेताम्बर का कोई शास्त्र बीस में नहीं आता। सत्श्रुत यह है, भाई! आहाहा! शास्त्रों में भगवान की वाणी के रहस्य को, रहस्य को, देखा? आहाहा! **विविध प्रकार से शास्त्रों में भर दिया है।** आहाहा! पूर्ण स्वरूप अन्दर है। एक-एक समयसार, प्रवचनसार कोई भी (शास्त्र लो)। नियमसार, अष्टपाहुड़, गोम्मटसार आदि सब ग्रन्थ हैं न! आत्मानुशासन आदि बहुत पुस्तकें। श्रीमद् में भी पीछे में नाम आते हैं। उन्हें सत्श्रुत कहा जाता है और उस सत्श्रुत के सेवन से अलौकिक शास्त्र का फल आवे, उसे अमृत आवे। वह शास्त्र का फल कहा है। आहाहा! वहाँ श्वेताम्बर के शास्त्र का नाम नहीं दिया है।

मुमुक्षु : वह तो बिना कहे आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिना कहे आवे ही नहीं उसमें। यह आता है, यहाँ तो यहाँ...

वीर भगवान की वाणी के रहस्य को... रहस्य को, हों! आहाहा! **विविध प्रकार से शास्त्रों में भर दिया है। श्री कुन्दकुन्दादि समर्थ आचार्य...** आहाहा! कुन्दकुन्दादि आचार्य। आदि में सब दिगम्बर सन्त लेना। श्वेताम्बर नहीं। सूक्ष्म बात है, भगवान! क्या हो? आहाहा! प्रेमचन्दभाई! ऐसा है, बापू! क्योंकि वहाँ तो दृष्टि के फेर से पूरे शास्त्र रचे गये हैं। भगवान को दो माता-पिता। तीन काल में होवे भगवान को दो माता-पिता? उसमें लिखा है। पहले ब्राह्मण पिता था और फिर क्षत्रिय पिता हुए। अरे! होते है? भगवान को दो माता, दो पिता तीन काल में नहीं होते। तीर्थंकर मल्लिनाथ हुए, स्त्री तीर्थंकर हुई—बिल्कुल झूठ बात है। सब कल्पित रचना की है। सत्य की प्रसिद्धि तो यह है। आहाहा! भगवान को रोग ठहराते हैं, भगवान को रोग ठहराकर दवा ली है, (ऐसा भी कहते हैं)।

मुमुक्षु : निरोग हुए....

पूज्य गुरुदेवश्री : निरोग हुए और सब प्रसन्न हुए। यह सब कल्पित बातें हैं।

मुमुक्षु : आपको पहले दीक्षा लेते समय शंका पड़ी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो वस्त्र फटा, तब शंका पड़ी यह भी... इतना। दीक्षा ली (संवत्) १९७० के मागसर शुक्ल दस। वैसे अपनी नौवीं थी और स्थानकवासी की दस। उस हाथी के हौदे चढ़ने गये। बड़ी हाथी पर दीक्षा थी न! ऐसे छियासठ वर्ष दीक्षा को हुए। वहाँ बढ़िया कपड़े पहनते थे, यों भी वस्त्र बढ़िया पहनते थे। उसमें निसरनी में फँसकर वस्त्र फट गया। दीक्षा के दिन। कुछ शंका पड़ी (कि) यह क्या हुआ? यह क्या हुआ? इतना अधिक कुछ लम्बा विचार नहीं आया परन्तु शंका पड़ गयी। कुछ अन्तर है। क्या है?

पात्र की बात (संवत्) १९७३ की है। १९७३ के वर्ष में हमारे गुरु थे न सम्प्रदाय के? वे पात्र रँगते थे। बीस-पच्चीस पात्र रखे नम्बर से। दो-दो घण्टे प्रतिदिन रंग-रोगन हो और मैं तो स्वाध्याय करूँ। वे वहाँ रँगते थे तो मैं तो स्वाध्याय करूँ। फिर कहे-भाई! अरे! परन्तु कानजी यह तो ध्यान रख। कहा, परन्तु यह क्या पात्र की उपाधि? यह रंगना और दो-दो घण्टे... यह १९७३ की बात है। तब इतना बोले, बहुत भद्रिक थे। हीराजी महाराज बहुत भद्रिक थे (बोले) तब पात्ररहित साधु खोज लाना। बापू! साधु को पात्र नहीं होता, साधु को वस्त्र नहीं होता, जैनशासन में यह बात सब (वस्त्र-पात्र की) गड़बड़ी से उठी है। आहाहा! यहाँ तो सत्य है, वह यह है, बापू! दोनों समान हैं और दोनों माने वह मिथ्यात्व, मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! यहाँ जो कहते हैं, वह दिगम्बर सन्तों की परम्परा में सन्त हुए, उन्होंने रहस्य भरा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें यही लेना। शासन में अनेक समर्थ आचार्य भगवन्त वे यह (हुए)। नेमिचन्द सिद्धान्तचक्रवर्ती, पूज्यपादस्वामी, समन्तभद्राचार्य, अमृतचन्द्राचार्य आहाहा! महासन्त हो गये, आकाश के स्तम्भ समान। आहाहा!

ऐसे मुनि, आचार्य भगवान हुए जिन्होंने वीर भगवान की वाणी के रहस्य को विविध प्रकार से शास्त्रों में भर दिया है। आहाहा! त्रंबकभाई! यह शास्त्र किसके लेना?

यह लेना। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने बनाये हुए शास्त्र, उन शास्त्रों की यह बात है। आहाहा! बात ऐसी है, बापू!

श्री कुन्दकुन्दादि समर्थ आचार्य... अमृतचन्द्राचार्य, पद्मप्रभमल (धारिदेव).. आहाहा! योगीन्द्रदेव, पूज्यपादस्वामी, आहाहा! कार्तिकेयानुप्रेक्षा के रचनेवाले.. आहाहा! **श्री कुन्दकुन्दादि समर्थ आचार्य भगवन्तों ने...** आचार्य-भगवन्तों ने। यह आचार्य भगवान कहलाते हैं, बापू! आहाहा! यहाँ तो अभी कहे – क्रिया महाव्रत पालो और यह करो, वह साधुपना है। यह महाव्रत तो राग है, यह साधुपना नहीं है। महाव्रत है, वह तो राग है, विकल्प है, आस्रव है, बन्धन का कारण है। उसे धर्म-चारित्र कहना?

मुमुक्षु : वे कहते हैं, हमारे शास्त्र में लिखा वह सच्चा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मिथ्या, मिथ्या। शास्त्र नहीं, वह शास्त्र सच्चा नहीं। यहाँ आचार्य भगवन्तों में ये लेना – दिगम्बर के आचार्य लेना। आहाहा! और कुन्दकुन्दादि आचार्य अर्थात् वर्तमान अमृतचन्द्राचार्य, आहाहा! समन्तभद्राचार्य, लो न! चौबीस तीर्थंकर की स्तुति बनायी परन्तु लिखा है कि भाई! यह स्तुति विकल्पात्मक है। समन्तभद्राचार्य, अमृतचन्द्राचार्य पहले हुए। उनके अर्थ किये हैं भाई ने—जुगलकिशोर (जी) ने। समन्तभद्राचार्य की स्तुति आगम है, आगम। अध्यात्म अलग। स्तुति आगम में गिनी जाती है।

मुमुक्षु : उसमें दो कारण....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो कारण की व्याख्या है न, है न! निमित्त और उपादान दोनों हैं। सब खबर है। स्तुति है न, स्तुति में तो निमित्त आता है। स्तुति है, वह पर की है। पर की स्तुति में राग है। आहाहा! यहाँ समन्तभद्राचार्य ने बनायी है, बाकी श्वेताम्बर में तो बहुत स्तुति है,... क्योंकि भगवान की स्तुति में उन्हें सब मनवाना है न! और भगवान के गुणगान, वह तो परद्रव्य की स्तुति है। आहाहा! लाख तीन लोक के तीर्थंकर साक्षात् समवसरण में विराजते हैं, उनकी स्तुति तो शुभराग है। यह आयेगा...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है, वह संवर नहीं है। शुभयोग, वह आस्रव है। अपने इसमें

आयेगा। द्वैत और अद्वैत नमस्कार, प्रवचनसार (में आयेगा) । कल से प्रवचनसार दोपहर में शुरु होगा, आज यह पूरा होता है। तीन से चार। शुरुआत अभी बहुत वर्ष से की नहीं है और भाई रामजीभाई ने भी कहा, वजुभाई ने भी कहा। ज्ञानप्रधान ग्रन्थ है और क्या शैली है। आहाहा!

कुन्दकुन्दादि समर्थ आचार्य भगवन्तों ने दिव्यध्वनि के गहन रहस्यों से... साक्षात् भगवान की दिव्यध्वनि कुन्दकुन्दाचार्य ने तो सुनी है। भगवान के पास गये थे। संवत् ४९, आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये हैं। आहाहा! **आचार्य भगवन्तों ने दिव्यध्वनि के गहन रहस्यों से भरपूर है परमागमों की रचना करके मुक्ति का मार्ग अद्भुत रीति से प्रकाशित किया है।** आहाहा! बस, बाद में तो पढ़ लेना। पूरा हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)